हमारा इतिहास

H

205

केशव सागर

संशोधन :

श्याम लाल एम० ए०, टी० डी० (लंदन)

प्रिंसिपल

हारकोर्ट बटलर हायर सैकेण्ड्री स्कूल,

नई दिल्ली

Hamara Itihas.

हमारा इतिहास

Keshav Sagar

केशव सागर

संशोधन :

श्याम लाल एम० ए०, टी० डी० (लंदन)

प्रिंसपिल

हारकोर्ट बटलर हायर सैकेण्ड्री स्कूल,

नई दिल्ली

Sh. Ghulam Mohamad & Sons
Book-Sellers, Publishers & Stationers
Govt., Order Suppliers,
Maisuma Bazar, SRINAGAR KASHMIR.

Navyug Prakashan

नवयुग प्रकाशन
दिल्ली

Delhi.

Acc. No 24190
Cost Rs. 8.00
Date 30.12.64

Sri Pertap Srinagar Library

H95.42
K52H

8/-

Printed at
P. B. I. (*India*) Press, Paharganj, New Delhi and Published
by Shree Ram Jawaya Kapur, Proprietor, Uttar Chand
Kapur & Sons, Delhi, Ambala, Agra, Nagpur & Jaipur.

प्राक्कथन

इतिहास तथ्यों का संग्रह मात्र नहीं है। वास्तव में यह सामाजिक, साँस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक धाराओं का शाब्दिक चित्रण —लोक जीवन की सजीव, सजग तथा रसीली कहानी है।

भारत का इतिहास विशेष रूप से स्फुरित और रोचक है। पिछले पचास सालों में और मुख्यतः १९४७ ई० के बाद जो सामग्री प्राप्त हुई है उसने हमारे देश के गौरव को चार चाँद लगाये हैं, फिर भी वह सामग्री हमारे सामने नहीं आई जिस के आधार पर हम अपनी महान् संस्कृति का पूर्ण रूप से चित्रण कर सकें। इस पुस्तक में केवल उस की एक झलक ही दिखाई जा सकी है। हमारे इतिहासकारों की गवेषणा से यदि कुछ समय में नये तथ्य जिन की ओर हम ने यहाँ संकेत किया है प्राप्त हो सके तो निश्चय ही संसार को अपना इतिहास बदलना पड़ेगा।

परीक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम को भी ध्यान में रखना आवश्यक था इस लिए बहुत से तथ्यों को संक्षेप में दिया गया है।

पुस्तक की रचना करते समय यह ध्यान बराबर रहा है कि इस के पढ़ने से पाठकों के मन में इतिहास के अध्ययन की ओर रुचि उत्पन्न हो। इसी विचार से यथासम्भव रोचक और सहल भाषा का प्रयोग किया गया है।

—लेखक

है। इसलिए यहाँ तथ्यों तथा घटनाओं को प्रस्तुत करते समय इस ज्योति को सामने रखा गया है।

तथ्यों के विषय में विरोधी मत हो सकते हैं, उनकी साधुता के बारे में सन्देह प्रकट किया जा सकता है पर इतिहास मानव जीवन को इस सीमा तक प्रभावित करता है कि इन तथ्यों की अपेक्षा इनके परिणामों का अधिक मूल्य हो जाता है और देखा यह गया है कि परिणामों को बाँच कर ही हम इन तथ्यों तक पहुँच सकते हैं। भारतीय कारीगरों के सदियों के श्रम का परिणाम अजन्ता के रूप में हमारे सामने है पर वे तथ्य जिन्होंने इस परिणाम को सम्भव बनाया केवल अनुमान का विषय हैं।

वैसे ही हमारा आज का जीवन उस अतीत की कहानी कहता है जिस में हम ने उच्च कोटि की नागरिक और उदार सभ्यता का निर्माण किया, जो मौलिक रूप में सहस्राब्दियों की उथल-पुथल के बाद भी स्थायी है।

हम साफ देखते हैं कि हमारे लिये सम्राटों और विजेताओं का महत्व नहीं बल्कि उन विचारों का मूल्य है जो देश-विदेश से आने वाले असंख्य लोग अपने साथ लाते रहे और जिन के मंथन से हमारे आज के विचारों का सार बना है। हमारे भाग्य-निर्माता भारत के शासक नहीं रहे और न ही उनकी विजय अथवा पराजय ने हमारे इतिहास के प्रवाह को मौलिक रूप से अदला-बदला है। अशोक को कलिंग के हत्याकाण्ड ने उत्पन्न किया अथवा उन परिस्थितियों ने जो महात्मा बुद्ध और उनके अनुयाइयों के अनथक परिश्रम के कारण पैदा हुई—यह एक गंभीर खोज का विषय है। मराठे पानीपत की लड़ाई के कारण भारत का सिंहासन खो बैठे अथवा कोई अधिक बलिष्ट ऐतिहासिक तथ्य बाधक सिद्ध हुए, यह भी हम एक दम नहीं कह सकते। वास्तव में सम्राटों और उनकी हार-जीत के बखेड़े से मुँह मोड़ कर ही हम भारतीय इतिहास के असली रूप को देख सकते हैं।

03/07/2013

जनों को केन्द्र मान कर ही इस पुस्तक का ताना-बाना तैयार किया गया है। इसकी रचना उस भावना से प्रेरित हुई है जो 'भारत माता' की कल्पना से हमारे मन में उत्पन्न होती है। उद्देश्य यही रहा है कि हमारे नौनिहालों के सम्मुख सरल भाषा में भारत के वास्तविक रूप का चित्रण रोचक ढंग से किया जाय।

—नई दिल्ली

श्याम लाल

विषय-सूची

परिच्छेद विषय पृष्ठ

१. भूगोल और इतिहास ... १
२. भारत इतिहास के स्रोत ... ११

प्राचीन युग

३. प्रागैतिहासिक विवरण ... १४
४. भारत के इतिहास का श्रीगणेश .. २०
५. आर्यों का आगमन ... २६
६. आर्य सभ्यता का यौवन-काल ... ४२
७. पौराणिक काल ... ५०
८. जैन धर्म और बौद्ध धर्म ... ६१

साम्राज्यों का युग

९. संसार के प्रारम्भिक साम्राज्य ... ७१
१०. मौर्य कालीन भारत ... ७८
११. मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात ... ९०
१२. मौर्य काल से गुप्त काल तक ... १०१
१३. गुप्त कालीन भारत ... ११७
१४. हर्ष कालीन भारत ... १३३

शौर्य युग

१५. इस्लाम का अभ्युदय ... १४६
१६. राजपूत कालीन भारत ... १५९

१७. बृहत्तर भारत ... १६८
१८. तुर्क कालीन भारत ... १८३
१९. दिल्ली के सुल्तान ... २०१
२०. तुर्क कालीन भारत के अन्य राज्य ... २३१
२१. मुग़ल कालीन भारत ... २६७
२२. मुग़ल साम्राज्य का यौवन काल ... २८३

जातीयता का युग

२३. औरङ्गज़ेब कालीन भारत ... ३०९
२४. मराठों का उत्थान ... ३२१
२५. राजपूत तथा सिक्ख ... ३४५
२६. मुसलमान ... ३६०
२७. मराठा कालीन भारत ... ३७६
२८. पूर्वी और पश्चिमी तट ... ३८१
२९. मैसूर और हैदराबाद ... ३९२
३०. महाराष्ट्र ... ४०२
३१. उत्तरी और पश्चिमी भारत ... ४०७
३२. पूर्वी भारत ... ४३४

आधुनिक युग

३३. उन्नीसवीं शताब्दी का अवतरण ... ४६३
३४. भारत में विदेशी राज्य ... ४७८
३५. अंग्रेजों का विरोध ... ४९४
३६. आगे बढ़ने की नीति ... ५०४
३७. भारत का आर्थिक संकट ... ५२५

गाँधी युग

३८. भारत में जागृति ... ५४८

३९. बंग-भंग और उसके पश्चात ... ५७४

४०. प्रथम महायुद्ध और भारत ... ५८८

४१. स्वतंत्रता की ओर ... ६०५

४२. लोक-परक गणराज्य ... ६२४

परिशिष्ट ... ६६२

परिच्छेद १

भूगोल और इतिहास

इतिहास और भूगोल का सम्बन्ध

इतिहास लोक नाटक है और भूगोल उस का रंगमंच। किन्तु रंगमंच नाटक को केवल उपराग प्रदान करता है, पात्रों के अभिनय पर उसका प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता। इस के विपरीत भूगोल मानव की जीवन शैली, उस के आचार, व्यवहार, सभ्यता, यहाँ तक कि रंग रूप और शरीर की गठन को भी निर्धारित करता है।

आधुनिक विज्ञान ने कई पहलुओं में प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। फिर भी जलवायु अर्थात् देश की स्थिति, हवा, पर्वतों की ऊँचाई और उन का रुख आदि मानव स्वभाव का आधार हैं। इतिहास इस का साक्षी है कि प्राचीन काल में जब मानव के पास प्रकृति के साथ संघर्ष करने के साधन न थे, वह उसका दास था।

भारत की विशेषता

भारत का इतिहास विशेष रूप से इस के भूगोल से प्रभावित हुआ है। इसके विशाल हरे भरे मैदान, सदैव बहने वाली नदियाँ, आकाश को छूने वाले शिखर, उर्वर भूमि और अनन्त फल-फूल इस के निवासियों को "वसुधैव-कुटुम्बकम्" का पाठ देते रहे। उन्होंने एक विशाल हृदय पाया और विश्व-व्यापी संस्कृति को जन्म दिया।

भारत को महाद्वीप कहना अत्युक्ति न होगी। इस के भिन्न-भिन्न खंड स्वयं देश हैं जिनकी जलवायु और भौगोलिक स्थिति अलग-अलग

है । काश्मीर से लेकर अन्तरीप कुमारी तक, सिन्धु नदी से लेकर बङ्गाल की खाड़ी तक अनेक प्रकार के ऋतु एक ही समय में मिलेंगे । भाँति-भाँति के फल-फूल, वनस्पतियाँ और पशु-पक्षी देख कर ऐसा प्रतीत नहीं होता कि यह सब एक ही भू-भाग है । लोगों के रहन-सहन, उनके रंग रूप, स्वभाव और उनकी भाषा के अध्ययन से भी ऐसा ही आभास होता है; यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भिन्न-भिन्न खंडों के इतिहास की धाराएँ पृथक्-पृथक् दिखाई देती हैं ।

भारत भूमि की उत्पत्ति

विशेषज्ञों का कहना है कि प्राचीन समय में केवल दक्षिण भारत ही समुद्र तल से बाहर था, वह एक महाद्वीप का भाग था जिसे गोंडवाना का नाम दिया जाता है और जो अब पानी में डूब गया है। गंगा और सिंध के मैदान के स्थान पर एक अथाह समुद्र ठाठें मारता था जिसके तल पर हिमालय के शिखर टापुओं की भाँति दिखाई देते थे ।

भूमि के गर्भ में विकार उत्पन्न हुआ । उत्तर में बड़े-बड़े पर्वत जल से बाहर निकल आये । भू अग्नि ने दक्षिण की भूमि पर लावे का प्रसार कर दिया जिस ने ठंडा होकर इस भू-भाग को पठार का रूप दिया । उत्तरी पर्वत जो तत्पश्चात् हिमालय पर्वत कहलाए, सदैव बहने वाली नदियों का घर बन गए जिन्होंने उर्वर मिट्टी बिछा-बिछा उस मैदान का निर्माण किया जिसे हम गंगा और सिंध की घाटी कहते हैं । इस मन्तव्य की पुष्टि में बहुत से प्रमाण मिले हैं ।

चार कल्प

समस्त पृथ्वी पर चार हिमयुग आए जब समस्त भूमि का बहुत सा भाग बर्फ से ढक गया । इन के बीच में सूर्य कल्प आए जब पुनः सृष्टि की उत्पत्ति हुई । आखिर आधुनिक कल्प आरम्भ हुआ । बर्फ उत्तर की ओर हटती गई ।

प्रथम मनुष्य

इसके पश्चात् जब मानव ने भूमि पर विचरण आरम्भ किया तो दक्षिण भारत में नाटे कद के, श्याम रंग व्यक्ति अवतरित हुए जिन्हें द्रविड़ नसल के लोग कहा जाता है।

उस समय दक्षिण भारत के चारों ओर समुद्र था। यहाँ के रहने वालों ने स्वभाविक ही नौका विहार में दक्षता प्राप्त कर ली और वे उस समय के भिन्न-भिन्न देशों में गए। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि आर्यों के आने से पहले उत्तर भारत में भी द्रविड़ लोग ही रहते थे।

भारत की स्थिति

आर्यों के भारत में आने से बहुत पहले भारत ने क्या समस्त संसार ने वर्तमान रूप धारण कर लिया था। उस के पश्चात् संसार के आकार में विशेष अन्तर नहीं आया। इस संसार में भारत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस महत्त्व का कारण इस की स्थिति है।

भारत मध्य एशिया के बीच में स्थित है! पुरानी दुनिया का यह केन्द्र था। अमेरिका की खोज से पहले भारत संसार के मध्य में गिना जाता था।

भारत का प्रसार

भारत पूर्व से पश्चिम तक ६१ और ९६ रेखांश और दक्षिण से उत्तर तक ८ और ३७ अक्षांश के बीच स्थित है। यह एशिया के मध्य में एक प्रायःद्वीप है जिस की एक ओर अरब और दूसरी ओर हिन्द चीनी के प्रायःद्वीप हैं। उत्तरी सीमा तिब्बत और चीन से मिलती है। पश्चिम में अफ़गानिस्तान है, पूर्व में बर्मा।

भारत की सीमाएँ फैलती और सुकड़ती रही हैं। एक समय अफगानिस्तान से बर्मा तक इस का प्रसार था। अब पश्चिम में सतलुज नदी इस की सीमा नियत करती है और पूर्व में ब्रह्मपुत्र।

भारत आर्यवर्त अर्थात् श्रेष्ठ जनों के देश के नाम से प्रसिद्ध था। चीन के लोग इसे इन्दु देश कहते थे और ईरानी हिन्दुस्तान।

भारत का नाम

राजा भरत के नाम पर, जिस का वर्णन पुराणों में मिलता है, यह देश भारतवर्ष कहलाने लगा। भारत के नये विधान में भारत नाम को ही अपनाया गया है।

प्राचीन काल में इस देश को जम्बूद्वीप कहते थे। यह नाम अशोक के काल में विशेष रूप से प्रसिद्ध था किन्तु वास्तव में यह पौराणिक नाम है जो उस भूभाग को दिया जाता था जिसे आजकल दक्षिण भारत कहते हैं।

इतिहास की दृष्टि से भारत भूमि को तीन खंडों में बाँटा जा सकता है। (१) दक्षिण का पठार, (२) गंगा सिंध का मैदान और (३) राजस्थान। इन तीनों खंडों के इतिहास की अपनी अपनी विशेषता है।

भारत के ऐतिहासिक खंड

प्राचीन ग्रन्थों में भारत के केवल दो खंडों का वर्णन है—एक उत्तर पथ और दूसरा दक्षिण पथ। इन के बीचों बीच विन्ध्याचल का विशाल जंगल था जिस के कारण दीर्घ काल तक दक्षिण पथ और उत्तर पथ के लोगों में पारस्पारिक सम्बन्ध स्थापित न हो पाया।

उत्तर पथ और दक्षिण पथ

फिर इन दोनों खंडों में कैसे सम्बन्ध स्थापित हुआ इस के विषय में पुराणों में एक मनोरंजक गाथा है। अपनी संस्कृति के प्रसार की आकांक्षा लिए हुए बहुत से साहसी पुरुष उत्तर से दक्षिण पथ की ओर चले किन्तु कठोर विंध्याचल सदैव खम ठोंके खड़ा रहा और उन्हें हताश लौटना पड़ा। आखिर उत्तर पथ के प्रसिद्ध ऋषि अगस्त्य ने घोर तपस्या की और वे प्राणपण से आगे बढ़े। उन के दृढ़ संकल्प के आगे

घमंडी पर्वत को शीश झुकाना पड़ा। ऋषि अगस्त्य ने उत्तर पथ और दक्षिण पथ के बीच सुगम और छोटा मार्ग ढूँढ निकाला और भारत के इन दोनों खंडों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया।

अगस्त्य ऋषि ने दक्षिण पहुँच कर क्या-क्या कारनामे दिखाए इसका वर्णन तामिल भाषा की कहानियों में मिलता है, किन्तु पुराणों की भाँति इन कहानियों का ऐतिहासिक मूल्य अभी तक आंका नहीं गया।

दक्षिण भारत

इस प्रकार यातायात स्थापित हो जाने के पश्चात् शीघ्र ही आर्य संस्कृति दक्षिण के लोगों पर छा गई। द्रविड़ों ने उस पर नई पाण चढ़ाई और जब मध्ययुग में उत्तरी भारत को ग़नीमों ने क्षत विक्षत किया तो दक्षिण के लोगों ने ही इस संस्कृति की रक्षा की। दक्षिण के पठार और उसकी बिखरी हुई पहाड़ियों ने एक अजय दुर्ग का काम दिया। यही कारण है कि आर्य कला और साहित्य एक धरोहर की भाँति आज तक दक्षिण में सुरक्षित हैं।

गंगा और सिंध का मैदान

गंगा और सिन्ध के मैदान की उर्वर भूमि मानों सोना उगलती है। यहाँ के रहने वाले थोड़े से परिश्रम से ही सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। उच्च संस्कृति की उत्पत्ति के लिये यहाँ आदर्श परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं। इस मैदान की मनोहर जलवायु और उर्वर भूमि में ही आर्य सभ्यता का विकास तथा निर्माण हुआ। इस पर अधिकार प्राप्त करने की लालसा भारत इतिहास के कई महान् युद्धों का प्रेरक बनी।

राजस्थान

राजस्थान की भूमि जो सिन्धु नदी तक फैली हुई है सदैव आजकल की भांति शुष्क और गर्म न थी। रेतीला बन जाने के पश्चात् चिरकाल तक राजस्थान का इतिहास ओझल रहा। राजस्थान का वर्तमान इतिहास उस समय से आरम्भ होता है जब तुर्कों ने गंगा

और सिन्ध की घाटी से बहुत से शासकों को निर्वासित कर दिया था। कुछ स्वतन्त्रता प्रेमी लोग यहाँ आ बसे। राजस्थान के नगर अब भी उन साहसी वीरों के परिश्रम और बुद्धि का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जो पहले पहल यहाँ आकर आबाद हुए।

राजस्थान ने निर्भीक वीरता को जन्म दिया। मरुस्थल की कठिनाइयों के साथ संग्राम करते-करते यहाँ के रहने वाले मृत्यु के विचार से उदासीन हो गए और उन्होंने हँसते-हँसते मर मिटना सीखा। धर्म और जाति की रक्षा की ख़ातिर उन्होंने सर्वस्व न्योछावर कर दिया। उनकी वीरता की गाथाएँ आज भी रोंगटे खड़े करती हैं।

कर्म भूमि

प्रकृति की भारत पर अपार कृपा है। यहाँ भोग-विलास के सभी साधन प्रस्तुत हैं, फिर भी यह भोग भूमि न रह कर कर्म भूमि है। भौतिक साधनों की बहुतायत ने भारतवासियों को आध्यात्मिक विषयों पर मनन करने का अवसर प्रदान किया और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि सतत् प्रयास अथवा संघर्ष ही जीवन का सार हैं और भोग विलास से जीवन शक्ति नष्ट हो जाती है। इस विचारधारा ने ऐसी जड़ पकड़ी कि एक साधारण ग्रामीण भी अपने जीवन से इस की व्यावहारिकता का प्रमाण दे सकता है। कर्म को इस प्रकार महत्त्व देना भारत की संस्कृति का एक असाधारण गुण है जिसने इसे आज तक जीवित रखा है।

हिमालय और उस की शाखायें

भारत की प्राकृतिक सीमायें उसे अन्य संसार से पृथक् करती हैं। इस के उत्तर में हिम का मुकट धारण किये १५०० मील तक विशाल भुजा फैलाये हिमालय पर्वत एक संतरी की भाँति खड़ा है। इसकी शृँखलायें दक्षिण से उत्तर की ओर १५० मील तक फैली हुई हैं। ये संसार की सब से ऊँची पर्वत श्रेणियाँ हैं जिनकी ४० चोटियाँ २४००० फुट से अधिक ऊँची हैं।

यह चीन और भारत के बीच एक अगम्य दीवार के समान खड़ा है।

इसकी पूर्वी शाखायें : नागा, खासिया, जैंतिया तथा अराकान योमा अधिक ऊँची नहीं परन्तु घने जङ्गलों से ढके होने के कारण भारत की पूर्वी सीमा भी सुरक्षित है। यह बात पश्चिमी सीमा के विषय में नहीं कही जा सकती। पश्चिम में किर्थर, सुलेमान, और सफेद कोह शुष्क पहाड़ हैं जो उत्तरी और पूर्वी पहाड़ों के समान अबेध नहीं। ख़ैबर, बोलान कुर्रम, टोची और गोमल आदि कई दर्रे हैं जिन में ख़ैबर का प्रमुख स्थान है। इस ने आक्रमणकारियों के लिये द्वार का काम दिया, और १८ वीं शताब्दी तक अनेक जंगी कबीले भारत में प्रवेश करते रहे।

हिंद महासागर और उसकी शाखायें

दक्षिण में हिन्दमहासागर भारत के चरण चूमता है। इसकी दो शाखायें बंगाल की खाड़ी और अरब सागर क्रमशः पूर्वी और पश्चिमी तट को परिष्कृत करती हैं। इस अथाह सागर ने चिरकाल तक खाई का काम दिया परन्तु यूरोप की जलीय शक्ति के उत्थान के पश्चात् यह एक सहल मार्ग सिद्ध हुआ।

भारत का जलवायु

हिमालय पर्वत भारत को उत्तर की बर्फीली पवनों से बचाता है और हिन्दमहासागर से उठने वाली मौनसून पवनों को रोकता है। देश के अधिकतर भाग में ऋतुयें बदलती रहती हैं। आतप्त ग्रीष्म ऋतु से लेकर ठिठुरा देने वाले शीत तक कई मौसम होते हैं। कई ऐसे स्थान भी हैं जहाँ सारा साल एक सा मौसम रहता है। परन्तु भारत के एक न एक भाग में किसी समय भी मन चाहा मौसम मिल सकता है। ऋतुओं की इस विलक्षणता के लिये भारत हिमालय और हिन्दमहासागर का आभारी है।

भारत की नदियाँ

गङ्गा, सिन्धु और उनकी सहायक नदियाँ तथा नर्बदा, ताप्ती, कृष्णा, कावेरी आदि अनेक नदियाँ भारत भूमि को सींचती हैं। इन में से बहुत सी नदियाँ विद्युत् की शक्ति का अथाह भण्डार हैं। यातायात का ये मूल्यवान् साधन रही हैं। भारत के प्रसिद्ध नगर इन्हीं के तटों पर स्थित हैं। ये जल धारायें मानों भारत की इतिहास-वाहिनी का रूप हैं।

भारत के लोग

पहला मानव कहाँ उत्पन्न हुआ यह अभी निर्धारित नहीं हुआ किन्तु अब भी भारत में आदिम जातियाँ पाई जाती हैं जिनके अध्ययन से प्रतीत होता है कि भारत भूमि ने भी मानव विकास की भिन्न-भिन्न मंज़िलें देखी हैं। संभव है मानव के आदि पूर्वज का जन्म दक्षिण की अति प्राचीन भूमि पर हुआ हो। इस भू-भाग में आदि काल से नाटे कद के श्याम वर्ण व्यक्ति निवास करते आये हैं, जिन्हें द्रविड़ कहते हैं। द्रविड़ों के अतिरिक्त अन्य कई जातियाँ भारत में रहती थीं जिनके रंग रूप और रीति रिवाज एक दूसरे से भिन्न थे। इन जातियों में सभ्यता का विकास हुआ और एक ऐसी संस्कृति की स्थापना हुई जो एक समय समस्त भारत पर छा गई।

इन जातियों का मिश्रण प्रागैतिहासिक काल में ही एक विभिन्न जाति से हुआ जो आर्य जाति कहलाती है। उसके पश्चात् लगातार पश्चिम से कबीले आते रहे और धीरे धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गये। इन के मिश्रण से नई जातियाँ बन गईं और अब सभी नसलों के लोग भारत में पाये जाते हैं।

प्रकृति ने भारत भूमि को एक विशेष साँचे में ढाल कर इसे संसार से अलग थलग रखा था। परन्तु भारत के लोगों ने प्रकृति की

चुनौती को स्वीकार किया, हिमालय पर्वतों को लांघ कर भारत के साहसी वीर तिब्बत और चीन पहुँचे। यद्यपि आक्रमण कारियों के लिये हिमालय पर्वत अगम्य रहा तथापि संस्कृति के विकास के लिये कोराकुरम और शिपकी आदि दुर्गम और साल के अधिकाँश बर्फ से ढके हुए दर्रे पर्याप्त थे। पश्चिमी मार्गों से भारत का माल और भारत की संस्कृति ईरान, मिश्र, रोम और यूनान तक पहुँची। दक्षिणी समुद्र ने लोगों को अभियान का संदेश दिया और पूर्व और पश्चिम के समुद्र पार के दूरस्थ देश भी भारतीय नाविकों के लिये अछूते न रहे। आन्तरिक समृद्धि और भौतिक तुष्टि निश्चय ही इस बाह्य प्रसार का कारण थे।

भूगोल की ऐतिहासिक प्रतिक्रिया

भौतिक साधनों के बाहुल्य ने जहाँ विदेशियों को भारत में आने के लिये प्रलोभित किया वहाँ इस के उदार वातावरण ने उन्हें इसे अपनी जन्मभूमि स्वीकार करने के लिये प्रेरित किया। अंग्रेज़ों को छोड़ कर जो जातियाँ बाहर से आईं वे यहीं की हो रहीं। भारतीय संस्कृति ने इन विभिन्न जातियों की संस्कृति को ग्रहण करते हुए उन्हें अपने में खपा लिया और एक ऐसा घोल तैयार किया जिस के भिन्न-भिन्न अंगों को पहचानना कठिन है।

विविधता में एकता

प्रकृति ने भारत को एक भूखण्ड बनाया है। युयुत्स वीरों ने राजनैतिक रूप से इसे एक बनाने का प्रयास किया जो कई बार सफल हुआ परन्तु उन अन्य सूरमाओं का प्रयास सदैव ही सफल हुआ जिन्होंने भारत की महानता को समझते हुए कन्या कुमारी से कैलाश तक, और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक अपने मन्तव्य के अनुसार इस की संस्कृति का प्रचार किया। इन दो श्रेणियों के महापुरुषों ने उस एकता को सुदृढ़ किया है जो प्रकृति ने भारत को प्रदान की है।

भारत का इतिहास उसकी भौगोलिक परिस्थितियों से बहुत प्रभावित हुआ है। यह बात सभी देशों पर लागू होती है। भविष्य में भी भूगोल और इतिहास का घनिष्ट सम्बन्ध बना रहेगा। किन्तु आधुनिक युग के आविष्कारों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि भविष्य में भूगोल और इतिहास के सम्बन्ध का अध्ययन एक भिन्न दृष्टिकोण से करना होगा, हमें अब यह देखना होगा कि मानव ने भौगोलिक परिस्थितियों को किस सीमा तक बदला है।

मानव और भूगोल

आज मानव ने अणुशक्ति के आविष्कार द्वारा अपनी शक्ति को सहस्रों गुना बढ़ा लिया है। आज यह संभव है कि हवाई जहाज़ द्वारा महान सेनायें ऊँचे से ऊँचे पर्वतों को लाँघ सकें। नदियों के रुख को बदल देना, मरुस्थल को लहलहाते खेतों में परिवर्तित कर देना, हिमानी वातावरण को खुशगवार बना देना आज विज्ञान के बायें हाथ का खेल है।

आज भौगोलिक बाधायें यातायात में रोड़े नहीं अटका सकतीं। देशों की सीमांत रेखायें मिट रही हैं और मानव को दिन प्रतिदिन यह अनुभूति हो रही है कि समस्त संसार एक मानव कुटुम्ब है और विभिन्न जातियाँ इसी एक कुटुम्ब के सदस्य हैं।

परिच्छेद २

भारत इतिहास के स्रोत

इतिहासकार की कठिनाइयाँ

वर्तमान घटनाओं के तत्त्व को पाने में जो कठिनाइयाँ अनुभव होती हैं उस से अनुमान लगाया जा सकता है कि अतीत की घटनाओं के विषय में ज्ञान की उपलब्धि कितनी कठिन है। १९२२ में मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा की खोज हुई, उससे पूर्व भारत का प्रारम्भिक इतिहास केवल अनुमान का विषय था क्योंकि इतिहासकार के सम्मुख कोई ठोस प्रमाण न थे। इन दो नगरों की खोज ने इतिहासकार को बहुत सामग्री प्रदान की है। इसके पश्चात् रोपड़ के स्थान पर पुराने खंडहर मिले, जिन्होंने ऐसी सामग्री प्रदान की जिस से भारत का सिलसिले वार इतिहास मालूम हो सकता है। फिर भी भारतीय इतिहास के अनेक युग अभी तक अंधकारमय हैं।

इतिहासकार और शोध

इतिहास की खोज एक महत्त्वपूर्ण विषय है। नई नई खोजें इस के कई पहलुओं पर प्रकाश डाल चुकी हैं और डाल रही हैं। तुर्क आक्रमण ने भारतीय साहित्य को जिस प्रकार नष्ट किया है उस से पूर्ण सामग्री प्राप्त होने की कम संभावना है फिर भी यह खोज निरर्थक न होगी। हो सकता है चीन, तिब्बत या अन्य देशों से जिन के साथ प्राचीन भारत का घनिष्ठ सम्बन्ध था कुछ सामग्री प्राप्त हो जाये। इस समय निम्न लिखित स्रोतों पर भारत के इतिहास का आधार है :—

१. स्मारक—सिन्धु घाटी की सभ्यता के स्मारक प्राप्त हुए हैं। गुजरात और बैलेरी के स्थान पर पाषाण युग के मनुष्य के अवशेष

भी पाए गए हैं। कन्दराओं में बनाए गये चित्र और पाषाण शस्त्र और यंत्र भारत के अतीत के विषय में जानकारी प्रदान करते हैं। वैदिक काल के स्मारक उपलब्ध नहीं हुए। बौद्ध और जैन काल से लेकर वर्तमान काल तक के अनेक स्मारक प्राप्त हुए हैं। इन की सहायता से भारत का राजनैतिक इतिहास लिखना सुगम नहीं किन्तु सांस्कृतिक जानकारी के लिये ये स्मारक अति उपयोगी हैं।

२. *साहित्य*—भारत में दो प्रकार का ऐतिहासिक साहित्य मिलता है। एक वह जिस में ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है और दूसरे वह जो मुख्यतः साहित्यक है किन्तु जिस से ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त हो सकती है।

(अ) *पुराण*—पहली प्रकार के साहित्य में पुराणों का मुख्य स्थान है। इन के साथ साथ कई नरेशों और सम्राटों की जीवनियाँ प्राप्त हुई हैं। कल्हण की राजतरंगिणी मूल्यवान् ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

(आ) *वेद*—दूसरी प्रकार के साहित्य में वेदों और जैन तथा बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों की गणना होती है। कुछ विद्वान् वेदों को ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वीकार करने में संकोच करते हैं किन्तु यह सभी मानते हैं कि वेदों से आर्यों के जीवन के विषय में मूल्यवान् तथ्य प्राप्त होते हैं।

(इ) *महाकाव्य*—रामायण और महाभारत, जातक और अन्य ग्रन्थ ऐतिहासिक ज्ञान की खान हैं। कौटिल्य का अर्थ शास्त्र एक बहुमूल्य ग्रन्थ माना जाता है। चीन में भारत के विषय में कई ग्रन्थ पाए गये हैं। इधर तामिल साहित्य में जो शोध हुए हैं, उनसे भी इतिहास-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है।

३. *लेख*—अशोक के काल के अनेक लेख मिलते हैं। कुशान, पार्थियन और सिथियन सम्राटों के काल के लेखों की भी कमी नहीं है। बहुत से लेख चट्टानों या स्तूपों पर खुदे हैं, कुछ ताम्बे के पत्रों पर। यूनानी लेख प्रायः दो लिपियों में है जिन्हें क्रमशः ब्राह्मी और खरोष्टी कहा जाता है।

४. *सिक्के*—सिक्के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री गिने जाते हैं। यूनानी शासकों ने जो पश्चिमी भारत में आ बसे थे बहुत से सिक्के छोड़े हैं। इन्हीं पर लिखी भाषा से वे संकेत प्राप्त हुए थे जिनके द्वारा अशोक काल के लेखों को पढ़ना सम्भव हुआ।

५. *विदेशी पर्यटक*—बाइबल में सौवीर नाम के व्यक्ति के भारत भ्रमण का प्रसंग है। बाइबल की छान बीन की बहुत आवश्यकता है। हो सकता है उस से प्राप्त तथ्यों द्वारा पुराणों में वर्णित घटनाओं की सत्यता सिद्ध हो जाए। ऐतिहासिक रूप से ईरानी भारत के प्रारम्भिक इतिहासकार हैं। ईरानियों के पश्चात् यूनानियों ने भारत का वर्णन किया है। इन में मैगस्थनीज़, जो चन्द्रगुप्त के दरबार में यूनानी राजदूत था, प्रमुख गिना जाता है। उसकी बहुत सी कृतियाँ नष्ट हो गई हैं किन्तु अन्य लेखकों ने उस की कृतियों में से उद्धरण दिये हैं, जो अति महत्त्वपूर्ण हैं। रोम निवासियों ने भी भारत के विषय में बहुत कुछ लिखा है। चीनी पर्यटकों ने तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य दिये हैं। इन के अतिरिक्त और कई देशों से यात्री आते रहे।

६. *विदेशी साहित्य और कला*—विदेशी साहित्य में भी भारत का वर्णन मिलता है। कई देशों में भारतीयों ने उपनिवेश बनाये। वहाँ से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है। जावा, सुमात्रा, कम्बोदिया, चम्पा, बोर्नियो, अफ़ग़ानिस्तान आदि देश मूल्यवान् सामग्री स्मारकों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसीलिये कहा गया है कि भारत का वास्तविक स्वरूप विदेशों में दिखाई देता है।

७. *अन्य स्रोत*—नगरों और नदियों के नामों में भी ऐतिहासिक तथ्य छिपे हैं। इसके साथ धार्मिक और सामाजिक प्रथाएँ भी कम मूल्यवान् नहीं। भाषाओं से भी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है। कत्थकों, चारणों और हरबोलों की कृतियाँ और लोक गाथाएँ भी इस दिशा में उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करती हैं।

प्राचीन युग

परिच्छेद २

प्रागैतिहासिक विवरण

मनुष्य का आगमन

वर्तमान रूप में मनुष्य पृथ्वी पर कम से कम तीस सहस्र वर्ष से विचरण कर रहा है। यह अनुमान लगाना कि सृष्टि की उत्पत्ति कब हुई असम्भव है। समय समय पर अनेक अनुमान इस के विषय में लगाये गए किन्तु वे सब अधूरे सिद्ध हुए। ईसाई धर्म के अनुयाइयों का यह मत था कि सृष्टि की रचना ईसा मसीह से ४००४ वर्ष अर्थात् अब से कोई छः सहस्र वर्ष पूर्व हुई। किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि सृष्टि की आयु दो अरब वर्ष से कम नहीं। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में सृष्टि की आयु इस से कहीं अधिक बताई गई है।

पृथ्वी की आयु

मनुष्य और सृष्टि अपने उत्पत्ति काल में किन किन मंज़िलों से गुज़री इस विषय पर पहले पहल इंग्लैंड के एक वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने प्रकाश डाला था। डार्विन ने अपने अध्ययन से सिद्ध किया कि मनुष्य ने धीरे धीरे उन्नति की और किसी समय वह पशुओं की भाँति रहता था। मनुष्य के आगमन से पूर्व सृष्टि ने अनेक रूप बदले। सूर्य से पृथक् हो कर वह दीर्घ काल में ठंडी हुई। उस समय यहाँ का जलवायु ऐसा न था जिस में जीवन सम्भव हो सकता। बीच बीच में चार हिम कल्प और चार सूर्यकल्प आये, इस लिये यदि वनस्पति उत्पन्न हुई भी तो वह सब नष्ट हो गई। जीव जन्तु भी नष्ट हो गए।

वर्तमान युग भी अरबों साल से चल रहा है। मनुष्य का जन्म इस युग के आरम्भ में नहीं हुआ था और न ही वह अपने प्रारम्भिक रूप में मनुष्य कहलाने का अधिकारी था। वह एक बनमानुष था जो चारों हाथ-पाँवों पर चलता था और वृक्षों पर रहता था। ऐसे व्यक्ति को आदि पूर्वज स्वीकार करना आधुनिक मनुष्य के लिये कोई गर्व की बात नहीं किन्तु इतिहास को बदला नहीं जा सकता। इस बन मानुष के अवशेष मिले हैं। उन्हें कोई भी जिज्ञासु देख सकता है और अपना भ्रम दूर कर सकता है।

यूरोप का आदि मानस

ये अवशेष अधिकतर यूरोप से प्राप्त हुए हैं। वहाँ ऐसे व्यक्ति के अवशेष भी मिले हैं जिसे मनुष्य की पदवी दी जा सकती है। वह अपने पशु-पूर्वज से कितने वर्ष पश्चात् प्रकट हुआ यह नहीं कहा जा सकता। उसके अपने जन्म की तिथि अब से तीस सहस्र वर्ष पूर्व बताई जाती है। इसकी अस्थियाँ, इसके बनाये हुये पाषाण अस्त्र-शस्त्र, हड्डियों और पत्थरों पर की गई चित्रकारी और कन्दराओं में उसके द्वारा बनाये गये घर उस के विषय में बहुत जानकारी प्रदान करते हैं। ये अवशेष अधिकतर पश्चिमी यूरोप और विशेष रूप से फ्राँस में पाये गए हैं।

भारत का आदि मानस

भारत और अन्य पूर्वी देशों में अभी तक आदि मानस के इतने अवशेष नहीं मिले। सम्भव है यहाँ बनमानुष इस से भी पहले हुआ हो। उस के अवशेष भूमि के गर्भ में इतने नीचे चले गये हैं कि उन्हें खोज निकालना सम्भव नहीं। मानव विकास की जिस सीढ़ी का पता यहाँ मिलता है उस से अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ भी किसी समय बनमानुष रहते थे। यहाँ भी आदि मानस पत्थरों का प्रयोग करते थे और कन्दराओं में रहते थे। वे अपने पश्चिमी भाई बन्धुओं से भिन्न न थे।

आदि मानस का चित्रण

आदि मानस नाटे कद का दो पाँवों पर चलने वाला जीव था। वह पत्थरों से बने हुए शस्त्रों का प्रयोग करता था। यदि आखेट से उसे भोजन प्राप्त न होता तो वह मरे हुए, गले सड़े जानवरों को खा जाता था। उसका जीवन व्यक्तिगत था। अवसर आने पर वह अपने बच्चों तक को आहार बना लेता था। कौटुम्बिक प्रेम की भावना उस में उत्पन्न न हुई थी।

इसके शरीर पर बाल न होते थे। वह नग्न अवस्था में रहता था। उसका रंग काला और नाक चपटी थी। सिर पर घने झाड़ियों जैसे बाल थे। उसे प्रकृति से बहुत संघर्ष करना पड़ता था और हर समय अपने नष्ट हो जाने का भय लगा रहता था। उस के पास अपनी रक्षा के साधन न थे। सहस्रों वर्ष भूमि पर रहने के पश्चात् उसे ज्ञान हुआ कि कन्दराओं में रह कर वह अपने आप को सुरक्षित रख सकता है। फिर भी उसकी जाति जीवित न रह सकी और वह नष्ट हो गया।

नव पाषाण युग

नवपाषाण युग मानव उन्नति की पहली सीढ़ी थी। मनुष्य पशु स्तर से ऊपर उठ गया और पशुओं को दास बनाने में सफल हुआ। इस युग में मनुष्य का सब से अधिक महत्त्वपूर्ण आविष्कार अग्नि की प्राप्ति था। कितनी शक्ति मनुष्य के हाथ आ गई! अब वह असहाय जीव न रहा और न अब प्रकृति उस को अधिक भयभीत कर सकती थी। उस ने अनाज उगाना भी सीख लिया। कालान्तर में उस ने बर्तन बनाये और उन में वह स्वादिष्ट भोजन तैयार करने लगा। इस युग का मनुष्य यदि अपने पूर्वज के विषय में कुछ जानकारी रखता था तो वह उसे अत्यन्त असभ्य और अभागा समझता होगा और अपनी सभ्यता पर बहुत गर्व करता होगा। यदि हम निष्पक्ष होकर देखें तो हमको भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इनके आविष्कार वास्तव में बहुत मूल्यवान् थे जिन्होंने मानव जीवन में क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी।

आधुनिक काल में अणु शक्ति और विद्युत के आविष्कार अग्नि, हल, कुम्हार के चक्र के आविष्कारों के सम्मुख कोई अधिक महत्त्व नहीं

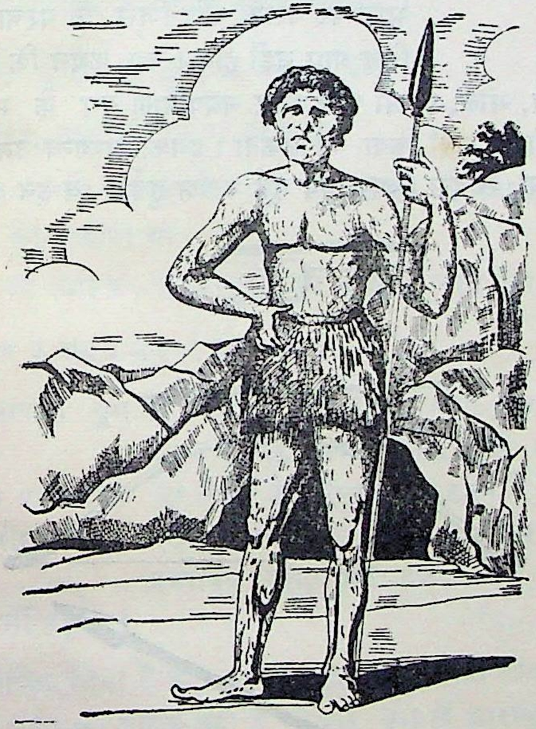

नव पाषाण युग का मनुष्य

रखते विशेष रूप से यह देखते हुए कि उस युग के लोगों के पास उन्नति के साधन बहुत कम थे। इन आविष्कारों ने मानव जाति में नये जीवन का संचार किया और उन्हों ने एक नवीन जीवन शैली की स्थापना की। समय की गणना, तिथियों का बोध, अच्छी फसल प्राप्त करने के लिये देवताओं की पूजा, पुरोहितों का महत्त्व और नगर बसाना इस युग के अन्तिम भाग की विशेषताएँ थीं।

नव पाषाण युग के अवशेष

नवपाषाण युग के लोगों के बहुत से अवशेष मिले हैं जिन से प्रतीत होता है कि ईसा से १५००० वर्ष पूर्व से लेकर ईसा से ५००० वर्ष पूर्व तक ये लोग भूमि पर बसते रहे जिस के पश्चात् इन के चिह्न प्राप्त नहीं होते। यह कथन कि आधुनिक काल के कोल, भील, खासी और गोंड नवपाषाण युग के मनुष्यों के वंशज हैं स्वीकार नहीं किया जा सकता। इनका सम्बन्ध उन जातियों से है जो ईसा से दस हजार वर्ष पूर्व उत्पन्न हुईं। वे इन लोगों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थीं और उन्हों ने इन को पराजित करके या तो नष्ट कर दिया या अपने में सम्मिलित कर लिया। इन आक्रमणकारियों ने इस जाति के विचारों और उसकी सभ्यता को ग्रहण कर लिया। यह सभ्यता अब तक भी कई स्थानों पर जीवित

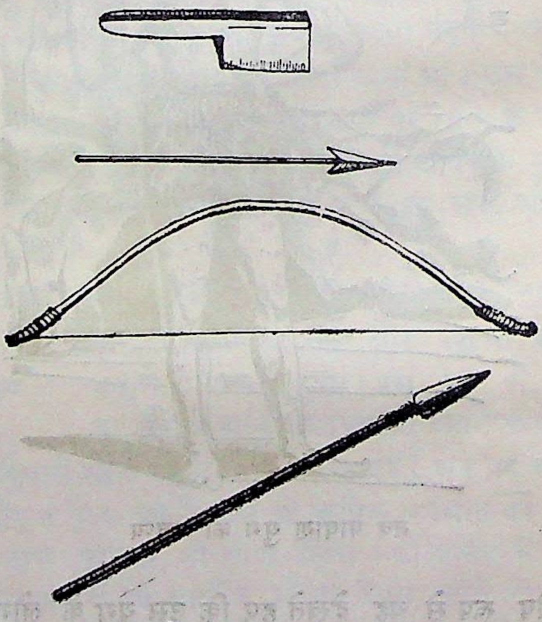

प्रारम्भिक मनुष्य के शस्त्र

हैं। आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका में इस सभ्यता के चिह्न पाये जाते हैं।

नव पाषाण युग के लोगों की विशेषतायें:

१. अपने मृतकों को भूमि में गाड़ते थे।

२. स्वस्तिक चिह्न का प्रयोग करते थे।

३. ऊँचे मीनार बनाते थे जिन से उन का अभिप्राय नक्षत्र ज्ञान प्राप्त करना होता था।

४. मसाला लगा कर मृतक शरीर को सुरक्षित रखते थे।

५. फसल के समय मनुष्य की बलि देते थे।

नव पाषाण सभ्यता का प्रसार और प्रभाव

नव पाषाण युग का आरम्भ किस देश में हुआ और किस किस देश में यह सभ्यता फैली, यह भी अनुमान का विषय है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी न किसी समय समस्त संसार इस सभ्यता से प्रभावित रहा, यहाँ तक कि यह सभ्यता अमेरिका भी पहुँची।

मर्मज्ञों का कहना है और इस में बहुत कुछ सचाई दीख पड़ती है कि हमारी बहुत सी प्रथायें वही हैं जो इस युग में आरम्भ हुई थीं। इन के चार आविष्कार तो आज भी सभ्यता के मूल आधार हैं। इन आविष्कारों का हमने इस परिच्छेद के आरम्भ में उल्लेख किया है।

नव-पषाण युग के पश्चात्

प्रागैतिक काल को कई भागों में बाँटा जाता है। पूर्व पाषाण-काल, नव पाषाण-काल, ताम्र-काल लोह-काल इत्यादि। परन्तु ताम्र-काल और लोह-काल का कुछ-कुछ इतिहास मिलता है।

परिच्छेद ४

भारत के इतिहास का श्री गणेश

भारत के आदि वासी

अभी तक नव पाषाण युग के मनुष्य के बहुत कम चिन्ह भारत में प्राप्त हुए हैं। उस के पश्चात् जो जातियाँ इतिहास के चित्र पट पर आईं, उन में से कुछ के वंशज अब तक भारत में निवास करते हैं। इन में सब से प्रमुख द्रविड़ जाति है जो दक्षिण भारत में रहती है। बैलेरी के स्थान पर मिली कन्दराओं से इन के जीवन का कुछ बोध होता है।

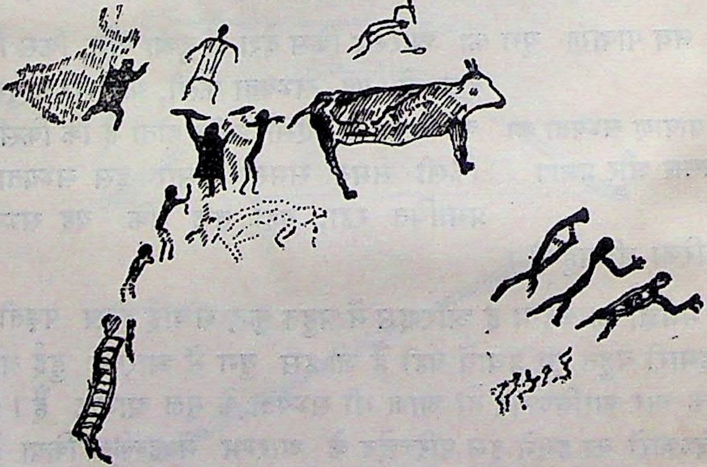

नव पाषाण युग में आखेट (कन्द्रा चित्र)

द्रविड़

द्रविड़ कृषि में निपुण थे। लकड़ी और लोहे के यन्त्र, आटा पीसने की चक्की, मिट्टी और ताम्बे के बर्तन, गाने-बजाने के यन्त्र और अन्य कई प्रकार का सामान बनाने में भी उन्होंने दक्षता प्राप्त की

थी। वे आमोद-प्रमोद के शौकीन थे। फसल कटने के अवसर पर उन के यहाँ एक उत्सव मनाया जाता था जिस में नर नारी सब एक समान भाग लेते थे।

समाज का एक अंग पुरोहितों का होता था जो जादू टोने द्वारा लोगों की रक्षा करते थे और विपत्तियों से बचने के उपाय सुझाते थे। चिकित्सा का काम भी उन्हीं के सुपुर्द था। जिन देवताओं की ये लोग पूजा करते थे उन में यक्ष सब से प्रमुख था। द्रविड़ अपने देवताओं से डरते थे और उन्हें प्रसन्न रखने के लिये जीवों की बलि देते थे।

द्रविड़ों के अतिरिक्त कई अन्य जातियाँ भी भारत में रहती थीं। सम्भव है कोल, भील, संथाल, गोंड, खासी आदि उन्हीं में से हों, उन की प्रथाएँ द्रविड़ों से भिन्न थीं और वे नए विचार ग्रहण करने में संकोच से काम लेती थीं।

सिंधु घाटी की सभ्यता

१९२२ ई० में सिन्ध और पश्चिमी पंजाब में दो नगरों के अवशेष प्राप्त हुए जिन के विषय में अनुमान लगाया गया है कि वे द्रविड़ों के गढ़ थे इन्हें एक सड़क आपस में मिलाती थी। एक नगर मोहन-जोदड़ो केस्थान पर था दूसरा हड़प्पा के स्थान पर मोहन-जो-दड़ो से ३५० मील की दूरी पर। इसी प्रकार के अस्सी नगरों के और बहुत से ग्रामों के खण्डहर प्राप्त हो चुके हैं जो उत्तर

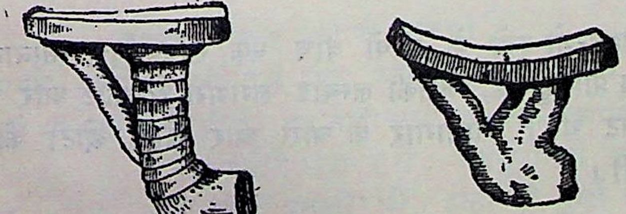

कुर्सियां (मोहन-जो-दड़ो)

में रोपड़ से लेकर दक्षिण में कराँची तक फैले हुए थे। नर्बदा नदी के किनारे भी एक नगर के खंडहर मिले हैं। प्रतीत होता है कि ये किसी एक विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य के भाग थे।

नागरिक सभ्यता

उस समय सिंधु घाटी का मैदान एक हरा भरा भू-भाग था। नैसर्गिक परिवर्तन के कारण यह मरुस्थल बन गया और वहाँ मनुष्य जीवन असंभव हो गया अथवा किसी और विपत्ति के कारण यह साम्राज्य नष्ट हो गया।

मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा किसी विशेष योजना के आधार पर बनाये गये थे। लगभग तीस-तीस फीट चौड़ी सड़कें, पक्के खुले हवादार भवन, भूमि के भीतर बनी हुई नालियाँ प्रदर्शित करती हैं मानो उन्हें किसी आधुनिक इञ्जीनियर की अनुमति के अनुसार बनाया गया हो।

सभी भवनों में स्नानागार बने थे जिनके फर्श पक्के थे। पानी की एक बूँद भी उनपर नहीं ठहर सकती थी। साधारण घर भी बहुत विशाल थे और उन में सोने, बैठने और सामान रखने के कमरे अलग-अलग थे। दो-दो, तीन-तीन मंज़िले मकान भी पर्याप्त संख्या में पाये गये हैं। आंगन प्रत्येक घर में होता था और प्रायः स्त्रियां वहीं बैठ कर काम करती थीं।

मोहन-जो-दड़ो के बीचों बीच एक सार्वजनिक स्नानागार के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिसकी लम्बाई लगभग ४० फीट और चौड़ाई २५ फीट थी। स्नानागार के चारों ओर छोटी छोटी कोठरियाँ बनी थीं।

स्नानागार के चारों ओर और अन्य स्थानों पर बहुत से चित्र मिले हैं। इन से यहाँ के रहने वालों के रहन-सहन के विषय में बहुत

24190

लोगों का जीवन

जानकारी प्राप्त की जा सकती है। वे एक बिना लांग को धोती पहनते थे। एक दोपट्टा इस प्रकार ओढ़ते थे कि वह बायें कन्धे और वक्षस्थल को ढाँपता हुआ दायें कन्धे के नीचे से निकलता था। स्त्रियाँ प्रायः लहंगा पहनती थीं और ऊपर के अङ्ग दोपट्टे से ढाँपती थीं।

नर नारी सभी आभूषणों का प्रयोग करते थे। सोने, चाँदी, हीरे मणियों से बने आभूषण पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुए हैं।

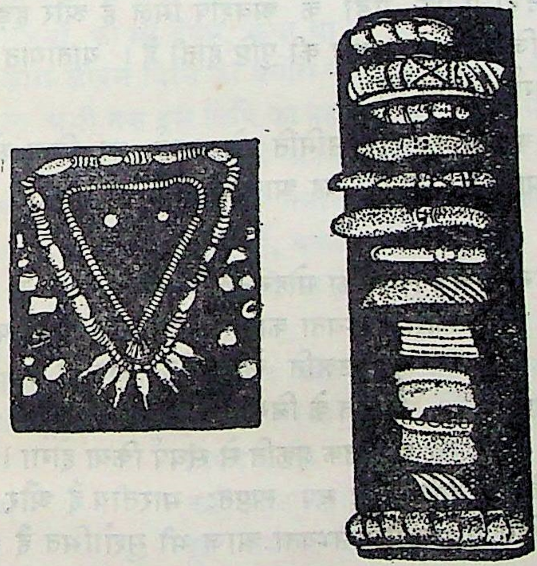

आभूषण (सिन्धु घाटी की सभ्यता)

कंघियाँ, बालों में लगाने के पिन और श्रृङ्गार की अन्य बहुत सी सामग्री भी वहाँ से मिली है। नर नारी सभी सुगन्धियाँ लगाते और

श्रृंगार

केश बनाते संवारते थे। नवयुवतियाँ कई ढंग से बाल बनाती थीं। होठों की सुर्खी का भी रिवाज था। नवयुवक मूछों और दाढ़ी को प्रियदर्शनी बनाने में कोई कसर न उठा रखते थे।

ऊनी सूती कपड़ा तकलों द्वारा बनाया जाता था जिस की विदेशों में बहुत माँग थी। हस्तकला का और भी बहुत काम होता था। यहा की बनी हुई वस्तुएँ उस युग के सभ्य देश, मिश्र, बैबालोन, मैसोपोटेमियाँ आदि बड़े चाव से ख़रीदते थे।

उद्योग और व्यापार

नगर के अधिकतर निवासी व्यापारी वर्ग से सम्बन्ध रखते थे। उनके गुमाश्ते देश विदेश जाते थे। लेन-देन मुद्रा द्वारा होता था। मोहन-जो-दड़ो में एक मंडी के अवशेष मिले हैं और हड़प्पा में एक गोदाम के जिन से इस कथन की पुष्टि होती है। यातायात जल और भूमि के मार्ग से होती थी।

नगर का प्रबन्ध एक समिति के सुपुर्द था जिस को विशाल अधिकार प्राप्त थे। मानों यह आजकल की कारपोरेशन की भाँति होती थी।

सर जौन मार्शल जिस का मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में बहुत हाथ था, लिखता है कि जिस सभ्यता का पता इन दो स्थानों पर लगा है वह उन्नति के शैशव काल में न थी। इस सभ्यत के निर्माण में वहाँ की जनता ने सहस्रों वर्षों तक प्रकृति से संघर्ष किया होगा। जिस रूप में यह हमें दिखाई देती है वह रूप स्पष्टतः भारतीय है और उस में वे ही गुण हैं जिन से भारतीय सभ्यता आज भी सुशोभित है।

सभ्यता का स्तर

यह सभ्यता कैसे नष्ट हो गई यह एक रहस्य है। इस के मकानों को देखने से पता चलता है कि इन नगरों के आस पास की भूमि का तल ऊपर उठता रहा था। सम्भव है किसी प्राकृतिक विपत्ति ने इन नगरों को समाप्त कर दिया हो। किन्तु इन की संस्कृति समाप्त नहीं हुई। इस संस्कृति के और क्या क्या चिन्ह भारत भूमि के गर्भ में छिपे पड़े हैं यह समय बतायेगा किन्तु इस के मौलिक सिद्धान्त भारतीय जीवन का अब तक अंग हैं। जवाहरलाल नेहरू ने इस सभ्यता के विषय में

अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "भारत की खोज" में लिखा है, "हिन्दुस्तान की कहानी के उस ऊषा काल में हम उसे एक नन्हें बच्चे के रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि उस वक्त भी वह अनेक प्रकार से सयाना हो चुका था। वह ज़िन्दगी के तरीक़ों से अनजान नहीं था। वह किसी धुंधली और न हासिल होने वाली दूसरी दुनिया के सपनों में खोया हुआ नहीं था। बल्कि उस ने ज़िन्दगी की कला में, रहन-सहन के साधनों में, काफ़ी तरक्की कर ली थी और न महज़ सुन्दर चीज़ों की रचना की थी बल्कि आज की सभ्यता के उपयोगी और खास चिन्हों, अच्छे हम्मामों और नालियों, को भी तैयार किया था।"

लेखन विधि

ये लोग लेखन विधि का प्रयोग करते थे जिस के नमूने प्राप्त हुए हैं। किन्तु अभी तक इस लिपि को पढ़ा नहीं जा सका। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपने प्रयोग का करीब करीब सब सामान बनाते थे। चित्र, खिलौने, पहियों की गाड़ियाँ, बर्तन, मूर्तियाँ, मुद्रा, आभूषण सभी कुछ वे बनाते थे। नाचने गाने का उन को शौक था और वे स्त्रियों का बहुत मान करते थे।

धर्म

सिन्धु घाटी के लोग शिव और शक्ति की पूजा करते थे। शिव-लिङ्ग की मूर्तिया प्राप्त हुई हैं। भारतीयों के लिये यह एक गर्व का विषय है कि उस युग की उन्नत सभ्यताओं से कहीं उन्नत यहाँ की सभ्यता थी और सम्भवतः इन सभ्यताओं के निर्माण में उस युग के भारतीयों का हाथ था। निश्चय ही सिन्धु घाटी की सभ्यता वर्तमान भारतीय सभ्यता का आधार थी।

संसार की अन्य प्रारम्भिक सभ्यताएँ

यह सिद्ध हो चुका है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता का स्थान संसार की प्रारम्भिक सभ्यताओं में है। इस में भी सन्देह नहीं कि यह सभ्यता अपनी समकालीन सभ्यताओं से कई पहलुओं में अधिक उत्तम थी।

उस ज़माने में बैबीलोन अर्थात् दजला और फरात की घाटी मिश्र अर्थात् नील की घाटी और सम्भवतः चीन, ब्राज़ील और मैक्सीको में सभ्य लोग रहते थे।

दजला और फरात उस प्राचीन युग की प्रसिद्ध नदियाँ थीं जिन की घाटी मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती थी। वहीं या मिश्र में नील नदी के साथ-साथ मनुष्य ने पहली बस्तियाँ बसाईं। अनुमान लगाया गया है कि पहली बस्तियाँ ईसा से ६५०० साल पहले आबाद हुई थीं।

बैबीलोन

दजला और फरात की घाटी के लोग मकान बनाने में कच्ची ईंटों का प्रयोग करते थे। उन की फसल काटने की दरान्तियाँ भी मिट्टी से ही बनती थीं।

यह प्रथम सभ्यता सुमेरियन लोगों के आने से नष्ट हो गई जिन्होंने संसार के इतिहास में पहला साम्राज्य स्थापित किया। सुमेर सम्राट् सर्वोच्च पुरोहित होता था। सुमेरियनों का सम्बन्ध उस ज़माने के कई देशों से था। भारत के साथ भी आयात-निर्यात का सिलसला जारी था। यह भी संभव है कि सुमेरियन और सिन्धु घाटी के लोग एक ही जाति के हों।

मिश्र

मिश्र की सभ्यता भी लगभग उतनी ही पुरानी है जितनी सुमेर की सभ्यता। ५००० ई० पूर्व के पश्चात् मिश्र में एक नई सभ्यता ने जन्म लिया। इन नये लोगों की भाषा, उसे लिखने की विधि, उन के देवता सुमेर के लोगों की भाषा आदि से मूलतः भिन्न थे। सुमेर के लोग मिट्टी की ईंटों से पुस्तकों का काम लेते थे किन्तु मिश्र में पेपीरस की छाल पर लेख लिखे जाते थे। एक के साथ दूसरा टुकड़ा जोड़ते जाते थे और लपेटते जाते थे। इन्हें मृतक पुरुषों की पुस्तकें कहते हैं। सुमेरियन और मिश्री लोगों की ये विचित्र पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। उन से इन

प्राचीन लोगों के रहन-सहन के विषय में बहुत कुछ बोध हुआ है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता अधिक पुरानी और उत्तम हो सकती है किन्तु मिश्र और बेबीलोन से जो ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है वह मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा या भारत के किसी अन्य स्थान पर प्राप्त नहीं हुई। मिश्र का प्राचीन इतिहास तो विशेष रूप से उज्ज्वल है। मिश्र के मीनारों ने उसे सुरक्षित रखा है जिन से अथाह ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है

मिश्र और बैबीलोन के अतिरिक्त कई अन्य प्राचीन सभ्यताओं का पता चला है, जिन में फिनिश्या की सभ्यता बहुत प्रमुख है। फिनिश्यन लोग नाव विहार में बहुत चतुर थे। वे सम्भवतः संसार के पहले समुद्री व्यापारी थे। उन्हों ने ही पश्चिमी संसार को उस की लिपि दी थी

चीन

चीन का प्राचीन इतिहास अभी तक संसार के सम्मुख नहीं आया। चीन की लोक गाथाओं से पता चलता है कि वहाँ ईसा मसीह से सहस्रों साल पहले एक उच्चकोटि की सभ्यता ने जन्म लिया किन्तु इतिहास के चित्र पट पर चीन २००० ई० पूर्व में आया। उस समय चीनी लोग कपड़ा बुनना जानते थे और बहुत सुन्दर बर्तन बनाते थे।

चीन के पश्चिम और उत्तर में दुर्गम भूमि है। किन्तु दक्षिण में इस का सम्बन्ध बर्मा, मलाया आदि देशों से है। चीन में मंगोल जाति के लोग रहते थे परन्तु दक्षिणी देशों के द्रविड़ जाति के लोगों से मिल जुल कर दक्षिणी चीन में एक नई जाति ने जन्म लिया! आर्य और सुमेरियन लोग चीन नहीं पहुँच पाये।

उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में भी उन्नत सभ्यताओं के चिह्न मिलते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में अमेरिका के आदि वासियों की

ब्राज़ील और मैक्सीको

सभ्यता यूरोपीय आगन्तुकों ने नष्ट कर दी फिर भी इतना अवश्य मालूम हुआ है कि इस सुदूर भू-भाग में प्राचीन भारतीय सभ्यता का प्रभाव पहुँचा था। यह कैसे हुआ इस के विषय में कई मत हैं।

ब्राज़ील की प्राचीन सभ्यता को माया सभ्यता कहते हैं। माया लोगों की बहुत सी प्रथाएँ द्रविड़ लोगों की प्रथाओं से मिलती जुलती थीं।

सिन्धु घाटी की सभ्यता का काल

सिन्धु घाटी की सभ्यता का यौवन-काल २००० ई० पू० बताया जाता है। यह सभ्यता धीरे-धीरे उन्नत हुई और फिर उसी प्रकार इसका ह्रास हुआ। मोहन-जो-दड़ो में एक के ऊपर एक मकानों की कई तहें निकली हैं। उन में ऊपर की तहों से प्राप्त हुई सामग्री कला की दृष्टि से उतनी उतम नहीं जितनी निचली तहों से प्राप्त हुई सामग्री। यह उन्नत नागरिक सभ्यता ग्रामीण सभ्यता से निकली थी—मर्मज्ञों की ऐसी धारणा है – और आर्यों के आक्रमण इसके ह्रास का कारण बने।

परिच्छेद ४

आर्यों का आगमन

आर्य लोग ।

आर्य कौन थे और वे कहाँ से आये, इतिहास अभी इस प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ नहीं ।

पश्चिम के इतिहास को देखने से प्रतीत होता है कि वहाँ आर्य जाति २००० ई० पूर्व के लगभग आकर बसी । उन के कई कुटुम्ब थे। इन्होंने पहले पहल ईरान और यूनान में बस्तियाँ बसाईं । वे नगरों में रहते थे और जनतन्त्र द्वारा इन नगरों का शासन होता था । प्रत्येक नगर स्वाधीन था। ईरान में शीघ्र ही साम्राज्य स्थापित हो गया किन्तु यूनान में यह स्थिति सिकन्दर महान् के समय तक उत्पन्न न हुई थी । आर्यों के रहन-सहन के विषय में बहुत सी जानकारी यूनान और ईरान से ही प्राप्त हुई है ।

आर्यों का उदगम स्थान

यूनान और ईरान की भाषाएं संस्कृत से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत इन पश्चिमी भाषाओं की माता है । इन तथ्यों को सामने रख कर अनुमान लगाया गया है कि भारत के आर्य भी वहीं से आये जहाँ से उनके ईरानी और यूनानी भाई बंद ।

समय समय पर भिन्न-भिन्न जातियाँ मध्य एशिया से निकल कर यूरोप पर छाती रहीं । शायद आर्य लोग भी किसी समय उसी भू-भाग में रहते थे अथवा वे आस्ट्रिया, हंगरी या दक्षिणी रूस से आए ।

श्री लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक उत्तरी ध्रुव को आर्यों का वतन बताते हैं । कुछ इतिहासकार ऐसे भी हैं जो भारत को ही उन की जन्म भूमि मानते हैं । वे कहते हैं कि भारत से ही आर्य अन्य देशों में

गए। विदेशी परिस्थितियों के अनुसार उन में परिवतन आ गया और वे अपने भारतीय बन्धुओं से बहुत बातों में भिन्न हो गये। यह प्रक्रिया कब हुई इस के विषय में कोई ऐतिहासिक प्रमाण अभी तक नहीं मिल पाये।

आर्यों का प्रसार

इस प्रसंग को अधूरा ही छोड़ कर हम आगे बढ़ते हैं और आर्यों को भारत में फैलते हुए देखते हैं। उन का शासन सप्त सिन्धु जिसे ईरानियों की धार्मिक पुस्तक जन्द अवस्था में हफ़्त हिन्दू कहा गया है आरम्भ हुआ। ये सात नदियाँ जिन में अफ़ग़ानिस्तान की काबुल नदी भी सम्मिलित है उस युग के उत्तर पश्चिमी भारत में बहती थीं।

उस समय के चार प्रसिद्ध आर्य कुटुम्बों का वर्णन मिलता है। गांधार, यादव, पुरु और भरत। उन के दस्युओं से, जो काले रंग के, चप्टी नाक वाले, छोटे कद के थे, संग्राम हुए। दस्यु सभ्य थे और नगरों में रहते थे। उन के नगरों को पुर कहते थे।

इस के पश्चात् आर्य गंगा और यमुना की ओर बढ़े। इन नदियों का वर्णन ऋग्वेद में नहीं मिलता। आर्यों को पूर्वी भारत और दक्षिण पथ पहुँचने में प्रर्याप्त समय लगा।

पूर्वी भारत की विजय में भरत और विदेहों का हाथ था। प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार थानेश्वर के कुरु, रोहेल खण्ड के पाँचाल, मध्य भारत के मत्स्य, मथुरा के शूर-सेन, अवध के कौशल, बनारस के काशी और उत्तरी बिहार के विदेह प्रसिद्ध कुटुम्ब थे।

चिरकाल तक बंगाल और पूर्वी बिहार में अनार्य जातियों का शासन रहा। किन्तु आखिर उन्होंने भी शीश निवाया और आर्य ब्रह्म पुत्र तक फैल गए।

दक्षिण की ओर सात्वत कुटुम्ब ने रुख किया और विदर्भ और दंडक राज्यों की नींव रखी। यह रामायण काल के पूर्व तक के भारत का हाल है।

प्रमुख अनार्य राज्य कलिंग, पुलिन्द, आन्ध्र और सावर थे। कलिंग राज्य बंगाल की खाड़ी से लेकर गोदावरी तक फैला हुआ था। दक्षिण का अधिकतर भाग आन्ध्र लोगों के आधीन था।

जैसे जैसे आर्य विजय प्राप्त करते गए भारत की अन्य जातियाँ उन में सम्मिलित होती गईं। आर्यों ने भी उन के बहुत से रीति रिवाज अपना लिये और एक समय ऐसा आया कि आर्य और अनार्य में पहिचान कठिन हो गई।

आर्यों का रंग रूप

आर्य लम्बे कद के सुडौल, गौर वर्ण लोग थे। उन की नाक ऊपर उठी हुई और नुकीली, आँखों की पुतली नीले रंग की थी। ये शारीरिक चिह्न यूरोप के आर्यों में भी पाये जाते थे। ईरान के लोगों की आँखें और रोम के लोगों की नाक अब तक इसी प्रकार की है।

आर्यों के ग्रन्थ

आर्यों के प्रसिद्ध ग्रन्थ वेद हैं। इन में आर्यों और असुरों के बहुत से संग्रामों की ओर संकेत किया गया है। कई मन्त्र ऐसे हैं जिनमें प्रार्थना की गई है कि भगवान् अपने प्रिय आर्यों की सहायता करें कि वे दस्युओं के मजबूत दुर्गों और पुरों को विजय कर सकें। सम्भव है वेदों के दस्यू सिन्धु घाटी के लोग हों।

आर्य वेदों को ईश्वरकृत मानते थे। वेद ज्ञान का भंडार हैं। उन की विवेचना करना बहुत कठिन कार्य है। विद्वान् लोग अभी तक उन के भाष्य के विषय में एकमत नहीं। उन में क्या लिखा है यह सुगमता से नहीं जाना जा सकता है।

जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर ने वेदों का अनुवाद कर भारत पर एक बहुत बड़ा उपकार किया है। मैक्समूलर की विचार शैली के साथ कोई सहमत हो या न हो किन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उस ने ज्ञान के इस भंडार का द्वार संसार के लिये खोल दिया।

वेद चार हैं जिन में से ऋग्वेद सब से प्राचीन और माननीय है। यह दस परिच्छेदों में विभक्त है, जिन्हें मंडल कहते हैं।

ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति, उस की विशालता, ईश्वर की असीम शक्ति और उसके गुणों का वर्णन है। काव्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ अद्वितीय है। प्रकृति का इतना सुन्दर और प्रिय वर्णन संसार के किसी और ग्रन्थ में मिलना संभव नहीं।

यजुर्वेद में बहुत से मन्त्र वे ही हैं जो ऋग्वेद में हैं। अन्य मन्त्रों में यज्ञ करने की विधि और आर्य जाति का हाल दिया गया है।

साम वेद गायन विद्या का अनुपम ग्रन्थ है। यह वेद उच्चारण की विधि प्रस्तुत करता है।

अथर्ववेद वैज्ञानिक तथ्यों और विद्याओं से परिपूर्ण है। इस में घातक रोगों और विषैले जन्तुओं का निराकरण करने की विधि विस्तार से दी गई है।

वेदों को संहिता भी कहते हैं। संहिता में कुल १०२८ मन्त्र या ऋचाएँ हैं। ऋचाओं की व्यवस्था ब्राह्मणों में की गई है जिन की संख्या छः है। ब्राह्मण वेदों का अंग कहे जाते हैं। उपनिषदों की गणना भी वैदिक साहित्य में होती है।

उपनिषदों में मानव जीवन की घोर समस्या, मानव की मनोवेदना और उस का उपचार अति सुन्दर और सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

उपनिषद

उपनिषदों ने जर्मन दार्शनिक काण्ट को चकित कर दिया था और उस के द्वारा यूरोप के अनेक विचारकों ने उपनिषदों के अध्ययन से आत्मिक शान्ति प्राप्त की। उपनिषदों की एक झलक रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी छोटी सी पुस्तक गीताञ्जली में प्रस्तुत की है। इस पुस्तक को इतना मान प्राप्त हुआ कि रवीन्द्रनाथ को नोबेल पुरस्कार मिला।

उपनिषदों की विशेषता है जिज्ञासा के भाव । उपनिषदों ने आत्म अनुभव को प्रमाण माना है, वेद या किसी अन्य पुस्तक को नहीं । भारत में विचारों की कितनी स्वतन्त्रता थी और भारतीय धर्म कितना विशाल रहा है इस का प्रमाण उपनिषदों से निश्चित रूप में मिलता है । जिज्ञासा का ये अद्वितीय प्रमाण तथा उदाहरण हैं ।

दर्शन

भारतीय दर्शनों की गणना साधारणतः वैदिक साहित्य में नहीं होती । यह कहना कि दर्शनों का निर्माण कब हुआ उतना ही कठिन है जितना प्राचीन भारत के विषय में अन्य प्रश्नों का उत्तर देना । किन्तु जिन विचारों को दर्शनों में प्रगट किया गया है वे आर्य जीवन में नए विचार नहीं । ये मानों वैदिक विचारों का स्पष्टीकरण हैं । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि हम वेदों और उपनिषदों को मनोवृत्तिक कहें तो दर्शनों को प्रज्ञात्मक कहना होगा । जिन तथ्यों पर वेदों और उपनिषदों के ऋषि अनुभव द्वारा पहुँचे, दर्शनों के रचयिताओं ने युक्तियों द्वारा उन पर पहुँचने का प्रयत्न किया ।

दर्शन संख्या में छः हैं और साधारणतः परस्पर विरोधी विचार धारा का प्रचार करते हैं किन्तु गम्भीरता से देखने पर प्रतीत होता है कि प्रत्येक दार्शनिक भिन्न दृष्टिकोण से जीवन का अध्ययन करता है ।

इन दर्शनों का विवरण इस प्रकार है :—

१. *गौतम का न्याय दर्शन* :—इस में तर्क और विश्लेषण की विधि दी गई है । यह ग्रन्थ भारतीय शिक्षा का आधार रहा है । प्राचीनतम समय से इसे भारत के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में एक श्रेष्ठ ग्रन्थ समझा गया है ।

२. *कणाद का वैशेषिक दर्शन* :—इस में पदार्थ विज्ञान का वर्णन है और स्पष्टतः स्वीकार किया गया है कि यह सृष्टि परमाणुओं अर्थात् ऐटमों से बनी है । पश्चिम इस परिणाम पर उन्नसिवीं शताब्दी के अन्त में पहुँचा और परमाणु शक्ति का बोध तो उस को दूसरे महा-

समर में हुआ। इस दर्शन में आत्मिक बल को सब शक्तियों से अधिक सत्तात्मक माना है।

३. *कपिल का सांख्य दर्शनः*—पाश्चात्य दार्शनिकों का मत है कि मानव शक्ति की महत्ता को जिस प्रकार इस ग्रन्थ में स्वीकार किया गया है संसार के किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं किया गया। यह दर्शन बौद्ध धर्म का आधार है।

४. *पातंजली का योग दर्शनः*—इस दर्शन में आत्मोन्नति के साधन बताए गये हैं। आधुनिक मनोविज्ञान इस की छाया मात्र है और इस दर्शन की पुष्टि करता है।

५. *जैमिनी का पूर्व मीमांसा और ६. व्यास का उत्तर मीमांसाः*—इन में जीवन विधि का वर्णन है।

वेदान्त

अद्वैतवाद का सिद्धान्त जिस ने पश्चिमी विचारकों को चकित कर दिया वेदान्त दर्शन की प्रतिछाया है। वेदान्त को उपनिषदों का सार कहा जाता है।

वैदिक साहित्य की तिथि

वैदिक साहित्य की रचना कब हुई इस की तिथि नियत करना इतिहास की एक बहुत बड़ी खोज होगी जो न केवल भारतीय इतिहास में क्रांति उत्पन्न कर देगी बल्कि विश्व इतिहास में एक मूल्यवान् अध्याय सम्मिलित करेगी। अभी तक यही समझा जाता है कि इन चार प्रकार के ग्रन्थों की रचना भिन्न-भिन्न कालों में हुई और ये आर्यों की उन्नति की विभिन्न मंज़िलों को प्रदर्शित करते हैं। इनका काल २००० ई० पू० के लगभग कहा जाता है।

आर्यों का धर्म

आर्य धर्म की यह विशेषता है कि यह रूढ़ि-वादी नहीं। इस में विचारों की स्वतन्त्रता है। धार्मिक सिद्धांतों को ईश्वरकृत स्वीकार करते हुए भी उन्हें अनुभव द्वारा परखा गया है और व्यक्ति को यह सुझाव दिया गया है कि वह भी अपने अनुभव द्वारा उन तथ्यों तक पहुँचने का प्रयत्न करे जो धर्म शास्त्रों में दिए गये हैं।

आर्य धर्म में पूजा पाठ किसी दैवी शक्ति को प्रसन्न करने के लिए न था, बल्कि चित्तशुद्धि के लिए था। आर्यों की प्रार्थना में प्रकृति की विशालता से प्रभावित हुए मनोभावों का दर्शन मिलता है। इस के विपरीत द्रविड़ लोग अपने इष्टदेव की पूजा करते थे और अपनी मनोकामना पूरी करने के लिये तपस्या करते थे। जादू टोना और अन्य इसी प्रकार की प्रथाएँ द्रविड़ लोगों में मिलती थीं, आर्यों में नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ द्रविड़ धर्म का आधार प्रकृति से भय था, वहाँ आर्य धर्म का आधार प्रकृति से प्रेम था। इस लिए आर्यों की उदारता कोई आश्चर्यजनक बात नहीं।

वर्ण व्यवस्था

आर्यों ने भारत में ही प्रथम बार खेती करनी आरम्भ की और ग्राम बसाए। द्रविड़ों की सभ्यता नागरिक सभ्यता थी और उसको उखाड़ना असम्भव था। आर्यों ने इस सभ्यता को अपनाया और उन के आचार-विचार में बहुत कुछ अन्तर आ गया। आर्यों के अनेक वंश बन गये, जिन्होंने भिन्न-भिन्न राज्य स्थापित किये।

आर्यों को चिरकाल तक दस्युओं से संग्राम करने पड़े। इन संग्रामों के अन्तर्गत वर्ण आश्रम की स्थापना हुई। यज्ञ कराने और पठन-पाठन के कार्य के लिए एक वर्ग की आवश्यकता पड़ी और इस वर्ग को ब्राह्मण कहा गया। दूसरा वर्ग युद्ध करता था। वह क्षत्रिय कहलाया। व्यापारी वर्ग को वैश्य कहने लगे और जो वर्ग इन तीनों की सेवा का कार्य करता था, शूद्र वर्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सम्भवतः शूद्र

वर्ग में अधिकांश पराजित लोगों का था। इन के अतिरिक्त एक वर्ग चांडालों का था। ये लोग क़साई का काम करते थे।

आर्यों का समाज

आर्यों की सामाजिक पद्धति मनोवैज्ञानिक नियमों के अनुसार थी। मानव समाज को चार वर्णों में विभक्त किया गया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपनी बुद्धि और गुणों के अनुसार होते थे। प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति करने के समान अवसर प्राप्त थे। किसी व्यक्ति को इसलिए मान नहीं दिया जाता था कि वह ऊँचे वर्ण से है बल्कि इसलिए कि वह अपना कर्त्तव्य निपुणतासे पालन करता है। वर्ण जन्म से नहीं बल्कि कर्म से नियत होता था। प्रेम इस समाज का आधार था।

व्यक्तिगत जीवन चार आश्रमों में विभक्त था। आरम्भ के २५ वर्ष विद्याध्ययन के लिए नियत थे। फिर २५ वर्ष गृहस्थ जीवन के लिए। इसके पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य था कि वह गृहस्थ जीवन त्याग कर वानप्रस्थ धारण करे। जीवन के अन्तिम भाग में व्यक्ति सन्यास धारण करता था।

इस प्रबन्ध से जीवन कितना आनन्दमय और सरल बन सकता है, यह वर्तमान जीवन की गुत्थियों को देखने से प्रतीत होता है।

स्त्रियों की स्थिति

वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे किन्तु उन की ज़िम्मेदारी घर की देखभाल करना और बच्चों का पालन पोषण करना थी। स्त्रियों पर कोई प्रतिबन्ध न था और वे अपनी योग्यता के अनुसार सभी काम कर सकती थीं।

नारी में एक बहुत बड़ा गुण है कि वह आत्मत्याग कर सकती है। आर्यों के समाज में जहाँ इस गुण का पूरा पूरा लाभ उठाया जाता था वहाँ स्त्री को मान भी बहुत मिलता था। जो अधिकार भारतीय समाज में स्त्री को प्राप्त थे, सम्भवतः उस समय किसी और

समाज में नहीं थे। किन्तु इन अधिकारों पर कानून की छाप नहीं थी। इन अधिकारों का स्पष्ट रूप उस स्वतन्त्रता में दिखाई देता है जो प्रत्येक स्त्री को अपने विवाह के विषय में प्राप्त थी। स्त्री की इच्छा से ही उसका विवाह होता था। उस के लिये विवाह करना अनिवार्य न था।

स्त्रियों का पवित्र जीवन उन के अधिकारों और मान की गारंटी था। स्त्री आत्मिक शक्ति का एक नमूना होती थी। इस शक्ति का संचार वह अपने कुटुम्ब में करती थी। आर्य कुटुम्बों को शान्ति और आनन्द का आधार यही शक्ति थी।

किसी भी समाज की स्थिति उस समाज में स्त्रियों के स्थान से जानी जा सकती है। इसीलिये स्त्रियों की स्थिति समाज की उन्नत दशा का मापदण्ड है।

यद्यपि वैदिक काल के समय के सम्बन्ध में सभी इतिहास वेत्ताओं का एकमत नहीं है, फिर भी यह सब स्वीकार करते हैं कि कम-से-कम आरम्भ में जब वेदों की रचना हो चुकी थी और भारतीय समाज, उन के कथनानुसार, जीवन यापन करने में गौरव का अनुभव करता था, स्त्रियों को आदरणीय स्थान प्राप्त था। पुरुष के समान ही स्त्री के अधिकार थे।

अथर्व वेद (xiv. 2. 61.) में पिता पुत्री से कहता है:—

"सवित्र तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार वर प्रदान करे"

ऋग्वेद (x. 27.12) में लिखा है, "एक श्रेष्ठ कन्या उसी को वरती है जिसे वह प्रेम करती है।" (x. 85. 26) "पति के घर जाओ। वहाँ तुम मालकिन बनोगी। वहाँ हर एक चीज़ पर तुम्हारा अधिकार होगा।" (x. 85.46) "सास और ससुर तुम से प्रभावित हों, देवर और ननद तुम्हें रानी समझें।"

स्त्री के गुणों के विषय में लिखा है (अथर्ववेद iii. 30. 2—3), "पत्नी को चाहिये कि वह अपने पति को मधुर शब्दों से सम्बोधित करे। उस का व्यवहार शीतल और नम्र हो। जिस घर में वह निवास करती है वहाँ भाईयों भाईयों में प्रेम होता है और बहिनें सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहती हैं। अच्छी पत्नी सदैव प्रेम भरे वाक्य मुख से निकालती है।"

विदा होते समय माता पिता बेटी को अपने वित्तानुसार उपहार देते थे। यदि लड़की विवाह न करती था तो पिता की सम्पत्ति पर उस का उतना ही अधिकार होता था, जितना भाइयों का।

विधवा विवाह का रिवाज था, सती की प्रथा महाभारत काल में दृष्टिगोचर होती है किन्तु सती होना अनिवार्य न था। ऋग्वेद (x.-18. ४) में कहा गया है: "हे भाग्यवान तू उस के पास बैठी है जिस का जीवन समाप्त हो चुका है। उठ, उस की पत्नी बनना स्वीकार कर जो तेरा हाथ थामे हुए है।" विधवा यदि विवाह कराना न चाहती तो भी उसका जीवन संकट का जीवन न होता था। ऋग्वेद (x.-18.7) में विधवा के लिये लिखा है, "शोक का परित्याग कर, मूल्यवान् आभूषण पहन, अपने घर की ओर प्रस्थान कर।" स्त्री घर की स्वामिनी होने के नाते घर की देखभाल करती थी। भोजन बनाना, बच्चों की देखरेख, यही उस का मुख्य कर्तव्य था।

नारी शिक्षा का निषेध किसी भी धर्म ग्रन्थ में नहीं। अनेक स्त्रियों के उदाहरण हैं जो न केवल विदुषी थीं, बल्कि शस्त्रविद्या में भी निपुण थीं।

शासन प्रबन्ध

उस समय किसी केन्द्रीय शासन की संभावना नहीं थी। किन्तु अनेक छोटे-छोटे राज्य जो आर्यों ने स्थापित किये थे एक सूत्र में बन्धे थे। उन में सामाजिक और राष्ट्रीय ऐक्य था। ये छोटे राज्य जनतन्त्रीय होते थे। राजा को चुनाव द्वारा नियुक्त किया जाता था। वह शान्ति और युद्ध के समय प्रजा का नेतृत्व करता था। उसे परामर्श देने

के लिये चुने हुए सदस्यों की समिति होती थी। अवसर आने पर साधारण जनता का मत भी लिया जाता था। उन नगरों और ग्रामों का वर्णन जो आर्यों ने स्थापित किये थे, सिद्ध करता है कि ये राज्य बहुत उन्नत थे। सभा और समिति वेदों की दो प्रसिद्ध संस्थाएँ हैं।

सैनिक स्थिति।

वर्ण व्यवस्था के कारण सैनिकों की एक अलग जाति थी जो युद्ध में निपुण थी। सैनिकों में भी श्रेणियाँ होती थीं। रथों का प्रयोग राजा और सरदारों तक सीमित था। साधारण सैनिक पैदल चलते थे। धनुष बाण और भाले उन के मुख्य शस्त्र थे। युद्ध का उद्देश्य कृषि के लिये अधिक भूमि प्राप्त करना या शत्रुओं के आक्रमण को रोकना होता था।

व्यवसाय।

कृषि आर्यों का मुख्य व्यवसाय था किन्तु हस्तकला और व्यापार पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। कपड़ा बुनना गर्व की बात थी। प्रायः उपहार में देने के लिये व्यक्ति स्वयं कपड़ा बुनता था। स्त्रियाँ सूत कातने और कपड़ा बुनने में विशेष रूप से निपुण थीं। सोने, चाँदी, लोहे, ताम्बे और लकड़ी का काम भी होता था।

काम करना जीवन का मुख्य अंग था। इसलिये सभी व्यक्तियों को जीविका उपार्जन के साधन प्राप्त थे। सब के लिये भोजन, वस्त्र और मकान का प्रबन्ध करना मानों समाज की ज़िम्मेदारी थी।

आर्यों का भोजन, वस्त्र और रहन-सहन सादा था। किन्तु त्योहारों और अन्य अवसरों पर मूल्यवान वस्त्र, आभूषण और स्वादिष्ट भोजन प्रयोग में लाये जाते थे। आमोद प्रमोद के साधन—गाना, बजाना, नाचना और अभिनय सभी को एक समान प्राप्त थे।

आर्यों की भाषा संस्कृत थी। उस का रूप आजकल की संस्कृत से

कुछ भिन्न था । उस समय देश में विशेष रूप से अनार्य लोगों में अनेक उप भाषाएँ प्रचलित थीं । कालान्तर में इन सभी पर संस्कृत का गहरा प्रभाव पड़ा । संस्कृत को संसार की प्रमुख भाषाओं की माता स्वीकार किया गया है । संसार के साहित्य में वेदों और दर्शनों का स्थान बहुत ऊँचा है । इस का मुख्य कारण संस्कृत के साहित्यिक गुण हैं ।

आर्यों की भाषा ।

आर्यों के ग्रन्थ और उन की भाषा ही उन की सभ्यता का दिग्दर्शन कराती हैं । आर्यों ने भारत में रहकर मानव उन्नति की कई मंज़िलें तय कीं । मानव संस्कृति के विकास का इतिहास जिस प्रकार वैदिक साहित्य में सुरक्षित है संसार के किसी इतिहास में नहीं ।

आर्यों के गुण

१. आर्य ईश्वर, प्रकृति और आत्मा को अनादि मानते थे ।

२. प्रकृति और आत्मा की महान् शक्ति को स्वीकार करते हुए भी वे ईश्वर को महानतम और सर्वशक्तिमान समझते थे ।

३. यज्ञ में उन का अगाध विश्वास था, यज्ञ की विधि सरल होती थी । यज्ञ के समय सोम रस जिस को बहुत पवित्र समझा जाता था, पिया जाता था ।

४. उन की जीवन शैली नियत और निश्चित थी जिस में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता होती थी ।

५. सामाजिक आचार के लिए नियम निर्धारित थे किन्तु व्यक्ति को किसी विशेष नियम को पालन करने के लिये बाध्य न किया जाता था । समाज का विभाजन कार्य के अनुसार था और कार्य में परिवर्तन होने पर सामाजिक वर्ग भी बदल जाता था ।

६. शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था ।

७. ब्राह्मणों और विद्वानों का मान होता था।

८. स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे।

९. शासक जनता का प्रतिनिधि होता था जिस की नियुक्ति प्रायः निर्वाचन द्वारा होती थी।

१०. पराजित लोगों के प्रति उन का व्यवहार सहनशीलता और सहानुभूति का होता था।

११. आर्य लोग वीर, लम्बे कद के और गोरे वर्ण के होते थे। उन की नाक लम्बी और आँखें सुन्दर और विशाल होती थीं।

आर्यों का आगमन भारत के इतिहास में एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटना थी जिस ने इस देश में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। यह तो स्वाभाविक था कि वे स्थानीय सभ्यता से प्रभावित होते किन्तु उनकी अपनी सभ्यता इतनी उन्नत थी कि वह भारत पर छा गई और उसमें इतनी जीवन-शक्ति थी कि उसके पश्चात् सहस्रों वर्ष तक वह जीवित रही और आज भी भारतीय इस सभ्यता पर गर्व करते हैं और इस का अनुसरण करते हैं।

परिच्छेद ६

आर्य सभ्यता का यौवन काल

महाकाव्य

आर्य सभ्यता के यौवन काल का दिग्दर्शन दो महाकाव्यों, रामायण और महाभारत में मिलता है । इन दो महान् ग्रन्थों का इतिहास में क्या स्थान है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन में बहुत से धार्मिक और साहित्यिक विषयों का मिश्रण है । भाषा के अर्थों के विषय में भी बहुत मतभेद है किन्तु जिस प्रकार इन की रचना हुई है उसे देखने से यह स्पष्ट होता है कि ये मंजे हुए लेखकों की कृतियाँ हैं। इन की तुलना संसार के किन्हीं महाकाव्यों से की जा सकती है ।

रामायण के मूल रचयिता वाल्मीकि थे। हो सकता है इतिहास की दृष्टि से इन ग्रन्थों में दिए गए सब तथ्य विश्वसनीय न हों किन्तु मूल कहानियों में बहुत कुछ सचाई है ।

रामायण के मुख्य पात्र श्रीरामचन्द्र हैं। ये रघुवंशी थे और अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र थे । राजा दशरथ के तीन पुत्र और थे—लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ।

राजा दशरथ की तीन रानियाँ थीं । राम की माता कौशल्या सब से बड़ी थी । भरत की माता कैकेई तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता सुमित्रा थीं । राजा दशरथ को सब रानियों से प्रेम था किन्तु कैकेई का औरों की अपेक्षा पति पर अधिक प्रभाव था ।

राम का सीता से विवाह रामायण की एक महत्त्वपूर्ण घटना है । राम ने राजा जनक के घर में पड़ा हुआ शिव का महान् धनुष तोड़ कर उसकी पुत्री सीता का स्वयंवर में वरण किया। लक्ष्मण और शत्रुघ्न

का विवाह भी राजा जनक के यहाँ ही हुआ।

राजा दशरथ वृद्ध हो चले थे। उन्होंने आर्य सभ्यता के अनुसार राज्य कार्य अपने बड़े पुत्र को संभालने का निश्चय किया। राम बहुत योग्य थे। सभी उन से प्रेम करते थे इस लिये सर्वसम्मति से उन्हें युवराज चुना गया।

राम का युवराज बनना रानी कैकेई की दासी मन्थरा को न भाया। उस ने कैकेई को पट्टी पढ़ाई कि वह अपने पुत्र भरत को युवराज बनवाने का प्रयत्न करे। मन्थरा का जादू चल गया और रात को जब राजा दशरथ घर लौटे तो कैकेई ने उन से अपनी मनोकामना पूरी करने का वचन लिया। किसी समय कैकेई ने राजा दशरथ की जान बचाई थी और राजा दशरथ ने उसे कहा था कि कभी भी वह उस की कोई सी दो इच्छाएँ पूरी करेंगे। कैकेई ने राजा को वह बात स्मरण कराई और कहा कि वह राम को चौदह वर्ष के लिये वन में भेजना और भरत को युवराज बनाना चाहती है।

राजा दशरथ वचनबद्ध थे किन्तु वे देख रहे थे कि कैकेई का अनुरोध अनुचित है। उन्हें बहुत क्षोभ हुआ और जब सवेरे राम उन्हें प्रणाम करने आये तो वे अपने मन की बात भी उन से न कह सके। आखिर कैकेई को ही यह दुखद प्रसंग छेड़ना पड़ा।

राम ने बिना व्याकुल हुए कहा, "मैं पिता की आज्ञा का पालन करूँगा और खुशी खुशी चौदह वर्ष वन में रहूँगा।"

जब राम वन चलने की तैयारी करने लगे तो लक्ष्मण और सीता ने उन के साथ चलने के लिये आग्रह किया। उन के प्रेम को देख कर राम उन्हें निराश न कर सके। कैकेई खुश थी किन्तु समस्त अयोध्या पर शोक के बादल छा गए।

उस समय भरत अपने ननिहाल-पाञ्चाल देश—गये हुए थे। उन के वापिस आने से पूर्व ही राजा दशरथ की मृत्यु हो गई। भरत को माता पर बहुत रोष आया और वे तुरन्त राम की खोज में निकल पड़े।

और शीघ्र ही चित्रकूट के स्थान पर भाई से जा मिले। उन्होंने राम से वापिस लौट आने का आग्रह किया किन्तु राम ने पिता की आज्ञा की ओर संकेत किया और भरत को सुझाव दिया कि वे प्रजा के हित के लिये अवध का शासन संभाल लें।

भरत ने विनय पूर्वक राम से प्रार्थना की कि वे अपनी खड़ाऊँ दें जिन्हें सिंहासन पर रख कर वे राम की ओर से अयोध्या पर राज्य करेंगे। उन्होंने राम से चौदह वर्ष पश्चात् लौट आने का प्रण लिया।

राम ने चौदह वर्ष अनेक कष्ट भोगे। लङ्का का राजा रावण उन की धर्मपत्नी सीता को हर कर ले गया। किन्तु वानर राजा सुग्रीव और रावण के छोटे भाई विभीषण की सहायता से उन्होंने रावण पर विजय प्राप्त की और सीता सहित ठीक चौदह वर्ष पश्चात् अयोध्या लौटे। उन के साथ सुग्रीव के सेनापति पवन-पुत्र हनुमान भी अयोध्या पधारे। भरत ने राज्य भाई को सौंप दिया।

महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास हैं। साहित्य की दृष्टि से

महाभारत

महाभारत की गणना संसार के सुप्रसिद्ध ग्रन्थों में होती है। इस के मुख्य पात्र श्री कृष्ण हैं। किन्तु मूल कथा कौरवों और पाण्डवों के युद्ध की है।

कौरव धृतराष्ट्र के पुत्र थे जिन में सब से बड़ा दुर्योधन था। पाण्डव पाँच भाई थे: युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव। राज्य पर पाण्डवों का अधिकार था, क्योंकि इस से पूर्व उन का पिता पाण्डु राज्य करता था। किन्तु दुर्योधन ने चतुराई से उन का राज्य हथिया लिया। फिर भी पाण्डवों ने परिश्रम और समझदारी से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। दुर्योधन ने इसे भी धोखे से प्राप्त कर लिया और पाण्डवों को वन में जाने पर विवश किया।

पाण्डव तेरह वर्ष पश्चात् वापस आये। उन्होंने दुर्योधन से राज्य लौटा देने के लिये प्रार्थना की। श्री कृष्ण जी जो उस समय के सब से बड़े योगी थे संधि का सन्देश लेकर कौरवों के पास गये किन्तु घमंडी

दुर्योधन ने एक न सुनी। आखिर कुरुक्षेत्र के स्थान पर एक महान् युद्ध हुआ। युद्ध के आरम्भ में श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया जो श्री मद्भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है। भगवद्गीता का मूल सन्देश यह है कि मनुष्य अपना कर्तव्य पालन करे और उस के फल की आकांक्षा न करें। इसी से मन को शान्ति मिल सकती है।

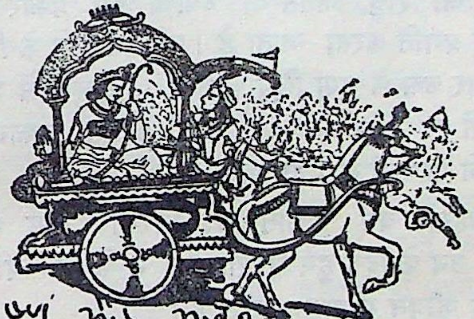

ष्ण और अर्जुन

श्री कृष्ण ने पाण्डवों का साथ दिया। पाण्डवों की युद्ध में जीत हुई और कुछ वर्ष राज्य करने के पश्चात् वे हिमालय में तपस्या करने चले गये।

चार युग

रामायण काल को द्वापर और महाभारत काल को त्रेता कहा जाता है। पाण्डवों के हिमालय की ओर प्रस्थान करने के पश्चात् कलियुग आरंभ हुआ जो अब तक चल रहा है। सब से पहले सतयुग था जो रामायण काल तक रहा। इन की अवधि और सृष्टि की उत्पत्ति की तिथि के विषय में पुराणों और अन्य ग्रन्थों में विस्तार से लिखा है।

कहा जाता है कि द्वापर से लेकर अब तक भारत पतन की ओर जाता रहा है। वास्तव में पतन और उत्थान दो प्राकृतिक प्रक्रियायें हैं। कभी किसी राष्ट्र का उत्थान होता है कभी पतन। एक ही समय में कुछ बातों में कोई देश या राष्ट्र उन्नति करता है, कुछ बातों में पिछड़ जाता है। कई बार उन्नति के शिखर पर होते हुए भी किसी एक

अवगुण के कारण राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं और कई बार धरातल को पहुँच कर भी किसी गुण विशेष होने के कारण राष्ट्र जीवित रहते हैं। भारत के इतिहास को देखने से और भारतीयों के वर्तमान जीवन का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भारत में जीवित रहने के गुण हैं। प्रमुख गुण है अपने आप को परिस्थितियों के अनुसार ढालने का। जो राष्ट्र, जाति या व्यक्ति इस प्रकार परिवर्तनशील होता है, वह प्रगति करता जाता है। परिस्थितियों के विरोधी होने के कारण कई बार उस के गुण छिप जाते हैं। किन्तु जैसे जल मिलने पर सूखी टहनियों पर भी कोंपलें फूट आती हैं उसी प्रकार वह राष्ट्र भी हालात बदलने पर हरा भरा हो जाता है।

आज सहस्रों वर्ष पश्चात् भी भारतीय राम और कृष्ण के भक्त हैं और उन के दिये हुए संदेशों को न केवल स्वीकार करते हैं बल्कि उन का जीवन में पालन करते हैं।

महाकाव्यों की तिथि

महाकाव्यों की रचना का काल ईसा से लग-भग ५००० और ३००० वर्ष पूर्व नियत किया जाता है किन्तु बहुमत १५०० ई० पू० के पक्ष में है। इन में बहुत कुछ मिश्रण है जो सम्भवतः २०० ईस्वी तक होता रहा।

प्रायः यह विचार किया जाता है कि रामायण काल महाभारत काल से पहले हुआ।

महाकाव्यों के विषय में मत

इतिहासकारों के इन महाकाव्यों के विषय में कई मत हैं। यदि यूनान के महाकाव्यों ईल्यड और ओडिसी से इन की तुलना की जाय तो इन्हें ऐतिहासिक ग्रन्थ कहना कठिन होगा। जो लोग इन्हें ऐतिहासिक मानते हैं उन का भी विचार है कि इन में बहुत सी ऐसी अत्युक्तियाँ हैं जिन से इन का ऐतिहासिक मूल्य जाता रहा है। उदाहरणातः एक मत यह है: पाण्डव और कौरव कुटुम्बी नहीं थे, वास्तव में पाण्डव एक पृथक् जाति थी जिन का सम्बन्ध

तिब्बत से था। उन के रीति-रिवाज और विवाह प्रथाएँ पहाड़ी जातियों से मिलती हैं। द्रौपदी का पाँचों पाण्डवों से विवाह आर्य जाति में संभव न था।

इस का अभिप्राय यह हुआ कि महाकाव्यों का निरीक्षण करने की आवश्यकता है। द्रौपदी ने पाँच पाण्डवों से विवाह किया या केवल अर्जुन से और इसी प्रकार की और बातों का निर्णय सुगमता से नहीं हो सकता।

वैज्ञानिक उन्नति

महाकाव्यों के काल में औषध विज्ञान, आयुर्वेद, शल्य शास्त्र, नक्षत्र शास्त्र, ज्योतिष विद्या, इञ्जीनियरिंग, गणित, बीज गणित, रेखा गणित और अन्य विषयों में भारत ने बहुत उन्नति की। चिकित्सा-शास्त्र के सुप्रसिद्ध ज्ञाता चरक और सुश्रत की तिथि निश्चित रूप से मालूम नहीं हो सकी। परन्तु उन्होंने वैदिक काल से प्रेरणा अवश्य ली। इन के ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हुआ और अरबों द्वारा पाश्चात्य देशों ने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। रसायन विद्या के विषय में भी कई ग्रन्थ मिले हैं। भारत की शल्यविद्या विशेष रूप से प्रसिद्ध थी। १२७ प्रकार के शल्य यन्त्रों का वर्णन मिलता है। नक्षत्र शास्त्र भारत की विशेषता है। नक्षत्रों के विषय में ऐसे तथ्य प्राप्त हुये हैं जिनकी तिथि ३००० वर्ष ईसा पूर्व से भी पहले की है। ज्योतिष विद्या भी संसार को भारत की ही देन है। रेखा गणित, बीज गणित और गणित में भारतीयों का कार्य नक्षत्र शास्त्र और ज्योतिष से भी अधिक मूल्यवान है। रामायण और महाभारत में कई उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिन से सिद्ध होता है कि उस युग में इञ्जीनियरिंग विद्या बहुत उन्नति कर चुकी थी।

साहित्य और कला

साहित्य में भगवद्गीता का विशेष स्थान है। इसे वेदों का सार कहा जाता है। इस पुस्तक में बताया है कि यदि मनुष्य निष्काम भाव से अपना कर्तव्य पालन करता रहे तो उस को

मोक्ष प्राप्त हो सकता है । रामायण और महाभारत के अतिरिक्त अन्य कई ग्रन्थों की रचना हुई जिन में से बहुतों की उपलब्धि नहीं होती ।

कलाओं में गायन विद्या का विशेष स्थान था । प्रत्येक समय के लिये राग बने । रागों की संख्या जो उस समय प्रचलित थे ८४ बताई जाती है । चित्र कला के उस काल के नमूने प्राप्त नहीं हुए किन्तु जो वर्णन ग्रन्थों में मिलता है उस से प्रतीत होता है कि चित्र कला भी बहुत उन्नत थी । दीवारों पर चित्र बनाने का बहुत रिवाज था । वास्तुकला के विषय में विश्वस्त रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह भारत में कब आरम्भ हुई । इस कला के जो नमूने प्राप्त हुए हैं वे ईसा के जन्म के लगभग के हैं । आर्यों की उस युग की वास्तुकला के विषय में रामायण और महाभारत से बहुत जानकारी प्राप्त होती है ।

रामायण और महाभारत में बहुत दूरस्थ देशों का वर्णन मिलता है जिस से ज्ञात होता है कि उस समय भारत का प्रसार दूर दूर तक था ।

राजनैतिक स्थिति

अभी पूर्णतः खोज नहीं हो पाई किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका, मध्य एशिया और इण्डोनेशिया में आर्यों के उपनिवेश थे । अफ़ग़ानिस्तान और इण्डोनेशिया में बहुत से ऐसे स्थान हैं जिन का उल्लेख इन ग्रन्थों में विशेष रूप से आया है । इस में कोई संदेह नहीं कि यूनान और रोम में आर्य रहते थे । इन का भारत से कितना और कब तक सम्बन्ध रहा यह गवेषणा का विषय है ।

इस काल में बड़े बड़े राज्य स्थापित हो गये थे । केन्द्रीय शक्ति प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा कई बार सफल हुई । रामायण काल में राम को और महाभारत काल में युधिष्ठिर को समस्त भारत ने अपना राजा स्वीकार किया था ।

सूर्य वंशी और चन्द्र वंशी राजाओं के अतिरिक्त पांचाल, कौशंबी, कौशल, विदेह, काशी और अन्य बहुत से शक्तिशाली राज्य थे। इनमें से कभी एक ने और कभी दूसरे ने भिन्न-भिन्न समय में केन्द्रीय शक्ति सम्भाली। उनके आपसी युद्धों का भी वर्णन मिलता है।

रामायण में अधिकतर दस्युओं और आर्यों के बीच हुए युद्ध का वर्णन है, महाभारत में आर्यों के आपसी युद्ध का। रामायण के रचयिता ने भारत के भूगोल के विषय में अपेक्षाकृत कम तथ्य दिये हैं, महभारत के रचयिता ने कहीं अधिक।

महाकाव्यों के काल में भारत में एक नई सभ्यता ने जन्म लिया जो आर्य और द्रविड़ लोगों के मेल से उत्पन्न हुई। रावण जो द्रविड़ जाति से था उस समय का सब से बड़ा पंडित नई सभ्यता का विकास माना जाता है। इसी प्रकार उत्तर में द्रविड़ विचारों ने घर कर लिया था और बहुत सी द्रविड़ प्रथाएँ प्रचलित हो गई थीं। आपस में विवाह सम्बन्ध स्थापित होने लगे थे।

द्रविड़ कई पहलुओं में आर्यों से अधिक उन्नत थे। जलयान और वायुयान बनाने में वे विशेष रूप से प्रवीण समझे जाते थे। और भी कई व्यवसायों में वे आर्यों से आगे बढ़े हुए थे। जिस नई सभ्यता का निर्माण हुआ उस में दोनों जातियों के गुण और दोष शामिल थे।

परिच्छेद ७

पौराणिक काल

पौराणिक युग का अभिप्राय

रामायण की घटनाएँ कब घटीं और कब कुरुक्षेत्र के धर्मक्षेत्र में आर्यों का यौवन नष्ट हुआ इस का अनुमान लगाना भी कठिन है। किन्तु महाभारत काल के पश्चात् भारतीय इतिहास की तिथियाँ कुछ उभरती हुई दिखाई देती हैं। इन में से बहुत सी तिथियों के लिये हमें पुराणों का सहारा लेना पड़ता है। कई तिथियाँ स्पष्ट रूप से निश्चित हैं। यहाँ तक कि महात्मा बुद्ध के जन्म की तिथि भारतीय इतिहास की धुरी कही जा सकती है।

महाभारत के युद्ध से लेकर महात्मा बुद्ध के जन्म तक के काल को हम पौराणिक काल कहते हैं।

पौराणिक युग में भारत की स्थिति

पुराणों में भारत-इतिहास का प्रारम्भ आदि काल से होता है किन्तु ऐतिहासिक रूप से पुराणों का काल नौवीं शताब्दी ई० पूर्व से आरम्भ होता है। तभी से पुराणों की रचना होने लगी। पुराणों की गाथाओं का आधार अन्य ग्रन्थ हैं ऐसा अनुमान लगाया जाता है। ये ग्रन्थ क्या थे और वे किस प्रकार लुप्त हो गए इस का पता लगाना असम्भव नहीं तो कठिन ज़रूर है किन्तु उस समय के भारत का चित्र स्पष्ट रूप से हमारे सामने है।

आर्यों के भिन्न-भिन्न कबीलों के नाम वेदों में भी मिलते हैं। उन्होंने कहाँ-कहाँ अपने राज्य स्थापित किये इसके विषय में केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। पंचाल, कौशल, विदेह, विदर्भ आर्यों के मुख्य राज्य थे। इक्ष्वाकू, और पुरु आर्यों के प्रमुख कबीले थे।

इन्हीं कबीलों के आगे चल कर नाम बदल गए या नये कबीलों ने इन्हें परास्त कर अपने राज्य स्थापित किये या भारत के आदिवासियों ने पुनः शक्ति प्राप्त कर आर्यों को हराया, इस के विषय में भी मूक ही रहना पड़ता है। किन्तु पौराणिक युग का आरम्भ होते ही भारत में नए लोग ज़रूर दृष्टिगोचर होते हैं। उस समय राजनैतिक रूप से भारत निम्नलिखित खण्डों में विभक्त था।

१. उत्तर पथ में, जिसे उत्तर पश्चिमी भारत कहा जा सकता है, समस्त पंजाब और सिंध का इलाका शामिल था।

२. मध्यदेश का प्रसार सरस्वती नदी से लेकर राजमहल की पहाड़ियों तक था।

३. अपप्रांत—गुजरात काठियावाड़ का इलाका अपप्रांत अथवा प्रतीच्य कहलाता था।

४. दक्षिणपथ—दक्षिण के पठार का उत्तरी भाग दक्षिण पथ कहलाता था।

५. तामिल वह इलाका था जो दूर दक्षिण में तट के साथ-साथ फैला हुआ है। यह तामिल लोगों की भूमि थी।

इन सभी प्रदेशों में आर्यों का शासन न था किंतु पौराणिक युग में आर्य सभ्यता समस्त देश में फैल चुकी थी। अनार्य वंशों के साथ आर्य वंशों के रिश्ते नाते होते थे। इस युग को समझने के लिये पुराणों से बहुत सहायता मिलती है।

पुराणों की रचना

पुराणों में वर्णित पहला ऐतिहासिक सम्राट् बिम्बसार है। उस के पश्चात् कई राजाओं और वंशों का वर्णन इन में मिलता है किंतु प्रत्येक तथ्य को रोचक और विभूषित रूप से प्रस्तुत करने के प्रलोभन ने इन के रचयिताओं को इतिहासकारों की पदवी से वंचित कर दिया है।

पुराणों की रचना कब आरंभ हुई इस के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। हर्ष के काल तक उन में संशोधन और प्रक्षेपण होते रहे। भारतीय विद्वानों की उर्वर कल्पना वृत्ति इन ग्रन्थों से स्पष्टतः विदित होती है। यही कारण है कि इन ग्रन्थों को इतिहास का दर्जा नहीं दिया गया।

पुराणों का विषय

पुराणों का विषय मुख्यतः इतिहास है। पृथ्वी कैसे बनी, सृष्टि की रचना कैसे हुई। संसार के विभिन्न वंश कहाँ उत्पन्न हुए और कहाँ कहाँ उन्हों ने राज्य किया, इन तथ्यों को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। यदि कोई विद्वान इन ग्रन्थों का अध्ययन बाइबल या किसी अन्य प्राचीन ग्रन्थ को सामने रख कर करे तो अकस्मात इस परिणाम पर पहुँचेगा कि विभिन्न जातियों के प्रारम्भिक विचारों में बहुत कुछ समानता थी। विभिन्न देशों के लोग एक से ही विचार रखते थे। कुछ लोग तो यह परिणाम निकालते हैं कि इन विभिन्न ग्रन्थों में एक ही जाति का इतिहास लिखा है। भौगोलिक नाम भी एक से हैं।

प्रमुख पुराण

प्रमुख पौराणिक ग्रन्थ अठारह कहे जाते हैं। इन में से भागवत् पुराण, स्कन्द, अग्नि और भविष्यत् पुराण अधिक प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थों में सृष्टि की उत्पत्ति, उस के विकास, काया कल्प आदि को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न कुटुम्बों और वंशों का इतिहास विभिन्न पुराणों का विषय है। कई वंशावलियाँ एक से अधिक पुराणों में भी मिलती हैं।

जहाँ पुराणों में संसार के प्रमुख नायकों के कारनामों को बढ़ा चढ़ा कर लिखा गया है वहाँ समय के विषय में भी अत्युक्ति से काम लिया गया है। पुराणों में दी गई तिथियों को स्वीकार करना एक आधुनिक इतिहासकार के लिये सम्भव नहीं। मानव इतिहास के जो तथ्य अभी तक प्राप्त हुए हैं उन्हें सामने रखते हुए पुराणों में दिया हुआ

काल विभाजन और राजाओं की अवधियाँ असम्भव प्रतीत होती हैं। जीव-विज्ञान अभी तक जिस परिणाम पर पहुँचा है उसकी कसौटी पर भी पौराणिक तथ्य पूरे नहीं उतरते।

पौराणिक युग

पौराणिक साहित्य की सहायता से ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त करने के लिये उनके विश्लेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। इन ग्रन्थों की छानबीन से भारत के प्राचीन इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ने की सम्भावना है। जब तक ऐसा नहीं होता पुराणों को इतिहास में स्थान मिलना कठिन है। फिर भी इतिहास का विद्यार्थी इन की ओर से उदासीन नहीं हो सकता। आर्यों के प्रसार, उन की जीवनशैली और रीति रिवाजों के विषय में पुराणों से मूल्यवान् सामग्री प्राप्त हो सकती है। महात्मा बुद्ध से पूर्व काल के इतिहास के विषय में ये ही हमारा पथ प्रदर्शित कर हैं।

पौराणिक वंश

मानव का प्रथम पूर्वज आदित्य या आदिनाथ सुमेरू पर्वत पर रहता था जो आधुनिक बामियान के आस-पास स्थित था। आदित्य के दो पुत्र हुए। एक इक्ष्वाकु जिस ने सूर्य वंश की स्थापना की और दूसरा बुद्ध जो इन्दु अर्थात् चन्द्र वंश का प्रवर्तक बना। इक्ष्वाकु से राजा राम चन्द्र तक सूर्य वंश के सत्तावन राजाओं का वर्णन है। चन्द्र वंशीय राजाओं की संख्या बुद्ध से युधिष्ठिर तक ५६ दी गई है।

इन आँकड़ों के विषय में मर्मज्ञों में बहुत कुछ मतभेद है। यदि युधिष्ठिर तक इन्दु वंश के केवल ५६ राजा हुए तो निश्चय ही महाभारत काल रामायण काल से पहले हुआ। महाभारत और रामायण के अध्ययन से यह अनुमान लगाया जाता है कि जिन लोगों का वर्णन महाभारत में है वे रामायण कालीन लोगों के पश्चात् प्रकट हुये। इसलिये कहा जाता है कि इन्दु वंशावली अधूरी है।

चन्द्र वंश और सूर्य वंश के कई समकालीन राजाओं का वर्णन

पुराणों में मिलता है। इस की सहायता से तिथियाँ निर्धारित की जा सकती हैं।

भागवत और अग्नि पुराणों में रामचन्द्र से विक्रमादित्य और उस से आगे के राजाओं का और राजतरंगिणि में जिसे कल्हण ने लिखा, युधिष्ठिर से आगे आने वाले राजाओं का वर्णन है। इस के अनुसार विक्रमादित्य तक छियासठ राजा हुये हैं। उस के पश्चात् पृथ्वीराज तक ३४ राजाओं का वर्णन मिलता है।

इन दो वंशों के अतिरिक्त यदु वंशावली भी प्राप्त होती है। जरासंध की जो राजगृह अर्थात् विहार का राजा था २३ पीढ़ियाँ राज्य करती रहीं। अन्तिम राजा रिपुञ्जय हुआ जिसका संहार कर उसका मन्त्री सणक सिंहासन पर बैठा जिसकी पाँच पीढ़ियाँ राज्य करती रहीं। तत्पश्चात् भारत में एक नई जाति ने आगमन किया जो शिशुनाग के नाम से प्रसिद्ध है और जिसकी दसवीं पीढ़ी महानन्दिन के साथ समाप्त हो गई। मौर्य वंशीय चन्द्रगुप्त नन्द वंश के नाश का हेतु था। मौर्य वंश ३२२ ई० पू० से १८५ ई० पू० तक राज्य करता रहा।

पाँचवाँ वंश सिरिन देश से आया जिसके आठ राजा हुये, जिन्हों ने ११२ साल राज्य किया। फिर कण्व वंश का प्रादुर्भाव हुआ जिसके २६ राजाओं का वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि इस वंश का अन्त करने वाला आन्ध्र देशीय पुष्यमित्र था जो शुंग वंश से था। इसके तीन राजाओं के पश्चात् सातवाहन वंश का राज्य आरम्भ हुआ।

अभी तक विक्रमादित्य के विषय में निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं हुई इसलिये इन कथनों को पूर्ण रूप से आधारित नहीं किया जा सकता। संभव है बामियान या भारत की पश्चिमी सीमा से सामग्री प्राप्त हो जाये या पुरातात्विक प्रमाण मिल जायें जिन से इन कथनों की पुष्टि हो सके। यह भी संभव है कि चीन से या तिब्बत से साहित्य

प्राप्त हो, क्योंकि तुर्कों के आक्रमण के समय बहुत सा साहित्य उन देशों में पहुँच गया था। भारत में प्रचलित गाथायें इनकी सत्यता की ओर संकेत करती हैं।

पौराणिक नगर

भारत में इस समय भी कई ऐसे नगर हैं जो उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हैं जो उन्हें पुराणों में दिये गए हैं। अन्य बहुत से नगरों के नाम निश्चित रूप से इंगित नहीं किये जा सकते।

अयोध्या

मिथिला

अयोध्या सूर्य वंशीय राजाओं द्वारा स्थापित भारत में पहला नगर था। यह सरयू नदी पर स्थित है। भारत के पवित्र स्थानों में इसका मुख्य स्थान है। कहा जाता है कि लखनऊ की स्थापना राम ने अपने भाई लक्ष्मण के नाम पर की थी। सूर्य वंश के मिथिल नामक राजा ने जो इक्ष्वाकु का पौत्र था मिथिला नाम के नगर की स्थापना की, इसी का नाम जनकपुरी प्रसिद्ध हुआ। यह नगर अब लोप हो गया है।

रोहतास, चम्पापुर आदि भी सूर्यवंशीय राजाओं ने बसाए थे।

प्रयाग

चन्द्रवंशीय (इन्दु) राजाओं का मुख्य गढ़ प्रयाग था। कहा जाता है कि नर्मदा के तट पर महिष्मति इस से अधिक प्राचीन था। यह नगर अब तक स्थित है। इस वंश के लोग बघेलखण्ड में पाए जाते हैं।

द्वारिका

द्वारिका की स्थापना प्रयाग और मथुरा से पूर्व हुई थी। भागवत के अनुसार इस की स्थापना अनरिता ने की थी जो इक्ष्वाकु का पुत्र था।

सूर्यपुर

सिकन्दर महान् के इतिहासकारों ने सूरसेन वंश और सूर्यपुर का वर्णन किया है। इस के विषय में यह ज्ञात नहीं हो सका कि यह कब स्थापित हुआ।

हस्तिनापुर

हस्तिनापुर का संस्थापक चन्द्रवंशीय राजा हस्तिन था। इस के खंडहर अभी तक पाए जाते हैं और इसकी खुदाई से ऐसे पदार्थ प्राप्त हुए हैं जिन्हें अशोक के काल से संबंधित किया जा सकता है।

कन्नौज

चंद्रवंशीय राजाओं की एक शाखा की राजधानी कन्नौज थी। तुर्ककालीन इतिहासकार फरिश्ता ने इसकी परिधि ३५ मील बताई है। वहाँ तीस हज़ार दुकानें केवल पान बेचने वालों की थीं।

दक्षिणी राज्य

बहुत से चंद्रवंशीय और सूर्य वंशीय राजा अन्य देशों में जाकर आवाद हुए और उन्होंने नए राज्य स्थापित किये। मिश्र, अरब, गांधार आदि देशों के संस्थापक ये ही साहसी पुरुष कहे जाते हैं। दक्षिण में उन्होंने कालिंजर, पाण्ड्य, चोल, अंग आदि राज्य स्थापित किये।

पौराणिक युग के संघ

पुराणों के अतिरिक्त बौद्धों के जातक ग्रन्थ भी इस युग पर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं। इन में कई संघों का वर्णन है। आठ संघों के नाम स्पष्ट रूप से दिए गये हैं। इनमें लिच्छिवी, मल्ल और मौर्य प्रसिद्ध थे।

पुराणों में सोलह महाजनपदों के नाम दिए गए हैं। इन में से चार बहुत प्रसिद्ध थे। एक अवन्ती जिसका शासक प्रद्योत्त था; दूसरा वत्सा जहाँ उद्यान राज्य करता था; तीसरा अवध जिस पर प्रेसेनजित का अधिकार था और चौथा मगध जो बिम्बसार के आधीन था। किसी समय अवध सब से अधिक शक्तिशाली था किन्तु छठी शताब्दी ई० पू० में मगध ने पंख फैलाए। इस शताब्दी के मध्य में बिम्बसार ने अवध की राजकुमारी से विवाह कर मगध की सत्ता और भी बढ़ा दी। बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु के काल में इस राज्य का विस्तार छोटा

नागपुर की पहाड़ियों से लेकर हिमालय तक हो गया। उसने नई राजधानी पाटलीपुत्र की नींव डाली।

चौथी शताब्दी में मगध पर नंद वंश का आधिपत्य स्थापित हो गया जिसका अंतिम राजा धननंद बहुत प्रसिद्ध है। उसकी सेना में २०,००० घुड़सवार, २,००,००० पैदल, २००० रथ और ४००० हाथी थे। नन्दवंशीय राजा अपने धन के लिये प्रसिद्ध थे।

शासन विधि

ये सब प्रायः जनतंत्रीय राज्य थे। प्रत्येक राज्य की एक समिति होती थी जिसके सदस्य चुने जाते थे। शासन का काम इन्हीं के सुपुर्द होता था। समिति के प्रधान को प्रायः राजा कहते थे। शासन कार्य भिन्न-भिन्न विभागों में बँटा होता था। प्रत्येक विभाग समिति के किसी सदस्य के आधीन होता था। कई राज्यों का संघ साम्राज्य कहलाता था।

कुछ राज्य ऐसे भी थे जहाँ शक्ति एक व्यक्ति के हाथ में आ गई थी किंतु वह भी जनता की अनुमति से शासन करता था।

इन राज्यों में प्रतिद्वंद्विता रहती थी और वे एक दूसरे से अधिक शक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करते थे। कभी एक राज्य अधिक शक्तिशाली हो जाता तो कभी दूसरा।

अन्य साहित्य

पुराण निश्चय ही इस युग का महत्त्वपूर्ण साहित्य है। किन्तु उनके इलावा और बहुत से मूल्यवान् साहित्य की रचना हुई। इस साहित्य में सूत्रों का प्रमुख स्थान है।

सूत्र

सूत्र मानो पृथक् पृथक् विषयों में शिक्षा देने के गुटके हैं। कहा जाता है कि सूत्रकार को आधा स्वर कम प्रयोग करने पर इतनी खुशी होती थी जितनी किसी को पुत्र के जन्म लेने पर होती है। ये इतने संक्षेप में लिखे गये हैं कि इन्हें समझने में कठिनाई होती है।

इन सूत्रों में गृह सूत्र बहुत प्रसिद्ध है। हिन्दुओं की वर्तमान प्रथाएँ इसी पर आधारित हैं। जन्म, मरण, विवाह आदि के समय जो संस्कार किये जाते हैं वे इसी सूत्र में लिखे हैं। राजाओं के अभिषेक की विधि एक अन्य सूत्र में लिखी है। संस्कारों और विधियों का वर्णन स्मृतियों में भी मिलता है। इन में संपत्ति सम्बन्धी नियम भी लिखे हैं।

वेदाङ्ग

वेदांग जो प्रायः सूत्र रूप में हैं छः भागों में बाँटे जाते हैं। १. शिक्षा २. छंद ३. व्याकरण ४. निघण्टु (शब्द कोष) ५. कल्प (संस्कार) ६. ज्योतिष। कई व्यक्तियों ने व्याकरण लिखे। इन में अष्टाध्यायी प्रमुख है। इसका रचयिता पाणिनी है।

बौद्ध और जैन साहित्य जो पाली और प्राकृत भाषा में हैं, बहुत सीमा तक ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करता है। इस साहित्य में जातकों का विशेष स्थान है। जातकों में कहानियाँ लिखी हैं जिन्हें उस समय की लोक गाथाएँ कहा जा सकता है। जातकों के रचयिताओं ने सर्वप्रिय लोक गाथाओं को केवल बौद्धमत का रंग दे दिया है।

जातकों में जिस समाज का चित्रण किया है उसी समाज का चित्रण पुराणों और अन्य संस्कृत साहित्य में जो इस काल में रचा गया मिलता है। किन्तु जहाँ संस्कृत साहित्य में ब्राह्मणों को प्रभुत्व दिया गया है वहाँ जातकों में क्षत्रिय वर्ग को ब्राह्मणों से ऊँचा सिद्ध करने का प्रयत्न है।

पौराणिक युग की विशेषता

भारत ने इस युग में भौतिक उन्नति की, इस में तो तनिक भी सन्देह नहीं। क्या शिल्प, क्या व्यापार, क्या कृषि और क्या कला सभी अति उन्नत दिखाई देते हैं। किंतु समाज का रूप गौरवशील न था। स्त्रियों का स्तर गिरने लगा था। वे अपनी इच्छा से स्वयंवर में पति चुन सकती थीं। पति की मृत्यु के पश्चात्

दूसरा विवाह कर सकती थीं। सती होना अनिवार्य न था। फिर भी उन्हें हेय समझा जाने लगा था। बहु विवाह की कुप्रथा ने स्त्रियों के हितों को बहुत हानि पहुँचाई थी।

शूद्र यद्यपि ब्राह्मणों के घरों में देवताओं के लिये भोजन तक तैयार करते थे फिर भी उन पर बहुत से प्रतिबन्ध लग चुके थे। स्त्रियों और शूद्रों के लिये शिक्षा का प्रबन्ध व्यापक न था।

वैश्यों को भी सामाजिक दृष्टि से ब्राह्मणों और क्षत्रियों की अपेक्षा हेय समझा जाता था।

ब्राह्मणों ने बहुत शक्ति प्राप्त कर ली थी। वे न केवल पुरोहित और धार्मिक नेता ही थे बल्कि राजनैतिक मामलों में भी उनका बहुत दख़ल था। राजा शक्तिशाली होने पर भी ब्राह्मणों के आगे शीश निवाता था और उसे अपने ब्राह्मण मंत्री की आज्ञा का पालन करना पड़ता था।

रीति रिवाजों में आडम्बर और जटिलता आ गई थी। ब्राह्मणों को भारी दक्षिणा देनी पड़ती थी जो साधारण व्यक्ति के बूते का काम न था। शुद्ध आचरण का महत्त्व घट गया था और कर्म काण्ड तथा तपस्या को मुक्ति का मार्ग समझा जाने लगा था।

पौराणिक देवता

आर्य लोग जिन देवताओं की आराधना करते थे उन में से बहुतों का रूप बदल गया। शिव, विष्णु और ब्रह्मा हिंदुओं के प्रमुख देवता बन गये। कई देवियों की पूजा होने लगी जिन में काली सब से प्रमुख थी। नर बलि का रिवाज भी था।

जटिलता की प्रतिक्रिया

ब्राह्मणों की धींगामुश्ती के ख़िलाफ़ विद्रोह भी होने लगा था। इस युग में संत महात्माओं ने, जिनका जीवन अत्यंत उच्च कोटि का था, अपने अपने दल बना लिये थे। अच्छे और उत्तम श्रेणी के ब्राह्मणों की भी कमी न थी और वे पूजा पाठ को अधिक महत्त्व न देते थे।

पौराणों की तिथि।

अलबरूनी ने जो भारत में १०३० ई० के लग-भग आया अठारह पुराणों की सूची दी है। बाण ने भी (सातवीं शदी ई०) पुराणों का उल्लेख किया है। मिलिन्दपन्ह में भी उनका उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि पुराणों का अन्तिम रूप गुप्त काल में उपलब्ध था। परन्तु पुराणों की रचना बहुत पहले आरम्भ हुई जान पड़ती है।

परिच्छेद ८

जैन धर्म और बौद्ध धर्म

जैन धर्म का जन्म

जिज्ञासा की जो प्रेरणा वैदिक धर्म में मिलती है उसके परिणाम स्वरूप अनुचित प्रथाओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया आरम्भ होना स्वाभाविक था।

देवी देवताओं की पूजा जो द्रविड़ों के साथ सम्पर्क से आरम्भ हो गई थी लोगों को अपने कर्तव्य से विमुख करने लगी। देवी देवताओं के नाम पर पशुओं और मनुष्यों की बलि देने की प्रथा आरम्भ हो गई। हिंसा बढ़ने लगी।

समय के साथ-साथ जनता का नैतिक स्तर भी नीचा होता गया और दुराचार की भावनाएँ उत्पन्न हो गईं। इन के सुधार के लिये ही जैन धर्म ने जन्म लिया। जैन धर्म की उत्पत्ति की निश्चित तिथि नहीं मिलती। जैन ग्रन्थों के अनुसार यह मत बहुत प्राचीन है जिस के तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ थे जो ईसा से ८०० वर्ष पूर्व हुए किन्तु वास्तव में जैन धर्म के जन्म दाता २४ वें तीर्थंकर महावीर जी थे जो ईसा से ५०० वर्ष पूर्व हुए।

महावीर जी

महावीर जी वैशाली के राजकुमार वर्द्धमान थे जिन्होंने सुख वैभव का जीवन त्याग कर तप का जीवन ग्रहण किया और १२ वर्ष तक घोर तपस्या की। इसके पश्चात् वे ३० वर्ष तक अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे। जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त ये हैं: सच बोलना, चोरी न करना, सम्पत्ति को त्याग देना और किसी को मन, वचन और काम से दुःख न देना।

महावीर जी ने कब मोक्ष प्राप्त किया यह निश्चित नहीं। कुछ इतिहासकार ५२७ ई० पूर्व और कुछ ४७७ ई० पूर्व में उन का देहान्त

हुआ बतलाते हैं। उन का अन्तिम समय दक्षिण बिहार में पावा के स्थान पर बीता।

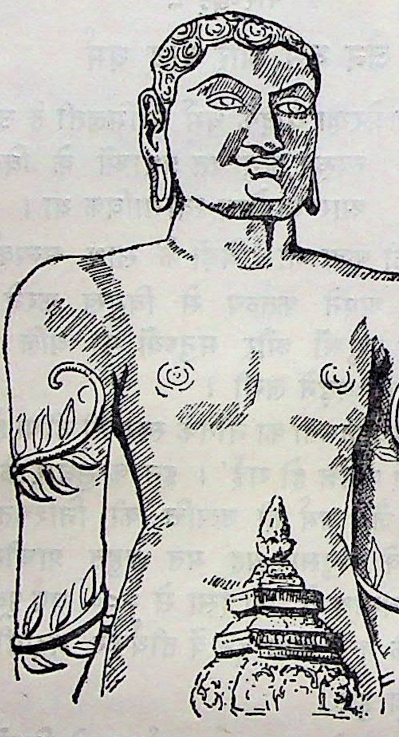

गोमतेश्वर—६० फीट ऊँची जैन-मूर्ति

महावीर जी ने अपनी इन्द्रियों को पूर्णतः वश में किया था। इस लिये उन्हें "जिन" अर्थात् विजेता कहते थे। इसी से उन के अनुयाइयों को जैन कहने लगे। जैन साधु प्रायः श्वेत वस्त्र पहनते हैं। कुछ साधु नग्न रहते हैं। इन्हें दिगाम्बर कहते हैं। श्वेत वस्त्र पहनने वालों को श्वेताम्बर कहते हैं। ३०० ई० पू० के लगभग जैनियों के दो समुदाय—श्वेताम्बर और दिगाम्बर बन गये। जैन सिद्धान्तों का भारत में बहुत प्रभाव पड़ा यद्यपि उन के अनुयाइयों की संख्या सीमित रही।

विदेह, मगध और अजना के राज्यों से महावीर जी की माता का सम्बन्ध था इस लिये वैशाली के साथ-साथ इन राज्यों ने भी जैन धर्म को बहुत प्रोत्साहन दिया। और भी कई शासकों ने इसे राज्य धर्म के रूप में अपनाया। तीसरी शताब्दी में पूर्वी भारत में जैन मत का प्रभाव कम हो गया किन्तु पश्चिमी भारत में यह अब तक प्रचलित है। यह प्रायः व्यापारी वर्ग का मत है।

महात्मा बुद्ध

महात्मा बुद्ध कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ थे। बचपन से ही उन में करुणा के भाव कूट-कूट कर भरे थे। सांसारिक दुःखों को देख कर उन का मन दुनिया से ऊब गया और एक रात जब उन की पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल सोए पड़े थे वे चुपके से घर से निकल खड़े हुए और कई वर्ष तक तप करते रहे। गया के स्थान पर एक वृक्ष के नीचे बैठे थे कि उन्हें ज्ञान हुआ कि शरीर को कष्ट देने से सुख नहीं मिल सकता। उत्तम कार्य करने से ही वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है। यह बोध होने के कारण उन्हें बुद्ध कहने लगे।

बौद्ध धर्म

महात्मा बुद्ध ने सारनाथ के स्थान पर जो बनारस के निकट है, अपना पहला भाषण दिया। यहाँ उन के पाँच अनुयायी बने। इन्हीं पाँच व्यक्तियों से महात्मा बुद्ध ने बौद्ध संघ की नींव रखी। उन के अनुयाइयों की संख्या बढ़ती गई यहाँ तक कि न केवल भारत में बल्कि अन्य बहुत से देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। महात्मा बुद्ध के निर्वाण की तिथि निश्चित नहीं। लंका के विद्वानों के अनुसार उनका देहान्त ५४४ ई० पू० में हुआ किन्तु आधुनिक इतिहासकार ४८६ ई० पू० के पक्ष में हैं।

बौद्ध धर्म के सिद्धान्त बहुत सरल हैं। महात्मा बुद्ध अति अर्थात् किसी भी क्षेत्र में उग्रता के विरोधी थे। वे चीन के महात्मा कन्फूशियस की भांति मध्यमार्ग को मनुष्य के लिए उचित समझते थे। उन का

सिद्धान्त था कि न तो व्यक्ति अपनी वासनाओं का दास बने और न ही उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करे। उन्हों ने जीवन को सुखी बनाने और निर्वाण प्राप्त करने के आठ साधन बताये। सत्य विचार, सत्य आकांक्षाएँ, सत्य वचन, सत्य आचार, सत्य जीविका उपार्जन, सत्य श्रम, सत्य चिन्तन और सत्य आनन्द। साधारण लोगों के लिए उन्हों ने इसे सरल शब्दों में इस प्रकार रखा—झूठ मत बोलो, किसी की हत्या मत करो, चोरी मत करो, व्यभिचार से बचो, किसी की निन्दा न करो, किसी की आलोचना न करो, लालच से बचो और अनभिज्ञ मत रहो।

इन नियमों की सरलता के कारण ही इन्हें जन-साधारण ने ग्रहण कर लिया। बौद्ध धर्म की सफलता का दूसरा कारण यह था कि इन नियमों का प्रचार संस्कृत की अपेक्षा पाली भाषा में किया गया। पाली भाषा उस समय की प्रचलित भाषा थी।

बौद्ध ग्रंथ

चिर काल तक महात्मा बुद्ध के विचारों का प्रचार होता रहा किन्तु उन्हें किसी ग्रन्थ का रूप नहीं दिया गया। महात्मा बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात् कई समितियाँ बुलाई गईं जिनमें इन नियमों को क्रम-बद्ध किया गया। चार समितियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। पहली बिहार में हुई, दूसरी उस से सौ वर्ष पश्चात् वैशाली में तीसरी पटना के स्थान पर अशोक के काल में और चौथी कनिष्क के काल में पहली शताब्दी ई० के लगभग काश्मीर में।

इन समितियों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म के तीन धार्मिक ग्रन्थों की रचना हुई। इन्हें त्रिपिटक कहते हैं। एक ग्रन्थ सूत्र कहलाता है। इस में महात्मा बुद्ध के कथन हैं, दूसरी पुस्तक में भिक्षु और भिक्षुणियों के आचार व्यवहार के नियम हैं। इसे विनय कहते हैं। तीसरी पुस्तक जिसे अभिधर्म कहते हैं बौद्धमत के सिद्धान्तों की पुष्टि में लिखी गई है। इस में बौद्ध सिद्धान्तों की व्याख्या है और उन पर उठाई गई आपत्तियों के उत्तर हैं।

जातक भी बौद्धों के धार्मिक ग्रन्थ हैं। बौद्धों का विश्वास है कि महात्मा बुद्ध ने अनेक जन्म लिये थे। अपने भूतपूर्व जीवन में जो कुछ उन्हों ने किया उसकी कहानियों को ही जातक कहते हैं।

वैदिक धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म का सम्बन्ध

जैन और बौद्ध धर्म वैदिक धर्म से एक दम पृथक् धर्म नहीं। ये वास्तव में हिन्दू धर्म की बढ़ती हुई त्रुटियों की प्रतिक्रिया के रूप थे। हिन्दू धर्म के मुख्य और साधारण सिद्धान्तों को सरल भाषा में प्रस्तुत करना अतएव उन्हें आडम्बर रहित बनाना यही इन के प्रवर्तकों का उद्देश्य था। ये मानों सुधार आन्दोलन थे। ये मत सामान्यतः उपनिषदों पर आधारित हैं। अहिंसा का नियम जिसे जैन मत और बौद्ध मत दोनों में प्रमुख स्थान दिया गया है भारत के लिये कोई नया नियम न था।

बौद्ध मत और जैन मत की विशेषता

बौद्ध लोग ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते और न ही वेदों को प्रमाण मानते हैं। उन का विश्वास है कि निर्वाण प्राप्त करने से मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है। वैदिक साहित्य में आवागमन को अनिवार्य सिद्ध किया गया है। जैन धर्म के सिद्धान्त वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म के नियमों के बीच का मार्ग लेते हैं। तप को और देवी देवताओं को जैनी हिन्दुओं की भाँति उच्च स्थान देते हैं, बौद्धों की भाँति वेदों को धार्मिक ग्रन्थ नहीं मानते और ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उन का विश्वास है कि सब पदार्थों में आत्मा है जो एक महान् आत्मा का स्वरूप है। जब व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है तो वह इस विश्व आत्मा में लीन हो जाता है।

जैनी शास्त्रियों ने प्रकृति के मूल तत्वों का विस्तार से अध्ययन किया और सिद्ध कर दिया कि प्रकृति अणुओं से बनी है। आधुनिक

काल का आयन्ज़ का सिद्धान्त देख कर जैनियों की विद्वत्ता पर आश्चर्य होता है।

जैन धर्म के जीवित रहने के कारण।

जैन धर्म और बौद्ध धर्म समकालीन थे किन्तु जिस तीव्रता से बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ उस प्रकार जैन धर्म नहीं फैल सका। अपनी सरलता के कारण बौद्ध धर्म विदेशों में भी बहुत प्रिय हुआ। जैन साधुओं ने जैन धर्म को विदेशों में फैलाने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि वे भारत में ही धैर्य से प्रचार करते रहे। जैन मत का तपस्या का सिद्धान्त भारतीय व्यापारियों और धनी लोगों को प्रभावित करता रहा। जैन धर्म के अनुयाइयों की संख्या थोड़ी होते हुए भी ठोस रही। इस के विपरीत बौद्ध मत भारत से लुप्त हो गया यद्यपि विदेशों में अब भी इस मत के अनुयाइयों की संख्या बहुत है।

जैन धर्म के जीवित रहने का दूसरा कारण यह था कि जैनियों ने कभी भी खुल्लम-खुल्ला वैदिक धर्म का विरोध नहीं किया। वे अब तक अपने आपको हिन्दू कहते हैं और ब्राह्मणों का और हिन्दू देवी देवताओं का आदर करते हैं।

अहिंसा को अपने धर्म की आधार शिला मानते हुए भी जैनियों ने राजाओं को अहिंसा का पालन करने के लिये बाध्य नहीं किया। जैनी शासक अपराधियों को दंड देने के लिये स्वतन्त्र थे और देश के शत्रु को पराजित करना और उस की हत्या करना उन का कर्त्तव्य था। जैनी वास्तविकता के अधिक निकट थे।

जैनियों ने अपने नियमों और सिद्धांतों की पुष्टि के लिये तर्क शास्त्र का सहारा लिया और युक्तियों द्वारा उन्हें सत्य सिद्ध किया। उन के सिद्धांतों पर प्रहार करना सुगम न था। जैनियों के मूल ग्रन्थ संस्कृत में लिखे हैं और उच्च कोटि का साहित्य होने के कारण विद्वानों को प्रभावित करते रहे हैं।

बौद्ध धर्म के पतन के कारण ।

इसके विपरीत बौद्ध विद्वानों ने तर्क का सहारा नहीं लिया। हिन्दुओं की ओर से बौद्ध धर्म का विरोध हुआ और जब बौद्ध विद्वान उन की युक्तियों का उत्तर न दे सके तो लोगों का बौद्ध धर्म से विश्वास जाता रहा। बौद्ध धर्म के मुख्य नियम भारतीय समाज ने अपना लिये थे। अब उन्हें हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में विशेष अन्तर दिखाई न देता था। बौद्ध मत में कुप्रथाएँ आ जाने से भी बौद्ध मत की लोकप्रियता को हानि पहुँची।

कनिष्क के काल में बौद्ध मत के अनुयायी हीनयान और महायान दो दलों में बट गए। महायान मत के लोग मूर्ति पूजा में विश्वास रखते थे।

इस दल का हिन्दुओं में मिल जाना सुगम ही था। शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट और दक्षिण के कवियों और महात्माओं के उपदेशों ने जनता को इतना प्रभावित किया कि बौद्ध धर्म उनको खोखला प्रतीत होने लगा।

तुर्कों के आक्रमण ने बौद्ध धर्म की रही सही शक्ति को समाप्त कर दिया। तुर्कों ने बौद्ध भिक्षुओं पर बहुत अत्याचार किये और सहस्रों की संख्या में उन्हें मौत के घाट उतारा।

जहाँ भारत में बौद्ध धर्म के अनुयायी लगभग लुप्त हो गये, यह मत चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत, सियाम, हिन्द चीनी, बर्मा, लंका और अन्य देशों में फलता-फूलता रहा और आज भी कई देशों का यह मुख्य धर्म है।

बौद्ध धर्म का प्रभाव

यद्यपि बौद्ध धर्म भारत में जीवित न रहा तथापि सर्व साधारण के जीवन पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। अहिंसा का स्वर्ण नियम भारतीय जीवन का अंग बन गया। कठोर तप में लोगों का विश्वास जाता

रहा और परलोक सुधारने के विचार से वे इस संसार से उदासीन हो गये।

जहाँ भारत ने बौद्ध धर्म के मौलिक नियमों को ग्रहण किया वहाँ चीन, जापान, कोरिया, बर्मा और अन्य देशों में इस का बाह्य रूप स्वीकार किया गया। चीन में जहाँ कन्फूशियस और लोट्स की मध्य मार्ग की शिक्षा का प्रभाव था, भौतिक साधनों की प्राप्ति और सांसारिक सुखों का भोग बुरा न समझा जाता था। बौद्ध धर्म के अनुयायी होते हुए भी वहाँ के लोग हिंसा तथा मार काट को पाप न समझते थे।

बौद्ध धर्म ने सब से अधिक प्रभाव शिक्षा पर डाला। स्थान स्थान पर बौद्ध विहार स्थापित किये गए। पूर्वी भारत में तो इतने विहार थे कि उस प्रदेश का नाम ही बिहार पड़ गया। विदेशों में भी बहुत से बौद्ध विहार थे जिन में से बलख़ विहार बहुत प्रसिद्ध था। उस में १००० से अधिक साधुओं के ठहरने का प्रबन्ध था। बर्मा और चीन में अनगिनत बौद्ध विहार थे।

बौद्ध मत जैसा हम पहले कह आये हैं भारत की सामाजिक त्रुटियों की प्रतिक्रिया था। स्त्रियों को समान अधिकार प्रदान करना, शूद्रों और चांडालों के लिये निर्वाण का मार्ग खोलना और क्षत्रियों और वैश्यों को ब्राह्मणों के बराबर का स्तर प्रदान करना—मानव का स्तर ऊँचा करना - बौद्ध धर्म के मुख्य उद्देश्य थे, फलस्वरूप बौद्ध मत ने भारतीय समाज में क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी।

बौद्ध कालीन भारतः सामाजिक स्थिति

बौद्ध कालीन भारत का चित्रण जातकों में मिलता है। इन से पता चलता है कि क्षत्रिय लोग अपने आप को ब्राह्मणों के चंगुल से छुड़ाने का प्रयत्न कर रहे थे। जातकों में क्षत्रियों को ब्राह्मणों से ऊँचा स्थान दिया गया है। उन ब्राह्मणों की बहुत निन्दा की गई है जो लोगों को सत्य मार्ग से हटाकर असत्य मार्ग

पर लगाते थे। उन ब्राह्मणों की प्रशंसा की गई है जो सांसारिक सुखों को हेय समझते थे और धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे।

वैश्यों को राजाओं के दरबार में आदर मिलता था। उन लोगों के संघ होते थे, जिन्हें राजनैतिक अधिकार प्राप्त थे। विदेशों से व्यापार करने के लिये भी व्यापारी संघ थे।

वर्ण व्यवस्था कुछ जटिल हो गई थी। एक वर्ण के लोग उसी वर्ण में विवाह करते थे। वर्ण जन्म से माना जाने लगा था। फिर भी अपने वर्ण से बाहर विवाह करने से व्यक्ति हेय न समझा जाता था। वर्ण परिवर्तन भी हो सकता था।

भिन्न भिन्न वर्ण के लोगों ने अलग अलग व्यवसायों में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली थी। प्रायः पुत्र पिता के व्यवसाय को ही अपनाता था।

आर्थिक जीवन

धन का बाहुल्य था। उद्योग और व्यापार अति उन्नत थे। बट्टे का रिवाज था किन्तु सोने, चांदी और ताम्बे के सिक्कों का प्रयोग भी होता था। निश्क, स्वर्ण और कर्षपण तीन सिक्के प्रसिद्ध थे। इनका रूप प्रायः गोलाकार होता था जिसके बीच में एक छेद होता था।

शिक्षा

उच्च शिक्षा के लिये कई विश्वविद्यालय थे जिनमें तक्षशिला का महाविद्यालय बहुत विख्यात था। बनारस भी शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था। स्थान स्थान पर आश्रम थे, जो प्रायः जंगलों में होते थे। व्यक्तिगत रूप से भी शिक्षा दी जाती थी और ऐसे भी अध्यापक थे जो स्थान स्थान पर घूम कर शिक्षा देते थे।

घरेलू जीवन अति सुखमय था। माता पिता को मान मिलता था। बच्चों से आशा की जाती थी कि वे माता-पिता की सेवा करें और

घरेलू जीवन

उनकी आज्ञा का पालन करें। कुटुम्ब का बड़ा बूढ़ा कुटुम्ब का मुखिया समझा जाता था। संतान की उत्पत्ति प्रसन्नता की प्रतीक थी। पुत्र और पुत्री में कोई भेद न रखा जाता था। अतिथि सत्कार प्रत्येक गृहस्थी का कर्त्तव्य था। अतिथि सेवा में वह आनन्द अनुभव करता था।

माता का घरेलू मामलों में प्रमुख स्थान था। स्त्रियाँ प्रायः पढ़ी लिखी होती थीं। गाना और नाचना प्रत्येक नारी जानती थी और इन से उदासीनता एक अवगुण समझा जाता था। ऐसी स्त्रियाँ भी थीं जो संन्यासियों का सा जीवन व्यतीत करती थीं और स्थान-स्थान पर घूमती थीं।

राजाओं का जीवन

राजा और अमीर लोग ठाठ-बाठ से रहते थे किन्तु व्यभिचार को बहुत बुरा समझा जाता था। राजा पुरोहितों, मन्त्रियों और राज्यकर्मचारियों की अनुमति से राज्य कार्य चलाता था। राजा भूमि से कर प्राप्त करता था किन्तु उस पर उसका कोई अधिकार न था।

राजा अपने आप को जनता का सेवक मानते थे और उन्हें यह कहने में गर्व होता था कि उनके राज्य में न कोई अपराधी है न दरिद्र और न ही कोई निरक्षर।

महात्मा बुद्ध का महत्त्व

महात्मा बुद्ध और महावीर यूनान में सुकरात के और चीन में कन्फूशियस के समकालीन कहे जा सकते हैं। इन सब दार्शनिकों का एक ही उद्देश्य था—मनुष्य जीवन को उच्च बनाना। किन्तु महात्मा बुद्ध के विचारों में विशेष प्रकार की सादगी और आधुनिकता पाई जाती है जिसके कारण वे आज भी सर्वोत्तम माने जाते हैं।

साम्राज्यों का युग

परिच्छेद १

संसार के प्रारम्भिक साम्राज्य

छठी शताब्दी ई० पू० का संसार

४८४ इ० पू० में यूनान के एथन्ज़ नगर में हैरोडोटस नाम का व्यक्ति उत्पन्न हुआ। हैरोडोटस संसार का प्रथम इतिहासकार बना। उसने छठी और पाँचवीं शताब्दियों के उस समय के ज्ञात संसार का चित्रण किया है।

भारत और चीन के विषय में हैरोडोटस को थोड़ा ही ज्ञान था इसलिये इन दो देशों के प्राचीन इतिहास के विषय में हमें हैरोडोटस के इतिहास से कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। केवल भारत के विषय में इतना मालूम होता है कि उसका एक भाग दारा प्रथम के आधीन था जिस से उसे बहुत खिराज मिलता था, इतना कि शायद वह उसके बाकी समस्त साम्राज्य के खिराज से बढ़ जाता था। दारा ईरान का सम्राट् था। ईरान के अतिरिक्त उस युग के पश्चिमी संसार में यूनान भी एक प्रसिद्ध देश था।

ईरान

ईरान का जलवायु आज से छः सात सहस्र पूर्व वैसा न था जैसा आज कल है। वह उपजाऊ भूमि थी और वहाँ का मौसम खुशगवार था। तभी आर्य लोग अपने कठोर देश तुर्किस्तान को छोड़ कर ईरान में आ बसे थे।

जैसा हम पहले कह आए हैं ईरान एक प्राचीन सभ्यता का केन्द्र रह चुका था जिसकी सत्ता पुरोहितों के हाथ में होती थी। नव-

आगन्तुकों ने यह सभ्यता नष्ट कर दी किन्तु वह इस से प्रभावित हुए बिना न रह सके। ईरान के आदिवासियों के देवता कालान्तर में नव आगन्तुक आर्यों के देवता बन गये।

प्राचीन ईरानियों की अपनी प्रथाओं का पता ईरानियों की धार्मिक पुस्तक ज़न्द अवस्था से चलता है जिसकी भाषा पहल्वी ऋग्वेद की भाषा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। ज़न्द अवस्था और ऋग्वेद के देवताओं में भी बहुत कुछ समानता है।

हैरोडोटस ने ईरान का जो चित्र प्रस्तुत किया है उस से मालूम होता है कि ईरान में उस समय व्यक्तिगत राज्य था और ईरान का सम्राट् पुरोहितों के आधीन न था।

सिरस ईरानियों का पहला महान् सम्राट् था जिसने ५५० ई० पू० में सत्ता प्राप्त की। ५२१ ई० पू० में दारा प्रथम ने शासन संभाला और शीघ्र ही उसका साम्राज्य सिंध नदी से लेकर मिश्र तक फैल गया। संसार के इतिहास में उसके जितना विशाल साम्राज्य उससे पहले किसी भी सम्राट् का न हुआ था।

दारा ने कई देश जहाँ यूनानी लोग आबाद थे, अपने वश में कर लिये। उसने ४९० ई० पू० में यूनान के प्रसिद्ध नगर एथन्ज़ पर चढ़ाई कर दी किन्तु वह सफल न हुआ। इस हार की खबर पाने के पश्चात् वह अधिक समय तक जीवित न रह सका।

दारा जहाँ एक महान् विजेता सिद्ध हुआ वहाँ उसने अपनी प्रजा के सुख के साधन भी जुटाए। नहरें सड़कें और डाक का प्रबन्ध उसके शासन काल की विशेषताएँ थीं।

उसके पुत्र ज़ैरिस के पश्चात् जिसे यूनानियों ने मिलकर मात किया, ईरान का साम्राज्य विश्रृँखल होता गया।

यूनान का इतिहास ईरान के इतिहास की अपेक्षा कुछ पहले से आरम्भ होता है। यूनान एक प्रायः द्वीप है जिसमें समुद्र की शाखायें

यूनान

दूर तक भूमि के भीतर चली गई हैं। पहाड़ों ने भी इस देश को कई भागों में बाँट रखा है। इसलिए जब आर्य लोग यहाँ आए वे मिल जुल कर न रह सके। उनके अलग-अलग नगर बन गए जिन का राजनैतिक जीवन भी अलग-अलग था।

यूनान के कुछ नगरों में स्वेच्छाचारी राजा होते थे। कुछ नगरों में श्रेष्ठ वर्ग के लोगों के हाथ में राज्य सत्ता थी और कुछ नगरों में नागरिक सामूहिक रूप से शासन करते थे।

यूनान में बसने वाले कबीले अपने आपको हैलीनीज़ कहते थे। उनमें एक श्रेष्ठ वर्ग होता था। दूसरा वर्ग उन लोगों का था जो श्रम द्वारा जीविका उपार्जन करते थे। जब हैलीनीज़ ने यूनान के आदिवासियों को परास्त किया तो विजित लोगों का एक तीसरा वर्ग कहलाया। ये लोग प्रायः दास होते थे और इन्हें राजनैतिक अधिकार प्राप्त न थे।

यूनान में दास रखना बुरा न समझा जाता था। वहाँ के समाज में स्त्रियों का स्तर भी दासों के समान था। ऊँचे घराने की स्त्रियाँ सामाजिक जीवन में भी भाग न ले सकती थीं। स्त्रियों का एक वर्ग विशेष होता था जिन्हें सामाजिक जीवन में भाग लेने का अधिकार था। इन्हें हिटैरी कहते थे। ये स्त्रियाँ नाचती और गाती भी थीं।

हैलीनीज़ के अपने देवता थे जिनका अस्तीत्व मनुष्यों से मूलतया भिन्न न था किन्तु जिन लोगों को उन्हों ने परास्त किया था, उनके देवता भी लोक प्रिय होते गए।

सामाजिक प्रथाओं में भी यूनानियों के विभिन्न कबीले एक दूसरे से पृथक् थे किन्तु उनकी एक ही भाषा थी जो एक ही लिपि में लिखी जाती थी। यह लिपि यूनानियों ने फीनीशिया के लोगों से सीखी थी जो प्राचीन काल के प्रमुख व्यापारी थे। यूनानियों के यहाँ

खेलें खेली जाती थीं जिनमें सभी यूनानी भाग लेते थे। सब यूनानियों का धर्म भी एक ही था।

नैसर्गिक रूप से पृथक्-पृथक् होने के कारण यूनान के विभिन्न शहरों में राजनैतिक मेल स्थापित न हो सका किन्तु जब ईरान की ओर से एथन्ज़ पर आक्रमण हुआ तो यूनान में एक विशेष प्रकार का साम्राज्य स्थापित हुआ जिसका केन्द्र एथन्ज़ में था। यह निर्धन लोगों का साम्राज्य था। इसके संस्थापन में ईरान सम्राटों से बचने की भावना थी।

एथन्ज़ ने छठी शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी ई० पूर्व तक हर एक पहलू में उन्नति की। गणित में पाईथागोरस, साहित्य में होमर, ऐसांक्लस, सौफोकिलिस, यूरपिडीज़ आदि, दर्शन शास्त्र में सुकरात, अफ़लातून आदि, विज्ञान में अरस्तू आदि। इस प्रकार विभिन्न विषयों में यूनान ने अनेक मर्मज्ञ उत्पन्न किये। पाषाण निर्माण कला तो मानों प्राचीन यूनान की विशेषता थी।

जिस समय ईरान दुर्बल हुआ जा रहा था यूनान के मकदूनिया (मैसेडूनिया) नाम के नगर में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित हुआ जिसने यूनान के कई राज्यों को निगल लिया।

मकदूनिया का प्रसिद्ध शासक फिलिप था जिसने संसार को विजय करने की योजना बनाई। वह विजेता भी था और साहित्य, कला और विज्ञान से भी बहुत प्रेम करता था। अरस्तू को उसके दरबार में प्रमुख स्थान प्राप्त था। अपने अध्ययन के लिये अरस्तू को अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं। उसके ग्रंथों के लिये सामग्री एकत्रित करने के लिये सैंकड़ों विद्वान् नियत थे। वह सिकन्दर महान् का गुरु था। इतिहास में फिलिप की अपेक्षा उसका पुत्र सिकंदर अधिक विख्यात है।

भारत के लिये सिकंदर महान् का विशेष महत्त्व है। उसने मानों

सिकंदर महान् और भारत

भारत को यूरोपीय लोगों के लिये अंधेरे से उजाले में ला खड़ा किया। सिकंदर महान् के भारत में आगमन से भारत के इतिहास की बहुत सी तिथियाँ निश्चित हो गईं। यूनान और भारत में ऐसा मेल हुआ जो सैंकड़ों साल तक चलता रहा। भारत का प्राचीन इतिहास हमें यूनानियों की कृतियों में निश्चित रूप से मिलता है।

पश्चिमी भारत कई छोटे छोटे राज्यों में बंटा था। सिंधु और जेहलम के बीच की भूमि पर राजा आम्भी राज्य करता था जिसकी राजधानी तक्षशिला के स्थान पर थी। जेहलम और चनाब नदियों के बीच राजा पोरस राज्य करता था। चनाब के पूर्व में कई अन्य छोटे छोटे गणराज्य थे।

ईरान को विजय करने के पश्चात सिकन्दर ने ३२७ ई० पू० में हिन्दुकुश पार कर काबुल नदी के पूर्व की जंगली जातियों को परास्त किया। राजा आम्भी की पोरस से शत्रुता थी। उसे नीचा दिखाने के लिये आम्भी ने सिकन्दर से मित्रता की और जेहलम पार करने में वह यूनानी विजेता का सहायक बना।

पोरस और सिकन्दर का युद्ध भारतीय इतिहास में स्वर्णखण्ड है। पोरस की हार हुई किंतु अपनी वीरता से उसने सिकन्दर का दिल जीत लिया और सिकन्दर ने उसका राज्य उसे वापिस लौटा दिया। एक विजित राजा के प्रति एक विजयी राजा के सद्व्यवहार का यह अनूठा उदाहरण है।

सिकन्दर मगध को विजय करना चाहता था किंतु जब वह सतलुज के किनारे पहुँचा तो उसकी सेना ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया।

सिकन्दर को लाचार होकर वापिस लौटना पड़ा। मुलतान के स्थान पर मल्लोई जाति ने उसे घेर लिया और वह बुरी तरह घायल हुआ। इस पर सिकन्दर ने हत्याकांड मचा दिया और सैंकड़ों नर नारी और बच्चे मौत के घाट उतार दिये गए।

विजय नाद बजाता बलोचिस्तान से होता हुआ यह महान् विजेता बैबीलोन पहुँचा जहाँ ३२३ ई० पू० में उस की मृत्यु हो गई। वह उस समय केवल ३३ वर्ष का था।

सिकन्दर के आक्रमण का महत्त्व

सिकन्दर उन महान् विजेताओं में से था जिन्होंने संसार को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। यदि ज़िंदगी उसका साथ देती तो संभव था वह अपने प्रयास में सफल हो जाता किंतु उसकी अकाल मृत्यु ने उसका स्वप्न भंग कर दिया।

विश्वविजय के स्वप्न देखने वाला प्रकाश की किरण मात्र सिद्ध हुआ। उसने पूर्व और पश्चिम में नया संबंध स्थापित किया। भारतीय संस्कृति को यूरोप और यूनानी संस्कृति को भारत में पहुँचाने का श्रेय बहुत सीमा तक उसी को है। उसने ईरान और यूनान की सभ्यता को मिलाने का भरसक प्रयत्न किया था जो इतिहासकारों के उपहास का विषय बन गया।

सिकन्दर ने कई बड़े बड़े नगरों की स्थापना की जिनमें मिश्र का अलैग्ज़ैण्ड्रिया (सिकन्द्रिया) सब से प्रसिद्ध है। वह अपने साथ बहुत से विद्वान् लाया था जिनमें से कुछ उन देशों में रह गए जो सिकन्दर ने विजय किये। भारत विशेष रूप से इन विद्वानों का आभारी है। भारतीयों ने उनसे पाषाण-निर्माण-कला और नक्षत्र-विद्या की बहुत जानकारी प्राप्त की। आधुनिक रूप में मुद्रा का प्रयोग भी भारत को यूनानियों की देन है।

सिकन्दर महान अपने साथ जो वैज्ञानिक और दार्शनिक लाया था उन में नियरकस विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उसने भारत का

विस्तार पूर्वक वर्णन दिया था परन्तु उसकी वृतियाँ लोप हो गई हैं। स्ट्रेबो, प्लीनी और एरियन ने उनमें से उद्धरण दिये हैं।

भारत में सिकन्दर का साम्राज्य स्थापित न हो सका, किंतु उस के सेनापति सेल्यूकस ने भारत की पश्चिमी सीमा के प्रदेश पर अधिकार जमा लिया। भारत के भीतरी भाग में भी कई यूनानी उपनिवेश बन गए जिनका वर्णन दूसरी शताब्दी ई० तक मिलता है।

इस आक्रमण से भारतीय सम्राटों को भारत की पश्चिमी सीमा के महत्त्व का बोध हुआ और पश्चिमी भारत में जो छोटे-छोटे राज्य थे वे समाप्त हो गए। साम्राज्य स्थापित करने के जो भाव भारतीय शासकों के मन में उत्पन्न हो रहे थे, सिकन्दर के आक्रमण ने उनको पुष्टि दी। उसका आक्रमण मगध राज्य के लिये पश्चिम की ओर बढ़ने का निमंत्रण सिद्ध हुआ!

परिच्छेद १०

मौर्य कालीन भारत

मौर्य वंश की स्थापना

मौर्य साम्राज्य की स्थापना चन्द्रगुप्त ने की थी जिसे अशोक ने विश्व-व्यापी ख्याति प्रदान की।

चन्द्रगुप्त एक साधारण कुटुम्ब से था। असाधारण वीरता और महत्त्वाकांक्षा के कारण उस के मन में मगध के सिंहासन को, जिस पर नंद वंश का अधिकार था, प्राप्त करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। अपनी आकांक्षा की पूर्ति के हेतु उसने चाणक्य की, जो एक चतुर और विद्वान् ब्राह्मण था, सहायता ली। चाणक्य ने अपनी कूट नीति से जिस प्रकार मगध का सिंहासन प्राप्त किया उसका चित्रण विशाखदत्त के 'मुद्रा राक्षस" नाटक में मिलता है। चाणक्य ने नन्द दरबार के प्रसिद्ध मंत्री का मन जीत कर यह सिद्ध कर दिया कि वास्तविक राजनीति क्या है।

सिकन्दर महान ने पश्चिमी भारत पर विजय पाई थी। उसके पश्चात् उसका प्रसिद्ध सेनापति सैल्यूकस सिकन्दर के पूर्वी साम्राज्य का स्वामी बन बैठा। उस समय पंजाब पर चन्द्रगुप्त का शासन स्थापित हो चुका था।

सैल्यूकस के साथ युद्ध

सैल्यूकस ने पंजाब प्राप्त करने की चेष्टा की किन्तु मुँह की खाई और चन्द्रगुप्त ने उसे बंदी बना लिया। चन्द्रगुप्त ने अत्यंत उदारता का प्रमाण दिया और सैल्यूकस का मित्रता स्थापित करने का प्रस्ताव स्वीकार किया। इस संधि के फलस्वरूप उस ने अपनी कन्या का विवाह चंद्रगुप्त से किया और अपना राजदूत मैगेस्थनीज चंद्रगुप्त के

दरबार में भेजा। इस से यूनान और भारत में घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया। मैगेस्थनीज़ ने भारत के विषय में विस्तार से लिखा था। उसका ग्रन्थ लोप हो गया है परन्तु उसके उद्धरण मिलते हैं जिन्हें इतिहासकार प्रमाण मानते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य

चन्द्रगुप्त मौर्य ३२५ ई० पू० के लगभग सिंहासन पर बैठा और उसने पच्चीस वर्ष तक राज्य किया, जिसके पश्चात् वह शासन कार्य अपने पुत्र बिन्दुसार को संभाल कर माइसोर में रहने लगा। कहा जाता है कि उसने आयु के अंतिम भाग में जैन धर्म स्वीकार कर लिया था। मैगेस्थनीज़ ने उसके वैभव का चित्रण किया है। अर्थशास्त्र में सम्राट् की दिनचर्या का उल्लेख है। जनता के कार्य को सम्राट् प्रमुख स्थान देता था।

बिन्दुसार

बिंदुसार अमित्रघात के नाम से प्रसिद्ध है। उसने अपने शत्रुओं को समाप्त कर दिया। यूनानियों के साथ उसका मित्रता का सम्बंध रहा। उसके दरबार में मिश्र और सीरिया के राजदूत रहते थे। बिंदुसार की दक्षिण विजय की बहुत-सी गाथाएँ प्रसिद्ध हैं।

अशोक

अपने पिता के शासनकाल में अशोक पञ्जाब, तक्षशिला और काश्मीर का राजपाल रह चुका था। पिता की मृत्यु के चार वर्ष पश्चात् (२७३ ई० पू०) उसका अभिषेक हुआ जिससे प्रतीत होता है कि राज्य-सिंहासन प्राप्त करने में उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

बौद्ध-गाथाओं में अशोक को अपने शासन-काल के आरम्भ में एक क्रूर और अत्याचारी शासक के रूप में प्रदर्शित किया गया है। किंतु तथ्य इसकी पुष्टि नहीं करते। अशोक का व्यवहार अपने कुटुम्बियों और प्रजा की ओर वैसा ही रहा जैसा चंद्रगुप्त या बिंदुसार का था।

कलिंग विजय

अशोक को अपने पूर्वजों की भाँति साम्राज्य का विस्तार करने की धुन थी। दक्षिण में कलिंग एक बहुत शक्तिशाली राज्य था जो बंगाल की खाड़ी से लेकर गोदावरी तक समुद्र तट के साथ साथ फैला हुआ था। अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई की। उसकी विजय हुई किंतु रक्तपात को देखकर अशोक का दिल युद्ध से ऊब गया और उसने सदैव के लिये हिंसा का परित्याग कर दिया। संसार ने ऐसा अन्य कोई विजेता उत्पन्न नहीं किया जिस ने विजय प्राप्त करने के पश्चात् अपनी सामरिक प्रवृत्ति को दमन किया हो।

कलिंग विजय के पश्चात् उसने बौद्धधर्म में प्रवेश किया और महात्मा बुद्ध के नियमों के प्रचार का बीड़ा उठाया।

बुद्ध धर्म का प्रचार

अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ देश विदेश में भिक्षु भेजे। उसकी पुत्री, पुत्र और भाई भिक्षु बन कर दूर देशों में गये। उसकी चेष्टा से बुद्ध धर्म चीन, जापान, कोरिया, बर्मा, मलाया, पूर्वी द्वीप समूह, तिब्बत, लङ्का, अफ़गानिस्तान और अन्य देशों में पहुँचा। रोम, यूनान, मिश्र और यूरोप के कई देशों में बौद्ध भिक्षु अशोक के संदेश लेकर गये।

भारत में भिन्न भिन्न स्थानों पर अशोक ने कंदराओं में और चट्टानों पर बौद्ध धर्म के नियम खुदवाये। उसने कई स्तूप स्थापित किये जो अब भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं। समय समय पर विज्ञप्ति द्वारा जनता तक ये नियम पहुँचाये जाते थे। अशोक ने बौद्धों की एक सभा बुलाई जिस में बौद्ध धर्म के नियमों को क्रम-बद्ध किया।

विदेशों से अशोक ने केवल धार्मिक सम्बन्ध ही स्थापित नहीं किये बल्कि व्यापारिक और राजनैतिक क्षेत्र में भी बहुत घनिष्ठता उत्पन्न की।

अशोक का व्यक्तिगत जीवन एक आदर्श जीवन था। धर्माचरण,

धर्मनिष्ठ अथवा धर्म की रक्षा को उसने अपना कर्तव्य समझा। एक विज्ञप्ति से विदित है:

अशोक का व्यक्तिगत जीवन

“यदि कोई धर्मराज, अर्थात् अशोक, के प्रति दुर्व्यवहार करेगा तो सम्राट् जहाँ तक होगा उसे सहन करेंगे। जंगली और असभ्य जातियों पर भी सम्राट् कृपा दृष्टि रखते हैं। उन की इच्छा है कि सब लोग शुद्ध भावनाएँ रखें। यदि वे ऐसा न करेंगे तो धर्मराज को दुःख और क्लेश होगा। वे चाहते हैं कि समस्त प्राणीमात्र सुरक्षित हों और चारों ओर शांति और समृद्धि हो।”

उस की इस नीति के कारण अशोक को जनता के हृदय पर अधिकार प्राप्त हुआ और अशोक का यह विश्वास कि धर्माचरण से लोगों का मन जीतना ही सच्ची विजय है सत्य सिद्ध हुआ।

अशोक का शासन

अशोक का साम्राज्य हिंदुकुश से लेकर माइसोर तक और ब्रह्मपुत्र से काठियावाड़ तक फैला हुआ था। उसने विरसे में एक अति कुशल किन्तु कठोर शासन व्यवस्था पाई थी जिसकी कठोरता को समाप्त कर उसने उसे सर्वप्रिय बना दिया। राज्य अधिकारियों को उसने चेतावनी दी कि वे नम्रता से शासन करें, अपराधियों को भी कड़ा दण्ड न दें। उस ने स्थान-स्थान पर ऐसे राज्य अधिकारी भेजे जो जनता को सुखी बनाने का प्रयत्न करते थे। दरिद्रों और दुखियों को सहायता पहुँचाने का विशेष प्रबन्ध था। जनता के स्वास्थ्य की रक्षा भी वह राज्य का कर्तव्य समझता था और उसने स्थान-स्थान पर हस्पताल स्थापित किये। बहुत सी सड़कें बनवाइं जिन पर छायादार वृक्ष लगे थे, कुछ कुछ अन्तर पर कुएँ और विश्रामशालाएँ बनी थीं।

अपने विषय में उसकी आज्ञा थी : “मैं किसी स्थान पर हूँ, चाहे भोजन कर रहा हूँ, चाहे विश्राम; मन्त्रिमंडल में बैठा हूँ या सैर कर

रहा हूँ, संवाद-दाताओं का कर्तव्य है कि जनता के हित के लिये मुझे तुरन्त सूचना दें ।"

अशोक अपने आप को प्रजा का पिता समझता था और कहता था कि राजा का जीवन सार्वजनिक हित के लिये होता है ।

बौद्ध धर्म का अनुयायी होते हुए भी वह ब्राह्मणों और जैनियों का बहुत मान करता था। उसका कथन था : "प्रत्येक मत में कोई न कोई विशेषता है जिस के कारण वह आदरणीय है ।"

अशोक का कला प्रेम

सम्राट् को कला और साहित्य से भी बहुत प्रेम था। उस के काल की वास्तु कला के नमूने प्राप्त हुए हैं जिनकी सराहना करते हुए आज कल के कलाकार थकते नहीं । लकड़ी के स्थान पर उसने ईंट पत्थर का प्रयोग किया । उसके महल के अवशेष जो पाटलीपुत्र में था मिले हैं। महल की बनावट के अतिरिक्त उसके स्तम्भों पर की गई चित्रकारी दर्शक को चकित करती है । लकड़ी के शहतीर ज्यों के त्यों मिले हैं और दो सहस्र वर्ष के पश्चात् भी उनका रंग रोगन ऐसा प्रतीत होता है जैसे आज किया हो । उनके कोने और जोड़ ज़रा भी ख़राब नहीं हुए। यह एक चमत्कार सा दीख पड़ता है कि हज़ारों साल भूमि के भीतर दबे रहने पर भी मिट्टी और दीमक ने इन्हें हानि नहीं पहुँचाई । अशोक ने सारनाथ के स्थान पर जहाँ महात्मा बुद्ध ने अपना पहला भाषण दिया था, अपने कई स्मारक छोड़े हैं। अशोक ने महात्मा बुद्ध के जन्म-स्थान और अन्य सभी स्थानों की जिन का महात्मा बुद्ध से सम्बन्ध था यात्रा की और वहाँ भव्य स्मारक स्थापित किये। कई स्थानों पर कालिज बनवाये । भरहुत, सांची, लुम्बिनी, कुशीनगर, सारनाथ आदि स्थानों के स्तुप विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं, भारत का राज्य चिह्न सारनाथ के एक स्तूप से लिया गया है ।

अशोक के काल में भारत ने सब प्रकार उन्नति की। पाली भाषा विशेष रूप से इस युग की देन है। इस भाषा में बौद्ध ग्रंथों की रचना

हुई। संस्कृत की भी किसी प्रकार उपेक्षा नहीं हुई किन्त सरल होने के कारण पाली भाषा सर्वसाधारण के प्रयोग में आती थी। सस्कृत का

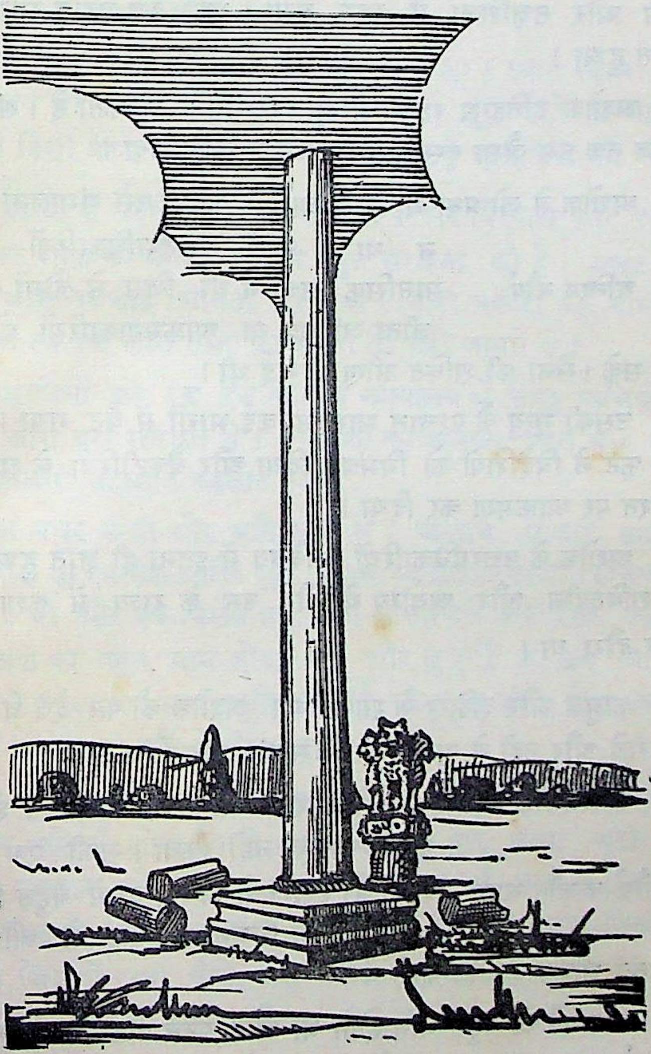

अशोक की लाठ

प्रयोग प्रायः विद्वान करते थे।

आयु के अंतिम भाग में अशोक शासन कार्य छोड़ भिक्षु बन गया और तक्षशिला में रहने लगा। वहीं इस महान् सम्राट् का देहांत हुआ।

अशोक इतिहास गगन में सूर्य की भाँति चमकता है। संसार ने आज तक उस जैसा दूसरा सम्राट् उत्पन्न नहीं किया।

अन्तिम मौर्य

अशोक ने जो प्रथा भारत में स्थापित की थी उसे संभालना सुगम न था। उसके उत्तराधिकारियों में वह मानसिक सत्ता न थी जिस से लोगों का मन जीता जा सके या आक्रमणकारियों को रोका जा सके। सेना की शक्ति क्षीण हो गई थी।

उसकी मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य कई भागों में बँट गया। आपस की फूट ने विदेशियों को निमंत्रण दिया और बैक्टीरिया के शासक ने भारत पर आक्रमण कर दिया।

अशोक के उत्तराधिकारियों के विषय में इतना ही ज्ञात हुआ है कि वे शक्तिहीन और अयोग्य थे और उन के राज्य में कुशासन का दौर दौरा था।

काबुल और दक्षिण के शासक जो अशोक को कर देते थे स्वतन्त्र हो गये और उन्हों ने पाटलीपुत्र से सम्बंध तोड़ दिया।

मौर्य कालीन भारत

मैगेस्थनीज़ ने लिखा है कि भारत में सात जातियाँ थीं। शूद्रों का उसने उल्लेख नहीं किया। सूफ़ी एक प्रसिद्ध जाति थी। सूफ़ियों का तपस्या में बहुत विश्वास था। वे धर्म बन्धनों से मुक्त थे और प्रायः स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते थे।

ब्राह्मणों का बहुत मान होता था और पठन पाठन का काम उनके सुपुर्द था। शासन प्रबन्ध में भी ब्राह्मणों का बहुत हाथ था।

जात पात के बंधन कड़े थे और साधारणतः एक वर्ग का व्यक्ति दूसरे वर्ग में विवाह स्थापित करना अच्छा न समझता था किन्तु छूत छात का अभाव था।

शिक्षा प्राप्त करने का लोगों को बहुत शौक था। स्थान स्थान पर पाठशालायें थीं। कई विश्वविद्यालय थे, जहाँ दूर देशों से आकर विद्यार्थी विद्या ग्रहण करते थे। सभी संस्थाओं में छात्रावास बने थे।

भारतीयों के सदाचार, सत्य व्यवहार, परस्पर विश्वास और अन्य सामाजिक गुणों की मैगेस्थनीज़ ने बहुत सराहना की है। भारत में मिथ्या भास तो कोई जानता ही न था। चोरी चकारी का नाम न था। यहाँ तक कि लोग तालों का प्रयोग ही नहीं जानते थे।

अपराधियों को दंड देने के लिये न्यायालय थे किन्तु अभियोग चलाना लोग बुरा समझते थे। न्यायेशों को अमात्य कहते थे। उच्च राज्य कर्मचारी महामात्र कहलाते थे।

लोग मधुर भाषी और अति सभ्य थे। अतिथि सत्कार उनका विशेष गुण था। प्रत्येक व्यक्ति शुद्ध जीवन व्यतीत करता था। दिनचर्या निर्धारित थी और एक विशेष प्रकार का सामाजिक क्रम दीख पड़ता था। स्त्रियों का बहुत मान होता था और बुज़ुर्गों का सब आदर करते थे। पारस्पारिक सहानुभूति की कोई सीमा न थी। बौद्ध और हिन्दुओं को एक ही दृष्टि से देखा जाता था।

वेष भूषा बहुत सुन्दर और रमणीय थी। आभूषण, मोती, हीरे, मूल्यवान् मणियाँ, शोख रंग के महीन बेल बूटे दार वस्त्र, ज़री से मढ़े हुए फूलदार जूते साधारण लोग भी प्रयोग में लाते थे। रीति रिवाज सरल थे किन्तु उत्सवों के अवसर पर बड़े-बड़े जलूस निकाले जाते थे जिन में हाथी, घोड़े, शेर, चीते, रथ और मूल्यवान् वस्तुएँ प्रदर्शित की जाती थीं। इतना वैभव होने पर भी भारत के लोग संयमी होते थे।

शासन प्रबन्ध

चन्द्र गुप्त के काल में ही मौर्य साम्राज्य का बहुत विस्तार हो चुका था। नन्द साम्राज्य के अतिरिक्त उसने सैल्यूकस से अफ़ग़ानिस्तान और बलोचिस्तान प्राप्त किये थे। काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल और काठियावाड़ को उसने विजय किया और जैन ग्रन्थों के अनुसार दक्षिण के कुछ प्रदेशों पर भी अधिकार जमाया।

चाणक्य चन्द्र गुप्त का महामन्त्री था। चन्द्रगुप्त की शासन विधि जिसका उसने अपने अर्थशास्त्र में उल्लेख किया है, उसी ने निर्धारित की थी।

राज्य कार्य तीस विभागों में बँटा हुआ था। सेना, पोलीस, न्याय, शासन कार्य, कृषि की उन्नति, नदियों का नियंत्रण और नहरें, शिल्पकारी, खनिज पदार्थ, व्यापार, जनता की भलाई के काय आदि विभिन्न विभाग, विभिन्न मन्त्रियों के सुपुर्द थे।

साम्राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था जिन का प्रबन्ध सम्राट् के प्रतिनिधि करते थे। ग्रामों में पंचायतें थीं और नगरों में म्यूनिसिपल कमेटियाँ। इन्हें बहुत अधिकार प्राप्त थे और प्रायः इनके प्रतिदिन के कार्य में राज्य की ओर से कोई हस्तक्षेप न होता था।

पाटलीपुत्र की म्यूनिसिपल कमेटी के कार्यक्रम का स्पष्ट रूप से वर्णन मिलता है। कमेटी के तीस सदस्य थे जो छः समूहों में बँटे थे। हर पाँच सदस्यों के सुपुर्द एक विभाग होता था।

छः विभाग ये थे :—१. व्यापार। २. कला और शिल्प। ३. विदेशी यात्रियों को सुविधायें। ४. उद्योग। ५. मृतक और नवजात का लेखा। ६. कर।

पाटली पुत्र जिसकी स्थापना अजातशत्रु ने की थी, गंगा और सोन के संगम पर एक बहुत बड़ा नगर था जो नौ मील तक फैला हुआ था और करीब दो मील चौड़ा था। विशाल भवन, खुली सड़कें सभी नगरों की विशेषता थीं। ग्राम भी साफ़ सुथरे और खुले थे।

चाणक्य

चाणक्य जिसे कौटिल्य भी कहते हैं तक्षशिला निवासी एक ब्राह्मण था जो पाटलीपुत्र के सम्राट् से रुष्ट हो गया था। चन्द्रगुप्त अभी बालक ही था कि उस से चाणक्य की भेंट हुई। होनहार देख कर चाणक्य ने उस की शिक्षा का प्रबन्ध किया और उचित समय देख कर उसके लिये सेना एकत्रित की। इसके पश्चात् वह लगातार चन्द्रगुप्त की सहायता करता रहा और अन्ततः उसे पाटलीपुत्र का सम्राट् बना दिया। उस ने चन्द्रगुप्त के मन्त्री के रूप में काम किया और जगत विख्यात ग्रंथ अर्थशास्त्र की रचना की। यह ग्रंथ उस युग के इतिहास का मूल्यवान स्रोत है। इस में शासन व्यवस्था, सम्राट् के व्यक्तिगत जीवन. सामाजिक स्थिति और अन्य विषयों पर बहुत प्रकाश डाला गया है। राजनीति सम्बन्धी ग्रंथों में इस का विशेष स्थान है।

मैगेस्थनीज़

एरियन और यूनान के अन्य इतिहासकारों ने मेगेस्थनीज़ के मूल ग्रन्थ से बहुत से उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। ये वृतान्त अधूरे हैं फिर भी वे उस युग के भारत की स्थिति पर बहुत प्रकाश डालते हैं। मैगेस्थनीज़ ने भारत के विषय में बहुत विस्तार से लिखा था। राजा और राज्य दरबार के अतिरिक्त उस ने लोगों के जीवन के विषय में भी बहुत कुछ बताया था। उसने ऐसी सामग्री भी प्रस्तुत की थी जिस पर विश्वास करना कठिन है। भारत के विलक्षण जीव जन्तुओं का वर्णन, भारत और यूनान के प्राचीन सम्बन्धों का उल्लेख, भारत की विभिन्न जातियों का वृतान्त, व्यापार के आंकड़े आदि बहुत कुछ उस ने दिया था।

सम्राटों का वैभव

मौर्य वंश के सभी सम्राट् वैभव शाली थे। उनके महल लकड़ी के बने होते थे और अत्यन्त सुन्दर और भव्य थे। स्तम्भों पर सोने-चाँदी के बेल बूटे, छत पर सुन्दर चित्रकारी दिल को लुभाती थी। राज्य दरबार में कलाकार अपनी अपनी कला के जौहर दिखाते थे।

नृत्य और संगीत प्रति दिन होते थे। नर्तकियों में प्रायः यूनानी ललनाएँ होती थीं।

शेरों और हाथियों के दंगल, घोड़ों और रथों की दौड़ और आखेट सम्राटों को बहुत भाते थे। किन्तु सम्राट् अशोक ने इनका बहिष्कार कर दिया था।

पोलीस और सेना

चन्द्रगुप्त की पोलीस में चार लाख सिपाही थे। सेना में ६००० हाथी थे, तीस हज़ार घोड़े और घुड़ सवार, रथों की संख्या ८००० के लगभग थी और पैदल सेना की छः लाख। ऐम्बूलैंस का विशेष प्रबन्ध था। सेना की अध्यक्षता तीस सदस्यों के मण्डल के सुपुर्द थी।

सेना की श्रेणियाँ बनी हुई थीं। सब से छोटी इकाई में दस सैनिक होते थे और बड़ी में एक सहस्र। सैनिकों को सरकारी कोष से वेतन मिलता था।

देश रक्षा के कार्य के लिये छः समितियाँ नियुक्त की गई थीं जो सम्राट् को अनुमति देती थीं। इन समितियों में सेना के बड़े अधिकारी सम्मिलित होते थे।

सम्राट् राज्य अधिकारियों के काम पर कड़ी नज़र रखता था और किसी को असावधान होने का अवसर न देता था। ईमानदारी एक स्वाभाविक गुण था, इसलिये भ्रष्टाचार कहीं नाम को न था। गुप्तचर सम्राट् को प्रत्येक घटना की सूचना देते थे। अपराधियों को घोर दंड दिया जाता था।

जल सेना अलग होती थी जो भारतीय जलयानों और विदेशी व्यापार की रक्षा करती थी। कई अति उन्नत बन्दरगाहें थीं जहाँ यह सेना नियुक्त थी।

यूनानियों ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि उन्नति के जिस शिखर पर भारत पहुँचा हुआ था संसार का कोई अन्य देश उसका स्वप्न भी न ले सकता था।

पतन के कारण

एक विशाल साम्राज्य में वियोजन की क्रिया स्वभाविक ही आरम्भ हो जाती है। दूरस्थ स्थानों पर राज्यकर्मचारी उद्दंड हो जाते हैं और शासन प्रबन्ध ढीला पड़ जाता है। एक विशाल साम्राज्य को एक अतियोग्य शासक ही सम्भाल सकता है। अशोक के पश्चात् अयोग्य शासकों के कारण ही मौर्य साम्राज्य का ह्रास हुआ। दूसरे अशोक की युद्ध न करने की नीति भी उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों के लिए हानिकारक सिद्ध हुई। विदेशी आक्रमण भी इस महान् साम्राज्य के पतन का हेतु बने। परन्तु मौय काल में स्थापित हुई प्रथायें चिरकाल तक कायम रहीं। उन में से कुछ आज तक दिखाई देती हैं।

परिच्छेद ११

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात्

मौर्य वंश का पतन

१८४ ई० पूर्व में मौर्य वंश का अन्त हो गया। अशोक की स्थापित की हुई प्रथाओं को प्रचलित रखने के लिये उस जैसा चरित्र चाहिये था जो उसके उत्तराधिकारियों में न था। अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ के मन्त्री पुष्यमित्र ने अपने स्वामी का वध कर दिया और स्वयं सिंहासन सम्भाल लिया।

शुँग वंश की स्थापना

पुष्यमित्र ने शुँग वंश की स्थापना की। पुराणों के अनुसार शुँग वंश ने १८४ से ७३ ई० पूर्व तक राज्य किया। इसके शासनकाल में राजधानी पाटलीपुत्र ही रही।

भारत का राजनैतिक वियोजन हो चुका था। उत्तर में पंजाब और राजस्थान यूनानियों के अधीन हो गये थे। पश्चिमी भारत पर भी उन्हीं का आधिपत्य था। नर्मदा के दक्षिण में आन्ध्र वँश ने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। पूर्वी भारत में चेदी वंश ने कलिंग को विजय कर शक्तिशाली राज्य की नींव डाली। पुष्यमित्र ने मानों मगध राज्य को एक नया जन्म दिया।

पुष्यमित्र के कारनामे

१५५ ई० पूर्व के लगभग भारत पर काबुल के यूनानी नरेश डिमीट्रियस ने आक्रमण कर दिया। पुष्यमित्र ने उसे मात दी और उसे वापिस लौटना पड़ा।

पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने विदर्भ अर्थात् आधुनिक बरार को विजय किया। दक्षिण को छोड़कर समस्त भारत पुष्यमित्र का लोहा

मानता था। उसने चक्रवर्ती राजा की पदवी ग्रहण की और अश्वमेध यज्ञ किया।

पुष्यमित्र के साम्राज्य में पाटलीपुत्र, अयोध्या, और सियालकोट आदि बड़े नगर थे।

कहा जाता है कि पुष्यमित्र बौद्धमत का शत्रु था और उसने बहुत से मठों को गिरवा दिया किन्तु इस कथन की पुष्टि में तथ्य प्राप्त नहीं होते। यह सच है कि वह ब्राह्मण मत का अनुयायी था।

पुष्यमित्र विद्वानों का बहुत मान करता था। कहा जाता है कि महाभाष्य का रचयिता पातंजली उसी के काल में हुआ और कालीदास उसके पुत्र अग्निमित्र के नवरत्नों में से था।

पुष्यमित्र का देहाँत १४९ ई० पूर्व में हुआ और उसका पुत्र अग्निमित्र सिंहासन पर बैठा। उसने केवल आठ वर्ष राज्य किया।

पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी

उसके पश्चात् वसुमित्र प्रसिद्ध सम्राट् हुआ जिसने यूनानियों का विरोध किया। उसके काल में कला और साहित्य ने बहुत उन्नति की। इस वंश का अन्य प्रसिद्ध नरेश भागभद्र हुआ है। उसने ३२ वर्ष राज्य किया। उसके दरबार में यूनानी राजदूत हैलियोडोरस रहता था।

ऐतिहासिकस्रोत

पातंजली के महाभाष्य से पुष्यमित्र के राज्य के विषय में बहुत जानकारी प्राप्त होती है। वाणभट्ट ने हर्ष चरित्र में और कालीदास ने मालविकाग्निमित्र में शुँग कालीन भारत का चित्रण किया है। पुराणों में विस्तार पूर्वक इस युग का वर्णन दिया गया है। इन के अतिरिक्त हथिगुम्फा तथा बेस नगर के लेखों से भी बहुत कुछ निश्चित जानकारी प्राप्त हुई है।

शुँग वंशीय सम्राटों ने ब्राह्मण धर्म को पुनः जीवित करने का

शुँग वंश का महत्त्व

प्रयत्न किया। उन्होंने भारत में यूनानियों के पांव जमने नहीं दिये और उनका राज्य पश्चिमी सीमा तक ही रहा। कला और साहित्य की दृष्टि से इस काल में आगे आने वाले स्वर्ण युग की झलक दिखाई देती है। भुज का मठ, कार्ली का चैत्य, नासिक, उदयगिरी और खाँडेगिरी की गुफ़ाएँ तथा सांची और भरहुत के स्तूप इसी काल की देन हैं।

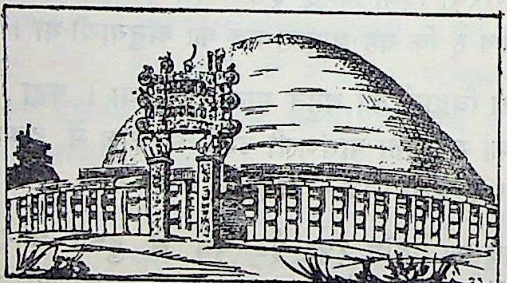

सांची का स्तूप

शुँग वंश के उत्तराधिकारी

शुँग वंश का अन्त कण्व वंशीय वसुदेव ने किया। इस नए वंश के सम्राटों के विषय में बहुत कम तथ्य प्राप्त हुए हैं। उनका राज्य ४५ वर्ष तक रहा। वे ब्राह्मण मत के अनुयायी थे। उन का राज्य सुदृढ़ न था और सिंहासन प्राप्ति के लिये उनमें आपस में युद्ध होते रहे।

दक्षिण: आन्ध्र अर्थात् सातवाहन वंश

दक्षिण के आन्ध्र बहुत शक्तिशाली थे। उनकी भाषा तैलगू थी। ऐतरेय ब्राह्मण में उनका वर्णन मिलता है। यह वंश बहुत प्राचीन था। मैगेस्थनीज के वर्णन और अशोक के स्तूपों से भी इसके विषय में तथ्य प्राप्त हुए हैं। मौर्य सम्राटों को छोड़ कर भारत में आन्ध्र नरेश सबसे अधिक शक्तिशाली थे। उनके

३० महान् नगर थे जिनके गिर्द परकोटे बने थे। एक लाख पैदल, दो हज़ार घुड़सवार और सौ हाथी अशोक के काल में उनकी सेना में थे। राजधानी प्रतिष्ठान (पैठन) के स्थान पर थी।

पुराणों के अनुसार इस वंश ने ४५६ साल तक राज्य किया। इस की स्थापना २२० ई० पूर्व में सिमुक ने की थी। इस वंश के ३० सम्राटों का हाल मिलता है। वे सब ब्राह्मण धर्म से सम्बन्ध रखते थे। उन्होंने पश्चिम के शक राजाओं से लगातार युद्ध किये। वे अपने आपको प्राय: शतकर्णि कहते थे।

सातवाहन वंश का प्रसिद्ध सम्राट् श्री शतकर्णि हुआ है। उसकी पत्नि नागनि का विशेष रूप से विख्यात है। कहा जाता है कि सम्रा ने दो बार अश्वमेध यज्ञ किया। वह चेदी के नरेश खरवेला और पुष्यमित्र का समकालीन था। उसका साम्राज्य पश्चिम में महाराष्ट्र, पूर्व में हैदराबाद, उत्तर में मालवा और मध्यभारत तक फैला हुआ था।

इस वंश का सत्रहवाँ नरेश हल भी बहुत प्रसिद्ध है। वह कला और साहित्य को बहुत प्रोत्साहित करता था। कहा जाता है कि उसने "सप्तशतक्" का संग्रह किया। बृहत् कथा भी उसी के काल में लिखी गई। हल के एक मन्त्री ने संस्कृत व्याकरण 'कातंत्र' की रचना की।

गौतमी पुत्र

गौतमी पुत्र जिसने ११३ से १३८ ई० तक राज्य किया, शकों और यूनानियों को परास्त करने के लिये प्रसिद्ध है। उसके कारनामों का उल्लेख उसकी माता ने नासिक के लेख में किया है। उसके राज्य में महाराष्ट्र के अतिरिक्त काठियावाड़, बरार, राजस्थान और गुजरात सम्मिलित थे। उसके पुत्र ने शक नरेश रूद्रदमन की पुत्री से विवाह किया।

अन्तिम नरेश

यज्ञ श्री इस वंश का अन्तिम महान् सम्राट् था। उसके बहुत-से सिक्के मिलते हैं जिन से प्रतीत होता है कि वह व्यापार को बहुत प्रोत्साहन देता था। कई सिक्कों पर नावों के चित्र बने हैं जो उसके विस्तृत साम्राज्य की ओर संकेत करते हैं।

शासन प्रबन्ध

आन्ध्र नरेशों से जनता बहुत प्रसन्न थी। ये नरेश व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप न करते थे। व्यापारिक संघों और जागीरदारों को बहुत अधिकार प्राप्त थे यहाँ तक कि वे सिक्के भी बना सकते थे। कुछ जागीरदार तो राजाओं की भाँति रहते थे। साम्राज्य के पतन के समय उन्होंने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये।

सहिष्णुता

आन्ध्र नरेश ब्राह्मण मत के अनुयायी थे किन्तु बौद्ध धर्म के शत्रु न थे। वे बौद्ध मठों को सहायता देते थे और उनके राज्य में बौद्ध मत के अनुयाइयों की संख्या बहुत थी।

कलिंग

कलिंग का नरेश खरवेला जिसने पाटलीपुत्र को विजय किया अति प्रसिद्ध है। उसका सम्बन्ध जैन मत से था। उसके कारनामें हथिगुम्फा प्रशस्ति में अंकित हैं।

बाहर के देशों में उपनिवेश

आन्ध्र देश संसार भर में व्यापार के लिये प्रसिद्ध था। यूरोपीय देशों से उसका व्यापार था। पूर्वी द्वीप समूह में आन्ध्र लोगों की कई बस्तियाँ थीं। पूर्वी और पश्चिमी तट पर कई प्रसिद्ध बन्दरगाहें थीं जहाँ से दूर देशों को जहाज़ जाते थे।

समाज

दक्षिण में समाज के चार वर्ग थे। जागीरदार, सरकारी अफ़सर, व्यापारी और कारीगर। समृद्धिशाली होने के कारण सब संतोष से रहते थे। आपसी मेल-जोल सराहनीय था। शिक्षा का उचित प्रबन्ध था।

विदेशी राज्यः बल्ख़ अर्थात् बैक्टेरिया

सिकन्दर महान् की मृत्यु के पश्चात् उसके साम्राज्य के कई भाग हो गए थे। भारत के पश्चिम में बैक्टेरिया जिसे बल्ख़ कहते हैं और पार्थिया जिसे ईरान कहते हैं दो मुख्य यूनानी राज्य थे।

२०० ई० पूर्व के लगभग बल्ख़ से डिमैट्रियस ने भारत पर आक्रमण किया। उस ने अफ़ग़ानिस्तान और उत्तर पश्चिमी भारत पर अधिकार प्राप्त कर लिया। उसका उत्तराधिकारी मिलिंद भारत के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है।

मिलिन्द का जन्म १८० ई० पूर्व में पञ्जाब में हुआ था। उसने १६० ई० पूर्व के लगभग सिहासन आरोहण किया। कहा जाता है कि उसने सिंध, काठियावाड़ और अवध को विजय किया। यहाँ तक कि वह पाटलीपुत्र के द्वार तक जा ललकारा किन्तु पुष्यमित्र ने उसे मात दी।

मिलिंद की राजधानी सियालकोट के स्थान पर थी। सौंदर्य और कला की दृष्टि से उस समय का सियालकोट पाटलीपुत्र का मुकाबला करता था।

बौद्ध साहित्य के अनुसार मिलिंद ने प्रसिद्ध आचार्य नागसेन से वार्तालाप किया और उस से प्रभावित हो बौद्ध धर्म में प्रवेश किया। यह वार्ता मिलिन्दपन्ह के रूप में मिलती है। मिलिंद एक विजेता की अपेक्षा एक विद्वान् और न्यायाधीश के रूप में अधिक प्रसिद्ध है। उसे एक महात्मा स्वीकार किया जाता है। उसके काल के अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं। यूनानी इतिहासकारों सट्रैबो और प्लूटार्क ने भी उसका वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य में भी उसके विषय में सामग्री मिलती है। इसके अतिरिक्त तिब्बत के इतिहासज्ञ तारा नाथ ने उसके काल का वृत्तान्त लिखा है।

ईरान के सम्राट् दारा ने सिंध को विजय किया था। सिंध उसके

ईरान अथवा पार्थिया

साम्राज्य का सबसे धनी भाग गिना जाता था। दारा तृतीय को सिकन्दर महान् ने मात दी और यह प्रदेश यूनानियों के अधीन हो गया। १७१ ई० पूर्व के लगभग ईरान से भारत पर पुनः आक्रमण हुआ। मउईज़ अथवा मोगा नाम का नरेश पश्चिमी भारत को विजय करने में सफल हुआ और उसने तक्षशिला को अपनी राजधानी बनाया। इन लोगों ने ब्राह्मण मत स्वीकार किया।

पार्थियन नरेशों में गुडाफरणा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसने ४१ ई० तक राज्य किया।

यूनानी राज्य का अन्त

पहिली शताब्दी ई० में ये यूनानी राज्य दुबल हो गए और कई भागों में बँट गए। उत्तर पश्चिम से नई जातियों ने आक्रमण किये और यूनानी सत्ता भारत में समाप्त हो गई। किन्तु छोटे छोटे राज्य काफ़ी समय तक स्थापित रहे।

शक (सीथियन)

कहा जाता है कि मध्य एशिया नई जातियों का घर रहा है। न जाने कालान्तर में कौन-कौन सी जातियाँ यहाँ से उत्पन्न होकर संसार में फैलती रहीं। संभव है आर्य भी यहीं से आए हों। ऐतिहासिक काल में शक और सिथियन पहिली जातियाँ थीं जो यहां से भारत की ओर बढ़ी।

इनका प्रवाह भारत की ओर कैसे हुआ यह चीन के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है। चीन मंगोल नसल के लोगों का देश है। चीन के उत्तर में हूण जातियाँ रहती थीं जो यदा कदा चीन पर आक्रमण करती थीं और अवसर पाने पर उस पर अधिकार जमा लेती थीं। इन जातियों में एक प्रमुख जाति चिन थी जिसके राजा शी हवांगटी ने चीन को विजय किया और उसे यह नाम दिया।

शी हवांगटी ने भविष्य में चीन को आक्रमणों से बचाने के लिये उत्तर से दक्षिण तक एक बहुत बड़ी दीवार बनवाई जिसे पार करना हूण जाति के लिये संभव न था। ये जातियाँ पहिले की भाँति चीन में दाखिल न हो सकती थीं। जब कभी चीन से उन पर आक्रमण होता वे पश्चिम की ओर बढ़तीं। पश्चिमी देशों में रहने वाली जातियों को अपना स्थान छोड़ना पड़ता और आगे बढ़ना पड़ता। यह प्रक्रिया लगभग सत्रहवीं शताब्दी ई० तक चलती रही ;

ये जातियाँ यायावर थीं किंतु चीनियों के साथ संपर्क में आने के कारण इन्होंने सभ्यता का पाठ पढ़ा। वे नई बातें सीखने की इच्छुक थीं। इन में से कई जातियाँ भारत में आकर रहने लगीं और उन्होंने भारत की संस्कृति और धर्म को अपनाया।

सिथियनों (शकों) ने चीनियों से शस्त्र विद्या सीखी थी। यूनानी शकों का मुकाबला न कर सके। शकों ने उन से बलख छीन लिया। यहाँ से वे भारत की ओर बढ़े और पंजाब पर छा गए।

कुशान

तीसरा रेला कुशान (यूची) लोगों का आया। इन्होंने पार्थियनों को परास्त किया। इनका सब से महान् राजा कनिष्क हुआ है।

ये जातियाँ सैंकड़ों वर्ष तक भारत में राज्य करती रहीं और यहीं बस गईं। इनके आचार व्यवहार का भारत पर बहुत प्रभाव पड़ा।

कनिष्क ने पहिली शताब्दी ई० के लगभग सिंहासन संभाला।

कनिष्क के समय का भारत

उस समय तक भारत पर बौद्ध धर्म का रङ्ग पूर्ण रूप से चढ़ चुका था।

हिन्दू धर्म के अनुयायी बड़ी तत्परता से अपने धर्म को फैलाने का प्रयत्न कर रहे थे। शैव और वैष्णव मत का प्रचार बढ़ता जा रहा था। यूनानी लोग जहाँ अधिकतर बौद्ध धर्म की ओर झुके वहाँ उन में से कुछ ने वैष्णव मत भी स्वीकार किया। सिथियनों और पार्थियनों का भी ऐसा ही हाल हुआ।

इस प्रकार जब भारत राजनैतिक रूप से विदेशियों के आधीन हुआ जा रहा था सांस्कृतिक रूप से वह उन पर विजय पा रहा था। इतिहास में धार्मिक पाचन-क्रिया का यह सब से बड़ा उदाहरण है।

कनिष्क के विषय में बहुत से ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त हुए हैं। उस का राज्य काबुल से लेकर काश्मीर और बनारस तक फैला हुआ था। उसकी राजधानी पुरुषपुर अर्थात् पेशावर थी। उस ने वहाँ एक चैत्य बनाया था जिसे देख कर आश्चर्य होता था। यह चैत्य सातवीं शताब्दी ई० तक स्थित रहा।

कनिष्क

कनिष्क कब सिंहासन पर बैठा इस की तिथि निश्चित नहीं। बहुमत इस पक्ष में है कि उसने ७८ ई० में शासन सम्भाला। उस से पूर्व कदपिसेज़ द्वितीय काबुल पर राज्य करता था जिस की चीनियों से मुठभेड़ हुई थी और जो अपनी सब शक्ति खो बैठा था।

यदि कनिष्क को कदपिसेज़ का उत्तराधिकारी कहा जाये तो स्वीकार करना पड़ेगा कि वह ११० ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा।

कनिष्क को गान्धार का राजा बताया जाता है। उसने काश्मीर को विजय किया, पार्थियनों को परास्त किया और सिंध और गंगा की घाटियों में अपना आधिपत्य जमाया। अपनी आयु के अन्तिम भाग में उसने चीन पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। चीनी तुर्किस्तान, खोतान, यारकन्द और काश्मीर जो चीन को कर देते थे अब कनिष्क को कर देने लगे।

कनिष्क एक महान् विजेता था परन्तु उस की प्रसिद्धि उसकी विजय के कारण इतनी नहीं जितनी उसकी धार्मिक नीति के कारण है। कनिष्क ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया किन्तु वह हिन्दू, यूनानी और ईरानी देवी-देवताओं को भी मानता था।

कनिष्क का धर्म

उसके सिक्कों पर अनेक देवी-देवताओं के चित्र मिलते हैं। उसकी

नीति सहिष्णुता की थी। वह अपने आप को दूसरा अशोक कहलाने में गर्व अनुभव करता था। उसने श्रीनगर के निकट कुण्डलवन के स्थान पर बौद्ध समिति बुलाई। इस का सभापति वसुमित्र था और उप समिति का सभापति अश्वघोष। उस में बौद्ध धर्म के जो नियम स्वीकार हुये, उन्हें तांबे के पत्रों पर लिखवा कर एक स्तूप के नीचे दबा दिया गया, जो अब प्राप्त हुये हैं। इस समिति ने बौद्ध धर्म की एक नई विचार धारा को जन्म दिया जिसे महायान मत के बौद्धों ने स्वीकार किया।

कनिष्क काल की विशेषता

कनिष्क काल की विशेषता वह परिवर्तन है जो बौद्ध धर्म में आया। बौद्ध भिक्षु रोम, यूनान, मिश्र, और अन्य देशों में जाकर प्रचार करते थे। किन्तु अनुभव से उन्हें प्रतीत हुआ कि बौद्ध धर्म का जो रूप महात्मा बुद्ध ने उनके सामने रखा था वह विदेशियों को स्वीकार नहीं। कालान्तर में वहाँ उन्हें ईसाई मत का मुकाबला करना पड़ा और महात्मा बुद्ध को वही दर्जा देना पड़ा जो ईसा मसीह को हासिल है, अर्थात् महात्मा बुद्ध भी हज़रत ईसा की भाँति एक दैवी शक्ति बन गये जो अपने अनुयाइयों को निर्वाण का मार्ग दिखाते थे। महात्मा बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ बनाई गईं जिन्हें देखने से प्रतीत होता है कि वे रोम, यूनान और ईरान की कला से प्रभावित होकर बनाई गई थीं। कनिष्क की अपनी मूर्ति जिसका एक भाग मथुरा से प्राप्त हुआ है भारतीय ढंग से बनाई गई है। उस पर विदेशी कला का प्रभाव नहीं है।

उस समय रोम उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था और समस्त यूरोप में उसकी तूती बोलती थी। रोम का प्रभाव भारत पर भी पड़ा और भारत से चीन और जापान पर।

कनिष्क के पश्चात् वशिष्क, हुविष्क, कनिष्क द्वितीय और वसुदेव

कनिष्क के उत्तराधिकारी

सिंहासन पर बैठे। वसुदेव ने ब्राह्मण मत स्वीकार किया। उसके पश्चात् कुशान साम्राज्य दुर्बल हो गया और कई छोटे छोटे भागों में बँट गया। दसवीं शताब्दी में यह वंश शाही वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

परिच्छेद १२

मौर्य काल से गुप्त काल तक

राजनैतिक स्थिति

भारत के ऐतिहासिक युग में मौर्य और गुप्त दो बड़े-बड़े साम्राज्य हुए हैं जिन सरीखा कोई और साम्राज्य प्राचीन भारत में दिखाई नहीं देता। इनके वैभव और शक्ति की सभी इतिहासकार सराहना करते हैं। किंतु इन साम्राज्यों के बीच की अवधि भी भारत के इतिहास में कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

मौर्य साम्राज्य की भस्म से कई छोटे छोटे राज्य उत्पन्न हुए और बहुत सी नई जातियों ने भारत में अपने अड्डे जमा लिये। बाहर से आने वालों में कुशान, सिथियन जिन्हें शक भी कहते हैं, पार्थियन, यूनानी, यहूदी प्रसिद्ध जातियाँ थीं। इन में से बहुतों ने बौद्ध या हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया था।

कुशान वंश का उल्लेख हम पिछले परिच्छेद में कर आए हैं। सिथियनों के आक्रमण चिर काल तक उत्तर पश्चिमी भारत पर होते रहे और जिस प्रकार यूनानियों को निकालकर मौर्य साम्राज्य की नींव डाली गई थी वैसे ही सिथियनों को परास्त कर गुप्त साम्राज्य की स्थापना की गई।

कठ और अन्य छोटी छोटी जातियाँ राजस्थान और अन्य भू भागों में आबाद हो गईं और उन्होंने अवसर पाकर छोटे छोटे राज्यों की स्थापना की जिनका अस्तीत्व दसवीं शताब्दी में दिखाई देता है।

आंध्र, चालुक्य, राष्ट्रकूट, पल्लव और चोल जातियों ने दक्षिण में राज्य स्थापित किये। दक्षिण के लोग कुशल नाविक थे और उनके

बाह्य देशों से घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध थे ।

नाग, वाकाटक, योध्येय और कई अन्य कबीले उत्तरी भारत में राज्य करते थे । नागों का केन्द्रीय शासन न होता था बल्कि छोटे छोटे कबीले थे जिनमें केवल वंशीय सम्बंध था । उनके सिक्के भारत के भिन्न २ भागों से प्राप्त हुए हैं जिन पर शिव और नंदी के चित्र बने हैं ।

वीरसेन और भवनाग इस वंश के प्रसिद्ध शासक थे, जिन्होंने साम्राज्य स्थापित करने की चेष्टा की । किंतु विवाह सम्बन्ध स्थापित हो जाने से नागों का राज्य वाकाटक वंश के राजाओं के पास चला गया ।

वाकाटक वंश का प्रसिद्ध राजा रुद्रसेन द्वितीय हुआ है जिसके साथ चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पुत्री का विवाह किया था ।

भारत के विदेशी सन्वन्ध

भारत और चीन में चिरकाल से यातायात रही थी किन्तु अब उनमें सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया । चीन ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर भारत को गुरुता का श्रेय प्रदान किया । चीन से भारत में और भारत से चीन में जाकर लोग आबाद हो गए । काश्यप, धर्मरक्ष, बुद्धभद्र, जिनभद्र, कुमारजीव, परमार्थ, जिनगुप्त प्रसिद्ध विद्वान् थे जिन्होंने चीन की यात्रा की । उनके साथ बहुत से अन्य लोग गए जो चीन में ही बस गए । चीन के लो यांग प्रांत में ही ३००० बौद्ध भिक्षु और १०,००० अन्य भारतीय रहते थे ।

चीन से भारत आने वाले तीन मुख्य यात्रियों का उल्लेख मिलता है, एक फाह्यान, दूसरा ह्यूनसांग और तीसरा इत्सिंग ।

कई स्थानों पर चीनी और भारतीय साथ साथ रहते थे । इस प्रकार भारत और चीन की कला, साहित्य और विचारधारा पर एक

दूसरे का बहुत प्रभाव पड़ा। भारत की पूर्वी सीमा पर अब भी कई जातियाँ रहती हैं, जिनका रङ्ग रूप और शरीर की बनावट चीनियों से मिलती है। चीन में भी कई ऐसे स्थान हैं जहाँ भारत का

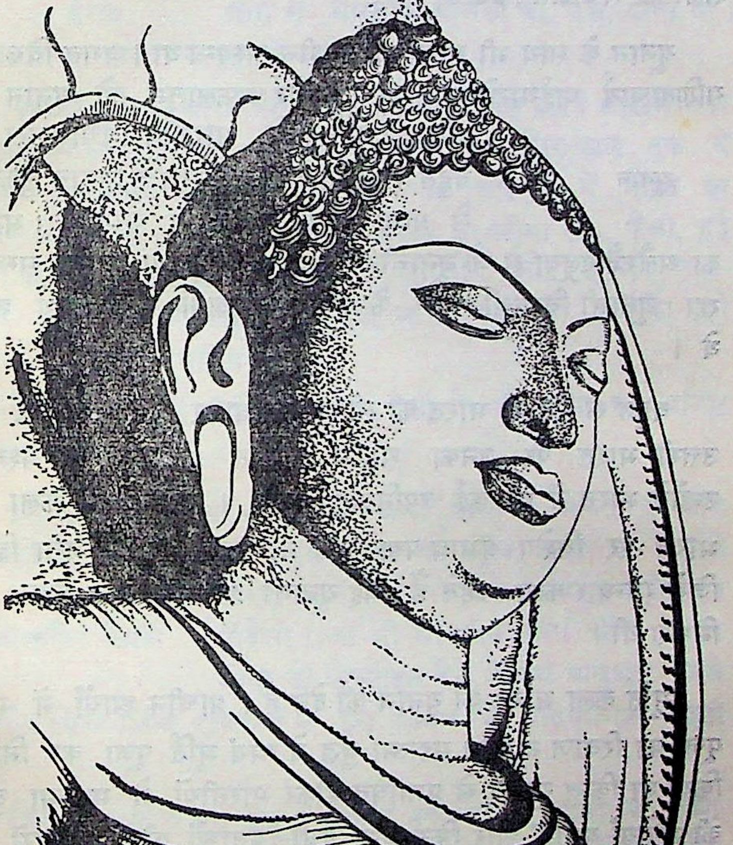

महात्मा बुद्ध (गान्धार कला)

प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । इन में खोतान सब से प्रसिद्ध है। पूर्वी द्वीप समूह, हिन्द-चीनी और अन्य पूर्वी देशों में चीनी और भारतीय साथ-साथ रहते थे जिन्होंने मिलकर एक मिली जुली जीवन शैली का संचालन किया।

यूनान

यूनान के साथ भी भारत का प्राचीन सम्बन्ध था। जगत विख्यात गणिताचार्य पाईथागोरस, सुकरात और अफलातून जो यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक थे, भारतीय विचारधारा से बहुत प्रभावित हुए थे। भारत के विद्वान् सुकरात से प्रायः वार्तालाप किया करते थे। भारत का अलैग्ज़ैण्ड्रिया से जो यूनानी सभ्यता का केन्द्र था, घनिष्ट सम्बन्ध रहा। यूनानी विद्यार्थी भारत के विश्वविद्यालयों में शिक्षार्थ आते थे।

बहुत से यूनानी भारत की सीमा पर आकर आबाद हो गए थे। उत्तरी भारत पर उनका शासन स्थापित हो जाने के पश्चात् उन्होंने भारत में भी कई उपनिवेश बनाए। यूनान की कला का भारत पर विशेष प्रभाव पड़ा। एक नई कला शैली ने जन्म लिया जिसे गान्धार कला कहते हैं। यह यूनानी और भारतीय कला का मिश्रण थी।

मूर्ति कला भारत को यूनान की देन है। प्राचीन आर्यों में मूर्ति पूजा का रिवाज न था। महात्मा बुद्ध ने स्वयं मूर्ति पूजा का निषेध किया था किन्तु यूनान से प्रभावित होकर भारतीयों ने महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ बनाईं और फिर अन्य देवी-देवताओं की। मन्दिरों की स्थापना में भी यूनान से प्रेरणा मिली थी। काश्मीर के मन्दिरों की बनावट में यूनानी प्रभाव साफ़ दीख पड़ता है।

यूनान से भारत में प्रायः नाचने वाली नारियाँ और गाने वाले बालक आते थे, जिनकी कला को लोग बहुत पसन्द करते थे। इनमें

से बहुत से भारत में ही रहने लगे। संभव है कि नर्तकी प्रथा यूनान की ही देन हो। पर्दे की प्रथा भी वहाँ से आई प्रतीत होती है।

ईरान

ईरानके सम्राट् सिरस का भारत से घनिष्ठ सम्बध था। उसकी सेना में भारतीय सैनिकों का एक दस्ता था। अस्त्र-शस्त्र प्रायः भारत से जाते थे।

इस से पूर्व भी भारत और ईरान में बहुत मेल रहा। फ़ारसी और संस्कृत की समानता यह प्रदर्शित करती है कि चिर-काल तक ये भाषाएँ साथ-साथ फलती-फूलती रहीं। जंद अवस्था में भारत का वर्णन मिलता है। भारतीय सभ्यता ईरान की सीमा तक फैली हुई थी। काबुल, कन्धार और सीस्तान में भारतीय और ईरानी साथ-साथ रहते थे। इन भागों को श्वेत भारत कहते थे क्योंकि वहाँ भारतीय सभ्यता प्रचलित थी।

रोम, मिश्र, पूर्वी द्वीपों और अन्य देशों से भी भारत का घनिष्ट सम्बन्ध था।

सांस्कृतिक स्थिति

इस युग में एक नई संस्कृति ने जन्म लिया। भारत का नए विचारों को खपाने का गुण चरम सीमा को पहुँच चुका था जिसके कारण उसने विदेशियों को अपना बना लिया। विदेशी राजा भी भारतीय कला और संस्कृत भाषा को प्रोत्साहन देने में गर्व अनुभव करते थे और भिन्न-भिन्न राजाओं में इस विषय में प्रतियोगिता रहती थी।

जितना साहित्य इस युग में उत्पन्न हुआ शायद कभी न हुआ हो। नागार्जुन जिसने बौद्ध धर्म पर प्रामाणिक पुस्तकें लिखीं और महायान मत की नींव डाली, अद्वितीय विद्वान् और लेखक था। प्रसिद्ध नाटककार अश्वघोष भी इसी काल में हुआ। उसका बुद्ध-चरित्र उच्च कोटि का काव्य गिना जाता है। कई भारतीय विद्वानों ने चीनी भाषा में पुस्तकें लिखीं। अश्वघोष का बुद्ध-चरित्र,

बृहत-कथा, पाणिनी का सूत्र, पातञ्जली का महाभाष्य, चरक और शुश्रत की कृतियाँ और भास के नाटक इसी युग की देन हैं।

बहुत से धर्मग्रन्थ मनुस्मृति और दर्शन, रामायण और महाभारत, पुराण वर्तमान रूप में इसी युग में रचे गए। इससे पूर्व लोग उन्हें कण्ठस्थ करते थे। बौद्ध साहित्य की तो विशेष रूप स इस युग में रचना हुई। इसमें जातक कथाएँ सबसे प्रसिद्ध हैं।

नाटक कला उन्नति के शिखर पर पहुँची। यह कला बहुत प्राचीन है। यहाँ तक कि वेदों में भी इसकी ओर संकेत है। नाट्य शास्त्र जो तीसरी शताब्दी ई० के करीब लिखा गया, इस कला का अद्वितीय ग्रन्थ है। इसी युग का एक नाट्य भवन छोटानागपुर में रामगढ़ के स्थान पर भूमि के भीतर से निकला है। भास के नाटक जो गोबी मरुस्थल के निकट तुफ़ान के स्थान से प्राप्त हुए हैं अद्भुत कृतियाँ हैं। अश्वघोष का बुद्ध चरित्र न केवल भारत में प्रसिद्ध था बल्कि तिब्बत, चीन और अन्य देशों में नाटक के रूप में प्रदर्शित किया जाता था। कालीदास के नाटक विशेष रूप से शकुन्तला संसार को चकाचौंध करने वाले हैं। शूद्रक का मृच्छकटिक अपनी तरह का निराला नाटक है। विशाख दत्त के मुद्राराक्षस की गणना भी संसार के सर्वोत्तम नाटकों में होती है। हर्ष और भवभूति तक भारतीय नाटक कला बहुत ही प्रगतिशील रही। बहुत से नाटकों में प्राकृत का प्रयोग है जिस से ये पूर्णतः वास्तविक दीख पड़ते हैं।

विष्णुशर्मा (पंचतंत्र का लेखक) हरिषेण, भारवि, वीरसेन और अन्य कई प्रसिद्ध लेखक इस युग में हुए।

संस्कृत इस युग में निखरती दिखाई देती है। जहाँ प्राकृत का रिवाज बढ़ता जा रहा था और सर्व साधारण उस का प्रयोग करते थे, संस्कृत विद्वानों की भाषा बनती जा रही थी। इस में एक विशेष प्रकार की लचक उत्पन्न हो गई, एक निराली चमक-दमक जिस का उदाहरण मिलना कठिन है। इस में स्पर्धा, स्फूर्ति और सतर्कता दीख

पड़ती है। व्याकरण के माप दण्ड पर यह पूरी उतरती है और इस की सरलता को देख कर स्पष्टतः ज्ञात होता है कि यह केवल पुस्तकों की भाषा न थी बल्कि बोल चाल में भी इस का प्रयोग होता था।

आज भी संस्कृत भारत में श्रेष्ठ भाषा समझी जाती है और संस्कृत जानने और समझने वाले को मान दिया जाता है। यही कारण है कि भारत की अन्य भाषाएँ पूर्ण रूप से उन्नत न हो सकीं।

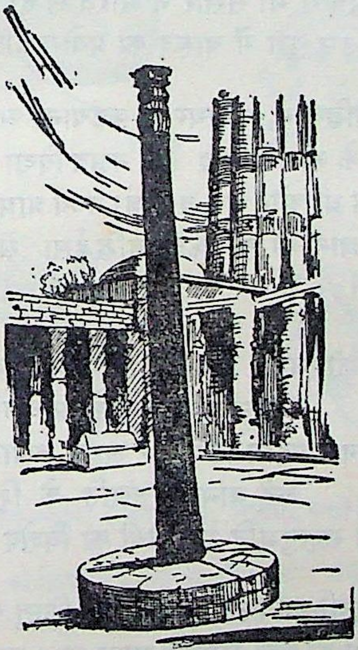

लोहे का स्तम्भ (दिल्ली)

विज्ञान और गणित विद्या में संसार अरबों को श्रेष्ठ मानता आया है किन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि अरबों ने जो कुछ यूरोप को दिया

वह उन्हों ने भारत से ही प्राप्त किया था।

विज्ञान

एक से नौ तक की संख्या और शून्य अर्थात् सिफ़र भारत का संसार को अमूल्य उपहार था, जिस ने विज्ञान के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। दशमलव विधि का निर्माण भी भारत में हुआ और बीज गणित का भी। तुला, माप दण्ड, समय की गणना और वर्ष का महीनों और दिनों में विभाजन, संवत् का प्रयोग इस युग में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। विक्रमी संवत्, त्रिकुटक संवत्, शालिवाहन और अन्य कई संवत् आरम्भ हुए। बारूद का प्रयोग भी संसार ने भारत से ही सीखा और इसके कई प्रमाण हैं कि इस युग में बारूद का प्रयोग होता था।

विशेषज्ञों में बौद्धियान, अपस्थम्बा, कटयान, आर्यभट्ट, वृहदवाग्भट्ट, भास्कर, ब्रह्मगुप्त के नाम प्रसिद्ध हैं। नक्षत्र विद्या और ज्योतिष विद्या भारत की विशेषता थी और अब तक जो तथ्य प्राप्त हुए हैं उन से प्रतीत होता है कि इस ज्ञान की अधिकतर वृद्धि ईसा से पहले और पीछे के सहस्र वर्ष में हुई।

सामाजिक जीवन

भारतीयों ने जीवन को एक कला का रूप दिया था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ने उन को सार्वजनिक हित के भाव प्रदान किये। "अहम् ब्रह्मास्मि" का मूल मन्त्र उन्हें मानवी उन्नति के शिखर पर ले गया। प्राणी मात्र के प्रति सहानुभूति भारतीयों का विशेष गुण था।

स्त्रियों को कानूनी अधिकार प्राप्त न थे किन्तु पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उन के सुख को राष्ट्र का सुख समझा जाता था। उन के विषय में मनु ने स्वयं कहा है, "जहाँ स्त्रियों का मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं।" नारी को लक्ष्मी कहा गया है। नारी से ही संसार की वृद्धि होती है और संसार में समृद्धि आती है।

कौटिल्य के अर्थ शास्त्र का सभी आदर करते हैं। शुक्राचार्य का नीति शास्त्र दूसरा ग्रन्थ है जिस में भारत के सामाजिक जीवन का चित्र खींचा गया है। जातक ग्रंथ भी इस पर बहुत प्रकाश डालते हैं। किन्तु भारतीय जीवन का पूर्ण चित्र पुराणों से प्राप्त होता है जिन की छान बीन की आवश्यकता है। यदि साहित्यिक अत्योक्तियों को निकाल दिया जाए तो ये ग्रन्थ भारत के प्रामाणिक इतिहास की रचना करने में बहुत सहायक होंगे।

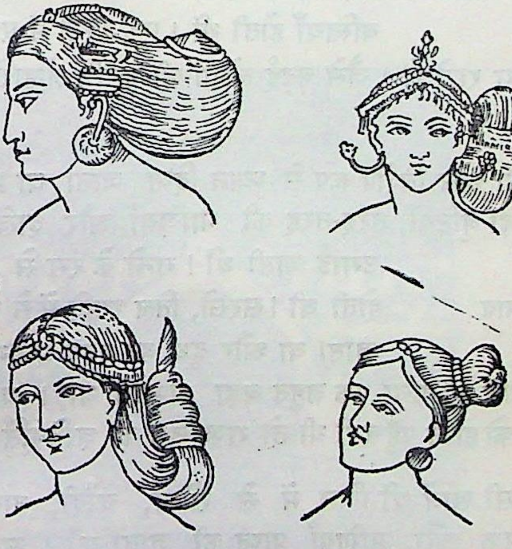

केश-शृङ्गार (भुवनेश्वर, सातवीं शती)

शासन विधि

राजा को दैवी अधिकार प्राप्त न थे। वह जनता का प्रतिनिधि और रक्षक होता था और उसे मंत्रिमंडल की अनुमति से राज्य करना होता था। पुरोहितों का शासन कार्य में बहुत हाथ था और राज्य गुरु की आज्ञा के विरुद्ध राजा कोई कदम न उठाता था।

ग्राम पंचायत स्वाधीन होती थी और राजा को कर देने के अतिरिक्त

प्रायः शासन अधिकारियों से उस का कोई सम्बन्ध न होता था। इस की बनावट ऐसी थी कि राज बदलने पर भी उस में कोई अन्तर न आता था। भिन्न-भिन्न शासक यदि आपस में युद्ध करते थे तो गाँव की रक्षा दोनों का कर्त्तव्य होता था।

आर्थिक स्थिति

भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लोग संघ बना कर रहते थे। इन संघों को व्यापारिक नीति निर्धारित करने के अधिकार प्राप्त थे। नगरों के आस-पास कई बस्तियाँ होती थीं। एक बस्ती में एक ही व्यवसाय के लोग रहते थे। जैसे बढ़ई लोगों की बस्ती, लोहारों की बस्ती इत्यादि।

व्यवसाय

कृषि की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था। फल फूल, अनाज, जड़ी बूटियाँ, तरह-तरह की भाजियाँ और दालें भारत में उगाई जाती थीं। गन्ने के रस से शक्कर तैयार होती थी। सरसों, तिल आदि में से तेल निकाला जाता था और दूध का बहुत प्रयोग होता था। खेतों को हानि पहुँचाना एक बहुत बड़ा अपराध था। यदि युद्ध के समय उन को हानि पहुँचती थी तो राजा उस की क्षतिपूर्ति करता था।

बहुत सी खानें थीं जिन में से सोना, चाँदी, ताम्बा, लोहा, सीसा, हीरक और मणियाँ प्राप्त की जाती थीं। समुद्र से मूँगे और मोती निकाले जाते थे।

भारत का बना हुआ कपड़ा विशेष रूप से प्रसिद्ध था। रेशम और ऊन के कपड़े भी बनते थे। कम्बल, लोइयाँ, गलीचे घर घर बनते थे। धातु का सामान भी बहुत तैयार होता था। अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिये बड़े बड़े उद्योग घर थे। बाँस और बेंत का सामान, लकड़ी और मिट्टी की अनेक वस्तुएं बनती थीं। भाँति भाँति की सुगन्धियाँ तेल, और औषधियाँ बनाने का प्रबन्ध था। कई ग्रन्थ उपलब्ध

हुये हैं, जिन में इस प्रकार के सामान बनाने की विधि लिखी है।

व्यापार

भारत का व्यापार दूर देशों से था। दक्षिण के लोग समुद्री व्यापार में विशेष रूप से दक्ष थे। प्राचीन-तम काल से रेशम, मलमल छुरियाँ, चाकू, अस्त्र शस्त्र, गोटा किनारी, हाथी दाँत का सामान, इतर और तेल, औषधियाँ आदि भारत से यहीं के बने हुए जलयानों में बाहर जाती थीं। गुप्त काल में भारत का विदेशी व्यापार चरम सीमा को पहुँच गया था।

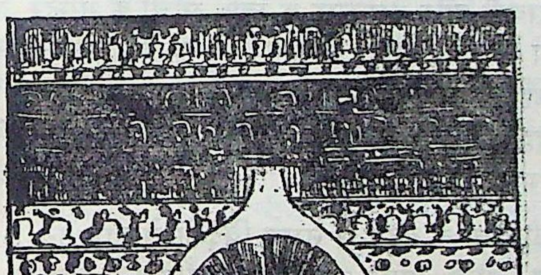

अजन्ता

भारत के व्यापारियों के गुमाश्ते विदेशों में काम करते थे। बड़े

बड़े देशों में भारतीयों की बस्तियाँ थीं ।

स्मारक

इस युग के अवशेष स्मारकों के रूप में प्राप्त हुये हैं। अशोक के स्मारकों की तो भरमार है । कनिष्क और उसके उत्तराधिकारियों ने भी भारत में बहुत से भवन बनवाये। पूना के निकट भुज का विहार जो चट्टान काट कर बनाया गया है, वास्तु कला का अद्भुत नमूना है। अजन्ता, ऐलोरा और अलिफैण्टा कन्द्राओं के चित्र अद्वितीय हैं। नासिक और कार्ली के स्थान पर चैत्य भवन, अमरावती और बेसनगर के स्तूप, सांची के मन्दिर के फाटक, उदयगिरी का मन्दिर, भरहुत के पत्थर के कटहरे देखने से सम्बन्ध रखते हैं। कई स्थानों पर मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं जिनका उदाहरण दुर्लभ है। दिल्ली की लोहे की लाठ आज तक भारतीय कारीगरों के चातुर्य का प्रमाण देती है ।

भारत की कला के बहुत से नमूने विदेशों से प्राप्त हुये हैं। जावा, सुमात्रा, हिन्द चीनी आदि धरोहर की भाँति इन स्मारकों की रक्षा करते रहे हैं।

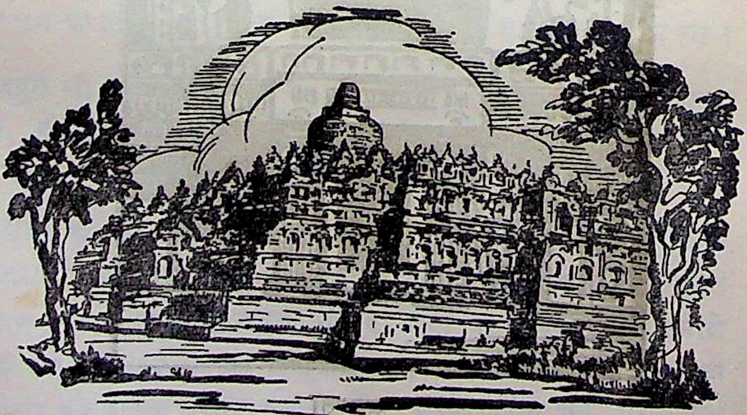

बोरबदूर का बुद्ध-मन्दिर (जावा)

बहुत से लेख और ग्रन्थ भी प्राप्त हुये हैं। जिस संस्कृति का मौर्य काल में विकास हुआ वह गुप्त कालीन भारत में पराकाष्ठा पर पहुँची दिखाई देती है।

बौद्ध मत

मौर्य वंश के पतन के पश्चात् शुङ्ग वंश और दक्षिणी राज्यों ने ब्राह्मण धर्म अपनाया किन्तु बौद्ध मत की वृद्धि वैसे ही होती रही। कनिष्क के प्रोत्साहन से यह दूर देशों में फैला। किन्तु कनिष्क के काल में इस मत में एक बहुत बड़ा परिवर्तन उत्पन्न हो गया। इस के दो दल बन गये—एक महायान और दूसरा हीनयान।

जिस धर्म का प्रचार महात्मा बुद्ध ने किया था उस पर आचरण करना साधारण लोगों के लिये कठिन था। दूसरे ब्राह्मणों ने बौद्ध मत के सिद्धान्तों पर अनेक प्रहार किये जिनके कारण इस में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होने लगी। परिवर्तित बौद्ध मत के अनुयायी महायान कहलाते थे और प्राचीन धर्म को मानने वाले हीनयान। महायान के मानने वाले प्रायः उत्तर में रहते थे और हीनयान मत के अनुयायी दक्षिण में। इस लिये इनको उत्तरी और दक्षिणी मत भी कहा जाता है।

इस परिवर्तन का एक कारण यूनानी थे। यूनानी सम्राटों ने बौद्ध मत स्वीकार किया किन्तु वे अपने प्राचीन विचारों का पूर्णतः परित्याग न कर सके। उनके प्रभावाधीन परिवर्तन अनिवार्य था।

अशोक द्वारा स्वीकृत मत में रूखापन था। उस में भावुकता और प्रेम का अभाव था। यूनानियों ने महात्मा बुद्धकी ऐसी मूर्तियाँ बनाईं जिनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होना स्वाभाविक था। महात्मा बुद्ध की पूजा भी होने लगी।

ब्राह्मणों ने भक्ति मार्ग जनता के सामने प्रस्तुत किया जिस से बौद्ध मत को क्षति पहुँचने का भय था। उसे प्रिय बनाने के लिये यह आवश्यक था कि बौद्ध मत में भी भक्ति का अंश डाल दिया जाय।

कनिष्क के कारण उत्तर में तक्षशिला और पेशावर का महत्त्व बढ़ गया और पाटलीपुत्र के विद्वानों का प्रभाव वहाँ तक न पहुँच सका। इसलिए वहाँ के नेताओं ने स्वतंत्र रूप से बौद्ध मत की नई प्रथाएँ स्थापित कीं।

बौद्ध मत में परिवर्तन लाने का श्रेय नागार्जुन को है, जो कनिष्क के काल में हुआ।

नये मत की सब से बड़ी विशेषता थी मूर्ति पूजन। दूसरे पाली के स्थान पर संस्कृत धार्मिक ग्रन्थों की भाषा स्वीकार कर ली गई। महात्मा बुद्ध को भगवान का दर्जा दे दिया गया। महात्मा बुद्ध ने मानव का आदर्श निर्वाण बताया था किन्तु निर्वाण ऐसी स्थिति नहीं जिसे प्राप्त करने का सर्वसाधारण को प्रलोभन हो। स्वर्ग की कल्पना एक मीठा विचार है। मानव आनन्द और खुशी चाहता है जिसका स्वर्ग में बाहुल्य है। महायान मत में स्वर्ग को आदर्श माना गया है। इनके अतिरिक्त एक और विचार ने प्रवेश किया। महात्मा बुद्ध को महान् स्वीकार करते हुए उन व्यक्तियों को भी उच्च पद्वी प्रदान की गई जो बौद्ध मत के सिद्धान्तों का पालन करते थे। इस प्रकार के व्यक्तियों को बौधीसत्व कहा जाता था। यह नया मत—महायान—चीन, तुर्किस्तान आदि देशों में और प्राचीन मत—हीनयान—लंका आदि दक्षिणी प्रदेशों में फैला।

विदेशी प्रभाव

भारत संस्कृति पर यूनानियों का बहुत प्रभाव पड़ा। इस का कारण सिकन्दर महान् की अपेक्षा मिलिन्द और अन्य यूनानी शासक थे जिन्हों ने भारतीय संस्कृति को ग्रहण किया। उन्हों ने लगभग ३०० साल तक भारत में राज्य किया।

यूनानी नक्षत्र विद्या ने भारतीयों को सब से अधिक प्रभावित किया। गार्गीसंहिता में जो नक्षत्र शास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। इस समय यूनानी परिभाषा का प्रयोग भी व्यापक हो गया।

कहा जाता है कि सिक्के बनाना भारतीयों ने यूनानियों से सीखा। यह सर्वथा सत्य नहीं किन्तु सिक्के बनाने की कला

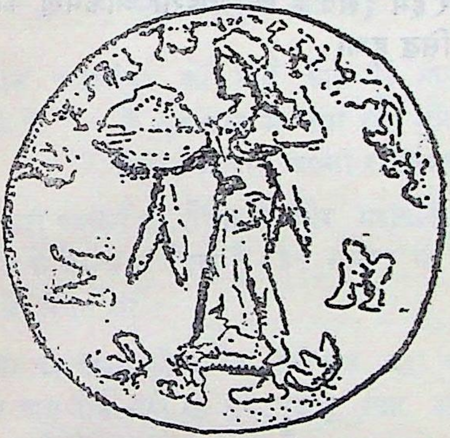

यूनानी सिक्का

पर यूनानी कला की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मूर्ति कला यूनानियों की देन है। गान्धार कला यूनानी और भारतीय कला के मिश्रण से बनी है जिस के निरूपण में यूनानी कला का अधिक हाथ है। विचार प्रायः भारतीय हैं किन्तु मूर्तियों का रूप यूनानी है।

यह स्वीकार करना पड़ता है कि यूनानी लोग भारतीय कला और संस्कृति से बहुत प्रभावित हुये।

इस समय यूनानी प्रभाव के बहुत कम चिन्ह पाये जाते हैं। इस का कारण यह हो सकता है कि शक जातियों ने यूनानी सभ्यता को उखाड़ फैंका हो। शक जातियों के अनेक राज्य थे। नासिक और उज्जैन उनके गढ़ थे। नासिक और उज्जैन में कई प्रसिद्ध शासक हुये जिनका प्रभाव व्यापक और स्थायी था। कुशान जाति का प्रभाव भी

कुछ कम न था ! कनिष्क ने मानो अशोक की प्रथाएँ पुनः जीवित कीं थीं। शीघ्र ही भारतीय संस्कृति देश की सीमाओं को पार कर गई और उसने उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के दूर देशों को प्रभावित किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि विदेशी आक्रमण का शाप भारत के लिये वरदान सिद्ध हुआ

परिच्छेद १३

गुप्त कालीन भारत

पाटली पुत्र से उज्जैन

जो स्थान पाटलीपुत्र को मौर्य काल में प्राप्त था वह उज्जैन ने गुप्त काल में पाया और गुप्त वंशीय चन्द्र गुप्त द्वितीय ने इसे अपनी राजधानी बनाया ।

क्षिपरा नदी उज्जैन की शोभा है और महाकालेश्वर का मन्दिर इस के अतीत के वैभव का चिन्ह है । इस मन्दिर में विक्रमादित्य की महान् मूर्ति भी स्थित थी ।

इस नगर को काशी की भाँति दैवी कृत कहा जाता है । इसकी प्राचीन शान अब शेष नहीं रह गई किन्तु फिर भी यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि किसी समय उज्जैन भारत के प्रसिद्ध नगरों में से था । उसने भारत इतिहास का स्वर्ण युग देखा है ।

चन्द्रगुप्त

चन्द्रगुप्त जिस ने ३१९ ई० में गुप्त साम्राज्य की स्थापना की पूर्वी भारत के एक छोटे से राज्य का शासक था । लिच्छिवी वंश से सम्बन्ध स्थापित हो जाने से उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई और वह मगध का सिंहासन प्राप्त करने में सफल हुआ ।

उसने पाटलीपुत्र को राजधानी बना सम्राट् की उपाधि ग्रहण की और ३२० ई० में गुप्त संवत् का निर्माण किया । उसकी बढ़ती हुई सैनिक सत्ता को रोकने वाला कोई बड़ा शासक उत्तरी भारत में न था इसलिये सुगमता से ही उसने अपने साम्राज्य का विस्तार गंगा के साथ साथ इलाहाबाद और अवध तक कर लिया । उस ने केवल पन्द्रह वर्ष के लगभग राज्य किया ।

समुद्र गुप्त

गुप्त साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक समुद्र गुप्त था जो अपने पिता के पश्चात् ३३५ ई० में पाटलीपुत्र के सिंहासन पर बैठा। उसने गङ्गा की घाटी के छोटे छोटे राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर यमुना और चम्बल तक पंख फैलाये और नाग वंश का गौरव समाप्त कर दिया।

दक्षिण में कई शक्तिशाली राज्य थे। दक्षिण कोशल, का शासक महेन्द्र, बेंगी का हस्तिवर्मन और कांची का विष्णु गोप विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। समुद्रगुप्त ने उन्हें कर देने पर विवश किया। अन्य कई छोटे छोटे राजाओं ने भी उसका आधिपत्य स्वीकार किया। वह धर्म विजय की पताका फहराता चलता था। उसका उद्देश्य भारत को एक ध्वजा के नीचे लाना था।

दक्षिण से लौट कर उसने अपना ध्यान बङ्गाल और आसाम की ओर लगाया और वहाँ के शासकों को अपने आधीन किया। मालवा, राजस्थान, नेपाल और पंजाब के बहुत से गण राज्य उसे सर्वोपरि स्वीकार करने लगे। लङ्का के राजा मेघवर्ण ने भी उससे मित्रता स्थापित की। मेघवर्ण ने बौद्ध गया के स्थान पर एक बौद्ध विहार की स्थापना की।

समुद्रगुप्त का साम्राज्य अब अशोक के साम्राज्य की भाँति विस्तृत था। किन्तु जैसे अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था वैसे समुद्रगुप्त हिंदू संस्कृति का उपासक था। उसने अश्वमेध यज्ञ रच कर यह स्पष्ट कर दिया कि वह भारत में फिर से प्राचीन धर्म की वृद्धि चाहता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि वौद्धों के प्रति उपेक्षा का व्यवहार होता था। बौद्धों का वैसा ही मान होता था जैसे अशोक के काल में और उनके विहारों की उसी प्रकार सहायता दीजा ती थी।

समुद्र गुप्त को भारत का नैपोलियन कहा जाता है किन्तु वह नैपोलियन से कहीं श्रेष्ठ था। कला और साहित्य में वह स्वयं निपुण

था और उनकी प्रगति में सहायक होता था। काव्य और गायन विद्या का वह अपने काल का विशेषज्ञ समझा जाता था। उसके काल के बहुत से सिक्के प्राप्त हुये हैं। कई सिक्कों पर उसे नाचते या वीणा बजाते दिखाया गया है। समुद्रगुप्त ने साहित्यिक नायक का रूप धारण कर लिया था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय अर्थात् विक्रमादित्य

कहा जाता है कि समुद्र गुप्त का उत्तराधिकारी राम गुप्त था जिसे चन्द्र गुप्त द्वितीय ने सिंहासन से उतार कर ३७५ ई० में स्वयं शासन संभाला किन्तु इसकी पुष्टि में ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त नहीं होते।

विक्रमादित्य अपने पूर्वजों की भाँति रणबाँकुरा था। उसने भारत के रहे-सहे राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित करने का प्रयास किया, सिथियनों की शक्ति को समाप्त कर मालवा और सौराष्ट्र पर अधिकार प्राप्त कर लिया और वाकाटक वंश के राजा से मित्रता स्थापित कर दक्षिण भारत पर पूर्णतः अपना प्रभुत्व जमा लिया।

पाटलीपुत्र को छोड़ कर वह उज्जैन में रहने लगा। यहीं उसके वैभव का दिग्दर्शन मिलता है।

फाह्यान

फाह्यान ने जो चीन से ४०० ई० के लगभग आया गुप्त कालीन भारत की स्थिति पर बहुत प्रकाश डाला है।

फाह्यान कुमारजीव का शिष्य था जो चीन में आबाद हो गया था। कुमारजीव ने उसे आदेश दिया था कि वह सब समय विद्याध्ययन में ही न लगाये बल्कि भारतीय जीवन के विषय में भी जानकारी प्राप्त करे। फाह्यान ने भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्रा की और भारत के विषय में बहुत से तथ्य एकत्रित किये। वह चिरकाल तक पाटलीपुत्र के विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करता रहा।

फाह्यान ने पाटलीपुत्र की बहुत सराहना की है, विशेष रूप से

अशोक के महल की। वह गुप्त सम्राट् के राज्य प्रबन्ध से बहुत प्रभावित हुआ। राज्य कर्मचारी ईमानदार होते थे। उन्हें सरकारी कोष से वेतन मिलता था और उन्हें आदेश दिया गया था कि जनता से नम्रता का व्यवहार करें और किसी प्रकार की क्रूरता न दिखायें।

देश में चारों ओर शान्ति और समृद्धि थी। खुली सड़कें जिन पर छायादार वृक्ष लगे थे सभी बड़े बड़े नगरों को मिलाती थीं। नदियों पर पुल बने थे। यातायात का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। बहुत से हस्पताल बने थे और दुखी और दरिद्र व्यक्तियों की सहायता का पूरा पूरा प्रबन्ध था।

नव रत्न।

चन्द्रगुप्त द्वितीय अपनी सामरिक योग्यता ही के कारण प्रसिद्ध नहीं। उसकी अमर स्मृति का कारण उसके नवरत्न हैं।

धन्वन्तरी इन नव रत्नों में सुप्रसिद्ध है। उसके द्वारा रचित "चिकित्सा" "तत्त्व विज्ञान" "रोग निदान" और "निघण्टु" विशेष रूप से माननीय हैं। इन में शरीर की बनावट, उसकी चीर फाड़ की विधि, रोग की जाँच, अंगों को जोड़ना, घाव को पकने से बचाना, पेट को चीरना, आँख का आप्रेशन ये सब विस्तार से दिये गये हैं।

कालीदास संस्कृत का अद्वितीय नाटककार है। उसने जीवन के संगीत का चित्रण किया है। मानव की भावनाओं की स्थिरता और संयम और उस से उत्पन्न हुआ सन्तुलन, जो भारतीय जीवन की विशेषता था, कालीदास के नाटकों में स्पष्ट दिखाई देता है। मेघदूत और शकुन्तला विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।

जैसा हम पहले कह आये हैं कालीदास के काल के विषय में अभी एक मत नहीं।

हरिषेण, वीरसेन, शूद्रक और विशाखदत्त कालीदास के समकालीन साहित्यकार थे। किन्तु यह विश्वस्त रूप से नहीं कहा जा

सकता कि विक्रमादित्य के राजदरबार में उन का क्या स्थान था।

रसायन में नागार्जुन का नाम बहुत प्रसिद्ध है। किन्तु उसके विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह किस काल में हुआ।

नक्षत्र शास्त्र और ज्योतिष में उज्जैन संसार भर में प्रमुख था। भारतीय इतिहास में कई विशेषज्ञों के नाम मिलते हैं किन्तु उनकी तिथियाँ सन्दिग्ध होने के कारण उन्हें किसी विशेष युग से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता। आर्यभट्ट को कालीदास और धन्वन्तरी का समकालीन कहा जा सकता है।

वास्तव में चन्द्रगुप्त द्वितीय और विक्रमादित्य को एक ही व्यक्ति कहना कठिन है। जब तक विक्रमादित्य के विषय में ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त नहीं होते नव रत्नों का काल नियत नहीं किया जा सकता। यह निश्चित है कि चन्द्रगुप्त अपने पिता की भाँति स्वयं कलाकार और विद्वान् था और विद्वानों और कलाकारों का बहुत आदर करता था। उसका न्याय और सार्वजनिक प्रेम बहुत-सी लोक-गाथाओं का विषय हैं।

इस काल के बहुत से स्मारक प्राप्त हुए हैं। अजन्ता और अलोरा की कन्दराएँ और मन्दिर उनका उदाहरण हैं। कहा जाता है कि दिल्ली में स्थित लोहे का स्तूप भी चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में बना था। यह स्तूप उसकी दिग्विजय के उपलक्ष में स्थापित किया गया था।

विक्रमादित्य के उत्तराधिकारी

कुमार गुप्त प्रथम जो ४१३ ई० से ४५५ ई० तक राज्य करता रहा अपने पिता की भाँति वीर था किन्तु उसे एक महान् शत्रु से मुकाबला करना पड़ा। पुष्यमित्र के उत्तराधिकारियों ने सिर उठाया और इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि एक बार गुप्त साम्राज्य को हिला दिया। स्कन्द गुप्त ने जो उसके पश्चात् सिंहासन पर बैठा और जिस ने ४६८ ई० तक राज्य किया इन्हें परास्त कर गुप्त साम्राज्य

को नया जीवन प्रदान किया । उसने हूणों का भी दमन किया और विक्रमादित्य की पदवी पाई ।

स्कन्द के पश्चात् बुद्धगुप्त प्रतापी गुप्त सम्राट् हुआ जिसने ४७७ ई० से ४९५ ई० तक राज्य किया । छठी शताब्दी में गुप्त साम्राज्य की सत्ता समाप्त हो गई और वह मगध तक ही सीमित रह गया ।

भारत इतिहास का स्वर्ण युग

गुप्त काल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता है । ३३० से लेकर ४९५ ई० तक गुप्त साम्राज्य अपने उत्कर्ष पर रहा । इस डेढ़ सौ साल की अवधि में भारत ने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्र में बहुत उन्नति की । यह युग भारत के इतिहास में समृद्धि और शान्ति का युग था । इस युग की मौर्य काल से तुलना करना अनुचित न होगा क्योंकि मौर्य वंश और गुप्त वंश अपने रूप से दोनों अति महत्त्वपूर्ण हैं । परन्तु यह कहना अनुचित होगा कि जहाँ मौर्य काल में बौद्ध धर्म की उन्नति हुई वहाँ गुप्त काल में ब्राह्मण धर्म उत्कर्ष पर पहुँचा क्योंकि गुप्त काल में भी बौद्ध धर्म पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था ।

भारतीय इतिहास में इन दोनों युगों का बहुत महत्त्व है । इस का बहुत बड़ा कारण यह है कि इन के विषय में काफ़ी जानकारी प्राप्त हुई है । मौर्य कालीन भारत के विषय में मैगेस्थनीज़ का वर्णन और स्तूपों पर खुदे हुए लेख पर्याप्त सामग्री प्रदान करते हैं । सिक्के और कला के नमूने भी सहायक होते हैं । इसी प्रकार गुप्त काल के विषय में चीनी यात्री फाह्यान के वृत्तान्त से बहुत कुछ बोध होता हैं । उस के वृत्तान्त का ऐतिहासिक मूल्य न भी हो फिर भी, क्यों कि उसने अपने विचार दिन प्रतिदिन प्रकट किये हैं उन्हें विश्वसनीय मानना पड़ता है । इस के साथ साथ सिक्के और लेख भी प्राप्त हुए हैं । इलाहाबाद में स्थित स्तूप पर हरिषेण द्वारा लिखित प्रशस्ति अर्थात् लेख जिस में

गद्य और पद्य की ३३ पंक्तियाँ हैं मूल्यवान् सामग्री प्रस्तुत करता है। दिल्ली में स्थित लोहे की लाठ भी बहुत कुछ जानकारी देती है।

गुप्त युग के विषय में अनेक लोकोक्तियाँ और लोक गाथाएँ प्रसिद्ध हैं जो उस समय के जीवन पर प्रकाश डालती हैं। इन के अतिरिक्त इस युग में मूल्यवान् साहित्य की रचना हुई जिस में से बहुत मूल्यवान ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है।

आर्थिक स्थिति

फाह्यान के वृत्तान्त से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारत उस समय धन-धान्य से परिपूर्ण था। नगरों का वैभव तो चकाचौंध करने वाला था ही ग्राम भी कुछ कम रमणीय न थे। देश में शान्ति होने के कारण कृषि और उद्योग-धन्धों की ओर राज्य कर्मचारियों का पूरा-पूरा ध्यान होता था। ग्रामों का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। यदि एक गाँव में जन-संख्या बढ़ जाती थी तो दूसरा गाँव बसाया जाता था जिस में जीवन की सभी सुविधाएँ जुटाई जाती थीं।

कारीगरों और व्यापारियों के संघ होते थे जिन के धन का अनुमान उन हस्पतालों और अन्य संस्थाओं से लग सकता है जो उनकी सहायता से चलती थीं।

केन्द्रीय शक्ति के बलवान् होने के कारण अन्तर्देशीय व्यापार बहुत उन्नत था। बाहर के देशों से भी बहुत व्यापार होता था। पूर्व में ताम्रलिप्ति और पश्चिम में भड़ोंच, कैम्बे और कई अन्य प्रसिद्ध बन्दरगाहें थीं। रोम और अन्य पश्चिमी देशों से घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। व्यापार की दृष्टि से दक्षिण विशेष रूप से उन्नति कर रहा था। पूर्वी देशों से व्यापार के साथ साथ घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्पर्क था। सम्भवतः वहाँ उपनिवेश स्थापित करने का काम आरम्भ हो चुका था।

बड़े बड़े नगरों को सड़कों द्वारा मिलाया गया था। सड़कों पर वृक्ष लगे थे, कुएँ खुदे थे और विश्राम-गृह बने थे। मार्ग सुरक्षित थे।

अपराधों का अभाव और जनता की न्यायप्रियता भी यह सिद्ध करती है कि वे समृद्धिशाली और सदाचारी थे।

गुप्तकाल के बहुत से स्मारक ऐसे हैं जिन की तिथियाँ मालूम करना कठिनहै। उस युग के साहित्यकारों के विषय में भी बहुत सी शंकाएँ हैं।

संस्कृति

गुप्तकाल के प्रसिद्ध स्मारक जो कन्दराओं में की गई चित्रकारी के रूप में मिलते हैं अभी तक विवाद का विषय बने हुए हैं।

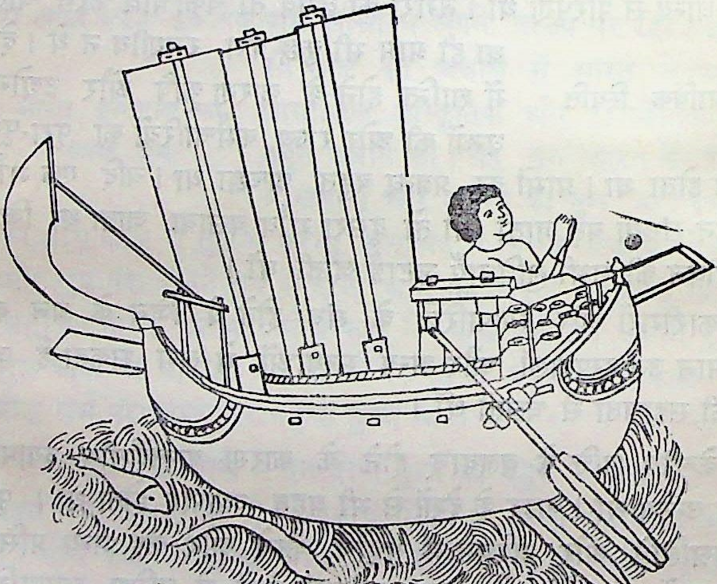

अजन्ता से (छठी शती)

अनुमान से कहा जाता है कि ग्वालियर के निकट उदयगिरि की कन्दराओं के चित्र अजन्ता और अलोरा की कन्दराओं के चित्र, झांसी में स्थित देवगढ़ का मन्दिर, कानपुर में भितरगाँव का मन्दिर, मध्यदेश का सुमरा मन्दिर, दिल्ली की लोहे की लाठ, इलाहाबद का स्तूप गुप्त

कालीन हैं। इन में कला कौशल उत्कर्ष पर पहुँचा प्रतीत होता है। भावों को चित्रों में प्रकट करना उस युग के कलाकारों का विशेष गुण था जिसे देख कर आधुनिक कलाकार अचम्भा करता है।

गुप्तकाल के सिक्के जो तिथियों का बोध भी प्रदान करते हैं कला के विलक्षण नमूने हैं।

समुद्रगुप्त स्वयं एक प्रसिद्ध कलाकार था। गायन विद्या में निपुण होने के साथ-साथ वह उच्च कोटि का लेखक था। हरिषेण की प्रशस्ति में लिखा है—"समुद्रगुप्त कविराज है जिसकी कृतियाँ अध्ययन करने योग्य हैं और जो कवियों के अध्यात्मिक कोष की वृद्धि करती हैं।" समुद्रगुप्त की कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं इस लिये इस कथन की पुष्टि करना सम्भव नहीं।

यह निःशंक होकर कहा जा सकता है कि हरिषेण, वीरसेन, मृच्छकटिक का लेखक शूद्रक, मुद्राराक्षस का लेखक विशाख दत्त, और कालीदास महान् लेखक हैं। कहा जाता है कि रामायण, महाभारत, पुराण और स्मृतियाँ इसी युग में सम्पादित हुईं। बौद्ध और जैन ग्रन्थों की भी रचना हुई। ज्योतिष शास्त्री आर्यभट्ट, वराहमिहिर और चिकित्सा शास्त्री धनवन्तरी को भी इसी युग से सांम्बन्धित किया जाता है। कोई विचित्र बात नहीं कि संस्कृत की प्रसिद्ध कहानियाँ भी जो हितोपदेश और पंचतन्त्र में संगृहीत हैं, इसी युग की रचना हों। निश्चय ही संस्कृत को परिष्कृत करने का श्रेय गुप्त कालीन विद्वानों को है।

भारत की सामाजिक स्थिति के विषय में फाह्यान की कृतियों से विश्वसनीय और विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। वह लिखता है:

समाज

"इस देश का जलवायु अति प्रिय और सुहावना है। जन संख्या बहुत है और सब लोग प्रसन्न हैं। उनका नैतिक स्तर बहुत ऊँचा है। समस्त देश में किसी जीव की जान लेना बुरा समझा जाता है।

यहाँ तक कि लोग लहसन और प्याज़ भी नहीं खाते। मदिरा का अभाव है। पशु बेचे नहीं जाते।

"नगरों के बाहर चांडाल लोग रहते हैं जो इन नियमों का पालन नहीं करते। उनका स्पर्श करना अच्छा नहीं समझा जाता। इस लिये जब वे नगर में जाते हैं तो विशेष प्रकार की ध्वनि द्वारा उन्हें अपने आने की सूचना देनी पड़ती है।"

फाह्यान गोबी मरुस्थल को पार कर ख़ुतन, ताशकन्द से होता हुआ भारत आया था। उसने इन सब स्थानों का वृत्तान्त दिया है। पेशावर, तक्षशिला, आदि से होता हुआ मथुरा, मालवा और बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों को देखता हुआ ताम्रलिप्ति पहुंचा जहाँ से जहाज़ द्वारा वह अपने देश लौटा। उसने मालवा की विशेष रूप से प्रशंसा की है।

फाह्यान ने लिखा है कि दया के भाव इस सीमा तक पहुँचे हुए हैं कि कीड़े मकौड़ों के लिये भी हस्पताल हैं।

शिक्षा

भारत की शिक्षा के विषय में फाह्यान ने विस्तार से नहीं लिखा किन्तु उसने अनेक विहारों का वर्णन किया है। उसके अनुसार एक विहार में ६०० अध्यापक थे। पाटलीपुत्र में स्थित एक विहार के आचार्य मञ्जुश्री की उसने खूब प्रशंसा की है। इन विहारों में संसार के विभिन्न देशों से विद्यार्थी आते थे।

राजकीय प्रबन्ध

गुप्त काल में अपराधों का अभाव था। कठोर दण्ड किसी को न दिया जाता था। मृत्यु दंड से लोग अनभिज्ञ थे। अपराधों के लिये प्रायः जुर्माना किया जाता था। राजद्रोहियों के हाथ काट दिये जाते थे।

लगान की राशि बहुत थोड़ी थी। उसे उगाहने में सरकार को कोई कठिनाइ न होती थी।

सरकारी अफ़सर जनता को सुखी बनाने का प्रयत्न करते थे। राजा का अपना जीवन अति सरल और पवित्र था, जिसका लोग अनुकरण करते थे।

साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था जिन्हें देश या भुक्ति कहते थे। प्रान्त के कई भाग होते थे जिन्हें प्रदेश या विषय कहते थे। इनके अधिकारी को विषयपति कहा जाता था। ग्रामों और नगरों का प्रबन्ध लोग स्वयं करते थे। लगभग ऐसा ही प्रबन्ध मौर्य काल में था।

गुप्त सम्राट

फाह्यान ने जहाँ सम्राट् की बहुत प्रशंसा की है वहाँ उसके नाम की ओर संकेत नहीं किया। न ही उसने राज्य दरबार का वर्णन किया है किन्तु उसके वर्णन से प्रतीत होता है कि गुप्त सम्राट् का जीवन सरल और उच्च था।

गुप्त वंश के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करना कठिन है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि गुप्त भारतीय न थे और बाहर से आए थे। कुछ का मत है कि वे भारतीय थे किन्तु उनका सम्बन्ध किसी श्रेष्ठ वंश से न था। उनका पूर्वज श्री गुप्त एक साधारण जागीरदार था। उसका वर्णन इलाहाबाद की प्रशस्ति में भी मिलता है और इत्सिंग ने भी जो चीन से आठवीं शताब्दी में भारत आया था उसका उल्लेख किया है। उसने मृगशिखा के स्थान पर एक मन्दिर स्थापित किया था और उसे चार गाँव प्रदान किये थे। उसके पुत्र घटोत्कच का भी वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों में आपस में सिंहासन के लिये संघर्ष हुआ। समुद्रगुप्त कच नाम के सम्राट् को गद्दी से उतार कर सम्राट् बना था और चन्द्रगुप्त द्वितीय रामगुप्त की हत्या कर। इन कथनों की पुष्टि नहीं हुई।

प्रारम्भिक गुप्त सम्राट् शूरवीर और वैभवशाली थे किन्तु स्कन्द

गुप्त के पश्चात् जो हूणों के साथ युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ, उनका शौर्य लुप्त हो गया।

राज्य विस्तार

चन्द्रगुप्त प्रथम ने विरसे में एक छोटा सा राज्य पाया था किन्तु लिच्छिवी वंश की राजकुमारी कुमारदेवी से विवाह कर पाटलीपुत्र प्राप्त किया।

चन्द्रगुप्त की सामरिक कृतियों के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती किन्तु यह निश्चय से कहा जा सकता है कि अवध, तिरहुत, बिहार, मगध आदि उसके साम्राज्य का भाग थे।

समुद्र गुप्त ने नाग नरेशों के विरुद्ध सेना भेजी। विरोधी सेनाओं की मुठभेड़ इलाहाबाद के निकट कौशम्बी के स्थान पर हुई जिस में नाग नरेश मारे गए। फिर समुद्रगुप्त ने राजस्थान के कोटा वंश पर विजय पाई। उत्तर पश्चिम में रहने वाले क़बीलों ने भी उसका आधिपत्य स्वीकार किया उसने उत्तरी भारत में नौ नरेशों को हराया और अन्य कई शासकों के साथ मित्रता की।

दक्षिण में समुद्रगुप्त ने बारह नरेशों को पराजय दी किन्तु उसने उनका राज्य उन्हें पुनः लौटा दिया।

बंगाल, कामरूप, नेपाल आदि देशों पर भी समुद्रगुप्त ने आक्रमण किये और वहाँ के नरेशों ने उसे सर्वोपरि स्वीकार किया। सीमान्त उत्तर के शक राजाओं ने और लंका के राजा ने उससे मित्रता स्थापित की। इस प्रकार समुद्रगुप्त का साम्राज्य पूर्व में ब्रह्मपुत्र, दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में चम्बल और उत्तर में हिमालय तक फैला हुआ था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पूर्व और पश्चिम में साम्राज्य का विस्तार किया। उसकी बंगाल की विजय प्रसिद्ध है। उत्तर पश्चिमी शक नरेशों को विजय कर वह शकारि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र उसके आधीन हो गए। दिल्ली में स्थित

लोहे की लाठ पर लिखे लेख से विदित होता है कि उसने दूर पश्चिम के देशों को भी विजय किया था।

गुप्त सम्राटों की विजय नीति को धार्मिक आवरण दिया जाता था। इन सम्राटों का अभिप्राय नरेशों को नष्ट करने की अपेक्षा उन्हें एक सूत्र में बांधने का था। कहीं मित्रता द्वारा, कहीं विवाह सम्बन्धों से, कहीं राजनीति की सहायता से और कहीं सैनिक शक्ति से उन्होंने समस्त भारत को एक बना दिया। समुद्रगुप्त का अश्वमेध यज्ञ इस का प्रमाण है कि भारत में उस का विरोध करने वाला कोई न था।

गुप्त सम्वत्

कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ने एक सम्वत् चलाया जो २६ फ़रवरी ३२० ई० से आरम्भ होता है। इस सम्वत् के प्रवर्तक लिच्छिवी राजा भी बताए जाते हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमी सम्वत् का प्रवर्तक कहा जाता है। ऐतिहासिक रूप से यह सम्वत् कनिष्क कालीन किसी प्रसिद्ध सम्राट् से सम्बन्ध रखता है, जिस के विषय में जानकारी प्राप्त नहीं हुई। यह सम्वत् ५७ ई० पूर्व से आरम्भ होता है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि यह सम्वत् हर्ष वर्धन के पश्चात् प्रचलित हुआ और इसे कल्पित राजा विक्रम से सम्बन्धित कर दिया गया। यह भी कहा जाता है कि इस के प्रवर्तक मल्लोई जाति के लोग थे जो सिकन्दर महान् के समय पंजाब में रहते थे। कुछ भी हो यह सम्वत् अति कुशल और प्रचलित है।

गुप्त काल में भारत अन्य देशों से बहुत श्रेष्ठ था।

समकालीन संसार

रोम साम्राज्य उत्कर्ष को पहुँच कर ३१२ ई० में पूर्वी और पश्चिमी दो भागों में बट गया। पश्चिमी साम्राज्य पर उत्तर की यायावर जातियाँ—गौथ, वैण्डल, जर्मन आदि—छा गईं, और उस का महत्व समाप्त हो गया। ४१० ई० में अलैरिक नामक गौथ ने स्वयं रोम पर अधिकार प्राप्त कर लिया। ४६३ ई० में थ्योडोरिक (गौथ) रोम का सम्राट बना।

इस के साथ सामाजिक परिवर्तन हुए। जागीरदारी समाप्त हो गई। ऋणि व्यक्तियों को साहूकारों के पंजे से छुटकारा प्राप्त हुआ और कृषकों ने चैन की सांस ली। मानो जनता रोम के सामाजिक अभिशाप से बच गई। इन जातियों ने अफ्रीका के उत्तर पश्चिमी तट पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया।

चीन में २०६ ई० पूर्व में हन वंश ने राज्य प्राप्त किया और लगभग २२० ई० तक वह चीन में दृढ़ता से राज्य करता रहा। हन वंशीय नरेशों ने हूणों को चीन में घुसने नहीं दिया जिस के फलस्वरूप वे पश्चिम की ओर बढ़ते रहे। हूणों की एक जाति जो यूची के नाम से प्रसिद्ध है पश्चिम से होकर भारत आई और १०० और १५० ई० के बीच बनारस तक का इलाका उस ने विजय किया। इस से समस्त उत्तरी भारत यूनानियों के अधिकार से निकल गया।

बहुत सी हूण जातियाँ मध्य एशिया में आबाद हो गई थीं। हूण घोड़े की सवारी में निपुण थे। तीन साल के बालक को वे घोड़े की सवारी करना सिखाते थे। खैमों में रहते थे। उन के नगर भी पड़ाव से प्रतीत होते थे। उन्हें एक मात्र बरबर कहना कठिन है क्योंकि उन में मध्य एशिया की वर्तमान जातियों के गुण पाये जाते थे। अतिथि सत्कार उन की विशेषता थी। वे खूँख़ार थे और अपने शत्रु से बदला लेना अपना कर्त्तव्य समझते थे। कला की दृष्टि से वे बहुत पिछड़े हुए थे।

जिस समय गौथ और वैण्डल यूरोप पर छाए जा रहे थे हूणों ने ऐटिला नाम का शूरवीर उत्पन्न किया। उस ने पूर्वी सम्राट् थ्योडीसियस द्वितीय पर बार-बार आक्रमण किये और अन्ततः सम्राट् को अपमान जनक सन्धि करनी पड़ी।

४५१ ई० में ऐटिला ने पश्चिमी साम्राज्य पर आक्रमण किया। यूरोपीय जातियों ने मिल कर उस का मुकाबला किया और उसे मात खा उत्तरी इटली की ओर जाना पड़ा। ४५३ ई० में उसकी मृत्यु हो

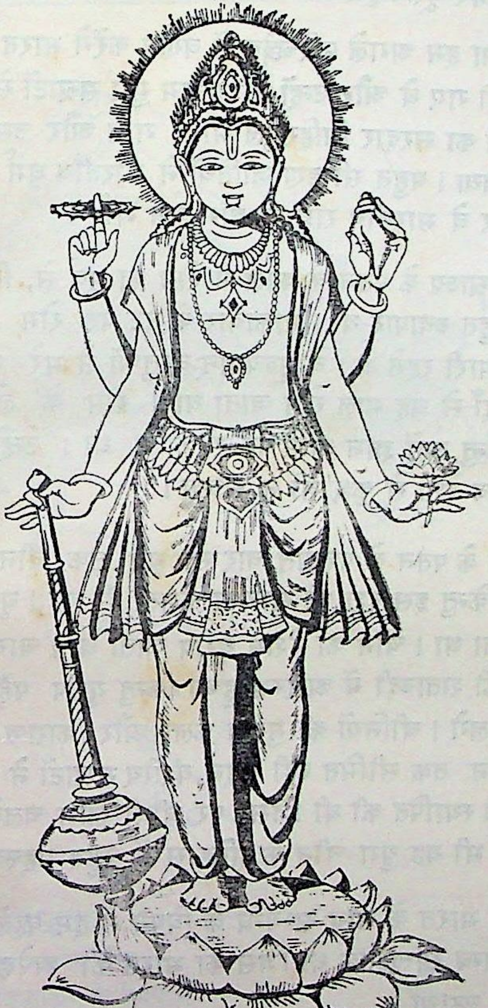

विष्णु

गई । इस प्रकार यूरोप हूणों के अभिशाप से बच गया ।

हूण जैसा हम अगले परिच्छेद में वर्णन करेंगे भारत के पश्चिम में आबाद हो गए थे और उन्हों ने अन्तिम गुप्त सम्राटों से युद्ध किये। आखिर हूणों का सरदार मिहिरगुल भाग गया और उस ने काश्मीर में आश्रय लिया। बहुत सी हूण जातियों ने भारतीय धर्म और संस्कृति अपनाई और वे भारतीय राष्ट्र का अंग बन गईं ।

रोम साम्राज्य के पतन के काल में रोम का पूर्व से, विशेष रूप से भारत से, बहुत व्यापार था। मालावार के तट पर रोम की बस्तियाँ थीं जहाँ व्यापारी रहते थे। वे मूल्यवान् वस्तुओं से भरे जहाज़ मिश्र भेजते थे जहाँ से यह माल रोम जाता था। रोम के लोग आनन्द मनाते थे किन्तु उन्हें ज्ञान प्राप्ति का शौक न था। उन्हों ने भारत; चीन या अन्य देशों से कुछ भी न सीखा।

हन वंश के पतन के पश्चात् चार सौ वर्ष तक चीन में अफलातफली रही किन्तु इस देश की सभ्यता फैलती ही गई। यूरोप का धन चीन में आता था। चीन का रेशम यूरोप जाता था। चाय का रिवाज चीन में छठी शताब्दी में आरम्भ हुआ किन्तु यूरोप पहुँचने में इसे कई सौ वर्ष लगे। चीनियों की मुद्रण कला और काग़ज़ बनाने की कला भी चीन तक सीमित रही। हन वंशीय सम्राटों ने एक विशेष जीवन शैली स्थापित की थी जिस पर चीनी लोग चलते रहे। कला की दृष्टि से भी यह युग चीन के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण है।

चीन के भारत के साथ सम्बन्ध के विषय में हम पहले कह आए हैं। यह सम्बन्ध सांस्कृतिक था जिस का भारत की अपेक्षा चीन ने अधिक लाभ उठाया।

६१६ ई० में चीन में टांग वंश का राज्य स्थापित हुआ। ह्यूनसांग टांगवंशीय राजा टाईसूंग के काल में भारत आया था।

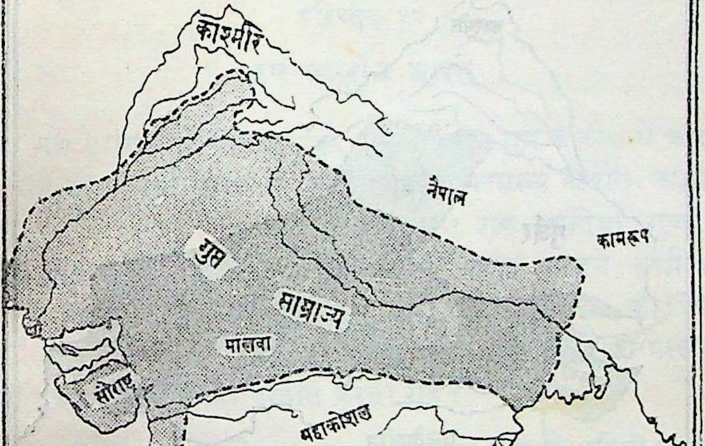
काश्मीर
नेपाल
कामरूप
गुप्त
साम्राज्य
मालवा
सौराष्ट्र
महाकोशल
वाकाटक
पल्लव
चोल
पाण्ड्य

गुप्त साम्राज्य

(चौथी शताब्दी की समाप्ति पर)

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में

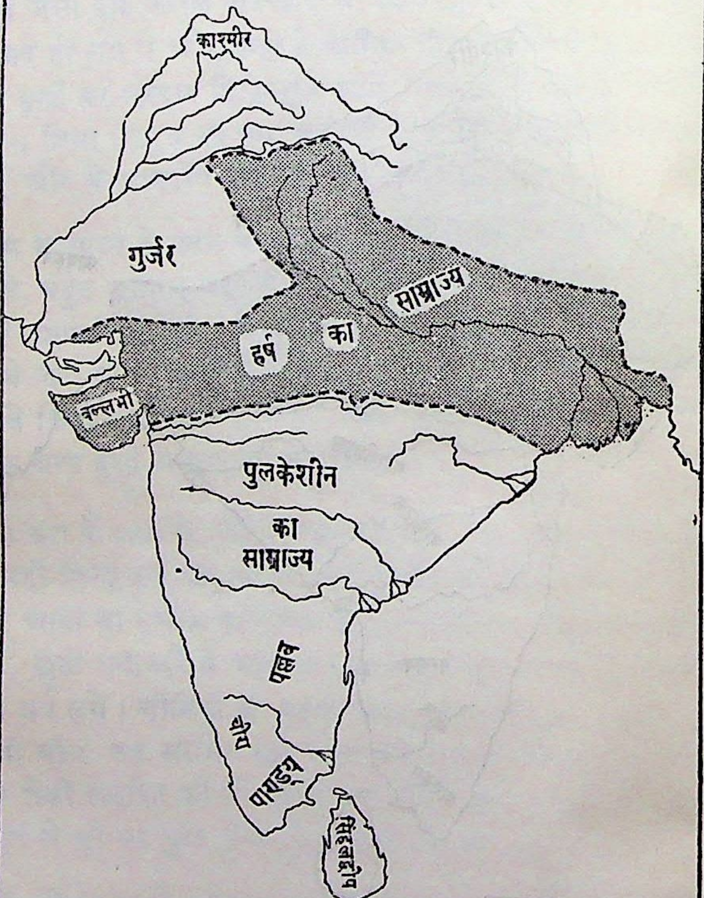
काश्मीर
गुर्जर
हर्ष
का
साम्राज्य
वल्लभी
पुलकेशीन
का
साम्राज्य
पल्लव
चोल
पाण्ड्य
सिंहलद्वीप

हर्ष का साम्राज्य
(६४० ई०)

परिच्छेद १४

हर्ष कालीन भारत

गुप्त साम्राज्य का पतन।

गुप्त साम्राज्य के वियोजन की प्रक्रिया स्कन्द गुप्त के काल में आरम्भ हो गई थी। पूर्वी भारत में बंगाल और कामरूप अर्थात् आसाम स्वतन्त्र हो गए थे। शक जातियाँ गुजरात, सिन्ध, मालवा में शक्ति पकड़ने लगी थीं, दक्षिण के शासकों ने स्वाधीनता की ध्वजा फहराई। किन्तु भारतीय संस्कृति का प्रस्खलन नहीं हुआ। वह वैसे ही उन्नति करती गई।

हूण

हूण, जिन्हें जंगली और यायावर जाति कहा जाता है, पहिली शताब्दी ई० पू० से उत्तर पश्चिमी देशों में स्थित थे। उनका साम्राज्य राइन नदी से मध्य एशिया तक फैला हुआ था। हूण सम्राट् ऐटिला ने कान्स्टैन्टीनोपल पर ४५१ ई० में आक्रमण कर हैलिनिक साम्राज्य को जिस की स्थापना कांन्स्टैन्टाईन ने ३१२ ई० में रोम साम्राज्य के पतन के पश्चात् की थी बहुत हानि पहुँचाई, और फ्रांस, इटली और अन्य कई देशों में बड़े-बड़े नगरों को जला कर भस्म कर दिया। किन्तु यूरोप की छोटी-छोटी जातियों ने हैलिनिक सम्राट् को सहायता दी और उन सब ने मिल कर ऐटिला को परास्त किया। दो साल पश्चात् उस की मृत्यु हो गई और यूरोप सदैव के लिये हूणों के अत्याचार से बच गया। फिर उन का कोई चिन्ह यूरोप में दिखाई नहीं दिया।

पाँचवीं शताब्दी के मध्य में हूणों ने भारत की ओर रुख किया। स्कन्द गुप्त ने तोरमान को जो हूणों का सरदार था भारत भूमि पर पग न रखने दिया। किन्तु स्कन्द के पश्चात् तोरमान ने फिर प्रहार

किया और पंजाब, मालवा और सिन्ध पर अधिकार स्थापित कर महाराजाधिराज की पदवी ग्रहण की।

तोरमान के उत्तराधिकारी मिहिर गुल ने हूण साम्राज्य को और भी सुदृढ़ बनाने की चेष्टा की और सियालकोट को अपनी राजधानी बनाया। भारतीय राजाओं ने जनता को उस के अत्याचारों से बचाने के लिये सामूहिक रूप से मिहिर गुल को रण में ललकारा और वह परास्त होकर काश्मीर भाग गया जहाँ वह कई वर्ष तक क्रूरता से राज्य करता रहा।

मन्दसौर साम्राज्य

हूणों के विरुद्ध किये गए संग्राम की सफलता का श्रेय यशोधर्मन को प्राप्त हुआ जो मन्दसौर का शासक था। बालादित्य गुप्त, जिस की उस ने हूणों को परास्त करने में सहायता की थी, यशोधर्मन की बढ़ती हुई शक्ति को न रोक सका और मन्दसौर साम्राज्य हिमालय से लेकर पूर्वी घाट तक और ब्रह्मपुत्र से पश्चिमी सागर तक फैल गया।

यशोधर्मन के विषय में अधिक ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त नहीं हुए, फिर भी मन्दसौर का स्तम्भ लेख, उस के शासन काल पर काफी रोशनी डालता है। ऐसा विदित होता है कि उसने सर्वव्यापी ख्याति प्राप्त की थी। लोक गाथाओं में उसे विक्रमादित्य के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

मौखरी साम्राज्य

मन्दसौर की सत्ता लुप्त होने के पश्चात् हूणों ने फिर प्रहार आरम्भ कर दिये और वे पंजाब और मध्य-भारत पर आधिपत्य जमा बैठे। भारतीय शासकों ने जिन में चेदी के करण का नाम बहुत प्रसिद्ध है उन्हें कई बार परास्त किया। आखिर छठी शताब्दी के मध्य में एक नई जाति उत्पन्न हुई जिस ने हूणों की शक्ति को समाप्त कर उन्हें अपना मित्र बना लिया।

यह नई जाति मौखरी थे। उनका पहिला शासक इशानवर्मन था

जो उत्तर प्रदेश में राज्य करता था। उस ने हूणों की सहायता से कुमार गुप्त पर आक्रमण किया और मगध का बहुत-सा भाग अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। दामोदर गुप्त ने मौखरियों की बढ़ती हुई सत्ता को रोकने का प्रयत्न किया किन्तु वह लड़ाई में मारा गया। उस के पश्चात् गुप्त शासकों में मौखरियों को रोकने की सामर्थ शेष न रह गई।

मौखरी साम्राज्य की राजधानी कन्नौज के स्थान पर थी और यह अवध से लेकर मगध तक फैला हुआ था। अन्तिम मौखरी सम्राट् ग्रहवर्मन ने थानेश्वर के वर्द्धन वंश की राजकुमारी से विवाह कर अपनी सत्ता और भी बढ़ा ली।

हर्ष वर्द्धन

गुप्त शासक मौखरियों को किसी प्रकार समाप्त करना चाहते थे। उन में से एक ने ग्रहवर्मन की धोखे से हत्या कर दी। थानेश्वर के शासक राज्य वर्द्धन ने बहनोई का बदला लेने की चेष्टा की किन्तु उसे भी धोखे से मरवा दिया गया। इस प्रकार थानेश्वर और कन्नौज के सिंहासन खाली हो गए। राज्य मन्त्रियों ने हर्ष वर्द्धन को जो राज्य वर्द्धन का छोटा भाई था और एकांत का जीवन व्यतीत कर रहा था थानेश्वर और कन्नौज का राज्य संभालने के लिये निमन्त्रित किया।

हर्ष ने ६०६ ई० में सिंहासन संभाला और थोड़े ही वर्ष में समस्त उत्तरी भारत पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। हर्ष दक्षिण को भी अपने साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था किन्तु सफल न हुआ।

हर्ष संसार में विजेता के नाम से प्रसिद्ध नहीं। उस की ख्याति का कारण धर्म और कला के प्रति उसका प्रेम था। वह स्वयं एक कवि और नाटककार था। उस की कई कृतियाँ विशेष रूप से रत्नावली उच्च कोटि के संस्कृत साहित्य में गिनी जाती हैं।

हर्ष ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था किन्तु जीवन के अन्तिम काल में उस का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हो गया। उस ने बौद्धों की एक

सभा लगाई और बौद्ध धर्म के नियमों को निबन्धित किया ।

हर्ष की जीवनी बाण भट्ट ने लिखी है जो "कादम्बरी" का रचयिता है । हर्ष कालीन भारत के विषय में ह्यू न सांग की कृतियों से भी जानकारी मिलती है ।

ह्यू न सांग

ह्यू न सांग एक चीनी यात्री था जो सहस्रों कोस का सफर तय कर गोबी के मरुस्थल और पामीर की कठिनाइयाँ सहता हुआ ६३० ई० में भारत पहुँचा । चीन के सम्राट् टाई सूंग ने उस की यात्रा पर प्रतिबन्ध लगाया था । उसे एक अपराधी की भांति चीन छोड़ना पड़ा । गोबी के मरुस्थल में वह मार्ग भूल गया और पाँच दिन तक भूखा प्यासा रहा । पामीर को पार करते समय उस के १२ साथी शीत से जम गए ।

आते हुए वह उत्तरी मार्ग से ताशकन्द और समरकन्द होता हुआ आया था । जाते समय उस ने दक्षिणी मार्ग लिया और काश्गर और यारकन्द से होता हुआ चीन लौटा । सिंध नदी पार करते समय उस का एक हाथी जिस पर बहुत से ग्रन्थ लदे थे डूब गया ।

ह्यू न सांग बहुत साहसी व्यक्ति था । उसे संसार के विषय में अधिक से अधिक जानने की अभिलाषा थी इस लिये उस ने लम्बा और कठिन मार्ग लिया । भारत में वह जिज्ञासा के भाव ले कर आया था और प्रत्येक बात को विस्तार से जानना चाहता था ।

समरकन्द की उस ने बहुत सराहना की है जिस से प्रतीत होता है कि पश्चिम में उस जैसा नगर कोई भी न था । मार्ग में तुर्कों से उसका सम्पर्क हुआ जो बौद्ध थे । उन्हों ने ह्यू न सांग का बहुत आदर सत्कार किया ।

ह्यू न सांग का भारत वर्णन एक उपन्यास की भाँति है जिसे पढ़ते-पढ़ते जी नहीं ऊबता किन्तु ऐतिहासिक रूप से बहुत सी सामग्री ऐसी है जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

ह्यू न सांग चिरकाल तक नालन्द विश्वविद्यालय में अध्ययन करता रहा। वहाँ १०००० विद्यार्थी थे और एक सहस्र से ऊपर अध्यापक। इस विद्यालय में प्रविष्ट होने की आज्ञा प्राप्त करना सुगम न था। केवल विशेषज्ञ ही यहाँ विद्याध्ययन कर सकते थे। चीन, जापान, तिब्बत, कोरिया, मंगोलिया और अन्य बहुत से देशों से विद्यार्थी आते थे। यहाँ बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के ग्रन्थों के अतिरिक्त चित्र कला, नृत्य और संगीत, वास्तु कला, चिकित्सा, कृषि, नक्षत्र विद्या, पशु पालन आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। तीन विशाल भवनों का वर्णन ह्यू न सांग ने दिया है जिन की दीवारों पर महान् ग्रन्थों के अंश लिखे हुए थे। प्रवेश करने के लिये कड़ी परीक्षा होती थी और योग्य व्यक्ति ही दाखिल किये जाते थे।

नालन्द के अतिरिक्त जो पाटलीपुत्र के निकट था तक्षशिला, पेशावर के निकट, विक्रमशिला, बिहार में, वल्लभी काठियावाड़ में, काशी उत्तर प्रदेश में, उज्जैन मालवा में और अमरावती दक्षिण में अन्य प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे जहाँ सहस्रों विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे।

मौलिक शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध था। सभी श्रेणियों के लोग विद्याध्ययन से प्रेम रखते थे। अध्यापन का काम प्रायः भिक्षुओं और साधुओं के सुपुर्द होता था।

भारत के जनसाधारण भी सभ्य और सदाचारी थे। व्यापार में वह छल करना न जानते थे और किसी को मन वचन या कर्म से हानि पहुँचाना बुरा समझते थे। वे अपराध से बचते थे और यद्यपि देश में चोर डाकू उत्पन्न हो गए थे किन्तु अधिकतः मार्ग सुरक्षित थे।

ह्यू न सांग की हर्ष के साथ घनिष्ट मित्रता स्थापित हो गई और वह कई वर्ष उस के साथ रहा। उस ने हर्ष की मुहिमों का हाल लिखा है और बताया है कि रणबांकुरा होते हुए भी उस के मन में करुणा के भाव थे और वह अहिंसा के प्रचार पर बहुत जोर देता था। हर्ष अपने

साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों का भ्रमण करने प्रायः जाता था और दीन दुखियों का दुख निवारण करता था। विदेशी यात्रियों की सुविधा को वह बहुत महत्त्व देता था।

हर्ष कन्नौज में विद्वानों को एकत्रित कर उन से वार्तालाप किया करता था। हर्ष की महात्मा बुद्ध के प्रति श्रद्धा देख कर ह्यू न सांग को बहुत प्रसन्नता होती थी।

एक बार हर्ष अपने चीनी मित्र को प्रयाग अर्थात् यमुना और गंगा के संगम पर साथ ले गया। वहाँ उस ने बहुत दान पुण्य किया यहाँ तक कि अपने मूल्यवान् वस्त्र भी ब्राह्मणों को दे दिये। महात्मा बुद्ध, सूर्य और शिव की उपासना के पश्चात् उस ने साधारण वस्त्र धारण किये।

ह्यू न सांग ने कन्नौज और भारत के अन्य कई नगरों की बहुत प्रशंसा की है। पाटलीपुत्र और दूसरे प्राचीन नगर टूट-फूट गए थे और उन का बहुत सा भाग खंडहर बन गया था।

ह्यू न सांग पन्द्रह वर्ष पश्चात् चीन लौटा तो टाई सूंग ने उस का बहुत मान किया। २० घोड़ों पर महात्मा बुद्ध के स्मारक और स्मृतियाँ और ग्रन्थ लाद कर राजधानी में उस का जलूस निकाला गया।

टाई सूंग ने उसे विदेश मन्त्री नियुक्त करना चाहा किन्तु ह्यू न सांग एक महात्मा था। वह बुद्ध धर्म की सेवा करना चाहता था। चीन में रह कर उस ने उन ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया जो वह भारत से ले गया था।

ह्यू न सांग की यात्रा ने चीन और भारत में घनिष्टता उत्पन्न कर दी और भारत और चीन में राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया।

हर्ष ने सिंहासन प्राप्त करते ही अपनी बहिन राज्यश्री की खोज लगाई। फिर बंगाल के नरेश पर चढ़ाई की जिसने उसके भाई की

हर्ष के कारनामे

हत्या की थी। यद्यपि बंगाल नरेश शशाँक हार गया फिर भी उसने हर्ष का विरोध करना न छोड़ा। वह दक्षिण के चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय से मिल गया और आयुपर्यन्त हर्ष के लिये काँटा बना रहा।

भारत की राजनैतिक स्थिति उस समय ऐसी थी कि हर्ष के लिये युद्ध करना अनिवार्य हो गया। वह देश को सुदृढ़ और संगठित करना चाहता था। उसने अपने शासन काल के पहले पाँच वर्ष पंजाब, कन्नौज, बंगाल, बिहार और उड़ीसा को विजय करने में व्यतीत किये। कामरूप के राजा ने उससे मित्रता कर ली।

६३३ ई० के लगभग हर्ष ने गुजरात का रुख़ किया जहाँ एक प्रतापी राजा ध्रुवसेन द्वितीय राज्य करता था। उसकी हार हुई और गुजरात हर्ष के साम्राज्य में सम्मिलित हो गया।

दक्षिण विजय करने की हर्ष ने कई बार चेष्टा की। दक्षिण में चालुक्य एक शक्तिशाली राज्य था। उसकी सैनिक शक्ति और वीरता की ह्यूनसांग ने बहुत प्रशंसा की है। हर्ष अपने प्रयत्न में सफल न हो सका। इस प्रकार दक्षिण में उसका साम्राज्य नर्मदा तक सीमित रह गया।

वाणभट्ट के अनुसार हर्ष ने सिन्ध और नेपाल को भी विजय किया किन्तु वाणभट्ट द्वारा रचित हर्ष चरित्र पूर्ण रूप से ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता।

हर्ष के विदेशी सम्बन्ध

हर्ष का तिब्बत, चीन और ईरान से घनिष्ट सम्बन्ध था। उसने ६४१ ई० में एक शिष्ट मंडल चीन भेजा। ६४६ ई० में वांग ह्यू न सी के नेतृत्व में चीन से शिष्ट मंडल हर्ष के दरबार में आया।

हर्ष की कला प्रियता

हर्ष एक प्रसिद्ध लेखक और कला प्रेमी था। उसके लिखे तीन नाटक : रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द उच्च कोटि के ग्रन्थ कहे जाते हैं। बांसखेड़ा स्थान पर जो लेख मिला है उससे प्रतीत होता है कि हर्ष बहुत सुन्दर लेख लिखता था। कहा जाता है कि उसने व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ भी लिखा था जो उपलब्ध नहीं हुआ।

उसके दरबार में अनेक लेखक और कलाकार मान पाते थे। वाणभट्ट उनमें प्रमुख समझा जाता है। वाणभट्ट ने हर्ष चरित्र के अतिरिक्त कादम्बरी की रचना की जो संस्कृत में एक अनूठा उपन्यास है। मतंग, दिवाकर, जयसेन अन्य प्रसिद्ध विद्वान् थे। प्रसिद्ध कवि भर्तृहरि की तिथि निश्चित नहीं किन्तु कहा जाता है कि वह भी हर्ष के काल में हुआ था।

हर्ष की ओर से बहुत सा धन शिक्षण संस्थाओं पर व्यय होता था। नालंद विशेष रूप से उस का आभारी था।

हर्ष की सहिष्णुता

हर्ष की आयु सिंहासन आरोहण के समय १६ वर्ष की थी। उस समय वह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था किन्तु बाद में वह बौद्धमत की ओर झुक गया। ह्यू न साँग के सम्पर्क से बौद्ध मत के सिद्धान्तों में उसकी अगाध श्रद्धा हो गई। हर्ष ने सदैव सहिष्णुता का प्रमाण दिया। वह सब धर्मों को एक समान समझता था।

राजकीय प्रबन्ध

ह्यू न सांग ने लिखा है कि हर्ष की राजधानी कन्नौज अति सुन्दर नगर था। उसने पाटलीपुत्र का स्थान ले लिया था जिस के खंडहर हो चले थे। कन्नौज में राजकीय प्रबन्ध बहुत अच्छा था।

हर्ष का राज्य जनता की भलाई के लिए था। सम्राट् अपने साम्राज्य के प्रत्येक भाग में भ्रमण करता था और मालूम करता था कि सरकारी अफ़सर किस कुशलता से काम करते हैं।

चीनी यात्री के अनुसार राजकीय प्रबन्ध उदार था। जनता पर सरकारी अफ़सरों की माँगें न थीं। किसी से बिना वेतन काम न लिया जाता था। सरकारी भूमि के चार भाग थे। एक भाग की आय से राजकीय काम काज चलता था। दूसरे भाग की आय जन-सेवा के काम में व्यय होती थी। तीसरे और चौथे भाग की आय से विद्वानों और महात्माओं का निर्वाह होता था। शिक्षण संस्थाओं के लिये पृथक भूमि नियत थी, उदाहरणतः नालंद मठ के लिये १०० के लगभग गाँव अर्पित थे।

हर्ष के काल में घोर दण्ड दिये जाते थे। अपराधियों का प्रायः अङ्गविच्छेद कर दिया जाता था। मृत्यु दण्ड का प्रयोग भी होता था। जुर्माना एक साधारण दण्ड था। अग्नि, जल प्रवेश आदि यातनाओं द्वारा निर्णय करने की प्रथा प्रचलित थी।

राज्य की ओर से प्रबन्ध होने पर भी मार्ग पूर्णतः सुरक्षित न थे। स्वयं ह्यू न सांग डाकुओं का एक दो बार आखेट बना।

सरकारी काम काज का व्योरा रखा जाता था।

हर्ष की सेना

हर्ष की सेना महान् थी। पचास हज़ार पैदल, एक लाख घुड़सवार, साठ हज़ार हाथी उसकी सेना में थे। रथ भी थे किन्तु उनका प्रयोग व्यापक न था।

सामाजिक स्थिति

नगरों के परकोटे प्रायः ईंटों के बने होते थे, साधारण मकान बाँसों के। छतें प्रायः लकड़ी की होती थीं, जिन पर खपरेल पड़े होते थे। मकान ऊँचे, खुले और हवादार थे। दीवारों पर रंग किया जाता था। फ़र्श गोबर से लिपे होते थे, और ऋतु के अनुसार उन पर फूल बिछा दिये जाते थे। अमीर लोगों के घर अति सुन्दर थे। बौद्ध मठ भी वास्तुकला का अद्भुत नमूना होते थे।

लोग खुले वस्त्र पहनते थे जिन्हें सिलने की आवश्यकता न पड़ती थी। आभूषणों का रिवाज था। जूते बहुत कम पहने जाते थे। सफ़ाई और पावनता का उन्हें बहुत विचार रहता था। मिट्टी या लकड़ी के बासन एक बार के प्रयोग के पश्चात् फेंक दिये जाते थे। एक समय का बना हुआ भोजन दूसरे समय प्रयुक्त न होता था।

दूध, दही, साग भाजी, अनाज और चावल लोगों का मुख्य भोजन था। मांस, लहसन और प्याज़ का निषेध था।

जात पांत में कठोरता आ गई थी। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति में विवाह न करता था। सती का रिवाज था। पर्दे की प्रथा न थी।

लोगों के व्यवहार में ह्य़ू न सांग ने उच्छृंखलता अनुभव की किन्तु उनकी नैतिकता की वह बहुत प्रशंसा करता है। उनकी उदारता सराहनीय थी और वे किसी का माल हथियाने को बहुत बुरा समझते थे। उनकी न्यायप्रियता सीमा से बढ़ गई थी। बौद्ध मत के दो दल हीनयान और महायान १८ के लगभग समुदायों में बँट गए थे। बौद्धमत का पतन हो रहा था किन्तु अब भी उसका जनता पर बहुत प्रभाव था। बौद्ध मठों की संख्या बहुत थी।

संस्कृत देश की प्रमुख भाषा थी।

शिक्षा मठों या मन्दिरों में दी जाती थी। ब्राह्मण लोग अपने घरों में भी बालकों को शिक्षा देते थे। उच्चशिक्षा का प्रबन्ध बड़े-बड़े मठों में था जिन्हें विश्वविद्यालय कहना चाहिये। नालंद का दर्जा बनारस विश्वविद्यालय के समान था। नालंद के आचार्य शीलभद्र की चीनी यात्री ने बहुत सराहना की है।

ऐतिहासिक स्रोत

हर्ष कालीन इतिहास का मुख्य स्रोत ह्यूून सांग का ग्रन्थ "सी यू की" है। इसके अतिरिक्त बाणभट्ट के ग्रंथ से भी बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। मधुबन सोनपत और बांसखेड़ा के लेख हर्ष के विषय में बहुत जानकारी प्रदान करते हैं। वास्तव में

भारत के प्राचीन इतिहास में हर्ष के काल के विषय में सब से अधिक सामग्री प्राप्त होती है।

हर्ष के पश्चात्

हर्ष की मृत्यु (६४७ ई०) के पश्चात् भारतीय संस्कृति का रूप दक्षिण में निखरता दिखाई देता है। दूर दक्षिण में चार बड़े राज्य थे जिन्हें हर्ष समाप्त न कर सका था। १. पाण्ड्य, जो वर्तमान मदुरा, के आस-पास के इलाके पर शासन करते थे। २. चोल जो माइसोर और मद्रास के कुछ भाग के शासक थे। ३. चेर अर्थात् केरल जिन के आधीन पश्चिमी घाट था। ४. पल्लव जिस की निश्चित सीमाओं का बोध नहीं।

राष्ट्रकूट और चालुक्य दो अन्य शक्तियाँ थीं जो आठवीं शताब्दी में इतिहास के चित्रपट पर आईं।

उत्तरी भारत

उत्तरी भारत में काश्मीर, काबुल, कन्नौज, उड़ीसा, बंगाल, कामरूप प्रसिद्ध राज्य थे किन्तु इन के अतिरिक्त और भी कई छोटे-छोटे राज्य उत्पन्न हो गये थे। वल्लभी और मगध के राजाओं ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी थी।

छोटे बड़े सभी राजा कन्नौज पर अपना अधिकार जमाना चाहते थे। दक्षिण और उत्तर के राजाओं में भी इस विषय में प्रतिद्वन्द्विता थी। इस समय जो राजा कन्नौज पर अधिकार प्राप्त कर लेता था, अपने को भारत का सम्राट् समझने लगता था।

संस्कृति

जैसे ये शासक कन्नौज को पाने के लिये उत्सुक थे वैसे ही उनमें भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य को प्रोत्साहन देने में प्रतियोगिता थी। यही कारण है कि इतनी राजनैतिक अशान्ति होने पर भी भारत का सामाजिक जीवन अस्थिर नहीं हुआ। उस में वही संतुलन और वही जीवन शक्ति पाई जाती है जो भारत में सदैव रही।

कला और साहित्य के अनेक नमूने, चीनी यात्रियों का वृत्तान्त और शुक्राचार्य का नीतिशास्त्र इस बात की साक्षी देते हैं कि भारत उन्नति के पथ पर बढ़ता ही चला गया।

चीनी यात्री इत्सिंग ६७१ ई० में चीन से एक ईरानी जलयान में सवार होकर चला। कुछ समय तक सुमात्रा में रहकर उसने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। ६७३ ई० में वह हुगली पहुँचा और नालन्द विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन करने लगा। उसने भारतीय जीवन के विषय में बहुत से तथ्य एकत्रित किये।

इत्सिंग

उस ने लिखा है, "भारत के लोग प्रायः गेहूँ खाते हैं। दक्षिण में चावल लोगों का मुख्य भोजन है। मांसाहार को लोग प्रायः अच्छा नहीं समझते किन्तु इसका निषेध नहीं। दूध, दही, मक्खन और घी की बहुतायत है। फल और भाजी लोग बड़े चाव से खाते हैं। शुद्धता पर वे बहुत ज़ोर देते हैं। एक समय का बचा हुआ भोजन दूसरे समय प्रयोग में नहीं लाते।

"इस देश को आर्य देश के नाम से पुकारा जाता है। कुछ लोग इसे मध्यदेश भी कहते हैं। यहाँ के रहने वालों को चीनी लोग इन्दु और मंगोल तथा तुर्क हिन्दू कहते हैं किन्तु ये नाम सर्वव्यापक नहीं। यहाँ के रहने वाले बहुत सभ्य और श्रेष्ठ हैं इसलिये यह आर्य देश के नाम से ही प्रसिद्ध है।"

भारत के लोग दूर देशों में जाते थे जिनके उन्होंने संस्कृत भाषा में नाम रखे हुए थे जैसे उस के अपने देश के लिये 'चीना देश।'

इत्सिंग अपने साथ संस्कृत की बहुत सी पुस्तकें ले गया जिन में से कई एक प्रकाशित हुईं। जो पुस्तकें चीन में पहिले पहिल मुद्रित हुईं उनमें मुख्य स्थान संस्कृत की पुस्तकों का है। भारत के आपत्ति काल में जब उस पर तुर्कों के आक्रमण हुए तो तिब्बत के मार्ग से बहुत सा संस्कृत साहित्य चीन पहुँच गया था।

शुक्राचार्य का नीतिशास्त्र

भारत की जिस स्थिति का वर्णन इत्सिंग ने किया है उसका विस्तृत वृत्तान्त शुक्राचार्य के नीतिशास्त्र में मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार भारत में प्राय: गण राज्य थे। कहीं कहीं वंशीय राज्य थे किन्तु वहाँ भी गाँवों और नगरों को स्वाधीनता प्राप्त थी।

राजा मन्त्रियों की अनुमति से राज्य करता था। राजपुरोहित को उच्च पदवी दी जाती थी और उसकी बात टालना राजा के लिये सुगम न था। यदि शासक अयोग्य होता था तो उसे पदच्युत कर दिया जाता था।

गाँव की पंचायतों और नगरों के व्यापारी संघों को केन्द्रीय शासन में भी बहुत अधिकार प्राप्त थे। व्यापार संबन्धी नीति में व्यापारियों के मुखिया की जिसे शेशी कहते थे, अनुमति लेना अनिवार्य था।

राजा अपने आप को प्रजा का सेवक समझता था और इसी प्रकार व्यवहार करता था। अपने अपने प्रदेश की कृषि और उद्योगों को उन्नत करने का उत्तरदायित्व प्रत्येक शासक अपने ऊपर लेता था।

कतिपय जातकों में जो इस युग की रचना हैं ऐसी ही परिस्थितियों का वर्णन है।

एक नई शक्ति

सातवीं शताब्दि में अरब में एक नई शक्ति ने जन्म लिया जिस ने यूरोप की काया पलट दी। अरबों ने भारत पर भी प्रहार किया और सिन्ध को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस नई शक्ति के प्रादुर्भाव से भारत में भी बहुत परिवर्तन उत्पन्न हुए जिस के परिणाम स्वरूप भारतीय जीवन में क्रान्ति आई और बहुत सी प्राचीन हो गईं।

शौर्य-युग

परिच्छेद १६

इस्लाम का अभ्युदय

भारत

जिस युग का हम वर्णन कर रहे हैं उस का श्री गणेश अरब निवासी मुहम्मद बिन कासिम के सिन्ध पर आक्रमण से हुआ।

६४७ ई० में हर्ष वर्द्धन की मृत्यु हुई और मानो भारत बाहु हीन हो गया। उस में विदेशियों के प्रहारों को रोकने की सामर्थ्य न रही। उस की केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गई। राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सूत्र भी ढीले पड़ गए। वियोजन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई, जिसने तुर्क काल में भीषण रूप धारण कर लिया।

यह स्थिति इस्लाम के भारत में पदार्पण का कारण बनी या इस्लाम का आगमन उसका हेतु बना, यह जानने के लिये हम उस समय के यूरोप पर दृष्टि डालते हैं जहाँ इस्लाम अंधड़ की भाँति छा गया था।

चौथी शताब्दी तक ईसाई धर्म रोमन शासकों के संताप से पीड़ित रहा, इसके पश्चात् कान्स्टैन्टाईन ने ईसाई धर्म की शरण

यूरोप

लेकर एक नए साम्राज्य की नींव डाली और पूर्व में अपने नाम पर एक नए नगर की स्थापना की जहाँ एक नवीन संस्कृति ने जन्म लिया जो यूनानी और रोमन संस्कृति का मिश्रण थी और जिस पर मिश्री राज्य प्रथा की पाण चढ़ी थी। यह बाईज़ैन्टियन संस्कृति के नाम से प्रसिद्ध हुई।

रोम पर पोप का अधिकार हो गया और नई जातियां जिन्होंने पश्चिमी यूरोप में छोटे-छोटे राज्य स्थापित किये थे उसे सर्वोपरि मानने लगीं। धीरे-धीरे पोप की सत्ता बढ़ने लगी और उसे सम्राट् नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त हो गया। उसका आदेश शासकों के लिये अटल था।

शासन सत्ता प्राप्त हो जाने से ईसाई धर्म की खूब वृद्धि हुई किन्तु कतिपय पादरियों के दुराचार के कारण धार्मिक सिद्धान्तों ने पाखण्ड का रूप धारण कर लिया। अंधविश्वास, भ्रष्टाचार और रूढ़ीवाद के विषैले सर्प यसूह मसीह द्वारा प्रवर्तित कोमल और सुन्दर सिद्धान्तों को कठोर और घृणित बनाने लगे। सर्वसाधारण जो हज़रत ईसा पर ईमान लाने से सान्त्वना प्राप्त करते थे धर्म को अभिशाप समझने लगे।

भोगविलासासक्त शासक जनता की भलाई की चिन्ता क्या करते? उन्हें वैभव का जीवन चाहिये था। उनके और उनके मनसबदारों के स्वेच्छाचार और निरंकुशता ने मानव को इतना तुच्छ बना दिया कि व्यक्तिगत जीवन का कोई मूल्य शेष न रहा।

ईरान की सत्ता को सिकन्दर महान् ने नष्ट कर दिया था। ईसाई धर्म जोरास्ट्रियन धर्म के उदार सिद्धान्तों के कुरूपण का कारण बना। जैसे बाइबल के कथनों का विरोध करने पर मृत्यु एक साधारण दण्ड था, उसी प्रकार जंद अवस्था की अवहेलना का परिणाम अग्नि प्रवेश था।

निरन्तर कष्ट सहन करने से सर्व साधारण की दशा कुछ ऐसी हो गई थी कि वे इस अभिशाप से बचने के लिये किसी भी शक्ति का स्वागत करने को तैयार थे। इस्लाम ने उन्हें सामाजिक समानता का सन्देश दिया, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का आश्वासन दिलाया और बहिश्त अर्थात् स्वर्ग का सहल और सुगम मार्ग दिखाया।

इस्लाम और यूरोप

ऐसी परिस्थितियों में इस्लाम के प्रादुर्भाव ने अरबों को स्वर्ण अवसर प्रदान किया। इस्लाम की पताका लेकर वे ईरान गए और वहाँ जोरास्ट्रियन धर्म को उखाड़ फेंका, बाईज़ैन्टियन साम्राज्य की जड़ें खोखली कर दीं और वे अवरुद्ध बाढ़ की भाँति समस्त मध्य एशिया और मिश्र पर अच्छादित हो गये। वहाँ से वे स्पेन गए। पोप भी उनके प्रवाह को न रोक सका।

इस्लाम ने न केवल राज्य सत्ता प्राप्त की बल्कि मानसिक रूप से भी जनता पर आधिपत्य स्थापित किया। पोप के मुकुट की कान्ति और आभा मन्द पड़ गई।

भारत और इसलाम

भारत में इस्लाम एक अतिथि के रूप में आया। अरब के व्यापारी भारत के पश्चिमी तट पर आते जाते थे। उनमें से कुछ वहाँ रहने भी लगे थे। उनके साथ इस्लाम के प्रचारक भी आए किन्तु वे यह प्रत्यक्ष न कर सके कि इस्लाम भारतीयों के लिये कोई नया सन्देश लाया है। इस्लाम के प्रचार के विषय में जो तथ्य प्राप्त हुए हैं, उनसे विदित होता है कि सातवीं शताब्दी के अन्त तक दक्षिणी भारत में किसी भी भारतीय ने इस्लाम स्वीकार नहीं किया था।

किन्तु भारत में इस्लाम की पश्चिमी विजय के समाचार पहुँचते थे। इन्होंने भारत को चुनौती दी और वह धर्म की रक्षा के लिए कटिवद्ध हो गया। वहुत से विद्वानों ने इस नए मत का अध्ययन किया और उसके विरोध के उपाय निकाले। इस विषय में निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं होती किंतु सातवीं और आठवीं शताब्दी में कुछ ऐसी धाराएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं जो इस्लाम की प्रतिक्रिया प्रतीत होती हैं।

इस प्रतिक्रिया की व्याख्या करना मनोविज्ञान का विषय है, किंतु पूर्व और पश्चिम में इस्लाम के प्रभाव की विभिन्नता से यह परिणाम

सुगमता से निकाला जा सकता है कि पूर्व और पश्चिम की सभ्यता में कोई मौलिक अंतर है । इस पर हम किसी अगले परिच्छेद में विचार करेंगे ।

अरब देश

कहा जाता है कि अरब देश जहाँ इस्लाम का जन्म हुआ किसी समय भारत का उपनिवेश था । इस भूमि पर पदार्पण करने वाला सब से पहला भारतीय और्व ऋषि था । उस समय अरब मरुभूमि न थी ।

अरब देश छठी शताब्दी के अन्त तक यूरोप की दृष्टि से ओझल रहा । यहाँ यायावर जातियाँ रहती थीं जिन में बद्दू सबसे प्रसिद्ध जाति थी । ये जातियाँ सभ्यता के विचार से पिछड़ी हुई थीं किंतु इनमें स्वातन्त्र्य प्रेम कूट-कूट कर भरा था । यों तो अरब देश ईरान के आधीन था और सदैव ही उस पर किसी न किसी विदेशी जाति का शासन रहा किन्तु अरब लोगों को कभी इस बात का विचार न आया था कि कौन जाति उन पर शासन करती है । न किसी ने उन पर आक्रमण किया और न उन्होंने किसी पर ।

अरब ऐसा देश नहीं है जिसे विजय करने का किसी को प्रलोभन हो । एक महान् मरुस्थल जिसमें केवल कहीं कहीं हरियाली के चिह्न हों किसी विजेता का क्या भाता और इस प्रकार की भूमि के लिए ऐसी जाति से युद्ध करना जो जान पर खेल कर स्वतन्त्रता की रक्षा करने को उद्यत हो कोई बुद्धिमानी नहीं थी । कुछ ऐसी व्यवस्था बन गई थी कि जो भी जाति उत्कर्ष पर होती वह ही अरब को अपने साम्राज्य में सम्मिलित समझता । इस में अरब वालों की अनुमति लेने की कोई आवश्यकता न समझी जाती । इस पराधीनता का अरबों के जीवन पर कोई प्रभाव न पड़ता था । वे लोग निश्चिन्तता से अपने देवी देवताओं की पूजा करते, आपस में लड़ते झगड़ते और वर्ष में एक बार सन्धि कर सब झगड़े समाप्त कर देते ।

अरब लोग सभी यायावर न थे । इनमें बहुत से मध्य एशिया

और यूरोप के देशों में रहते थे और व्यापार करते थे। ईरानी और बाईज़ैन्टियन सेना में भी बहुत से अरब थे। अरब के दो नगरों मक्का और यथरीब में भी व्यापार होता था किन्तु अरब सभ्यता के संरक्षक खेमों में ही रहते थे और स्थान-स्थान पर घूमते थे।

अरबों का पूजनीय स्थान मक्का था, जहाँ उनके देवताओं की मूर्तियाँ थीं। यहाँ एक काले रंग का पत्थर था जिसको संगेअसवद कहते थे। यह सब से पवित्र समझा जाता था और अरब लोग इसको चूमते थे। अरबों में कन्याओं के वध करने और बहु विवाह की कुप्रथाएँ प्रचलित थीं।

हज़रत मोहम्मद

अरब में नया जीवन डालने वाले हज़रत मोहम्मद थे। बद्दू कबीले के एक साधारण कुटुम्ब में इनका जन्म हुआ था। शिक्षा का उस काल में अरब देश में नाम भी न था। मोहम्मद साहब का बाल्यकाल खेल कूद में बीता। छोटी आयु में ही ये खदीजा नाम की एक धनी विधवा के यहाँ नौकर हो गए। इनकी योग्यता का खदीजा पर बहुत प्रभाव पड़ा और यद्यपि वह आयु में उनसे कई वर्ष बड़ी थी फिर भी उसने मोहम्मद साहब से विवाह कर लिया।

चालीस वर्ष की आयु तक मोहम्मद साहब ने कोई असाधारण प्रतिभा नहीं दिखाई। वे कविता किया करते थे और उनको यहूदियों और ईसाईयों से वार्तालाप करने का बहुत शौक था। वे कभी-कभी मरुस्थल में चले जाते और कई दिन और रात वहाँ रहते। सुनसान और एकान्त मरुस्थल में सम्भवतः उनकी आत्मा में जागृति उत्पन्न हुई और उन्होंने अनुभव किया कि ईश्वर एक है और मूर्तियों की पूजा करना उचित नहीं। उन्होंने पहले-पहल ये विचार अपनी पत्नी और कुछ मित्रों पर जिन में अबुबकर भी थे प्रकट किये। उन्होंने इन विचारों की बहुत सराहना की।

इसलाम धर्म

धीरे-धीरे ये विचार अन्य लोगों तक पहुँचने लगे और मोहम्मद साहब ने खुल्लम खुल्ला उनका प्रचार आरम्भ कर दिया। उन्होंने मक्का की मूर्तियों को पूजने का विरोध किया। इस से उनके प्रति लोगों की शत्रुता हो गई और यद्यपि यह प्रथा चली आई थी कि मक्का में किसी का वध न किया जाए फिर भी हज़रत मोहम्मद का वध करने की योजना बनाई गई और इस को कार्याविन्त करने का प्रयत्न भी किया गया। हज़रत मुहम्मद चुपके से खिसक गए और यथरीब पहुँचे। यह २० सितम्बर ६२२ ई० की घटना है। यहीं से इस्लामी संवत् आरम्भ होता है जो चन्द्रमा की गति के अनुसार है और जिस का वर्ष अपेक्षाकृत छोटा होता है।

हज़रत मुहम्मद का यथरीब में बहुत स्वागत हुआ यहाँ तक कि यथरीब का नाम बदल कर मदीनतुल्नबी अर्थात् पैगम्बर का नगर रख दिया गया। संक्षेप में इसको मदीना कहते हैं।

मक्का और मदीना वालों के बहुत से युद्ध हुए। अन्त में मोहम्मद साहब की विजय हुई और वे मक्का के स्वामी होकर लौटे। हज़रत मोहम्मद ने मक्का को पवित्र स्थान स्वीकार किया और असवद को चूमना एक सवाब अर्थात् पुण्य का काम घोषित किया।

हज़रत मोहम्मद ने धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ानी आरम्भ की। मृत्यु से पूर्व मोहम्तद साहब समस्त अरब देश के स्वामी बन चुके थे। हज़रत मोहम्मद के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कई प्रकार की अप्रिय बातें कही जाती हैं। हम इतना ही कहेंगे कि हज़रत मोहम्मद ने जिस मत की स्थापना की वह बहुत से गुणों से परिपूर्ण है और विशेषकर सामाजिक ऐक्य का जो पाठ इस्लाम के द्वारा उन्होंने पढ़ाया है वह अद्वितीय है।

१. व्यावहारिक जीवन में करुणा और सम्मान। कुरान शरीफ

इस्लाम की तीन विशेषताएँ

जिसमें हज़रत मोहम्मद के आदेश लिखे हैं और जिस को मुसलमान ईश्वर कृत समझते हैं, इस बात पर बहुत जोर देती है कि सब मुसलमान भाई भाई हैं और आपस में बराबर हैं। दासों के साथ भलाई का सलूक करने का विशेष रूप से आग्रह किया गया है।

२. इस्लाम में ईश्वर को एक माना है। यह सिद्धांत स्पष्ट है और इस में किसी मिथ्या बोध की सम्भावना नहीं।

३. पुरोहितों का इस्लाम में कोई स्थान नहीं। ईसाई और बौद्ध धर्म पर पुरोहितों ने आधिपत्य स्थापित करके इन धर्मों का रूप बदल दिया था। किन्तु इस्लाम में प्रत्येक कार्यविधि को स्पष्टतः नियत किया गया है। इस का फल यह हुआ है कि आज तक इस्लाम में पुरोहितों की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी।

इन गुणों के अतिरिक्त इस्लाम के सिद्धांतों को समझना बहुत सुगम है और मनुष्य की साधारण मनोवृत्तियों की इस से तृप्ति होती है। स्वर्ग को इस्लाम ने एक भोग भूमि के रूप में प्रस्तुत किया है जो इस्लाम में विश्वास रखने वालों को सुगमता से ही प्राप्त हो सकता है।

हम इस्लाम की किसी अन्य मत से तुलना नहीं कर रहे। केवल उन गुणों का वर्णन कर रहे हैं जिन्होंने अरबों में एक असाधारण शक्ति का संचार किया और जिन के कारण इस्लाम इतनी शीघ्रता से फैल गया।

खलीफ़ा

हज़रत मोहम्मद की मृत्यु के पश्चात अबुबकर ने शासन संभाला। वे अरब के प्रथम खलीफ़ा बने। अबुबकर इस्लाम के नियमों का वास्तविक रूप से पालन करते आए थे। उन में इस्लाम की रूह कूट कूट कर भरी थी। उन को मोहम्मद साहब पर पूर्ण विश्वास था।

हज़रत मोहम्मद ने समस्त संसार को इस्लाम की ध्वजा के नीचे

लाने की योजना बनाई थी। इसी उद्देश्य से उन्होंने बहुत से सम्राटों को पत्र लिखे थे कि वे इस्लाम का प्रभुत्व स्वीकार करें। ये पत्र कुस्तुन्तुनिया के सम्राट् हिरोक्लियस को, ईरान के सम्राट् क्वाडाह को, चीन के सम्राट् ताईसांग और संभवत: भारत के कुछ राजाओं को भी भेजे गए थे। इन सम्राटों ने अवश्य ही इन पत्रों की हँसी उड़ाई होगी क्योंकि हज़रत मोहम्मद को तो उस समय कोई जानता ही न था। परन्तु अबुबकर ने सिद्ध कर दिया कि इन पत्रों में वास्तविकता थी। उस ने ४०,००० अरब सेना द्वारा मध्य पूव में तहलका मचा दिया। ईरान और कुस्तुन्तुनिया के सम्राट् परास्त हुए और उन्होंने अरब के प्रभुत्व को स्वीकार किया।

६३४ ई० में अबुबकर की मृत्यु हो गई और हज़रत उमर खलीफ़ा बने। इन के शासन काल में सीरिया, आर्मीनिया, मैसोपोटामिया, ईरान और मिस्र सुगमता से ही अरबों के हाथ आ गये और ईसाइयों के तीर्थ स्थान यरोसलम पर भी उन का अधिकार हो गया। ६४३ ई० में उमर की मृत्यु के पश्चात ओथमन खलीफ़ा बना। उस ने एक निरंकुश शासक का रूप धारण किया।

हज़रत अली ने जो हज़रत मोहम्मद का दामाद था, उस का विरोध किया और जब लोगों ने ओथमन को ६५६ ई० में पत्थरों से मार कर समाप्त कर दिया तो वह खलीफ़ा बना। किन्तु उस को ६६१ ई० में कत्ल कर दिया गया। मुसलमानों के दो दल सुन्नी और शिया बन गए। सुन्नी पाँचवें खलीफ़ा मुआविया के अनुयायी थे और शिया अली के। इन दोनों दलों में झगड़े चलते रहे जो अब तक चलते आ रहे हैं।

कुछ समय तक अरब की आन्तरिक स्थिति ने अरबों की बाहरी शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं डाला किन्तु ज्यों ही अब्बासिद वंश का राज्य स्थापित हुआ अरबों की बाहरी शक्ति क्षीण हो गई। अरब

के खलीफ़ा की सत्ता कम रह गई। स्पेन, उत्तरी अफ्रीका, मिश्र, और ईरान में अलग अलग खलीफ़ा बन गए, बग़दाद के खलीफ़ा की शक्ति सीमित हो गई।

इस प्रकार अरब साम्राज्य थोड़े समय में ही छिन्न भिन्न हो गया किन्तु अरब खलीफ़ाओं ने विज्ञान और संस्कृति को इतना प्रोत्साहन दिया कि राजनैतिक शक्ति समाप्त हो जाने पर भी वे संसार के पथ प्रदर्शक बने रहे। इन खलीफ़ाओं में अलफलैला के हारूँ रशीद का नाम विशेष रूप से विख्यात् है। अरबों ने भारत और चीन से ज्ञान प्राप्त किया और उसको यूरोप तक पहुँचाया। वे रसायन शास्त्र, बीज गणित, नक्षत्र शास्त्र और अन्य विज्ञानों के जन्मदाता समझे जाते हैं। कागज़ बनाना मी यूरोप ने अरबों से ही सीखा। अरबों ने सहन शीलता और विशाल हृदयता का प्रमाण दिया और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का उदाहरण यूरोप के सामने प्रस्तुत किया।

अरबों का भारत से सम्बंध

६६४ ई० में अरवों ने काबुल पर जो उस समय भारत के आधीन था आक्रमण किया और १२,००० व्यक्तियों को मुसलमान बनाया। भारतीयों ने मुसलमानों का विरोध किया, और परास्त कर उनके नेताओं को वंदी बना लिया। ये लोग बहुत सा धन देकर मुक्त हुए। इस के पश्चात् काबुल के राजा आनंदपाल ने अरबों की, विशेष रूप से अबदुलरहमान की, जो खुरासान् का गर्वनर था और जिसने बसरा के राज्यपाल हज्जाज से विद्रोह किया था बहुत सहायता की। दसवीं शताब्दी तक भारत और पश्चिम के अरब राजाओं में मित्रता रही और इस काल में पश्चिम से भारत पर कोई आक्रमण नहीं हुआ।

७१२ ई० में जो आक्रमण सिंध पर हुआ वह भी किसी योजना के अनुसार नहीं था। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी कि अरबों को

सिंध पर मुसलमानों का शासन

भारत पर आक्रमण करना पड़ा। उस समय सिंध का राजा दाहिर था। उसकी राजधानी बक्कर के निकट अलोर के स्थान पर थी। उसका राज्य मुल्तान और कालाबाग तक फैला हुआ था। खलीफ़ा वलीद ने राजा दाहिर पर दोष लगाया कि उसके राज्य में अरबों का जहाज़ लूटा गया है। यह जहाज़ वास्तव में देवल के स्थान पर लूटा गया था और देवल पर दाहिर का कोई अधिकार न था। दाहिर ने अपने आपको निर्दोष ठहराया किन्तु अरबों ने इसकी यह युक्ति स्वीकार न की और १,००० पैदल और ३०० घुड़सवारों ने सिंध पर आक्रमण किया। वे राजा से उस हानि की क्षतिपूर्ति चाहते थे जो अरब जहाज़ को हुई थी। यह सेना नष्ट कर दी गई। इस पर बसरा से मोहम्मद बिन कासिम के आधीन ६,००० पैदल सेना भेजी गई। कासिम ने देवल पर आक्रमण किया। देवल में एक अति सुन्दर और मज़बूत मंदिर था। देवल की जनता ने वहीं से कासिम के आक्रमण का उत्तर दिया। कासिम घबड़ा गया किन्तु उसे कुछ सिंधियों द्वारा संकेत मिला कि यदि वह उस ध्वजा को जो मंदिर पर फहरा रही है गिरा दे तो मंदिर पर उसका अधिकार हो जाएगा। कासिम ने ध्वजा को गिराने का प्रयत्न किया और ज्यों ही वह इस में सफल हुआ भारतीय सेना जो इस मंदिर में थी हताश हो गई। मंदिर कासिम के हाथ आया। उसके पश्चात् नगर पर उस का अधिकार हो गया। कासिम ने सहस्रों व्यक्तियों का वध किया, स्त्रियों और बच्चों को दास बनाया और नगर को जी भर कर लूटा।

कासिम ने हैदराबाद और सेहबान पर अधिकार कर लिया किन्तु इसके पश्चात् दाहिर के ज्येष्ठ पुत्र ने उसका सामना किया। कासिम को इस समय ईरान से २,००० घुड़सवारों की सहायता पहुँच गई और वह अलोर तक बढ़ता चला गया। दाहिर ने स्वयं उसका सामना किया। पाश्चात्य इतिहासकारों के मतानुसार दाहिर के पास ५०,०००

सैनिक थे किन्तु युद्ध के बीच में उसका हाथी भाग गया और उसकी सेना बिखर गई। दाहिर जो घायल हो गया था घोड़े पर सवार होकर फिर आगे बढ़ा किन्तु वह अपनी सेना को संगठित न कर सका और लड़ाई में काम आया।

दाहिर की विधवा रानी ने फिर सेना को एकत्रित किया और नगर को सुरक्षित करने की चेष्टा की किन्तु खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। हताश हो कर स्त्रियां अग्नि में जल कर मर गईं और सैनिकों ने शत्रु पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में उनमें से एक भी जीवित नहीं बचा। भारत के इतिहास में यह जौहर का पहिला उदाहरण था।

इसके पश्चात् कासिम ने मुल्तान पर विजय प्राप्त की। कासिम ने जिस नगर पर भी आक्रमण किया उसके निवासियों के सामने शर्त रखी कि या तो वे उसका आधिपत्य स्वीकार करें और खिराज दें या इस्लाम स्वीकार करें। जहां ये शर्तें नहीं मानी गईं वहाँ सब सैनिकों का वध किया गया, उनकी स्त्रियों व बच्चों को दास बना लिया गया किन्तु व्यापारियों और कारीगरों को कोई हानि नहीं पहुँचाई गई।

कासिम ने इन नगरों के अनेक मंदिरों को गिरा दिया था। विजय प्राप्त करने के पश्चात् खलीफ़ा से आज्ञा मांगी कि हिन्दुओं के प्रति किस नीति का प्रयोग किया जाए। खलीफ़ा ने आज्ञा दी कि नागरिकों को अपने मंदिर बनाने की सुविधा प्रदान की जाए और अपना धर्म पालन करने की स्वतन्त्रता—जहाँ तक हो हिन्दुओं के रीति रिवाज के अनुसार ही इस देश में शासन किया जाए। इतिहासकारों का कहना है कि कासिम ने इस आज्ञा का पालन किया। कासिम ने दाहिर के प्रधान मंत्री को अपना प्रधान मंत्री बनाया और शासन कार्य उसके सुपुर्द किया।

कासिम भारत के अन्य भाग कनौज आदि को भी विजय करना चाहता था किन्तु खलीफ़ा उस से रुष्ट हो गया और उसने आज्ञा दी

कि कासिम को मार कर उसका शव बैल की खाल में बन्द कर बगदाद भेजा जाए। इस रुष्टता का कारण यह बताया जाता है कि कासिम ने दाहिर की दो पुत्रियों को पकड़ कर खलीफ़ा के पास भेजा था। ये युवतियाँ बहुत सुन्दर थीं। इनमें से बड़ी लड़की ने खलीफ़ा से कहा कि कासिम ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया है। जब कासिम का शव बगदाद पहुँचा तो उस लड़की ने कहा कि कासिम निर्दोष है और बदला लेने के लिए उसने झूठ बोला था। खलीफ़ा को बहुत दुख हुआ। खलीफ़ा ने दोनों लड़कियों का भी वध करवा दिया।

कासिम के पश्चात् तामीन सिंध का गवर्नर नियुक्त हुआ। उसका वंश सिंध पर ३६ वर्ष शासन करता रहा जिसके पश्चात् सुमेर वंश के राजपूतों ने अरबों को पराजित किया और समस्त सिंध पर अपना अधिकार जमा लिया। यह वंश लगभग पाँच सौ वर्ष तक सिंध पर राज्य करता रहा।

भारत में अरबों की असफलता के कारण

अरबों की यह प्रारम्भिक विजय अधिक महत्वपूर्ण नहीं क्योंकि इसका भारत पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। प्राकृतिक रुकावटों के कारण अरब लोग समस्त भारत को विजय करने का प्रयत्न न कर सके। दूसरे सिंध में युद्ध की कठिनाइयों ने भी उनको निरुत्साह कर दिया था। तीसरे परास्त होकर भी भारतीयों ने अरबों का आधिपत्य स्वीकार न किया।

भारतीय एक राजा की हार को राष्ट्र की हार न मानते थे। राजा की मृत्यु पर उसका उत्तराधिकारी या अन्य राजा विरोध के लिये खड़ा हो जाता था। आक्रमणकारी की शक्ति क्षीण हो जाती थी और वह इस नए विरोधी का सामना न कर सकता था।

इसके साथ साथ अरब की शासन विधि में भी अन्तर आ गया था। अरब के खलीफ़ा अपने आपको धार्मिक नेता की अपेक्षा शासक

और विजेता समझने लगे थे। साम्राज्य का विस्तार उनका उद्देश्य बन गया था और इस्लाम की वृद्धि को वे अधिक महत्त्व न देते थे। इस समय खलीफाओं की राजनैतिक शक्ति क्षीण हो गई थी। अरब के आन्तरिक झगड़े साम्राज्य के प्रसार में बाधक सिद्ध हुए और नये ज्ञान ने अरबों का दृष्टिकोण बदल दिया। वे युद्ध में ख्याति पाने की अपेक्षा ज्ञान की वृद्धि में अधिक प्रसन्नता अनुभव करने लगे थे।

सिंध की विजय से अरब और भारत का सम्पर्क बढ़ गया और अरबों ने भारत से बहुत कुछ सीखा।

कासिम का आक्रमण भारत में एक नवीन विचार धारा साथ लाया और उसने भारतीयों को एक नये शत्रु से परिचय कराया जो पूर्व आक्रमणकारियों से भिन्न था। इस से पहले जो जातियाँ भारत में आईं उनका ध्येय भारत की सभ्यता या धर्म का विरोध न था। इसकी अपेक्षा वे भारत की सभ्यता में घुल मिल जाना अपना सौभाग्य समझती थीं।

परिच्छेद १६

राजपूत कालीन भारत

कन्नौज

कन्नौज को हर्ष ने जो महत्त्व प्रदान किया वह शायद पाटली पुत्र और उज्जैन को भी प्राप्त न हुआ था। यह उसके तीन सौ वर्ष पश्चात् तक शासन-सत्ता और राज्य-वैभव का प्रतीक बना रहा। मानों कन्नौज एक सुन्दर पुष्प था 'जिसे पाने के लिये अनन्त भंवरे जान लड़ाते थे।

कन्नौज की विजय ने एक शौर्य नाटक का रूप धारण कर लिया। काश्मीर से लेकर कुमारी अन्तरीप तक और बङ्गाल से लेकर सिंधु नदी तक भारतीय सूरमाओं के मन में कन्नौज को प्राप्त करने की महत्वाकाँक्षा इतनी प्रबल थी कि लाख कठिनाइयाँ सहन करते हुए वे उसकी ओर बढ़ते थे। इस प्रतियोगिता में सिन्ध के अरब शासकों ने भी भाग लिया। समस्त भारत में "महोदय श्री" का नाद गूँज उठा।

महोदय श्री अर्थात कन्नौज की भूमि पर अनेक जातियों ने कंधे लड़ाए। उनके आपसी संघर्ष ने मानो भारत का मंथन किया जिस से एक नए युग का निर्माण हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी के भारत में नए विचार, नई जीवन शैली, नई प्रथाएँ और नई जातियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

नया युग

भारत में धर्मान्धता का अभाव था। रूढ़ीवाद, संकीर्णता, असहिष्णुता और पारस्पारिक घृणा भारतीयों ने कभी देखी भी न थीं, किन्तु इन अवगुणों का विषैला बीज भारत की उर्वर भूमि में ज्यों ही बोया गया वह खूब फला और फूला। सोलहवीं शताब्दी में अकबर ने इसे उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया किन्तु इसकी जड़ें इतनी

मज़बूत हो चुकी थीं कि वह उसके प्रसार को केवल कुछ समय के लिये ही रोक सका। यद्यपि कई पहलुवों से यह तीन सौ वर्ष भारत के अवरोहण का काल था किन्तु फिर भी इस में जीवन की शिथिलता न आई थी। राजपूत जो इस युग में पहली बार भारत के राजनैतिक गगन पर छाए शौर्य और निर्भीकता से परिपूर्ण थे। कला और साहित्य के क्षेत्र में भी उन्होंने कम महत्त्व पूर्ण काम नहीं किये। आगामी काल ने उनकी प्रतिभा को कलंकित कर दिया इस लिये उनकी आभा की कान्ति हम आज स्पष्ट रूप में नहीं देख पाते।

राजपूत और पुराण

पुराणों में राजपूतों का वर्णन नहीं मिलता किन्तु राजस्थान में बहुत सी ऐसी कथाएँ प्रसिद्ध हैं जो राजपूतों को पौराणिक नायकों से सम्बन्धित करती हैं। राजपूत राम, कृष्ण और युधिष्ठिर के वंशज होने का दावा करते हैं किन्तु उनके रीति रिवाज यूरोप की उन जातियों से मिलते जुलते हैं जो दसवीं शताब्दी के लगभग स्कैण्डेनेविया से आ कर मध्य यूरोप में आबाद हुईं। इन जातियों के नाम भी कुछ सीमा तक राजपूत वंशों के नामों से मिलते जुलते हैं। सातवीं शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक न केवल भारत का इतिहास अंधकारमय है बल्कि यूरोप का इस युग का इतिहास भी स्पष्ट नहीं है। किन्तु यह निश्चय से कहा जा सकता है कि भारत की पश्चिमी सीमा पर बसने वाली जातियों के साथ राजपूतों का घनिष्ट सम्बन्ध था।

राजस्थान का पौराणिक नायक बाप्पा रावल है। उसके जन्म के विषय में कहानी प्रसिद्ध है कि ईरान के सम्राट नौशेरवाँ की पुत्री महाबानू भारत आई। उसने वल्लभी राज्य के एक सरदार से विवाह किया। उसी ने बाप्पा रावल को जन्म दिया।

बाप्पा रावल को ईरान देखने का बहुत चाव था। कुछ वर्ष राज्य करने के बाद वह ईरान जाकर रहने लगा। फिर उसने अफ़गानिस्तान

की जंगली जातियों को विजय किया। वहाँ उसने कई विवाह किये। इस प्रकार वह अफ़गानिस्तान के कई वंशों का पूर्वज बताया जाता है।

बाप्पा रावल के कारनामों की गाथाएँ राजस्थान के चारण बड़े समारोह से गाते हैं, किंतु इतिहास अभी बाप्पा रावल का व्यक्तित्व और तिथि निश्चित नहीं कर सका।

राजपूत कौन थे यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। हर्ष के पश्चात् पश्चिम से आक्रमणों का भय बढ़ गया। इस्लाम के प्रादुर्भाव ने भारतीयों को भयभीत किया कि कहीं उन का धर्म भी इस्लाम की बाढ़ में न बह जाए। हिन्दू धर्म की रक्षार्थ भारत के ब्राह्मणों ने आबू पर्वत पर एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। इस अवसर पर भारत के बड़े-बड़े विद्वान् पधारे और उन्होंने निश्चय किया कि भारतीयों की नये सिरे से वर्णव्यवस्था स्थापित की जाए। वैदिक काल से इस समय तक अनेक विदेशी भारत में आकर बसने लगे थे जिन्होंने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया था। अन्तर्जातीय विवाह से भी भिन्न-भिन्न जातियाँ आपस में मिल जुल गई थीं इसलिये किसी को कुलीन कहना संभव न था।

राजपूत

आने वाले आपत्ति काल को देखते हुए यह निर्णय किया गया कि एक जाति ऐसी होनी चाहिए जो क्षत्रियों की भाँति युद्ध विद्या में दक्ष हो और जिसे हिन्दू धर्म से इतना प्रेम हो कि वह उस की खातिर प्राण दान देने में संकोच न करे। हूणों, सिथियनों और गुर्जरों ने उस समय तक भारत को अपनी मातृभूमि स्वीकार कर लिया था और वे हिन्दू धर्म में प्रवेश कर चुके थे। इन सब को मिलाकर एक जाति बना दी गई जिसे राजपूत कहा गया। अपने वंश के अनुसार इन राजपूतों ने अपने-अपने नाम रख लिए।

कहते हैं इस अवसर पर एक नया संवत् भी चलाया गया था।

इस कहानी की पुष्टि में कोई ऐतिहासिक प्रमाण हो या न हो किन्तु ऐसा होना संभव प्रतीत होता है क्योंकि मुसलमान इतिहास-

कारों ने भारतीयों के विषय में जो कुछ लिखा है उस से प्रतीत होता है कि सातवीं और आठवीं शताब्दी ई० में भारत में कोई बहुत बड़ी क्रान्ति आई थी जिस ने लोगों का आचार व्यवहार रहन-सहन सब कुछ बदल दिया। जिस सभ्यता का रूप हम ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में देखते हैं वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मौलिक रूप से भिन्न है।

यह क्रान्ति कैसे उत्पन्न हुई यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। भारत में अनेक विहार थे। तीर्थ-स्थानों पर लाखों व्यक्ति एकत्रित होते थे जहाँ देश की समस्याओं पर भी वार्तालाप होते थे। साधु सन्यासी देश विदेश घूमते थे। और भी कई प्रकार से लोग आपस में संपर्क में आते थे। सम्भव है कि इन संस्थाओं द्वारा नए विचार जनता तक पहुँचाए गये हों। ग्रन्थों द्वारा भी उन विचारों का प्रचार हुआ। शंकराचार्य उस युग की धार्मिक शक्ति के प्रतीक हैं।

जैसे आपत्ति काल में कछुवा अपने खोल में घुस कर बैठ जाता है वैसे ही भारतीय संस्कृति ने अपनी रक्षार्थ एक ठोस आवरण धारण कर लिया। इस विचार धारा की पुष्टि में ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक अनेक प्रमाण मिलते हैं।

हर्ष के उत्तराधिकारी

हर्ष के उत्तराधिकारियों में आठवीं शताब्दी के आरम्भ में यशोवर्मन एक महान् सम्राट् हुआ जिस ने गुप्त वंश की शक्ति को दबा दिया और बङ्गाल को परास्त किया। उस ने चीन से फिर राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किया। उस के विषय में बहुत कुछ सामग्री चीन से प्राप्त हुई है। यशोवर्मन कला और साहित्य से बहुत प्रेम करता था। भवभूति और वाक्पतिराज उस के काल के प्रसिद्ध कवि थे। यशोवर्मन का वैभव उत्तरी और दक्षिणी भारत के अनेक राज्यों के लिए स्पर्धा का हेतु बना।

काश्मीर

काश्मीर का क्रमबद्ध इतिहास कल्हण ने लिखा है जो सातवीं शताब्दी ई० से लेकर बारहवीं शताब्दी ई० तक विश्वस्त समझा जा सकता है। इस से पूर्व का इतिहास बहुत कछ लोक गाथाओं पर आधारित है।

कल्हण के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का नाम राजतरंगिणी है जिस के अनुसार काश्मीर का पहिला महान् शासक गोनांडा था। उस की तिथि २००० ई० पूर्व बताई गई है। अशोक और उसके पुत्र जलोक ने काश्मीर पर राज्य किया इस के ऐतिहासिक प्रमाण हैं। कुशान वंश के राजा यहाँ राज्य करते रहे। चन्द्र देव ने जो उन के पश्चात् आया बौद्ध मत को समाप्त कर वैष्णव मत की फिर से नीव रखी। वह एक शक्तिशाली और सर्व प्रिय शासक कहा गया है।

मिहिरगुल ने ५१५ ई० में काश्मीर पर आक्रमण किया और काश्मीर उस की क्रूरता का निशाना बना। उस के अत्याचारों की बहुत सी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

मिहिरगुल की मृत्यु के पश्चात् काश्मीर पर गुप्त वंश का शासन स्थापित हो गया जिसे दुर्लभ वर्द्धन ने समाप्त किया। ललितादित्य (७२४-६० ई०) उस का पौत्र था। ललितादित्य के अनेक स्मारक काश्मीर में पाये जाते हैं जिन में मार्तन्ड का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। उस ने बङ्गाल तक विजय पताका फहराई।

विजयदित्य ने जो ललितादित्य का पौत्र था फिर कन्नौज पर आक्रमण किया। उस के पश्चात् नौवीं शताब्दी में उत्पल वंश के राजा शंकरवर्मन ने ६००००० पैदल, ३०० हाथी और १००००० घोड़े लेकर कन्नौज का रुख किया। इस वंश के राजा अवन्तीवर्मन ने काश्मीर में नहरें खुदवाईं। इस वंश के स्मारक पट्टन के मन्दिर हैं।

काश्मीर ने भिन्न भिन्न क्षेत्रों में बहुत से विद्वान् उत्पन्न किये जिन्होंने अपनी योग्यता से काश्मीर को चार चाँद लगाए।

काबुल

अरब इतिहासकारों के अनुसार सातवीं शताब्दी में काबुल में कनक का राज्य था। उस ने कन्नौज का रुख किया किन्तु वह गुजरात से वापिस काबुल लौट आया। कहा जाता है कि उस के वंशजों ने गुजरात में साम्राज्य स्थापित किया।

कमलुआ जिस ने ८७८ ई० से ६०० ई० तक राज्य किया इस वंश का प्रसिद्ध शासक था। उस के काल के सिक्के प्राप्त हुये हैं। वह अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध था और भारत का राव कहलाता था।

भीम, जयपाल प्रथम, आनन्द पाल, जयपाल द्वितीय और भीमपाल इस वंश के अन्य राजा हुए। इस वंश को "शाही" वंश भी कहा जाता है। काबुल का राज्य लमगान से लेकर सरहिन्द तक और काश्मीर से मुल्तान तक फैला हुआ था।

बङ्गाल।

कुशान साम्राज्य के समाप्त होने पर बंगाल में एक नई शक्ति उत्पन्न हो गई थी किन्तु गुप्त वंश के सत्ता प्राप्त कर लेने से वह सिर न उठा सकी। अन्तिम गुप्त सम्राटों के काल में बङ्गाल ने फिर हाथ दिखाये। सातवीं शताब्दी में बङ्गाल के शासक शशांक ने कन्नौज को विजय करने का प्रयत्न किया किन्तु हर्ष ने उसे आगे न बढ़ने दिया। सातवीं और आठवीं शताब्दी में बङ्गाल में कुशासन का दौर दौरा रहा और जिस ने भी चाहा उस पर अधिकार जमा लिया। आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बङ्गाल के लोगों ने गोपाल नामक व्यक्ति को बङ्गाल का शासक नियुक्त किया। उसके पुत्र धर्म पाल ने पाटलीपुत्र को विजय कर भारत सम्राट् की पद्वी ग्रहण की और कन्नौज की ओर बढ़ा।

धर्म पाल ने आरम्भ में जो विजय प्राप्त की थी उस की आयु के अन्तिम भाग में वह पराजय में बदल गई और कन्नौज भी

उस के हाथ से निकल गया। उस के पुत्र देव पाल ने पिता की खोई हुई शक्ति को फिर प्राप्त किया और न केवल कन्नौज को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया बल्कि आसाम और अन्य कई प्रदेशों पर भी अधिकार जमा लिया। उस के राज्य की सीमाओं के विषय में कई मत हैं। उस के वैभव के अनेक प्रमाण मिलते हैं। उस ने विदेशों से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किये और साहित्य और कला को बहुत प्रोत्साहन दिया।

धर्मपाल और देवपाल के शासन काल में लगभग सौ वर्ष का अन्तर है। धीमन और वित्तपाल इस काल के प्रसिद्ध कलाकार थे जिन की कृतियों के नमूने प्राप्त हुए हैं। इस युग का बहुत-सा साहित्य भी प्राप्त हुआ है। उस से प्रतीत होता है कि ८१० ई० के लग भग बङ्गाल के सम्राट् ने नौ प्रसिद्ध शासकों से मिलकर भारत में कुछ नई प्रथाएँ स्थापित की थीं।

१०२३ ई० तक बङ्गाल पर पाल वंश का राज्य रहा। अन्तिम राजाओं में महीपाल प्रमुख था।

पश्चिमी भारत

पश्चिमी भारत में प्रतिहार हर्ष के उत्तराधिकारी कहे जा सकते हैं। लोक गाथाओं के अनुसार प्रतिहार श्री रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण की संतान थे किन्तु इतिहासकारों का मत है कि वे गुर्जर जाति से थे।

छठी शताब्दी में उन्होंने राजस्थान और नर्मदा के निकट अपने राज्य स्थापित किये। आठवीं शताब्दी में नागभट्ट प्रथम ने प्रतिहार साम्राज्य की नींव रखी और पश्चिमी भारत पर आधिपत्य जमा लिया। भारत में उसने अरबों के पाँव न जमने दिये।

वत्सराज जो नागभट्ट की तीसरी पीढ़ी से था उस से भी अधिक वीर था। उसने ७८३ ई० में बङ्गाल के सम्राट् धर्मपाल को पराजित किया। नागभट्ट द्वितीय ने प्रतिहार साम्राज्य का प्रसार किया और कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। ८३६ ई० में भोज प्रथम

सिंहासन पर बैठा। उस ने और महेन्द्रपाल प्रथम ने प्रतिहार प्रतिभा को पराकाष्टा तक पहुंचा दिया। उनके साम्राज्य की सीमाएँ पंजाब और बङ्गाल को छूती थीं।

प्रतिहारों को प्राचीन उत्तरी भारत के अन्तिम महान् शासक कहा जा सकता है। उनके शासन काल में कला और साहित्य, व्यापार और उद्योग में भारत ने बहुत उन्नति की। उनका शासन प्रबन्ध उस काल में उदाहरण के रूप में पेश किया जाता था। चोर चकार या दुष्ट लोग कहीं भी आश्रय प्राप्त न कर सकते थे, यातायात के मार्ग सुरक्षित और थे, किसी को जान माल का खतरा न था।

अरब यात्रियों ने प्रतिहारों की बहुत प्रशंसा की है विशेष रूप से राजा भोज के न्याय और कला प्रेम को उन्होंने सराहा है। उसकी सेना के आंकड़े सिद्ध करते हैं कि उसे परास्त करना अरबों के लिये सम्भव न था। घुड़ सवार और उष्ट्र सेना इतनी बलवान थी कि उस का उदाहरण उस युग के संसार में मिलना कठिन था। प्रतिहार साम्राज्य के वैभव की झलक प्रसिद्ध कवि राजशेखर की कृतियों में मिलती है जिस पर राजा महेन्द्र पाल की कृपा थी।

दसवीं शताब्दी में प्रतिहारों का पतन आरम्भ हो गया और उनका साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया।

सिन्ध

अरबों ने भी कन्नौज प्राप्त करने के स्वप्न लिये किन्तु उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। आठवीं शताब्दी में सिन्ध पर सुमेर वंश का अधिकार स्थापित हो गया और अरब उनके आधीन हो गये।

दक्षिण

दक्षिण के सम्राटों में से राष्ट्रकूट सम्राटों ने कन्नौज प्राप्त करने का प्रयत्न किया और कुछ समय के लिए अपने प्रयास में सफल हुआ।

इस वंश का जन्म दाता दन्तीदुर्ग था। ध्रुव जिस ने ७७५ ई० से ७९३ ई० तक राज्य किया इस वंश का एक महान् राजा था। उस ने

प्रतिहारों को परास्त कर कन्नौज पर अधिकार जमाया।

गोविन्द तृतीय जिस का शासन काल ८१५ ई० तक रहा न केवल राष्ट्रकूटों में सब से महान था बल्कि उसकी गणना संसार के चार महान शासकों में होती थी। अन्य तीन थे चीन का सम्राट्, बगदाद का ख़लीफ़ा और कान्स्टैन्टीनोपल का सम्राट। बङ्गाल के धर्मपाल, प्रतिहार वंश के नागभट्ट द्वितीय और दक्षिण के कई राजाओं से वह खिराज प्राप्त करता था।

राष्ट्रकूट वंश ६७३ ई० तक फलता फूलता रहा। उसके कई स्मारक हैदराबाद दक्षिण में पाये जाते हैं। अजन्ता और अलोरा की कला की प्रगति में उसका बहुत हाथ था। कैलाश का मन्दिर विशेष रूप से उसकी स्मृति है।

जैसे पाटलीपुत्र मौर्य कालीन और उज्जैन गुप्त कालीन भारतीय सभ्यता के केन्द्र कहे जाते हैं वैसे ही कन्नौज को राजपूत काल की सभ्यता का गढ़ माना जाता है। सातवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक कोई एक वंश अधिक समय तक स्थाई रूप से यहाँ राज्य नहीं कर सका किन्तु किसी के भी शासन काल में इस के वैभव में कमी नहीं आई। यदि हम यह कहें कि उत्तरी भारत का इन तीन शताब्दियों का इतिहास कन्नौज का इतिहास है तो कोई अत्योक्ति न होगी।

परिच्छेद १७

बृहत्तर भारत

भारतीय अन्वेशी

कहा जाता है कि भारत का अतिशय इतिहास उन देशों से प्राप्त हुआ है जहाँ प्राचीनकाल में भारत के साहसी सपूतों ने उपनिवेश स्थापित किये थे। वहाँ भारतीय संस्कृति सहस्रों वर्ष तक फलती फूलती रही और जब वहाँ के रहने वालों को यह भय हुआ कि इस संस्कृति की रक्षा करना कठिन हो गया है तो उन्होंने उन सब स्मारकों को जो इस संस्कृति का चिन्ह रूप थे मिट्टी के नीचे दबा दिया। आक्रमणकारियों को वे स्थान केवल मिट्टी के टीले प्रतीत, हुए और वे उन के विनाशकारी हाथों से बच गये। कुछ वर्ष हुए इस तथ्य का पता लगा और जावा, सुमात्रा और अन्य स्थानों पर टीले खोदे गये। मिट्टी के नीचे से भव्य मन्दिर और स्तूप प्राप्त हुए जिन्होंने ऐतिहासिक संसार में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इन के अध्ययन से यह सिद्ध हो गया है कि भारत से तीसरी शताब्दी ई० पूर्व के लगभग बहुत से साहसी अन्वेषी, महत्वाकांक्षी व्यापारी और भारतीय संस्कृति के भक्त दूर देशों में गये। उन्हों ने सैनिक शक्ति का प्रयोग नहीं किया बल्कि अपने चातुर्य और मानवीय सहानुभूति द्वारा विदेशियों के मन जीत कर वहाँ भारतीय संकृति की नींव डाली।

भारतीय शासक और उपनिवेश

इन साहसी व्यक्तियों के संरक्षक बहुत से भारतीय शासक थे। मौर्य और गुप्त राजाओं ने भारतीय संस्कृति के प्रसार को बहुत प्रोत्साहन दिया था। छठी और सातवीं शताब्दी में दक्षिण का महत्त्व बढ़ गया और दक्षिण के लोग स्पष्ट रूप से दूर देशों से व्यापार करते दिखाई देते हैं। इन में से राष्ट्-

कूटों का वर्णन हम पहिले कर आये हैं। चालुक्य, चोल, और अन्य कई वंशों ने न केवल भारत में अपनी धाक बिठाई बल्कि दक्षिण पूर्वी देशों पर अपना व्यापारिक और सांस्कृतिक आधिपत्य जमाया।

पुलकेशिन प्रथम ने ५५० ई० के लगभग चालुक्य वंश की स्थापना की थी। उस की राजधानी वातापी (बीजापुर) एक सुन्दर और भव्य नगर था। पुलकेशिन द्वितीय जिस ने ६०६ ई० से ६४२ ई० तक राज्य किया अपने समय का प्रसिद्ध विजेता और योग्य शासक था। उसने हर्ष की महान सेना को नाकों चने चबाए और उत्तरी भारत के इस अजेय सम्राट को पीछे हटना पड़ा। ह्यूनसांग के वृतान्त से चालुक्य राज्य के विस्तार और वैभव का पता चलता है।

चालुक्य

पुलकेशिन के सम्बन्ध दूर देशों से थे। अरब यात्री "तबरी" ने भी चालुक्य राज्य की शान शौकत का चित्रण किया है। उस की तिथि ६२५ ई० थी।

चालुक्य साम्राज्य को कई ऊँच नीच देखने पड़े। पल्लव वंश ने ६४२ ई० में वातापी को विजय किया और कुछ समय के लिये चालुक्य शक्ति कमज़ोर हो गई।

किन्तु चालुक्य वंश का अवर्धन केवल कुछ समय के लिये था। विक्रमादित्य प्रथम और द्वितीय ने उसके वैभव को चार चाँद लगाए और पल्लव राज्य को नष्ट कर दिया। विक्रमादित्य द्वितीय ने अरबों का भी मुकाबला किया और उन्हें दक्षिण की ओर न बढ़ने दिया। ७५३ ई० में फिर विपत्ति आई और राष्ट्रकूटों के प्रवाह के आगे चालुक्य न ठहर सके।

दसवीं शताब्दी के अन्त में चालुक्य वंश ने तैलप के नेतृत्व में वर्तमान हैदराबाद के कुछ भाग को विजय कर लिया और कल्याणी के स्थान पर नई राजधानी की नींव डाली। तैलप और उस के उत्तरा-

धिकारियों ने न केवल दक्षिण के अधिकतर भाग को विजय किया बल्कि उत्तर में भी पंख फैलाए । विक्रमादित्य षष्ठ जिसने १०७६ ई० से ११२६ ई० तक राज्य किया भारत का प्रसिद्ध सम्राट् हुआ है । उस के काल में विल्हण कवि और विज्ञानेश्वर न्यायधीश दो प्रमुख व्यक्ति हुए हैं । एक ने "विक्रमाङ्क चरित्र" और दूसरे ने "मिताक्षर" नाम की पुस्तकें लिखीं । उस ने उज्जैन के विक्रमादित्य की प्रथाओं को पुनर्जन्म प्रदान किया । उसे चालुक्य वंश का अन्तिम सम्राट् कहा जा सकता है । क्योंकि उस के पश्चात् यह वंश पनप न सका और ११९० ई० में पूर्ण रूप से समाप्त हो गया ।

इस वंश की एक शाखा गुजरात में स्थित थी और दूसरी पूर्वी भारत में । इनका अपना अस्तित्व था ।

पल्लव

पल्लव वंश ने लगभग ४०० वर्ष शासन किया किन्तु उनके शासन काल के थोड़े से ही भाग पर अभी तक इतिहासकार खोज कर सके हैं और अधिकांश अभी तक अन्धकारमय है किन्तु इस तनिक से काल में ही इस वंश ने उत्तर और दक्षिण में तहलका मचा दिया । महेन्द्रवर्मन जो "मत्तविलास" प्रहसन का लेखक था और उस का पुत्र नरसिंह वर्मन भारत के राजनैतिक गगन पर धूमकेतु की भाँति चमके । उन की राजधानी कांची के स्थान पर थी ।

चोल

तन्जोर में नौवीं शताब्दी में एक नई शक्ति उत्पन्न हुई जिस ने शीघ्र ही पल्लवों को राज्य विहीन कर दिया । आदित्य और उस के पुत्र पारान्तक ने लगभग ७० वर्ष राज्य किया और इस काल में दक्षिणी भारत की काया पलट गई । गण राज्य का उन्होंने वह उदाहरण प्रस्तुत किया कि उस सरीखी प्रथा प्राचीन भारत में भी विरले ही दिखाई देती है । राजराज जिस ने ९८५ ई० से १०१६ ई० तक राज्य किया अपने पूर्वजों से भी अधिक योग्य और बलवान् था ।

उसकी जल सेना समुद्री डाकुओं के लिये काल का रूप थी। उस ने लंका को विजय किया और कई पूर्वी द्वीप अपने साम्राज्य में सम्मिलित किये। तन्जौर का मन्दिर भारत को उसकी अमूल्य देन है।

राजराज के पुत्र राजेन्द्र चोल प्रथम (१०१६ ४४ ई०) ने चोल साम्राज्य का प्रसार उत्तरी भारत में किया और बंगाल की खाड़ी के साथ-साथ गङ्गा के तट तक पहुँच गया। उस ने त्रिचनापली जिले में नई राजधानी की स्थापना की और गंगई कोंड का पद धारण किया।

राजेन्द्र चोल की समुद्री विजय और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उस ने अंडमन और नीकोबार द्वीप को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया और मलाया, सुमात्रा आदि द्वीपों में स्थित शैलेन्द्र वंश की महान् शक्ति के छक्के छुड़ा दिये।

१०७४ ई० में राजेन्द्र चोल की पुत्री का विवाह पूर्वी चालुक्य के एक राजकुमार से हो गया और चोल सिंहासन चालुक्य वंश के हाथों में चला गया।

पूर्वी चालुक्य (चोल)

वातापी के पुलकेशिन द्वितीय के भाई ने कृष्णा और गोदावरी नदी के स्रोत पर सातवीं शताब्दी ई० में एक शक्ति शाली राज्य की नींव डाली। नरेन्द्र मृगराज जिस ने ७६६ ई० से ८४३ ई० तक राज्य किया इस वंश का अति प्रसिद्ध राजा था किन्तु इस वंश की प्रतिभा कुलोत्तुंग ने चमकाई जो अपने आप को राजेन्द्र चोल द्वितीय (१०७०-११२२ ई०) कहने में गर्व अनुभव करता था। उस ने समस्त दक्षिण में धूम मचा दी।

१२१६ ई० में इस वंश का पतन हो गया।

पाण्ड्य एक प्राचीन राज्य था जिसकी राजधानी मदुरा थी। राजेन्द्र चोल प्रथम के समय में पाण्ड्य प्रदेश चोल साम्राज्य का भाग होता

पाण्ड्य

था किन्तु तेरहवीं शताब्दी ई० में यह राज्य स्वतंत्र हो गया । इसका शासक सुन्दर पाण्ड्य जिस ने १२५१ से १२७० ई० तक राज्य किया बहुत प्रसिद्ध हुआ है । कीउल इस राज्य की प्रसिद्ध बन्दरगाह थी और यहाँ के रहने वाले दूर दूर देशों से व्यापार करते थे ।

तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में वैनिस के प्रसिद्ध यात्री मारको पोलो ने कीउल की बन्दरगाह में कुछ समय बिताया था । उस ने कीउल की बहुत प्रशंसा की है । वह लिखता है कि कीउल एक अति सुन्दर और समृद्धिशाली नगर है । राजा बहुत धनी है और विदेशियों के साथ उस का बहुत अच्छा व्यवहार है ।

इन के अतिरिक्त और भी छोटे छोटे राज्य थे जो पूर्वी द्वीपों—बर्मा, मलाया, सियाम और हिंद चीनी से व्यापार करते थे ।

उत्तरी भारत और विदेशों में उपनिवेश

उत्तर के राज्यों में विशेष कर पाल वंश के विदेशों से घनिष्ट सम्बन्ध थे। चौथी शताब्दी में काश्मीर के एक राज कुमार ने इन द्वीपों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया । सूर, चन्द्र और सेन वंश के राजाओं ने भी इस नीति को अपनाया । इन के अतिरिक्त और भी कई राज्य थे जिन्हों ने विदेशों में उपनिवेश स्थापित करने में सहायता दी । उन के विषय में भारत में निश्चित तथ्य प्राप्त नहीं होते किन्तु कम्बोदिया, चम्पा, बर्मा, जावा, सुमात्रा, फिलिपीन द्वीप और अन्य द्वीपों के इतिहास का अध्ययन करने से उन के विषय में बहुत जानकारी प्राप्त होती है ।

विदेशों में भारतीय इतिहास की खोज

भारतीय इतिहास को पूर्ण करने के लिए जावा और सुमात्रा से बहुत सामग्री प्राप्त हुई है । किन्तु बर्मा, हिंद-चीनी, मलाया और यहाँ तक कि दक्षिणी और उत्तरी अमेरिका में भी प्राचीन भारतीय सभ्यता के चिन्ह पाए गए हैं । दक्षिण

अमेरिका की माया कला में, जो अब करीब करीब नष्ट हो गई है और भारत की प्राचीन कला में बहुत कुछ समानता थी।

पुराणों और अन्य ग्रंथों में बहुत से देशों का वर्णन मिलता है जहाँ भारतीयों ने प्राचीनतम काल में उपनिवेश स्थापित किये। किन्तु अभी तक गवेषण द्वारा यह सिद्ध नहीं हो सका कि इन पौराणिक गाथाओं में कितना तत्व है।

तिब्वत, अफगानिस्तान और लङ्का करीब करीब भारत के भाग ही समझे जाते थे। बर्मा के पेगू प्रांत से जहाँ सोना बहुत पाया जाता था दक्षिणी भारत के व्यापारिक सम्बंध थे। जिस वंश से बर्मनों ने राज्य सत्ता छीनी वह निश्चय ही भारत की द्रविड़ जाति से सम्बंध रखता था। ये लोग महात्मा बुद्ध के भक्त थे। कहा जाता है कि वहाँ के कुछ व्यापारियों ने महात्मा बुद्ध की उन के जीवन काल में बहुत सेवा की थी और महात्मा बुद्ध ने अपनी कुछ स्मृतियाँ उन को दी थीं। बर्मी गाथाओं से ऐसा भी प्रतीत होता है कि किसी समय शाक्य जाति ने वहाँ राज्य स्थापित किया था। बर्मा के लोग अब भी बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं।

मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, सियाम, कम्बोदिया, हिंद चीनी, फारमोसा और मदगास्कर में भारतीयों ने न केवल उपनिवेश स्थापित किये बल्कि वहाँ शक्तिशाली राज्यों की नींव भी डाली। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत सी बस्तियाँ एक साथ बसाई गईं और इनके आबाद करने में भारतीय राजाओं का हाथ था। इनमें से करीब करीब सभी बस्तियाँ महत्त्वपूर्ण स्थानों पर स्थित थीं। उन को प्रायः भारत के प्रसिद्ध नगरों के नाम दिये जाते थे। जैसे कम्बोदिया जो कम्बोज से बिगड़ कर बना है अफ़गानिस्तान में स्थित कम्बोज नगर के नाम पर रखा गया था। कई देशों को उन के व्यापारिक महत्त्व को सामने रख कर नाम दिये गये थे जैसे जावा जहाँ से जौ प्राप्त

होते थे। इस से प्रतीत होता है कि भारतीयों का परम उद्देश्य व्यापार था।

व्यापारी लोग तीसरी और दूसरी शताब्दी ई० पू० में विदेशों में गए। इनसे पहले इक्के-दुक्के अन्वेषी वहाँ अवश्य जाते रहे होंगे और खोज का काम करते रहे होंगे। धर्म प्रचार और संस्कृति के प्रसार के हेतु भी बहुत से लोग जाते थे जिनके विषय में पूर्ण तथ्य प्राप्त नहीं हुए। मौर्य और गुप्त सम्राटों ने इस दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया।

समुद्री यात्रा का वर्णन बहुत से संस्कृत ग्रंथों में मिलता है। भारत में जलयान बनाने के कारखाने थे। बहुत से सिक्कों पर जलयानों के चित्र मिले हैं।

तामिल भाषा में एक लेख मिला है जिसकी तिथि १०८८ ई० है। उस से विदित है कि १५०० व्यापारियों का एक संघ था जिस में साहसी व्यक्ति सम्मिलित थे। वे छः महाद्वीपों में भूमि मार्ग द्वारा या समुद्र मार्ग द्वारा व्यापार करते थे। वे घोड़े, हाथी, हीरे, मणियाँ, सुगन्धियाँ और औषधियाँ लाते और ले जाते थे।

विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने वाले भारतीय राजाओं में मालवा, कलिंग, पल्लव, चोल, चालुक्य और पाण्ड्य विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

पूर्वी देशों में चीन और भारत दोनों का प्रभाव था। शासन विधि प्रायः चीन से ली गई थी और साहित्य और कला भारत से।

शैलेन्द्र

पूर्वी देशों में सब से प्रसिद्ध शलेन्द्र सम्राज्य था जिस की स्थापना आठवीं शताब्दी के लगभग मलाया में हुई थी। अपनी शक्ति के उत्कर्ष पर इस में मलाया, लङ्का, सुमात्रा, जावा का कुछ भाग बोर्नियो, सेलीबीज़, फिलिपीन द्वीप, फारमोसा (तैवान) का कुछ भाग, चम्पा और कम्बोदिया और भारत के कुछ भाग सम्मिलित थे।

हिन्द चीनी

चम्पा अर्थात् अनाम में तीसरी शताब्दी ई० में पान्डुरंगम नाम का एक बहुत बड़ा नगर था और पाँचवीं शताब्दी ई० में कम्बोदिया की प्रतिभा उत्कर्ष को पहुँची हुई थी। कम्बोदिया साम्राज्य की राजधानी अङ्कौर के स्थान पर थी जहाँ अब भी इस के स्मारक पाए जाते हैं। अङ्कौर का मन्दिर कला की दृष्टि से एक अद्भुत कृति है। अंगकौर जैसा नगर उस काल में समस्त यूरोप में कोई नहीं था। यह साम्राज्य तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक फलता फूलता रहा। १२९७ ई० में इसके वैभव और समृद्धि की एक चीनी यात्री ने बहुत सरहाना की है।

शैलेन्द्र बौद्ध धर्म के अनुयायी थे किन्तु जावा के लोग हिन्दू धर्म को मानते थे। शैलेन्द्र वंश के आधीन रहते हुए भी उन्होंने अपना धर्म नहीं छोड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि जावा बहुत प्राचीन राज्य था। जावा की शासन विधि की सभी इतिहासकारों ने प्रशंसा की है।

ग्यारहवीं शताब्दी में शैलेन्द्र साम्राज्य और भारत के चोल साम्राज्य की टक्कर हो गई जिस में चोल विजयी हुए। इसी से जावा को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ।

शैलेन्द्र और जावा साम्राज्यों के आपसी संग्राम से दोनों की शक्ति क्षीण हो गई और मलाया में एक नई शक्ति मलक्का उत्पन्न हुई जिस पर अरबों का प्रभाव था। पंद्रहवीं शताब्दी में इस नई शक्ति ने जिस के पनपने में शैलेन्द्रों का हाथ था जावा साम्राज्य को समाप्त कर दिया। १५११ ई० में पुर्तगालियों ने मलक्का जाति को परास्त किया।

विदेशों में भारत का प्रभाव

जैसे ज्वालामुखी में से लावा निकलता है और आस पास की भूमि पर स्वाभाविक ही फैल जाता है ऐसे ही भारतीय संस्कृति और कला का प्रसार अन्य देशों में हुआ। इन देशों ने नई सभ्यता को चाव से स्वीकार किया।

सभ्यता के विकास में भाषा का बहुत हाथ होता है। संस्कृत उस अति उन्नत जाति की जीती जागती स्मृति है जिस ने इस सभ्यता की नींव डाली थी। विदेशों में संस्कृत को मान मिला। चम्पा, अङ्ककौर, श्री विजय, जावा और अन्य स्थानों पर जो विश्व विद्यालय थे उन में संस्कृत एक मुख्य विषय था।

इन देशों में नगरों और सम्राटों के नाम संस्कृत नाम थे। राज्य उत्सव भारतीय रीति से मनाए जाते थे और उन में संस्कृत का प्रयोग होता था। इन का साहित्य भारतीय गाथाओं से परिपूर्ण है और जीवन शैली भारतीय जीवन शैली से बहुत कुछ मिलती जुलती है। कुछ देशों में मनुस्मृति को प्रमाण माना जाता था और शासन विधि इसी के अनुसार निर्धारित की जाती थी। रामायण की कथा इन देशों में विशेष रूप से प्रचलित थी।

वास्तु कला में भारत का प्रभाव विशेष रूप से दीख पड़ता है। जावा, सुमात्रा, बाली के मन्दिर भारत की श्रेष्ठता के प्रतीक हैं। अङ्ककौर नगर और वहाँ के भवन और मन्दिर देखने वालों को चकित कर देते हैं।

तिब्बत, चीन, बल्ख, अफ़गानिस्तान और लङ्का विशेष रूप से भारतीय सभ्यता से प्रभावित हुए।

तिब्बत और चीन आदि से विद्यार्थी नालन्द और अन्य विश्व विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के अभिप्राय से आते थे और अपने देश लौट कर भारतीय संस्कृति का प्रचार करते थे। एक प्रसिद्ध आचार्य ने जो विक्रमशील विश्वविद्यालय का अधिष्ठाता था तिब्बत में १३ वर्ष रह कर बौद्ध मत का प्रचार किया। चीन में कुमार जीव ने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। चीन से भारतीय संस्कृति कोरिया और जापान पहुँची।

भारत का राजनैतिक वियोजन तथा सांस्कृतिक संगठन

इसमें तो कोई संदेह नहीं कि आठवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी ई० तक भारत का राजकीय वियोजन हुआ किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि यद्यपि भारत में कोई स्थाई साम्राज्य स्थापित न हो सका फिर भी समय समय पर प्रतापी राजा उत्पन्न हुए और उन्होंने भारत के बहुत से भाग पर शासन किया। वे चाहे बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखते थे, चाहे जैन धर्म से या हिन्दू धर्म से उन में सहिष्णुता का गुण था। वे भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति से अगाध प्रेम रखते थे। इन सब राज्यों में लगभग एक सी व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी।

शासन

गाँव में पंचायत होती थी जिस का मुखिया ग्राम-पति कहलाता था। ग्रामों के संग्रह को विषय कहते थे और उस के मखिया को विषयपति। कई विषयों को मिलाकर भुक्ति या मण्डल बनता था जो शासन की सब से बड़ी एकाई होती थी। उस के शासक को उपारिक या मन्डेलेश्वर कहते थे। किसी राज्य की शक्ति क्षीण हो जाने पर ये अधिकारी राजा बन जाते थे। देश के दूरस्थ भाग सेनापति के आधीन होते थे जिस को बहुत अधिकार प्राप्त थे।

दक्षिण भारत में अति उन्नत लोकतन्त्र स्थापित हो चुका था और जनता को वोट देने का अधिकार था। अपराधियों को वोट देने का अधिकार न था।

व्यापार

अन्तर्देशीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अति उन्नत था और राजनैतिक परिवर्तनों से इस में कोई विशेष कमी उत्पन्न न हुई थी। अधिकतर व्यापारिक लेन देन हुंडियों से होता था। मुद्रा का रिवाज बहुत बढ़ गया था। बहुत से व्यापार संघ स्थापित थे। यातायात के साधन कठिन होने पर भी व्यापारिक समाचार शीघ्रता से

समस्त देश में फैल जाते थे।

समाज

आठवीं शताब्दी में राजपूतों का अभ्युदय हुआ जिस के फलस्वरूप प्राचीन व्यवस्था का स्थान नई प्रथाओं ने ले लिया। अनेक छोटी छोटी जातियाँ उत्पन्न हो गईं जिन में आपस में न केवल ईर्षा के भाव थे बल्कि घृणा के भी। ब्राह्मणों का मान घट गया और वैश्यों की कोई सत्ता न रह गई। बहुत सी जातियाँ दलित कहलाने लगीं और अस्पृश्यता के कुरूप पिशाच ने जन्म लिया।

बाहर से आने वाली जातियों में जो लोग राजपूतों की पदवी प्राप्त न कर सके उनका स्थान समाज में बहुत नीचा समझा जाने लगा। सैनिक शक्ति पूर्ण रूप से राजपूतों के हाथ में आ जाने से अन्य जातियों का समाज में विशेष महत्त्व न रहा।

नई स्मृतियाँ लिखी गईं और पुरानी स्मृतियों का संशोधन किया गया। इस प्रकार का एक प्रयास बङ्गाल के बल्लालसेन ने किया। उस ने कुलीन ब्राह्मणों, कायस्थों और वैद्यों को उच्च स्थान प्रदान किया और अन्य जातियों का सामाजिक स्तर गिरा दिया।

विवाह की प्रथाओं में भी परिवर्तन आ गया। दसवीं शताब्दी के अन्त तक अन्तर्जातीय विवाह कम होने लगे। रीति रिवाजों में आडम्बर आ गया। बचपन की शादियाँ होने लगीं।

विदेशियों की ओर भारतीयों का व्यवहार बदल गया। अलबरूनी ने विशेष रूप से लिखा है कि भारतीय तुर्कों को मलेच्छ समझते हैं। चिरकाल तक तुर्क भारत के ग्रामों में न रह सकते थे। उनके साथ सम्बन्ध रखने वालों को घृणा का पात्र समझा जाता था।

स्त्रियों में पर्दे का रिवाज आरम्भ हो गया। पति की मृत्यु के पश्चात् कोई स्त्री दूसरा विवाह न कर सकती थी। उत्तम वर्ग की स्त्रियों में जागृति थी किन्तु मध्यम और निम्न वर्ग की स्त्रियाँ प्रायः सामाजिक जीवन से पृथक रहती थीं।

दक्षिण में अभी विशेष परिवर्तन उत्पन्न न हुआ था। इब्न हाकुल, अलइस्तखारी जो अरब यात्री थे और मारको पोलो ने दक्षिण के विषय में जो वृतान्त दिया है उस से ज्ञात होता है कि वहाँ प्राचीन भारतीय सामाजिक नियमों का पालन होता था।

धर्म

बौद्ध धर्म का पतन आरम्भ हो गया था और उस के स्थान पर जैन और हिन्दू धर्म उत्कर्ष पर आ रहे थे। उत्तरी भारत में बौद्ध धर्म को गहरवार वंश और पाल वंश ने प्रोत्साहन दिया था किन्तु उनके उत्तराधिकारियों ने हिन्दू धर्म स्वीकार किया। दक्षिण में चालुक्य वंशीय विक्रमादित्य के पश्चात् बौद्ध धर्म के चिह्न दिखाई नहीं देते।

कन्नड और गुजरात; राष्ट्रकूट और कलचुरी जैन धर्म के अनुयायी थे किन्तु बारहवीं शताब्दी में जैन धर्म केवल गुजरात तक सीमित रह गया।

देवी देवताओं की पूजा का महत्त्व बढ़ने लगा। शिव, विष्णु और ब्रह्मा और दुर्गा के विशाल मन्दिर देश के भिन्न भिन्न भागों में स्थापित हुये।

कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य

बौद्ध धर्म और जैन धर्म को समाप्त करने वालों में प्रमुख स्थान कुमारिलभट्ट और शङ्कराचार्य का है। कुमारिलभट्ट उज्जैन का एक बड़ा विद्वान् था जिस ने स्थान स्थान भ्रमण कर बौद्ध मत का विरोध किया। शङ्कराचार्य मालाबार का नमबूदरी ब्राह्मण था। शङ्कराचार्य ने उपनिषद, गीता और वेदान्त दर्शन पर टीका लिखी। स्थान स्थान का भ्रमण कर उस ने अद्वैत वाद का प्रचार किया। इस सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म और मानव में कोई भेद नहीं। इस का मूल मन्त्र है "अहं ब्रह्मास्मी।"

शङ्कराचार्य ने चार मठों की स्थापना की जिन में से प्रमुख माईसोर में श्रिंगेरी के स्थान पर है । एक मठ उड़ीसा में पुरी के स्थान पर, एक काठियावाड़ में द्वारका के स्थान पर और एक हिमालय में बद्री नाथ के स्थान पर है ।

शङ्कराचार्य आठवीं शताब्दी में हुआ है। ३२ साल की आयु में उस की मृत्यु किदार नाथ के स्थान पर हुई।

रामानुज जो बारहवीं शताब्दी में हुआ विष्णु मत का जन्मदाता कहा जा सकता है। वह मद्रास का रहने वाला था किन्तु शङ्कर की भाँति उसका प्रभाव भी समस्त भारत पर पड़ा । रामानन्द उसका प्रसिद्ध अनुयायी था ।

शिव मत को जीवन शक्ति प्रदान करने वाला वसु था। वह कलचूरी राजा का मन्त्री था । उस के अनुयायी वेदों को प्रमाण नहीं मानते ।

बौद्ध मत का अन्त

भारत में बौद्ध मत का अंत इस युग की सब से महत्त्वपूर्ण घटना थी । इसके कई कारण थे । बौद्ध मत में कई प्रकार की कुप्रथाएँ उत्पन्न हो गई थीं । भिक्षुओं का जीवन आदर्श जीवन न रहा था। ब्राह्मण धर्म ने बौद्ध मत के कई नियमों को अपना लिया था कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य की वाकशक्ति ने जनता को बौद्ध मत का शत्रु बना दिया। सब से बड़ा आघात तुर्कों की ओर से हुआ जिन्हों ने बौद्ध विहारों को भस्म कर दिया। बौद्ध मत भारत से निर्वासित हो गया किन्तु विदेशों में यह खूब फलता और फूलता रहा ।

कला

पत्थर के भवन प्रायः इसी युग में बनाए गये । काश्मीर के प्रसिद्ध मन्दिर जिनकी स्थापना ललितादित्य और अवन्ती वर्मन ने की वास्तु कला के अनूपम नमूने हैं। दक्षिण में पल्लव राजाओं की कृतियाँ, विशेष रूप से बौद्ध मन्दिर अर्थात् पगोडा और कांची का

कैलाश नाथ मन्दिर देखने से सम्बंध रखते हैं। चालुक्य और राष्ट्रकूट राजाओं ने पल्लव राजाओं की प्रतिभा को मात करने की चेष्टा की और अलोरा के मन्दिर बनवाए। बैलोर, तंजोर, और माईसोर के मंदिर जिन्हें हौयसल और चोल राजाओं ने बनवाया उस युग की कला की जीती जागती तस्वीर हैं।

उड़ीसा, बुंदेलखण्ड, आबू और बङ्गाल के अनेक मंदिर और मठ यह सिद्ध करते हैं कि समस्त भारत में वास्तु कला उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी।

पाषाण निर्माण कला और चित्रकला के अनेक नमूने कैलाशनाथ, महोबा, नालंद और रंगपुर में प्राप्त हुए हैं। पाल चित्र कला के नमूने ताड़ के पत्तों पर मिले हैं जिन के तीन संग्रह विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

गायन विद्या, नृत्य और नाटक की भी बहुत उन्नति हुई। बङ्गाल और दक्षिण ने इस में विशेष रूप से दक्षता का प्रमाण दिया।

साहित्य (संस्कृत)

भारवी, माघ, श्री हर्ष, भवभूति, महेन्द्रवर्मन, नारायण, मुरारी, क्षेमेश्वर, राजशेखर, कृष्णमित्र, जयदेव, भर्तृहरि, सुबन्धु, बाण, हेमचन्द्र, कल्हण और बिल्हण, नंदी, कथा सरित सागर के लेखक सोमदेव और दूसरे लेखकों ने संस्कृत साहित्य को चार चाँद लगाए।

संस्कृत अपने पूरे यौवन पर थी किन्तु कई प्राकृत भाषाएँ जैसे बङ्गाली, हिंदी, मराठी, तामिल, कन्नड आदि ने जन्म लिया चन्द्र बाई जिस ने हिंदी में पृथ्वी राज रासो लिखा, ज्ञनेश्वर जिस ने मराठी में भगवद्गीता पर टीका लिखी—इस काल के प्रसिद्ध लेखक थे।

प्राकृत

इन भाषाओं को अपभ्रंश कहते थे। प्राकृत में राज शेखर की कृतियाँ अति मूल्यवान हैं।

अन्य साहित्य

इस के अतिरिक्त दर्शन शास्त्रों में उद्योत्कार, कुमारिल, शंकराचार्य, वाचस्पति मिश्र, और रामानुज ने बहुत वृद्धि की। चिकित्सा शास्त्रों में वागभट्ट और चक्रपाणी की कृतियाँ अति माननीय हैं। सोमेश्वर तृतीया ने जो विक्रमादित्य षष्टम का पुत्र था एक अमूल्य ग्रंथ संसार को प्रदान किया जिस में अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। कई पुराणों और स्मृतियों की भी रचना हुई।

नक्षत्र विद्या में भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि की रचना कर एक नये युग का निर्माण किया। उस के पाए का ग्रंथ सूर्य सिद्धान्त के अतिरिक्त कोई नहीं।

भारत का प्रसार

यों तो भारत के इतिहास में कोई भी ऐसा युग दिखाई नहीं देता जब यह महान् देश सीमित हो कर बैठ गया हो और इस के विदेशों से सम्बंध न रहे हों किन्तु छठी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक उस ने विशेष रूप से पंख फैलाए। जावा का बोरोबुदूर मन्दिर और अङ्कौर का अंगकौर वाट इस की साक्षी देते हैं कि भारतीय कला दूर देशों में किस उत्कर्ष पर पहुँची। तिब्बत, अफ़ग़ानिस्तान, लङ्का जावा, सुमात्रा, बाली, कम्बोदिया और अन्य देश भारतीय वीरों के साहस और प्रतिभा की आज तक सराहना करते हैं। वे भारत को अपना आदि गुरु स्वीकार करने में गर्व अनुभव करते हैं।

तुर्कों ने बहुत सा प्राचीन साहित्य और अनेक स्मारक नष्ट कर दिये किन्तु फिर भी राजपूत काल के विषय में बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है जिस की गवेषणा की आवश्यकता है।

परिच्छेद १८

तुर्क कालीन भारत

तुर्क और मध्यकाल

यह एक विडम्बना दीख पड़ती है कि यूरोप में तुर्कों का आगमन जागृति के युग का हेतु बना किन्तु भारत में उन के आने से वे ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं जो मध्य कालीन यूरोप में दृष्टिगोचर होती थीं।

मध्यकाल की परिभाषा

यूरोपीय इतिहासज्ञ मध्य काल की गणना सातवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी ई० तक करते हैं। इसी के आधार पर भारतीय इतिहास के इस समानान्तर काल को मध्य काल कह दिया जाता है।

यूरोप में मध्य काल अंधकार, अर्थात् निरंकुशता, अत्याचार, भ्रष्टाचार, निर्दयता, निरक्षरता, दरिद्रता और धर्मान्धता का युग था।

पूर्वी साम्राज्य की राजधानी कान्स्टैन्टीनोपल (कुस्तुनतुनिया) और अलैग्जैंड्रिया के पुस्तकालय प्राचीन-यूनानी और रोमन साहित्य से भरपूर होते हुए भी एक कृपण की निधि के समान थे जो निरर्थक ही पड़ी सड़ती है। तुर्कों के आगमन से यूरोप में इस निधि का प्रसार हुआ।

मध्यकाल का अंत

चीनी यात्री ह्यू न सांग के विवरण के अनुसार सातवीं शताब्दी में तुर्क कबीले भारत की पश्चिमी सीमा पर छाये हुए थे और बौद्ध धर्म के नियमों का पालन करते थे। कालान्तर में उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार किया और वे ईरानी सभ्यता के प्रभावाधीन हो गये। सैलजूक नाम की तुर्क जाति ने ईसाइयों के पवित्र स्थान यरोसलम पर अधिकार प्राप्त कर लिया और यूरोप के ईसाई राज्यों ने यरोसलम

प्राप्त करने की चेष्टा की परन्तु दो सौ साल तक लगातार युद्ध करने के पश्चात् भी यरोसलम तुर्कों के आधीन ही रहा।

इन युद्धों को क्रूसेड अर्थात् धर्मयुद्ध कहते थे। इनके कारण कुछ समय के लिये यूरोप में जागृति उत्पन्न हुई। यूरोपीय लोगों का अरबों से, जिन्होंने विज्ञान, साहित्य और व्यापार में बहुत उन्नति कर ली थी, सम्पर्क हुआ। फिर चंगेज़ के प्रहारों ने यूरोप को झंझोड़ा और अन्ततः १४५३ ई० में औटमन तुर्कों ने कान्स्टैन्टीनोपल को मलिया-मेट कर दिया। मध्यकाल के अन्त की यही तिथि समझी जाती है। कहा जाता है कि भारत में मध्य काल का अन्त १५२६ ई० में बाबर के आगमन से हुआ।

तुर्कों का भारत में आगमन

भारत की पश्चिमी सीमा दसवीं शताब्दी तक तुर्कों के लिये अबेध रही परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में गज़नी के अमीर सुबक्तगीन ने भारत पर पहिला आक्रमण किया। उस के पुत्र महमूद ने जो महमूद गज़नी के नाम से प्रसिद्ध है भारत में बहुत लूट मार की। भारत में तुर्कों का राज्य मुहम्मद ग़ोरी की विजय के पश्चात् तेरहवीं शताब्दी में स्थापित हुआ।

तुर्क कौन थे

तुर्क भी हूणों के समान मध्य एशिया से आये थे। वे घुड़सवारी में दक्ष थे, निरंकुश, स्थान स्थान पर घूमते थे, यूरोप और मध्यपूर्व के राज्यों में सैनिक भरती होते थे और अपने शौर्य और निर्भीकता के लिये बहुत मान पाते थे। उन्होंने अरबों से इस्लाम धर्म ग्रहण किया और ईरान की सभ्यता और भाषा अपनाई, किन्तु उन में न तो अरबों की सी कोमलता आई न ईरानियों की सी शिष्टता। वे स्वभाव के कठोर थे और भावुक्ता उन में नाम को न थी। उन का आचार यथार्थता पर आश्रित था। इस्लाम उन की सत्ता का हेतु था जिस के नाम पर वे लूट मार मचा सकते और सैनिक भरती कर सकते थे।

महमूद ग़ज़नी

महमूद ग़ज़नी अथवा ग़ज़नवी एक पक्का तुर्क था जिस ने भारत को क्षतविक्षित किया और यहाँ के मन्दिरों की अथाह दौलत को लूट कर ग़ज़नी को पूर्व की दुलहन बना दिया।

भारत और महमूद ग़ज़नी

कुछ इतिहास कार भारत की दुर्बलता को महमूद की सफलता का कारण समझते हैं। उस समय भारत में कोई केन्द्रीय शक्ति न थी। छोटे छोटे रजवाड़े थे जिनके शासक आपस में लड़ते भिड़ते रहते थे। लड़ते लड़ते मर जाने को ही वे वीरता समझते थे।

महमूद के साथ कई इतिहास कार आए थे। उन में से अलबरूनी जो मध्य एशिया का रहने वाला था विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उस के कथनानुसार ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद का अपना व्यक्तित्व उस की सफलता का कारण था। उस ने विरसे में एक छोटा सा राज्य पाया था किन्तु प्रकृति ने उसे अनूठी वीरता और तीक्ष्ण बुद्धि प्रदान की थी। उसकी विकराल आकृति उसकी दानव शक्ति की सूचक थी।

महमूद की लूट मार ने उस के गुणों को एक सीमा तक छिपा दिया है किन्तु इतिहास साक्षी है कि उस जैसा साहसी वीर संसार में विरला ही मिलेगा।

ग़ज़नी राज्य

ग़ज़नी राज्य की स्थापना अलप्तगीन ने की थी जो एक तुर्की दास था। उसके स्वामी ईरान के सम्राट् ने उस की योग्यता से प्रभावित होकर उसे ख़ुरासां का गर्वनर अर्थात् राज्यपाल नियुक्त किया था। ९६१ ई० में स्वामी की मृत्यु के पश्चात् वह स्वच्छन्द हो गया। ग़ज़नी आकर उस ने नए राज्य की स्थापना की।

दसवीं शताब्दी में भारत के उत्तर पश्चिम में "शाही" वंश का जय पाल राज्य करता था। उस के राज्य की सीमा काबुल तक थी।

गज़नी और भारत

गज़नी राज्य की सत्ता बढ़ती जा रही थी। जय पाल को शंका हुई और उस ने एक भारी सेना लेकर ग़ज़नी का रुख किया।

उस समय अलप्तगीन का दास सुबक्तगीन ग़ज़नी का अमीर था। वह जयपाल की सेना का मुकाबला करने के लिये आगे बढ़ा। दोनों सेनाओं का लमगान के स्थान पर मुकाबला हुआ।

सुबक्तगीन जयपाल की सेना को देख कर भयभीत हो गया। वह सन्धि करने को था कि हिमपात होने लगा। इस से जयपाल की सेना को बहुत हानि पहुँची। बहुत से सैनिक मारे गए और सामरिक सामग्री नष्ट हो गई।

जयपाल को सुबक्तगीन के साथ अपमान जनक सन्धि करनी पड़ी।

जब जयपाल लाहौर लौटा तो उस ने इस अपमान का बदला लेने का निश्चय किया। जयपाल ने सुबक्तगीन के दूतों को बंदी बना लिया। सुबक्तगीन को इस की सूचना मिली तो वह एक बड़ी सेना लेकर भारत की ओर बढ़ा। जयपाल ने उसको लमगान के स्थान पर रोक लिया। जयपाल की सहायता के लिये दिल्ली, अजमेर और कालिञ्जर के राजाओं ने सेना भेजी। जयपाल की सेना में उस समय १,००,००० घुड़सवार और इस से कई गुना पैदल सैनिक थे। सुबक्तगीन ने जयपाल की सेना के एक पक्ष पर आक्रमण किया और पूर्ण शक्ति उस पर लगा दी। इस व्यूह नीति को भारतीय न समझ सके और इसी आक्रमण से शत्रु की शक्ति का गलत अनुमान लगा बैठे। भारतीय सेना लड़खड़ा गई। फिर सुबक्तगीन ने समस्त भारतीय सेना पर आक्रमण कर

सुबक्तगीन का आक्रमण

दिया। भारतीय सेना भाग खड़ी हुई। सुबक्तगीन ने उसका सिंधु नदी तक पीछा किया और सहस्रों सैनिकों को तलवार के घाट उतारा। बहुत सी लूट सुबक्तगीन के हाथ लगी। सिंधु तक का इलाका भी उस के आधीन हो गया। इस युद्ध में महमूद अपने पिता के साथ था।

महमूद के आक्रमण

१००१ ई० में महमूद ने जयपाल पर आक्रमण किया। जयपाल ने पिशावर के स्थान पर महमूद का सामना किया। जयपाल के पास १२,००० घोड़े, ३०,००० पैदल और ३०० हाथी थे। इस युद्ध में भी जयपाल की हार हुई और वह अपने बहुत से सम्बन्धियों सहित बन्दी बना लिया गया। महमूद के हाथ अन्य लूट के अतिरिक्त सोलह कंठियाँ आईं जो जयपाल के कुटुम्बियों ने पहन रखी थीं। जयपाल की कंठी का मूल्य १,८०,००० दिरहम था। अन्य कंठियाँ भी बहुत मूल्यवान थीं।

अगले वर्ष जयपाल ने कर देना स्वीकार कर लिया और उस को मुक्त कर दिया गया, किन्तु जयपाल चिता में जल कर मर गया। उसके पुत्र अनंगपाल ने कर देना तो स्वीकार किया किन्तु वह महमूद को परास्त करने के अवसर की खोज में रहा।

भारतीयों द्वारा
प्रतिशोध

महमूद ने सुखपाल नाम के राजा को, जो मुसलमान बन गया था, सिंधु पार के इलाके का गवर्नर नियुक्त किया। महमूद के लौट जाने पर सुखपाल फिर हिन्दू बन गया और उसने विद्रोह कर दिया। महमूद इसे परास्त करने के लिये आगे बढ़ा।

सुखपाल तो परास्त हो गया किन्तु अनंगपाल ने महमूद का सामना किया। अनंगपाल ने पूर्ण तैयारी कर रखी थी। उसकी सहायता के लिये उज्जैन, ग्वालियर, कालिञ्जर, कन्नौज, दिल्ली

और अजमेर से सेना आई थी। पिशावर के निकट १००८ ई० में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। ४० दिन तक दोनों सेनाएँ आमने सामने पड़ी रहीं। महमूद ने अन्त में आक्रमण किया। भारतीय महमूद की सेना में घुस गए और पॉच मिनट में ५,००० सैनिकों का वध कर दिया। इस समय अनंगपाल का हाथी बेकाबू हो गया और भारतीय सेना ने समझा कि अनंगपाल डर कर भाग गया है। समस्त सेना भाग खड़ी हुई। महमूद ने उनका पीछा किया और २०,००० भारतीय मारे गये। यह युद्ध जीतकर महमूद ने नगरकोट के दुर्ग को लूटा। इस दुर्ग में जिसे भीम दुर्ग कहते थे १४०० पौंड सोना, ७,००,००० स्वर्ण मुद्रा, ४० पौंड हीरे और ४०,००० पौंड चाँदी थी। यह सब कोष महमूद के हाथ लगा।

महमूद द्वारा भारत की लूट

१०११ ई० में उस ने थानेश्वर का रुख किया। दिल्ली के राजा ने जिसके आधीन यह नगर था भारत के भिन्न भिन्न राजाओं को निमंत्रित किया, किन्तु पूर्व इसके कि सहायता पहुँचती महमूद थानेश्वर आ धमका। थानेश्वर में जग सोम की मूर्ति थी। महमूद ने मूर्ति को तोड़कर गज़नी भिजवा दिया। इस मूर्ति की आँख में से एक मूल्यवान लालमणि निकली जिसका भार ४५० मिसकल था। गज़नी में इस से पूर्व किसी ने ऐसा हीरा न देखा था। थानेश्वर से २,००,००० बन्दी गज़नी ले जाये गये।

कन्नौज और मथुरा

कन्नौज और मथुरा से भी महमूद को बहुत धन प्राप्त हुआ। यामनी नामक एक इतिहासकार लिखता है कि कन्नौज में दस सहस्र मन्दिर थे और आठ दुर्ग। कन्नौज को दिल खोल कर लूटा गया और इतना धन वहाँ से मिला कि अनुमान लगाना कठिन था।

मथुरा की लुटाई बीस दिन तक हुई। कहा जाता है कि मथुरा के मन्दिर इतने सुन्दर थे कि महमूद भी उन से प्रभावित हुआ

और उसने इन मन्दिरों को नष्ट नहीं किया। एक मन्दिर के विषय में महमूद ने स्वयं कहा था कि इस मंदिर को योग्य से योग्य मिस्तरी भी २०० वर्ष से कम समय में नहीं बना सकते और इसके निमार्ण में सैंकड़ों सहस्र दिरहम से कम व्यय न हुआ होगा। इस मन्दिर में पाँच मूर्तियाँ सोने की थीं जिनकी लम्बाई पाँच पाँच गज़ थी और हवा में बिना किसी सहारे के ठहरी हुई थीं। उन में से एक की आँख में लालमणि थी जिसके मूल्य का अनुमान पचास सहस्र दिरहम लगाया गया था। मूर्तियों को तोड़ा गया और उनमें से ६३,३०० मिसकल सोना प्राप्त हुआ। चाँदी और काँसे की भी बहुत सी मूर्तियाँ थीं। चाँदी की एक मूर्ति से नीलमणि प्राप्त हुई जिसका भार ४०० मिसकल था।

मथुरा से लौटने पर महमूद ने अनुभव किया कि उस जैसा धनवान सम्राट् संसार में कोई नहीं। उसने गज़नी की ओर ध्यान दिया। यहाँ एक कालिज की स्थापना की, एक मस्जिद बनवाई जिसका नाम स्वर्ग वधु रखा, और एक अजायबघर खोला जिसमें उन वस्तुओं का प्रदर्शन किया जो उसे भारत से प्राप्त हुई थीं। इन में एक पक्षी और एक पत्थर विशेष रूप से विलक्षण थे। यदि पक्षी के आस पास कहीं विष होता तो वह बेचैन हो जाता और उसकी आँखों से अश्रु गिरने लगते। पत्थर को गीला कर घाव पर लगाने से घाव ठीक हो जाता था।

भारत की लूट
गज़नी में

महमूद की प्रसिद्धि सब मुस्लिम देशों में फैल गई और १०२४ ई० में जब उसने सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण किया पास पड़ोस के देशों से सहस्रों व्यक्ति बिना वेतन के उसके साथ हो लिये।

सोमनाथ का मन्दिर गुजरात में देव के टापू के निकट बना हुआ था। हिन्दुओं का विश्वास था कि सब मनुष्य मरने के पश्चात

सोमनाथ का मन्दिर—

महमूद की क्षति

सोमनाथ के सामने से गुजरते हैं। समुद्र की झालें भी सोमनाथ के पाँव चूमने आती हैं। सोमनाथ को प्रति दिन ताज़ा गंगा जल से स्नान कराया जाता था यद्यपि यहाँ से गंगा नदी एक सहस्र मील दूर है।

लोकोक्ति है कि यह मूर्ति किसी समय मक्का में होती थी। भारतीय समझते थे कि भगवान् कृष्ण के काल में यह मूर्ति वहाँ स्थापित की गई थी। इस मूर्ति की लम्बाई पाँच गज़ थी जिस में से दो गज़ भूमि में थी। सोमनाथ का मन्दिर वास्तुकला का एक अद्भुत नमूना था। यह पत्थर को काट कर बनाया गया था। इसकी महान् छत ५६ स्तम्भों पर टिकी हुई थी। स्तम्भों पर, छत और दीवारों पर सुन्दर चित्रकारी की गई थी और उन में बहुमूल्य हीरे और मोती जड़े थे। चन्द्र और सूर्य ग्रहण के समय लाखों यात्री यहाँ एकत्रित होते थे। इस मन्दिर के नाम २,००० ग्राम थे जिनकी आय से इस मन्दिर में रहने वाले २,००० ब्राह्मणों, ५०० देवदासियों, ३०० गायकों, ३०० नाइयों और सैंकड़ों अन्य व्यक्तियों का निर्वाह होता था। भारत के कुलीन वंश विशेष रूप से राजा लोग अपनी पुत्रियों को इस मन्दिर के अर्पित करते थे और वे यहाँ देव दासियां बन कर पूजा के समय नृत्य किया करती थीं।

सोमनाथ के मन्दिर तक पहुँचने के लिये महमूद को राजस्थान के मरुस्थल से गुज़रना पड़ा और मार्ग में कई राजाओं ने उस का विरोध किया। सोमनाथ की रक्षा के लिये भी बहुत से राजाओं ने सेना भेजी थी।

महमूद ने सोमनाथ के निकट डेरे डाले। भारतीय सेना बहुत महान् थी, किन्तु महमूद को अपनी शक्ति का गर्व था। उसने मन्दिर पर आक्रमण कर दिया। भारतीय सेना ने

तुर्कों के छक्के छुड़ा दिये और उन्हें पीछे हटना पड़ा। दूसरे दिन भी इनको बहुत क्षति पहुँची। सोमनाथ की रक्षा करने के लिये नई भारतीय सेनाएँ आ रही थीं। महमूद की सेना हताश हो गई। महमूद भूमि पर औंधा लेट गया और खुदा से प्रार्थना करने लगा। इसके पश्चात् अपने सैनिकों को सम्बोधित करते हुए बोला, "खुदा ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है और मुझे विजय का आश्वासन दिलाया है।" यह कह कर वह घोड़े पर सवार हुआ और एक सेनापति को साथ लेकर आगे बढ़ा। इस से तुर्क सैनिकों का उत्साह बढ़ गया और वे अल्लाहोअकबर कहते हुए भारतीय सेना पर टूट पड़े। प्रथम आक्रमण में ही ५,००० भारतीय खेत रहे। भारतीय सेना भाग निकली।

सेना की हार हो जाने पर मन्दिर के पुजारियों ने महमूद को बहुत सा धन भेंट करने का प्रलोभन दिया और प्रार्थना की कि वह मूर्ति को न तोड़े। महमूद ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न की और कहा, "मैं बुत फ़रोश के बजाय बुत शिकन के नाम से मशहूर होना चाहता हूँ।" यह कहते कहते उसने मूर्ति के चार टुकड़े कर दिये। दो टुकड़े मक्का और मदीना और दो गज़नी भिजवाए। महमूद मन्दिर के किवाड़ भी उतार कर ले गया जो उसकी मृत्यु पश्चात् उसके मकबरे को लगाए गए। अब ये लन्दन के अजायबघर में रखे हैं।

सोमनाथ की मूर्ति अन्दर से खोखली थी और उस में बहुत से हीरे मोती भरे थे। यह धन उस से कहीं अधिक था जो पुजारी उसे देना चाहते थे।

महमूद बहुत सी निधि और दास लेकर सोमनाथ से लौटा। वह गुजरात प्रदेश से गुज़र रहा था कि एक सुन्दर स्थान पर पहुँचा जहाँ उसने कुछ वर्ष के लिये राजधानी बनाने का निश्चय किया। इस स्थान पर सोने की खानें थीं। सम्भव है इन्होंने भी महमूद

को प्रलोभन दिया हो। महमूद ने सुना था कि लङ्का और बर्मा में भी सोने की खानें हैं। उस को ये देश विजय करने की लालसा हुई परन्तु गुर्जर वंश के राजा भोज ने उसे जा लिया। महमूद ने भाग कर जान बचाई, किन्तु उसके कई सैनिक पकड़े गये जिन्हें राजपूतों ने शुद्ध कर हिन्दू बना लिया।

महमूद के आक्रमण के पश्चात्

महमूद ने भारत पर लगभग सत्रह आक्रमण किये। भारतीय राजाओं ने फिर शक्ति प्राप्त की और नये सिरे से मन्दिर बनवाये। नगरकोट का मन्दिर तो बिल्कुल उसी भाँति बन गया जैसे पहले था और उस में मूर्ति भी वैसी ही स्थापित की गई।

महमूद की लूट का प्रभाव

चिरकाल तक सुरक्षित रहने के कारण भारतवासियों की यह धारणा बन गई थी कि उन सरीखा संसार में और कोई नहीं है। महमूद के प्रहारों ने भारतीयों का घमण्ड तोड़ दिया। उन्हें अपनी दुर्बलता का आभास हुआ। तुर्कों के पश्चिमी सीमा पर छा जाने के कारण भारत पश्चिमी संसार से कट गया था। महमूद की लूट से विदेशियों को भारत की अथाह दौलत और दुर्बलता का बोध हुआ। भारत की संस्कृति पर भी काफ़ी प्रकाश पड़ा।

भारत में इस्लाम के प्रति, जिसका प्रतिनिधि महमूद को समझा जाता था, घृणा उत्पन्न होता स्वभाविक था। इस प्रतिक्रिया का प्रभाव सदियों तक रहा और कुछ सीमा तक अब भी दिखाई देता है।

मुस्लिम संसार महमूद को प्रायः धार्मिक नायक के रूप में प्रदर्शित करता है किन्तु महमूद ने इस्लाम का आश्रय केवल इसलिये

महमूद का चरित्र

लिया था कि वह अपनी लूट मार को उचित सिद्ध कर सके। इस्लाम का आश्रय लेकर महमूद ने उसे बहुत क्षति पहुँचाई। अरबों के व्यापार से इस्लाम के विषय में भारतीयों की जो धारणा बनी थी महमूद के व्यवहार ने उसका रूप बदल दिया।

महमूद के मन में धन प्राप्त करने की लालसा थी इस में कोई संदेह नहीं। शाहनामा के प्रसिद्ध कवि फिरदौसी की महमूद द्वारा अवज्ञा इस कथन की पुष्टि करती है। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि उस ने गज़नी को सुन्दर और भव्य बनाने के लिये दिल खोल कर धन व्यय किया। अनपढ़ होते हुए भी वह विद्वानों और कलाकारों का मान करता था। अलबरूनी, उत्बी, फराबी, उन्सूरी फारूखी और असजादी जैसे विद्वान् उसकी कृपा के पात्र थे। उसने गज़नी में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की, एक पुस्तकालय और एक अजायबघर की। वह अपने न्याय के लिये प्रसिद्ध था, परन्तु लूट मार में व्यस्त रहने के कारण वह अपने साम्राज्य में अनुशासन स्थापित न कर सका।

उन दिनों विजित लोगों को दास बनाने की प्रथा थी परन्तु बहुत से भारतीय सैनिकों ने अपनी इच्छा से महमूद की सेना में भरती होना स्वीकार किया। महमूद ने अपने ब्राह्मण मन्त्री तिलक को विशाल अधिकार प्रदान किये थे।

महमूद के साथ कई इतिहासज्ञ और विद्वान आये थे। उन में अलबरूनी विशेष रूप से प्रसिद्ध है। वह खीव का

अलबरूनी

रहने वाला था जिसकी विजय के समय महमूद ने अलबरूनी को बन्दी बना लिया था। अलबरूनी गणित, दर्शनशास्त्र, नक्षत्र विद्या, अरबी, फारसी, तुर्की और संस्कृत का विशेषज्ञ था। उपनिषदों से वह बहुत प्रभावित हुआ था। उसने भारत का

वर्णन विस्तार पूर्वक किया है। उस ने भारतीयों के घमण्ड की निन्दा करते हुए भी उन के सदाचार और सद्व्यवहार की बहुत सराहना की है । उसके कथन के अनुसार भारत राजनैतिक रूप से कई भागों में बंटा हुआ था । काश्मीर, सिन्ध, मालवा, गुजरात, बङ्गाल और कन्नौज में भिन्न भिन्न राज्य थे । इन के अतिरिक्त कई छोटे छोटे राज्य भी थे जिन्हें सामूहिक रूप से भारत की रक्षा की चिन्ता न थी। इस विषय में अलबरूनी और अन्य तुर्की इतिहासकारों ने यह भी बताया है कि महमूद का मुकाबला करने के लिये भारत के दूरस्थ भागों से सेनायें आती थीं । साधारण लोगों ने भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार राष्ट्रीय आपत्ति को रोकने के लिये अंश दान दिया था ।

मूर्ख लोग देवी देवताओं में विश्वास रखते थे परन्तु समझदार लोग एक ईश्वर की उपासना करते थे ।

शादियाँ छुटपन में ही हो जाती थीं। विधवायें दूसरा विवाह न कर सकती थीं और उन्हें प्रायः सती होना पड़ता था । जात पांत के बन्धन कड़े हो चुके थे ।

अलबरूनी ने भारतीयों की कोमलता का विशेष रूप से उल्लेख किया है । यहाँ तक कि अपराधों के लिये भी कड़े दण्ड न दिये जाते थे, यद्यपि अंग विच्छेद जैसे क्रूर दण्डों का अभाव न था ।

अलबरूनी का वृतान्त मूल्यवान् ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करता है ।

राजनैतिक स्थिति

हम इस परिच्छेद में कह आए हैं कि महमूद गज़नी भारत में साम्राज्य स्थापित न कर सका परन्तु उस के आक्रमणों के फलस्वरूप विदेशियों के लिये भूमि तैयार हो गई। भिन्न-भिन्न राज्य स्थापित हो गये जो आपस में प्रायः युद्ध करते रहते थे। यही कारण

था कि भारत की सामूहिक सैनिक सत्ता क्षीण हो गई और वह शत्रु का डट कर मुकाबला न कर सका। मुहम्मद गौरी और उस के उत्तराधिकारियों ने इन्हें एक एक कर के परास्त कर लिया।

मुहम्मद गौरी के आक्रमण के समय उत्तरी भारत में काश्मीर, सिन्ध, गुजरात, राजस्थान, मालवा, उड़ीसा, अवध, मगध, बङ्गाल और आसाम आदि प्रदेशों में प्रमुख राज्य थे।

काश्मीर

उत्पल वंश के शंकरवर्मन के पश्चात् जिस ने ९३९ ई० से ९४८ ई० तक राज्य किया काश्मीर में गृह युद्ध आरम्भ हो गए। ९८० ई० में रानी दिद्दा काश्मीर के सिंहासन पर बैठी जो एक अति योग्य अपितु क्रूर शासक सिद्ध हुई और १००३ ई० तक राज्य करती रही। उस के पश्चात् फिर काश्मीर की राजनैतिक दशा बिगड़ गई जिस का चित्रण कल्हण ने राजतरंगिणि में किया है।

राजा सिंह देव के समय (१३०५ ई०) में ज़ुल्कादर ख़ाँ ने पश्चिम से आक्रमण किया जिस का मुकाबला रामचन्द्र ने किया किन्तु रामचन्द्र के सेनापति रेचन शाह ने जो बाद में मुसलमान बन गया रामचन्द्र का वध कर उस की पुत्री कुटरानी से विवाह कर लिया और काश्मीर के सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। काश्मीर की दशा बिगड़ती ही गई। १४१७ ई० में जैनुअबुद्दीन काश्मीर के सिंहासन पर बैठा और उस ने इस सुन्दर और रमणीय घाटी को नया जीवन प्रदान किया। काश्मीर को अन्ततः अकबर ने विजय किया।

काबुल

सातवीं शताब्दी में जब अरब चारों ओर फैले जा रहे थे काबुल के भारतीय राजाओं ने उन्हें आगे न बढ़ने दिया। काबुल के शासकों में कनक, समन्द, कमलुआ, भीम, जयपाल, आनन्दपाल, जयपाल द्वितीय और भीमपाल प्रसिद्ध राजा हुए हैं।

दसवीं शताब्दी में गज़नी पर तुर्कों का आधिपत्य स्थापित हो गया किन्तु उन की काबुल के राजाओं से मैत्री रही। एक समय आनन्दपाल के पुत्र को गज़नी के अमीर ने बन्दी बना लिया था किन्तु जब उस पर पश्चिम से आक्रमण हुआ तो आनन्दपाल ने अमीर को लिख भेजा कि वह ५००० घुड़ सवारों, १००० पैदल और १०० हाथियों से उस की सहायता कर सकता है। उसका पुत्र जो अपने पिता से भी अधिक उदार था दुगनी सेना लेकर अमीर की रक्षा के लिये गया।

जयपाल द्वितीय और भीमपाल के विषय में निश्चित तथ्य प्राप्त हुए हैं। उनकी राजधानी लाहौर थी। इस राज्य का अन्त महमूद गज़नी ने किया।

बङ्गाल

बङ्गाल में पाल वंश दसवीं शताब्दी तक योग्यता से शासन करता रहा, तब पश्चिमी भारत से कम्बोजों का आक्रमण हुआ जिस ने इस वंश को क्षति पहुँचाई किन्तु महीपाल प्रथम ने फिर पाल वंश की शक्ति को जीवित किया और अपने साम्राज्य का विस्तार बनारस तक किया। उसके साम्राज्य में दक्षिण पश्चिमी बङ्गाल का राज्य, और पूर्वी बङ्गाल का राज्य सम्मिलित थे।

ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में पाल वंश का चेदि वंश से विवाह सम्बंध स्थापित हो गया और कई पीढ़ियों तक यह वंश चलता रहा किन्तु उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी।

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में पाल वंश की रही सही शक्ति भी समाप्त हो गई और पूर्वी भारत में एक शक्तिशाली राज्य की नींव पड़ी, जिसकी राजधानी इलाहाबाद के स्थान पर थी। इस वंश का संस्थापक समन्तसेन था जो कन्नड देश का रहने वाला था। विजय सेन ने जो उस का पौत्र था पाल राज्य को विजय किया और कामरूप अर्थात आसाम, त्रिहुत, और कलिंग को अपने साम्राज्य में सम्मि-

लित किया। उसके पुत्र बल्लालसेन ने दानसागर और अमृतसागर दो महान ग्रन्थों की रचना की। उस के उत्तराधिकारी लक्ष्मणसेन का शासन काल कला और साहित्य की उन्नति के लिये प्रसिद्ध है। जयदेव, और उमापति, उस काल के माने हुए लेखक थे। सेन वंश तेरहवीं शताब्दी के मध्य तक राज्य करता रहा।

कामरूप अर्थात आसाम

आसाम में जो जाति पाई जाती है उस पर चीन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वहाँ का तान्त्रिक धर्म और भाषा इसके प्रतीक हैं। अशोक के काल में जब समस्त भारत पर बौद्ध धर्म छा गया आसाम उस के प्रभाव से बचा रहा। गुप्त सम्राटों के आधीन रहने के पश्चात् वह फिर स्वतन्त्र हो गया। तुर्कों ने इसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु मुँह की खाई।

मगध

मगध का वैभव तो गुप्त काल में ही समाप्त हो गया था। दसवीं शताब्दी में गुप्त वंश का नाम लेवा भी कोई न रहा। देश के इस भाग में एक नये वंश ने जो कलचुरी वंश के नाम से प्रसिद्ध है एक छोटे से राज्य की नींव डाली। गंगदेव (१०१५—४० ई०) और कर्मदेव (१०४१ से १०६१ ई०) के काल में इस का विस्तार कांगड़ा और भागलपुर से लेकर कन्नड देश तक हो गया। तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक यह वंश राज्य करता रहा यद्यपि इस की शक्ति कर्मदेव के राज्य काल में ही क्षीण हो गई थी।

बुन्देलखंड

बुन्देल खंड प्रतिहार साम्राज्य का केन्द्र था। उसके क्षय होने पर यहाँ चन्देल वंश का राज्य हो गया। महोबा और कालिञ्जर इस के दो बड़े गढ़ थे। इस वंश के दो प्रसिद्ध शासक हुए एक धंगा जिस ने ९५४ से १००२ ई० तक राज्य किया दूसरा कीर्ति वर्मन जिस ने १०९८ ई० में सिंहासन ग्रहण किया। कीर्ति वर्मन

के काल में कृष्णमित्र हुआ जिस ने प्रबोधचन्द्रोदय की रचना की। इस वंश के अन्तिम राजा को पृथ्वीराज ने परास्त किया।

मालवा

परमार वंश का प्रसिद्ध शासक भोज (१०१८ से १०६० ई०) था। उसने धार के स्थान पर संस्कृत विद्यालय की स्थापना की और प्रसिद्ध भोजपुर झील खुदवाई। वह करण का समकालीन था। भोज गुप्त वंश के विक्रमादित्य की भाँति बहुत सी लोक गाथाओं का विषय है। वह कई पुस्तकों का लेखक था जो भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखी गई थीं। भोज के पश्चात् मालवा पर गुजरात के बुंदेलों का राज्य स्थापित हो गया।

गुजरात

गुजरात में दसवीं शताब्दी में चालुक्य वंश के मूलराज ने प्रतिहार सम्राज्य समाप्त हो जाने पर एक नए राज्य की नींव रखी थी। इस वंश का प्रमुख शासक राजा भीम हुआ है जो चेदि के कर्मदेव और मालवा के भोज का समकालीन था और जिस ने इन शासकों के साथ मुठभेड़ की थी। उसकी शक्ति को महमूद गज़नी ने समाप्त किया।

भीम का नाम सोमनाथ के आक्रमण से सम्बन्धित है।

भीम के उत्तराधिकारियों में कुमारपाल जिस ने ११४३ से ११७४ ई० तक राज्य किया बहुत प्रसिद्ध शासक था और उसका राज्य गंगा से पश्चिमी समुद्र तक फैला हुआ था। वह जैन धर्म का अनुयायी था। उस के पश्चात् इस वंश की शक्ति क्षीण हो गई।

कन्नौज

कन्नौज पर प्रतिहार वंश का अधिकार १०१८ ई० में समाप्त हो गया। फिर एक नए वंश का अभ्युदय हुआ जिसे कुछ लोग राष्ट्रकूट कहते हैं और कुछ गहरवार अथवा राठौर। इस वंश का प्रमुख राजा गोविन्द चन्द्र था जिसने १११४ से ११५४ ई० तक राज्य किया। उसने

बनारस और अन्य तीर्थ स्थानों की तुर्कों के आक्रमणों से रक्षा की। जय चन्द्र इस वंश का अन्तिम राजा था जिस की पुत्री संयुक्ता प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्र है।

दिल्ली

दिल्ली किसी समय प्रतिहार साम्राज्य में सम्मिलित था किन्तु १०५२ ई० में इस पर अनंगपाल जो तोमर वंश से था राज्य करता था। कहा जाता है कि पृथ्वी राज जिस ने मुहम्मद गौरी से युद्ध किया और जो अजमेर का राजा था दिल्ली के तोमर राजा का नवासा था और उस के नाना ने दिल्ली का राज्य उस को सौंप दिया था।

दक्षिण भारम

दक्षिण के प्रमुख राज्यों का वर्णन हम पहिले कर आए ह। इनम कुछ राज्य क्षीण हो गये और उनकी भस्म से नये राज्य उत्पन्न हुए। उन में से द्वारसमुद्र के हौयसल, देवगिरी के यादव, और वारंगल के काकतीय प्रमुख हैं।

हौयसल वंश के प्रमुख दो शासक हुए। एक विष्णु वर्द्धन (११०६ से ११४१ ई० तक) और दूसरा वीर बल्लाल (११७३–१२२० ई०)। संत रामानुज विष्णु वर्द्धन के काल में हुए। वीर बल्लाल ने देवगिरी के यादवों को परास्त कर उत्तर में अपने राज्य का विस्तार किया। यह वंश १३५६ ई० में समाप्त हो गया।

देवगिरी में जिसे दौलताबाद भी कहते हैं यादव वंश के भिल्लम ने ११८७ ई० में राज्य स्थापित किया। यह वंश साहित्य और विज्ञान को प्रोत्साहन देने के लिये प्रसिद्ध है। यहां भास्कराचार्य के पौत्र ने नक्षत्र विद्या के अध्ययन के लिये एक महाविद्यालय स्थापित किया। हेमाद्रि और ज्ञानेश्वर प्रसिद्ध लेखक हुए। इस वंश का अन्त चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ।

वारंगल में काकतीय वंश का राज्य १३१६ ई० तक रहा। इस वंश कीं प्रसिद्ध शासक राजकुमारी रुद्रमा हुई है। मारकोपोलो ने रुद्रमा की बहुत सराहना की है। इस वंश के राजा काँची में १३१६ ई० तक राज्य करते रहे।

उड़ीसा में गंग वंश के राजा अनन्त वर्मन ने १०७६ ई० में एक शक्तिशाली राज्य की नींव डाली। पुरी का जगन्नाथ का मन्दिर उसी ने बनवाया था। इस वंश का अन्त १४३४ ई० में हुआ। इसका सम्बन्ध जैन मत से था।

परिच्छेद १९

दिल्ली के सुल्तान

ग़ौर वंश

ग़ौर एक छोटा सा राज्य था जो किसी समय ग़ज़नी के आधीन था किन्तु अब गज़नी की शक्ति समाप्त हो रही थी। ग़ौर के सरदार गियासुद्दीन ने गज़नी को विजय किया और सुल्तान की पद्वी ग्रहण की। मुहम्मद ग़ौरी उस का भाई और सेनापति था।

१२०३ ई० में गियासुद्दीन की मृत्यु हो गई और मुहम्मद ग़ज़नी का सुल्तान बना। उस ने पंजाब को विजय किया और वह दिल्ली के राजा पृथ्वीराज का पड़ौसी बन गया। दोनों में मुठभेड़ होना स्वाभाविक था।

तराइन की पहली लड़ाई

११९१ ई० में तराइन के स्थान पर तुर्क और भारतीय सेनाओं का सामना हुआ। इस युद्ध में मुहम्मद ग़ौरी घायल हो गया। उस के बहुत से अफसर मैदान छोड़ कर भाग गए। भारतीय सेना ने ४० मील तक ग़ौरी की सेना का पीछा किया।

तराइन की दूसरी लड़ाई

दो साल पश्चात् मुहम्मद ग़ौरी पृथ्वी राज से बदला लेने के लिये आया। उस की सेना में इस बार एक लाख से अधिक घुड़ सवार थे। पहले युद्ध में जो अफसर भाग गए थे उन्हें मुहम्मद ग़ौरी ने बहुत अपमानित किया था किन्तु उस ने उन्हें एक और अवसर प्रदान किया। वे भी इस मुहिम में सम्मिलित हुए।

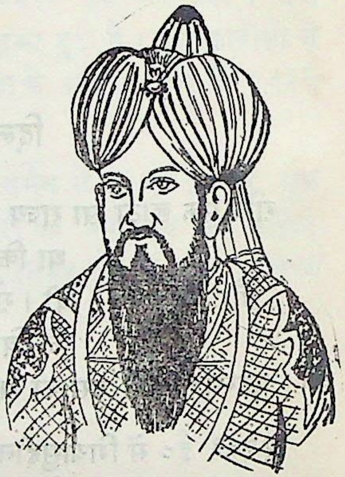

शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी

पृथ्वी राज युद्ध के लिये तैयार था। उस ने भारत के छोटे बड़े १५० राजाओं का सहयोग प्राप्त किया। उस की सेना में तीन लाख घुड़सवार, तीन हजार हाथी और अनगिनित पैदल सिपाही थे। पृथ्वी राज ने मुहम्मद ग़ौरी को चेतावनी दी कि वह सन्धि कर ले और व्यर्थ अपनी जान न गंवाए।

मुहम्मद ग़ौरी ने इस पत्र का उत्तर बहुत चालाकी से दिया। उसने लिखा कि वह अपने भाई को उत्तरदायी है इस लिये उस की आज्ञा के बग़ैर सन्धि नहीं कर सकता किन्तु जब तक वहाँ से उत्तर न आए वह अन्तरिम सन्धि करने को तैयार है।

इस उत्तर से पृथ्वी राज की तसल्ली हो गई। भारतीय सेना खुशियाँ मना रही थी कि मुहम्मद ग़ौरी प्रातः काल भारतीय सेना में घुस आया।

भारतीयों ने उसके प्रहार का उत्तर दिया और मुहम्मद ग़ौरी पीछे हटता गया। यह उसकी चाल थी। साँझ को जब भारतीय यह समझ रहे थे कि मुहम्मद ग़ौरी हताश हो गया है उस ने भारी आक्रमण कर दिया। भारतीय सेना इस के लिये तैयार न थी। क्षेत्र ग़ौरी के हाथ रहा। पृथ्वीराज और अन्य बहुत से राजा लड़ाई में काम आए।

पृथ्वीराज की हार का कारण

कहा जाता है कि पृथ्वी राज की पराजय का कारण कन्नौज का राजा जयचन्द था। पृथ्वी राज और जयचन्द की माताएँ दोनों बहिनें थीं किन्तु दिल्ली के तोमर राजा ने जिस की वे पुत्रियाँ थीं

दिल्ली का राज्य पृथ्वी राज को प्रदान किया। इस से जयचन्द के मन में ईर्षा उत्पन्न हुई और वह पृथ्वी राज का शत्रु बन गया। इसके पश्चात् एक और घटना हुई।

जयचन्द की पुत्री संयुक्ता का हरण कर पृथ्वी राज ने उसे एक और ठेस पहुँचाई। जयचन्द के पास पृथ्वी राज का विरोध करने के लिये युक्ति थी किन्तु फिर भी इतिहास की दृष्टि से वह देश द्रोही सिद्ध हुआ। मुहम्मद ग़ौरी ने जयचन्द से दग़ा की और अगली बार उसका भी अन्त कर दिया।

मुहम्मद ग़ौरी की विजय का महत्त्व

मुहम्मद ग़ौरी ने भारत के कई स्थानों पर आक्रमण किये थे। कुछ मुहिमों में उसे भारी मार पड़ी थी किन्तु वह भारत में तुर्कों का राज्य स्थापित करने में सफल हुआ। दिल्ली के सिंहासन पर उस ने अपने दास कुतुबुद्दीन को बिठाया और स्वयं ग़ज़नी लौट गया।

उस की अनुपस्थिति में ग़ज़नी में विद्रोह हो गया और वह नगर उस के हाथ से निकल गया। उसके साम्राज्य के अन्य कई भागों में अशान्ति फैल गई। वह ग़ज़नी न पहुँच सका और १२०६ ई० में उसकी हत्या कर दी गयी। उस की हत्या के विषय में कई लोक गाथाएँ प्रसिद्ध हैं जिन में से एक यह है कि उस का अंत पृथ्वी राज के बाण से हुआ, जिसे मुहम्मद ग़ौरी ने नेत्र हीन कर दिया था। यह मत अधिक व्यापक है कि उस का वध गक्खड़ों ने किया था।

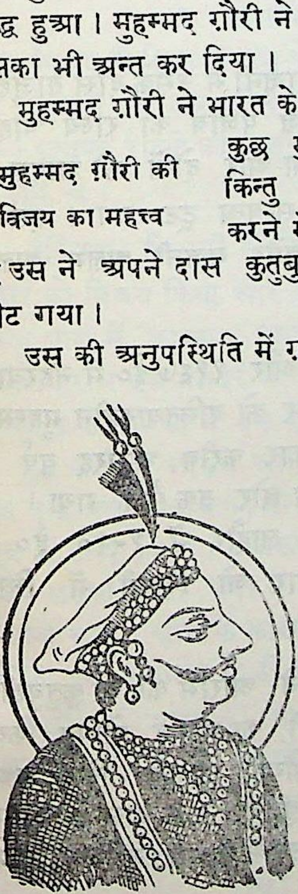

पृथ्वीराज चौहान

मुहम्मद गौरी के मरते ही उस के साम्राज्य का विभाजन हो गया किंतु उस का स्थापित किया हुआ दिल्ली राज्य स्थायी रहा।

दिल्ली का गुलाम वंश

कुतुबुद्दीन ऐबक भारत का पहला मुसलमान सुल्तान था। वह मुहम्मद गौरी का दास था किन्तु अपनी योग्यता के कारण अपने स्वामी की नज़रों में चढ़ गया और उसने भारत में उसे अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

मुहम्मद गौरी की मृत्यु के पश्चात् गज़नी में उसके दास ताजुद्दीन ने सिंहासन संभाला। ताजुद्दीन यल्दौज़ पंजाब का राज्य चाहता था किन्तु कुतुबुद्दीन ने स्वीकार न किया और दोनों की आपस में ठन गई। भारत और गज़नी का सम्बन्ध टूट गया। इस के पश्चात् बाबर के आक्रमण तक भारत और गज़नी अलग अलग शासकों के आधीन रहे।

कुतुबुद्दीन ने ११९४ ई० में बनारस और ११९७ ई० में नहरवाल को विजय किया। बङ्गाल और बिहार को बख्तियारुद्दीन मुहम्मद खिलजी ने विजय किया और इस प्रकार करीब अठारह वर्ष में मुस्लिम राज्य भारत के इस छोर से उस छोर तक फैल गया।

कुतुबुद्दीन की चौगान खेलते हुए लाहौर में १२१० ई० में अचानक मृत्यु हो गई। कुतुब मीनार जो दिल्ली में स्थित है उसका अनूठा स्मारक है।

अल्तमिश

कुतुबुद्दीन के पश्चात् उसके अमीरों ने आराम को जो कुतुबुद्दीन का दत्तक पुत्र समझा जाता था दिल्ली का सम्राट् घोषित किया किन्तु वह अयोग्य शासक सिद्ध हुआ और उसका स्थान कुतुबुद्दीन के दास अल्तमिश ने ले लिया जिसे उसके स्वामी ने भारी रक़म देकर खरीदा था।

साम्राज्य का वियोजन

गुलाम साम्राज्य के चार भाग हो गये थे पंजाब, सिन्ध, लखनौती और दिल्ली। जब अल्तमिश को सम्राट् घोषित किया गया तो उसका शासन इनमें से किसी भी प्रदेश पर न था। पंजाब में गज़नी का सुल्तान ताजुद्दीन यल्दौज़ गुर्रा रहा था, सिन्ध पर नासरुद्दीन क़ुबाचा का अधिकार था। बङ्गाल और बिहार में खिलजी वंश के बख्तियार ने स्वाधीनता घोषित कर दी थी। दिल्ली पर शमसुद्दीन नाम का व्यक्ति अधिकार जमा बैठा था। जिन राजपूत राज्यों को कुतुबुद्दीन ने विजय किया था वे भी स्वतंत्र हो गये थे।

बख्तियार खिलजी ने बिहार, बङ्गाल और आसाम के वहुत से भाग को विजय किया और तिब्बत को परास्त करने का प्रयत्न किया किन्तु मार्ग में कामरूप (आसम) के राजा ने उसको घेर लिया। बख्तियार ने एक मन्दिर में जो ब्रह्मपुत्र के तट पर था शरण ली। कामरूप के सैनिकों ने इस मन्दिर के इर्द गिर्द बाँसों के नेज़े जिन से वे युद्ध करते थे गाड़ने आरम्भ किये। बख्तियार को भय हुआ कि यह उन्हें बन्दी बनाने की योजना है। उस ने और उस की सेना ने ब्रह्मपुत्र में प्रवेश किया। कामरूप की सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया और समस्त सेना नदी में डूब गई, केवल बख्तियार ही वच कर निकल सका। क्षोभ के कारण वह भी शीघ्र ही चल बसा और पूर्वी भारत पर सुगमता से ही अल्तमिश का अधिकार स्थापित हो गया।

पश्चिमी भारत

पश्चिमी भारत की विजय में चंगेज़ खाँ के आक्रमण ने उसकी सहायता की। गज़नी का विजय कर चंगेज खाँ ने भारत पर आक्रमण किया। अल्तमिश ने चंगेज़खाँ का विरोध नहीं किया। चंगेज भारत की गर्मी सहन नहीं कर सका और वह शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान कर गया। अब अल्तमिश ने नासिरुद्दीन कबाचा पर आक्रमण

किया। चंगेज़ ने उसे अशक्त कर दिया था। वह मैदान छोड़ कर भाग गया। अल्तमिश ने उसका पीछा किया और नासिरुद्दीन अपने कुटुम्ब समेत सिन्धु नदी में डूब कर मर गया।

इसके पश्चात् अल्तमिश ने भारतीय राजाओं को परास्त करने की चेष्टा की। उसका रणथम्भोर का आक्रमण विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

रणथम्भोर के दुर्ग पर ७० बार आक्रमण हुए थे किन्तु उस की विजय पताका वैसे ही फहराती रही थी। आरम्भ में अल्तमिश को भी लोहे के चने चबाने पड़े किन्तु आखिर वह सफल हुआ। ग्वालियर, मांडू और मालवा पर भी उसका अधिकार हो गया।

अल्तमिश ने उज्जैन को भी विजय किया। यहाँ महाकाली का एक बहुत सुन्दर मन्दिर था जो सोमनाथ के मन्दिर की भाँति बना हुआ था। इस मन्दिर में राजा विक्रमादित्य की मूर्ति थी जिसे अल्तमिश ने अन्य मूर्तियों के साथ खंडित किया।

अल्तमिश के उत्तराधिकारी

अल्तमिश की मृत्यु के पश्चात् जो १२३६ ई० में हुई रुकनुद्दीन, रज़िया, बहराम और अलाउद्दीन मासूद एक एक करके भारत के सिंहासन पर बैठे। इन सब का राज्य काल मिलकर १० वर्ष बना। एक एक करके इन सब को मौत के घाट उतार दिया गया।

मुग़लों का आक्रमण

अलाउद्दीन मासूद के शासन काल में उत्तर से बङ्गाल पर मुग़लों का आक्रमण हुआ। इतिहास में भारत पर इस ओर से यह पहला आक्रमण था। मुग़लों ने पश्चिम से भी आक्रमण किया और वे ऊच तक आ पहुँचे।

१२४६ ई० में नासिरुद्दीन सिंहासन पर बैठा। वह अल्तमिश का पौत्र था जिसे अल्तमिश की मृत्यु पर बंदी बना लिया गया था। मुक्त

नासिरुद्दीन

होने पर भी उस ने शासन कार्य में कोई विशेष दिलचस्पी न दिखलाई। नासिरुद्दीन ने समस्त राज्य कार्य अपने मन्त्री ग़यासुद्दीन बलबन को सौंप दिया। ग़यासुद्दीन अल्तमिश का दास था और अपनी योग्यता से इस पद पर पहुँचा था।

भारतीय शासक

नासिरुद्दीन एक दुर्बल शासक सिद्ध हुआ। न केवल प्रान्तों में उस के राज्यपालों ने विद्रोह किया बल्कि भारतीय राजाओं ने भी अपनी शक्ति बढ़ा कर सुल्तान का विरोध किया। उन में सब से अधिक शक्तिशाली नरसिंह प्रथम था जो उड़ीसा पर राज्य करता था। उस ने लखनौती के तुर्क राज्यपाल को परास्त किया। इतने में दिल्ली से सहायता पहुँच गई और नरसिंह की सेना वापिस लौट गई। इस आक्रमण ने यह सिद्ध कर दिया कि दिल्ली के सुल्तान बहुत दुर्बल हैं।

कामरूप अर्थात् आसाम पर दूसरा आक्रमण

लखनौती के तुक राज्यपाल उज़बक ने कामरूप पर आक्रमण किया किन्तु कामरूप के राजा ने ऐसा व्यूह रचा कि समस्त शत्रु सेना नष्ट हो गई। उज़बक बंदी बना लिया गया और शीघ्र ही उस की मृत्यु हो गई।

मध्यभारत

मध्यभारत में चंदेलों की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। रीवा और झाँसी तक उन की तूती बोलती थी। ग्वालियर, मथुरा, और अन्हलवाड़ पर भी उन्होंने आधिपत्य जमा लिया। बुंदेलखण्ड में एक नया वंश उठ खड़ा हुआ। व्याघ्र जो इस वंश का जन्म दाता था कालपी और चुनार का स्वामी बन गया। उस के पुत्र कर्ण देव ने तौंस की घाटी को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

सुल्तान ने इन भारतीय राजाओं का विरोध किया किन्त उनको

विशेष सफलता न हुई। १२४७ ई० में बलबन ने स्वयं चढ़ाई की। उस का सामना दलकी व मलकी नामक राजाओं से हुआ। बलबन ने उस की राजधानी को घेर लिया किन्तु यह राजा अपनी समस्त सेना को लेकर निकल भागा।

चन्द्रदेव इस युग का एक बहुत महान राजा हुआ है। १२४७ ई० के लगभग उस ने अन्हलवाड़ पर अधिकार जमाया। धीरे-धीरे चन्द्रदेव समस्त मालवा पर छा गया और वहाँ सुल्तान का प्रभाव समाप्त हो गया। इस ने १२५६ ई० तक राज्य किया। इस वंश के राजाओं का शासन तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक रहा।

राजस्थान

राजस्थान में भी सुल्तान का प्रभाव कम हो गया। अल्तमिश की मृत्यु के पश्चात् रणथम्भोर पर चौहानों ने आक्रमण किया और तुर्कों को यह दुर्ग खाली करना पड़ा। हम्मीर महाकाव्य में चौहानों की विजय का वर्णन विस्तार से लिखा है। इस से प्रतीत होता है कि मेवात पर भी चौहानों का शासन स्थापित हो गया था। बूंदी राज्य भी उनको सर्वोपरि स्वीकार करने लगा। १२४८ ई०में बलबन ने राजस्थान पर चढ़ाई की। बलबन के सेनापति का वध कर दिया गया और बलबन को पीछे हटना पड़ा। इस के पश्चात् बलबन ने राजस्थान पर कई बार छापे मारे। यद्यपि वह राजपूतों को परास्त करने में सफल नहीं हुआ तथापि लूट मार में बहुत सा माल उसके हाथ आया।

अलवर

अलवर में भारतीय स्वतंत्र हो गए और वहाँ राजपूतों का शासन स्थापित हो गया। चौहानों और अन्य राजपूतों के साथ मिल कर अलवर के राजा ने तुर्कों पर गुरीला आक्रमण किये। ये आक्रमण दिल्ली तक हुए। हाँसी, हरयाना, शिवालिक और बयाना में राजपूतों ने बहुत लूट मार की। महमूद के काल में उन्होंने कई बार दिल्ली को भी लूटा। उस काल का प्रसिद्ध शासक जैतरसिंह हुआ है।

अवध पूर्णत: तुर्कों के आधीन हो चुका था किन्तु इस काल में यहाँ भी भारतीयों ने उन को परास्त किया। गंगा पार का क्षेत्र भी उन के हाथ से निकल गया और बार बार प्रयत्न करने पर भी बलबन इसे न ले सका।

अवध

इस प्रकार नासिरुद्दीन महमूद के काल में दिल्ली का राज्य बहुत सीमित हो गया और ऐसा प्रतीत होने लगा मानों वह शीघ्र समाप्त हो जाएगा, किन्तु जब १२६५ ई० में बलबन स्वयं सुल्तान बन गया तो उस ने फिर दिल्ली राज्य में जान डाल दी।

ग़यासुद्दीन बलबन कठोर वृत्ति का व्यक्ति था। उसने हिन्दुओं और भारतीय मुसलमानों को सरकारी पदों से वंचित कर दिया। बलबन ने खालिस तुर्की राज्य की स्थापना की, और यही कारण था कि वह राज्य को संगठित करने में सफल हुआ। उसकी नीति के कारण मुग़ल भी भारत में पाँव न जमा सके।

ग़यासुद्दीन बलबन

बलबन ने शासन विधि में बहुत से सुधार किये। वह अपराधियों को बहुत कड़े दंड देता था। कहते हैं एक बार उस के किसी राज्यपाल ने अपने नौकर का वध कर दिया। बलबन ने इस राज्यपाल को मृत्यु दंड दिया और उस का सिर नगर के द्वार पर लटकवा दिया।

सुल्तान की उपाधि ग्रहण करते ही बलबन ने मदिरा सेवन छोड़ दिया और मदिरा पीने का निषेध किया। उस ने अपने सामने ये नियम रखे।

१. शाही ठाठ बाठ से रहना और निम्न श्रेणी के व्यक्तियों से कोई व्यवहार न करना।

२. सरकारी कार्य के लिये योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करना।

३. धैर्य और न्याय से काम लेना।

४. अनुचित कार्य न करना और न अन्य किसी को करने देना ।

बलबन की अतिथि-भक्ति

जीवन पर्यंत बलबन ने इन नियमों का पालन किया। बलबन के समय भारत में चंगेज खाँ द्वारा निर्वासित हुए पंद्रह देशों के शासकों ने शरण ली थी। वे सब दिल्ली में रहते थे । सुल्तान इन शासकों का बहुत आदर करता था । उन के नाम पर नगर के मुहल्लों के नाम रखे गए थे । इन शासकों को सरकारी कोष से सहायता मिलती थी और उन्हें दरबार में प्रतिष्ठित स्थान दिया जाता था ।

बलबन का साहित्य प्रेम

बलबन के दरबार में खुसरो और ख्वाजा हसन निज़ामी दो प्रसिद्ध कवि थे। अन्य कई लेखक और विद्वान् भी उस की कृपा का पात्र बने । उस के पुत्र मुहम्मद को साहित्य की ओर बहुत रुचि थी इस लिये दिल्ली दरबार अपनी साहित्य प्रियता के लिये प्रसिद्ध हो गया ।

बलबन के उत्तराधिकारी

बलबन ने अपने दूसरे पुत्र बुग़रा खाँ को शासन पद देना चाहा किन्तु बुग़रा खाँ बङ्गाल में जहाँ कि वह राज्यपाल था रहना चाहता था । अपनी बीमारी के दिनों में बलबन ने उसे दिल्ली बुलाया । वह आया किन्तु पिता को बीमार छोड़ कर उस की आज्ञा लिये बग़ैर बङ्गाल चला गया। सुल्तान बुग़रा खाँ से रुष्ट हो गया और उस ने मुहम्मद के पुत्र खुसरो को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

बुग़रा खाँ और कैकबाद

बलबन की मृत्यु पर जो १२८६ ई० में हुई उस के अमीरों ने बुग़रा खाँ के पुत्र कैकबाद को सुल्तान घोषित किया। कैकबाद को मदिरा का व्यसन था। राज्य कार्य में उस की कोई रुचि न थी।

राज्य का कार्य उस के मंत्री निज़ामुद्दीन ने संभाल लिया।

निज़ामुद्दीन अपनी शक्ति को बनाए रखने के लिये बुग़रा खाँ और कैकबाद में शत्रुता उत्पन्न करना चाहता था। इस लिए उस ने कैकबाद को उस के पिता के विरुद्ध भड़काया। सुल्तान बनने पर कैकबाद की भेंट अपने पिता से किस प्रकार हुई यह एक नाटक की भाँति प्रतीत होती है। निज़ामुद्दीन चाहता था कि कैकबाद अपने पिता का निरादर करे और उस को अपने पाँव छूने पर विवश करे। बुग़रा खाँ इस के लिए भी तैयार हो गया।

अपने पिता की यह दशा देख कर कैकबाद के मन में प्रेम के भाव उमड़ आए और उस ने सिंहासन से उतर कर पिता को गले लगाया और उस को सिंहासन पर बैठाया। जब बुग़रा खाँ वापिस बङ्गाल जाने लगा तो उसने पुत्र को दीक्षा दी कि वह मदिरा सेवन छोड़ दे और निज़ामुद्दीन पर विश्वास न करे। उस ने चुपके से निज़ामुद्दीन का वध करने का भी सुझाव दिया।

निज़ामुद्दीन बहुत मक्कार व्यक्ति था। उस ने कैकबाद को फिर भोग विलास में व्यस्त कर दिया और राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। जब कैकबाद ने अनुभव किया कि निज़ामुद्दीन समस्त शक्ति हड़प किये जा रहा है तो उस ने विष द्वारा उस से छुटकारा प्राप्त किया।

निज़ामुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली राज्य की शक्ति क्षीण हो गई और सिंहासन के कई दावेदार खड़े हो गए। कैकबाद की हत्या कर दी गई। आपसी झगड़ों के उपरान्त खिलजी वंश ने सिंहासन संभाल लिया जिस का पहला शासक जलालुद्दीन खिलजी था।

खिलजी वंश

खिलजी और ग़ज़नी के तुर्कों में शासन सत्ता प्राप्त करने की एक प्रकार की प्रतियोगिता थी। तुर्कों की बढ़ती हुई शक्ति की आड़ लेकर बख्तियार खिलजी ने बङ्गाल और बिहार में अपना राज्य

स्थापित किया था, यह वंश पहिली बार यहीं इतिहास के चित्र पट पर आया। जलालुद्दीन इसी वंश से था।

जलालुद्दीन खिलजी

जब वह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा जलालुद्दीन की आयु सत्तर वर्ष के लगभग थी। उस ने बड़ी नम्रता पूर्वक कहा कि वह अपने आप को सिंहासन के योग्य नहीं समझता।

वह अपने शत्रुओं को भी दण्ड देना उचित नहीं समझता था। कई बार विद्रोहियों को उसने क्षमा किया। अपने शासनकाल में केवल एक बार उसने अत्याचार किया। फकीर सिद्दी मौला को जिसने उसके विरूद्ध षडयन्त्र रचा था, सुल्तान ने हाथी के नीचे फिंकवाया। इस में भी सुल्तान से अधिक उसके दरबारियों का हाथ था। यदि जलालुद्दीन अपनी इच्छा से निर्णय करता तो वह अवश्य ही सिद्दी मौला को क्षमा कर देता।

जलालुद्दीन प्रायः कहा करता था कि बुराई का बदला बुराई में तो सभी देते हैं, बड़प्पन इस बात में है कि बुराई का बदला भलाई में दिया जाए।

जलालुद्दीन का महानतम कार्य मुग़लों से मित्रता करना था। उस ने चंगेज़ खाँ के पौत्र उग़लू खाँ के साथ अपनी बेटी का विवाह किया। उग़लू खाँ जलालुद्दीन के दरबार में रहने लगा और उसने इस्लाम धर्म स्वीकार किया। उसके साथ आए अन्य मुग़लों ने भी इस्लाम में प्रवेश कर लिया।

जलालुद्दीन की हत्या

जलालुद्दीन को सदैव ही भय रहता था कि कहीं पहले सुल्तानों की भाँति उसका भी वध न कर दिया जाए किन्तु उसको यह शंका कभी न हुई थी कि उसका अपना भतीजा और विश्वास पात्र अलाउद्दीन उसका वध करेगा।

अलाउद्दीन अपने चाचा की आज्ञा के विना दक्षिण की

ओर बढ़ा । उसने भींसला को विजय किया । दक्षिण के राजा राम देव से उसने १०० मन सोना, इतनी ही चाँदी, ६०० मन मोती, तीन मन हीरे और ४,००० रेशम के थान प्राप्त किए । जब वह दिल्ली की ओर लौट रहा था उसे सूचना मिली कि सुल्तान उसके व्यवहार से रुष्ट हो गया है । अलाउद्दीन ने अपना भाई सुल्तान के पास भेजा और वह धोखे से सुल्तान को अपनी सेना से पृथक् कर कड़ा के स्थान पर ले गया । वहीं बूढ़े सुल्तान का वध कर दिया गया । उसका शीश अलाउद्दीन ने अपनी सेना में घुमाया । दिल्ली में प्रवेश करते ही अलाउद्दीन ने बहुत सा धन जनता में बाँटा और प्रसिद्ध दरबारियों को बहुमूल्य उपहार दिए । दिल्ली में उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ ।

अलाउद्दीन खिलजी

अलाउद्दीन अनपढ़ था किन्तु उसने बहुत योग्यता का प्रमाण दिया । वह कहा करता था कि राज्य कार्य से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं ।

देश को सुरक्षित रखने के लिए अलाउद्दीन ने एक बहुत बड़ी सेना रखी किन्तु उसको वेतन देना सुगम न था। भारत के कोष में इतना धन न था कि कुछ सप्ताह से अधिक इस सेना का निर्वाह हो सके । इस कठिनाई को दूर करने के लिए अलाउद्दीन ने खाद्य पदार्थ और कपड़े के मूल्य कम कर दिये और घोषणा की कि कोई व्यक्ति निर्धारित मूल्य से अधिक पर कोई वस्तु नहीं बेच सकेगा । यह इतिहास में मूल्य नियन्त्रण का प्रथम प्रयोग था ।

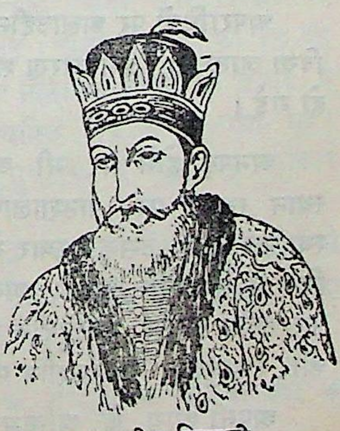

अलाउद्दीन खिलजी

अनाज इकट्ठा करने के लिये स्थान स्थान पर सरकारी भण्डार बनाए गए। अनाज की कमी होने पर इन में से जनता और सेना को अनाज दिया जाता था। यह देखने के लिये कि कार्य ईमानदारी से होता है विशेष सरकारी अफसर नियुक्त किये गए। कोष की वृद्धि करने के लिये कर बढ़ा दिया गया। उपज का आधा भाग कर के रूप में सरकारी कोष में जाता था। भूमि का बन्दोबस्त भी नये ढंग से किया गया। किसी कुटुम्ब के पास इतनी भूमि न रह गई जिस को वह स्वयं न जोत सके। पशु रखने पर भी नियन्त्रण लगाया गया और नौकरों की संख्या पर भी।

अलाउद्दीन ने दरबारियों के आचरण पर भी नियन्त्रण लगाया। कोई विवाह सुल्तान की आज्ञा के बिना नहीं हो सकता था। यहाँ तक कि दरबारियों को आपस में मिलने जुलने के लिये भी सुल्तान की अनुमति लेनी पड़ती थी।

व्यापार को प्रोत्साहन देने का विशेष रूप से प्रबन्ध किया गया। व्यापारियों को सरकारी कोष से रुपया उधार दिया जाता था और उनको विदेशों से व्यापार करने की सुविधाएँ दी जाती थीं।

अपराधियों पर अलाउद्दीन का बहुत कोप था। उन्हें घोर दण्ड दिया जाता था। इस कारण शीघ्र ही उसके राज्य में शान्ति स्थापित हो गई।

अनपढ़ होने पर भी अलाउद्दीन शिक्षा का प्रेमी था। उस ने स्थान स्थान पर पाठशालाएँ, कालिज और कई विश्वविद्यालय स्थापित किये। उसके दरबार में अनेक विद्वान् और कवि होते थे जिन में से अमीर खुसरो, अमीर हसन सन्जूरी, सदरुद्दीन आएले, फखरुद्दीन ख्वास, हमीदुद्दीन राजा, मौलाना आरिफ़, अब्दुल हकीम और शहाबुद्दीन सदरनशीन प्रसिद्ध हैं।

अपनी आयु के अन्तिम भाग में अलाउद्दीन स्वच्छन्द हो गया

और उसने मदिरा का सेवन आरम्भ कर दिया। उसके राज्य की स्थिति बिगड़ गई और विद्रोह बढ़ने लगे। १३१६ ई० में जब अलाउद्दीन की मृत्यु हुई तो भारत में फिर कुशासन फैल गया।

अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी

मलिक काफूर ने जो अलाउद्दीन का धर्म-परिवर्तित सेनापति था सुल्तान के एक पुत्र के नाम पर शासन सत्ता सम्भालनी चाही किन्तु शीघ्र ही उसका वध कर दिया गया और मुबारक सिंहासन पर बिठाया गया। मुबारक ने अपने भाईयों का वध किया और पिता के नियन्त्रण सम्बन्धी नियमों को तोड़ दिया। मुबारक ने दक्षिण के भारतीय राजाओं को परास्त करने का प्रयत्न किया जो अलाउद्दीन की मृत्यु पर स्वतंत्र हो गए थे किन्तु भोग विलास ने मुबारक की शक्ति बहुत क्षीण कर दी थी। उस ने एक हिन्दू को जिसने इस्लाम स्वीकार कर लिया था अपना प्रधान मंत्री बनाया। इस मन्त्री ने बहुत से अमीरों का वध कराया और उनके स्थान पर अपने कुटुम्बियों को पद प्रदान किये। उसने अलाउद्दीन के उत्तराधिकारियों को नष्ट कर दिया और स्वयं सुल्तान बनने का प्रयत्न करने लगा किन्तु पंजाब के राज्य-पाल गाज़ी ख़ाँ तुग़लक ने उसका विरोध किया और दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। गाज़ी ख़ाँ की विजय हुई। उसने घोषणा की कि वह राज्य वंश के किसी भी व्यक्ति को राज्य सिंहासन सौंपने को तैयार है किन्तु राज्य वंश का तो कोई भी व्यक्ति शेष न रह गया था। दरबारियों के आग्रह पर गयासुद्दीन तुग़लक ने सिंहासन स्वीकार किया।

तुग़लक वंश

गयासुद्दीन की माता जाट वंश से थी इसलिए उसे भारतीय शासक कहा जा सकता है।

दीपालपुर के राज्यपाल होते हुए गयासुद्दीन ने योग्यता का

प्रमाण दिया था। सुल्तान बनकर भी उसने बहुत मुल्यवान् कार्य किया। विगत सम्राटों के कुशासन से प्रजा तंग आई हुई थी! गयासुद्दीन ने सुल्तान बनते ही शान्ति स्थापित की। भूमि कर घटा दिया और कृषि सुधार की कई योजनायें कार्यान्वित कीं। पत्र व्यवहार को व्यवस्थित किया और जनता के हित के बहुत से काम किये।

दक्षिण के राज्य स्वतंत्र हो गये थे। जूना खाँ जो तत्पश्चात् मुहम्मद बिन तुग़लक के नाम से प्रसिद्ध हुआ एक भारी सेना लेकर दक्षिण की ओर बढ़ा। जूना खाँ को पहिली बार मुँह की खानी पड़ी किन्तु दूसरी बार वह वारंगल के राजा को परास्त करने में सफल हुआ।

जूना खाँ विजय नाद करता हुआ दिल्ली की ओर लौटा। नगर से बाहर उसने लकड़ी का एक छतर बनवाया और पिता का जो उसे विजय की बधाई देने आया था उसी के नीचे स्वागत किया। अनायास छतर गिर पड़ा और गयासुदीन की वहीं मृत्यु हो गई।

इसी वर्ष अर्थात् १३२५ ई० में दिल्ली के निज़ामुदीन औलिया और अमीर खुसरो भी चल बसे।

मुहम्मद बिन तुग़लक

जूना खाँ मुहम्मद बिन तुग़लक के नाम से राज्य सिंहासन पर बैठा। इस के काल का इतिहास इब्नबतूता ने लिखा है जिसे उसने दूत बना कर चीन भेजा था। सुल्तान बहुत विद्वान था। उस के लिखे पत्रों की आज तक प्रशंसा होती है किन्तु उसने कुछ ऐसे कार्य भी किये जिन से प्रतीत होता है कि उस का मन विकृत था।

उस ने ईरान पर चढ़ाई करने की योजना बनाई और बहुत-सी सेना भरती की किन्तु वह सेना को वेतन न दे सका और सैनिकों ने लूटमार आरम्भ कर दी।

उस का दूसरा मूर्खता का कार्य चीन पर चढ़ाई करना था। चीनियों ने मुहम्मद की सेना का सामना किया और इस के अधिकतर भाग को नष्ट कर दिया। जो सैनिक चीनियों के प्रहार से बच गये वे

या तो वर्षा का शिकार हो गये या पहाड़ी जातियों के क्रोध का। एक भी व्यक्ति ऐसा न बच आया जो इस युद्ध की व्यथा सुना पाता।

मुहम्मद ने सुना कि चीन में काग़ज़ की मुद्रा का प्रयोग होता है। उस ने भारत में यह प्रथा आरम्भ की और ताँबे के सिक्के चलाए। जनता ने उन्हें स्वीकार न किया और साथ ही बहुत से खोटे सिक्के ढाले जाने लगे। राज्य कोष को इस से बहुत हानि पहुँची और सुल्तान को अपनी नीति बदलनी पड़ी। सुल्तान ने आज्ञा दी कि जिस क्षेत्र में विद्रोह हो उस को घेर लिया जाए और जितने भी व्यक्ति मिलें उन का वध कर दिया जाए। इस प्रकार सहस्रों कृषकों का वध कर दिया गया। कृषि की स्थिति बिगड़ गई। व्यापार समाप्त हो गया और जनता नगर और ग्राम छोड़ कर भाग गई। इस से देश में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। ये विद्रोह भूमि कर बढ़ाने के कारण हुए थे।

अकाल के संताप को सुल्तान की एक अन्य मूर्खता ने और भी बढ़ा दिया। सुल्तान ने आज्ञा दी कि दिल्ली की अपेक्षा देवगिरी को जिसका नाम उस ने दौलताबाद रखा राजधानी बनाया जाए। उस ने जनता को दौलताबाद जाने पर विवश किया। जब दौलताबाद में सुविधाएँ प्राप्त न हुईं तो जनता को फिर दिल्ली लौट जाने की आज्ञा दी गई। इस आने जाने में सहस्रों व्यक्ति भूख प्यास से मर गए।

मुहम्मद तुग़लक ने भारत का बहुत सा भाग विजय कर लिया था किन्तु इन भागों में यदा कदा विद्रोह होते रहे जिस के कारण मुहम्मद तुग़लक का शासनकाल एक अति संकट का काल बन गया।

इब्नबतूता

इब्नबतूता अफ्रीका का एक यात्री था। वह मुहम्मद तुग़लक के काल में भारत आया। वह एशिया के अन्य देशों में भी गया था। उस ने भारत के नगरों विशेषतः दिल्ली की बहुत प्रशंसा की है। उस ने भारत के उस समय के कुशासन और सुल्तान की मूर्खता का भी वर्णन किया है। यह वृतांत अति रोचक है। ऐतिहासिक रूप से

भी इसका बहुत महत्त्व है।

फ़िरोज़ तुग़लक

जनता ने मुहम्मद तुग़लक से १३५१ ई० में छुटकारा प्राप्त किया। उस के पश्चात् भारतीय राजाओं ने मिल कर उस के भतीजे फ़िरोज़ तुग़लक को सिंहासन पर बिठाया। फ़िरोज़ ने ३७ वर्ष तक शासन किया। उस के शासन काल में ५० बाँध लगाए गए जिन से भूमि की सिंचाई की जाती थी। ३० पानी के तालाब बनाए गए, नहरें खुदवाई गईं जिन में से प्रसिद्ध नहर वह थी जो यमुना और सतलुज को मिलाती थी और जिस के स्थान पर अब एक नहर बनाई गई है। फ़िरोज़ ने अस्पताल, कालिज और धर्मशालाएँ भी बनवाईं। उस के काल में डाक लेजाने का बहुत अच्छा प्रबन्ध था।

फ़िरोज़ ने अत्याचारी और कठोर नियमों को हटा दिया और कर घटा दिया। उस ने कर की मात्रा नियत की। कर उगाहने वालों को उसे घटाने या बढ़ाने का कोई अधिकार न था।

तुग़लक वंश के अन्तिम सुल्तान

फ़िरोज़ के उत्तराधिकारी दुर्बल सिद्ध हुए। मार काट आरम्भ हो गई और भारत की स्थिति फिर बिगड़ गई। तुग़लक वंश के अन्तिम सुल्तान के काल में भारत पर तैमूर ने आक्रमण कर दिया।

सुल्तानों का कुशासन

१२०६ ई० में क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने जिस साम्राज्य की नींव डाली थी वह अपने दो सौ साला जीवन में किसी समय भी ऐसी स्थिति को प्राप्त नहीं हुआ जिसे स्थाई कहा जा सके। यदि अल्तमिश या बलबन ने कुछ काल के लिए देश में अनुशासन स्थापित किया तो उन के उत्तराधिकारियों ने शीघ्र उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

कोई भी महत्वाकाँक्षी राज्य कर्मचारी सुल्तान बनने के स्वप्न देख सकता था किन्तु शासन सत्ता सम्भालना सिर की बाज़ी लगाने

वाली बात थी। कोई भी सुल्तान अपने आप को सुरक्षित न समझ सकता था। सुल्तानों की हत्या इस युग की एक साधारण घटना थी। इन परिस्थियों में किसी रज़िया जैसी योग्य स्त्री या जलालुद्दीन जैसे सज्जन व्यक्ति का सफल होना सम्भव न था। उन की हत्या इस युग की नैतिक दशा का छोटा सा उदाहरण है।

कुशासन के कारण—उत्तराधिकार का प्रश्न

सुल्तानों को स्थाई राज्य स्थापित करने और शाँति और समृद्धि लाने में क्यों असफलता हुई इसका उत्तर देना कठिन नहीं। ये सब सुल्तान तुर्क वंश के थे और तुर्क वंश के सभी व्यक्ति भारत के सिंहासन पर अपना अधिकार समझते थे। वे राज्य को एक वंशीय सम्पत्ति से भिन्न न मानते थे। एक शासक की मृत्यु पर कौन सुल्तान बनेगा इसके विषय में कोई भी भविष्य वाणी न कर सकता था। सुल्तान के अपने कुटुम्बियों के अतिरिक्त उसके दासों को भी सुल्तान बनने का अधिकार था। जहाँ ऐसी व्यवस्था हो वहाँ सब से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति क्यों राज्य अधिकार प्राप्त न करे? न केवल सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् बल्कि उस के शासन काल में ही भिन्न भिन्न प्रान्तों के राज्यपाल जो प्रायः उसके सम्बन्धी होते थे अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर देते थे।

भारतीय शासक

दूसरा बड़ा कारण था कि मुस्लिम विजेताओं ने भारतीय जनता के मन में मुसलमानों के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न कर दिये थे। कई सुल्तानों ने मन्दिरों को गिरवाया, मूर्तियों का खण्डन किया और सहस्त्रों हिन्दुओं को बल पूर्वक मुसलमान बनाया। सुल्तान भारतीयों की सहानुभूति प्राप्त न कर सके। भारतीय राजा सदैव उनके शत्रु बने रहे और अवसर पाने पर उन पर आघात करते रहे। भारत पूर्णतः कभी भी विजयी नहीं हुआ और केन्द्रीय शक्ति सदैव ही सीमित रही।

मुग़ल

मुग़लों ने भी सुल्तानों को चैन नहीं लेने दिया। बारहवीं शती में सिंधु पार का इलाका ख्वारिज़्म के शाह के आधीन हो गया था और तुर्कों को बराबर आक्रमण का भय रहने लगा। थोड़े समय पश्चात् ही मंगोल मध्य एशिया पर छा गये और ग़ज़नी, पिशावर और अफ़ग़ानिस्तान के अन्य कई स्थानों पर उन्होंने अपनी सेना स्थापित कर दी। उन्होंने सिंधु नदी को पार किया और पंजाब के कुछ भाग पर आधिपत्य जमा लिया। चनाब नदी दिल्ली के सुल्तानों के राज्य की पश्चिमी सीमा थी और यहाँ तक भी उनका अधिकार संदिग्ध ही था। अल्तमिश ने १२१७ ई० में अपने साम्राज्य को सिंधु तक विस्तृत करने की योजना बनाई किन्तु वह केवल स्यालकोट ही लेने में सफल हुआ। १२२० ई० में चंगेज़ ख़ाँ ने मध्य एशिया के बहुत से देशों पर आधिपत्य जमा लिया। ख्वारिज़्मी राज्य भी विजय हो गया था जिस से मुग़लों का सीधा संबन्ध दिल्ली के सुल्तानों से हो गया। मुगलों ने १२४१ ई० में लाहौर पर आक्रमण किया। लाहौर शीघ्र ही जीत लिया गया किन्तु इसके पश्चात मुग़ल दिल्ली की ओर नहीं बढ़े बल्कि वापस चले गये। १२५८ ई० में दिल्ली राज्य ने सिंध और पश्चिमी पंजाब पूर्णतः मुग़लों को सौंप दिये। इस से मुग़लों में और दिल्ली राज्य में कुछ समय के लिये मित्रता स्थापित हो गई और १२५८ ई० में हलाकू ख़ाँ ने अपने दूत दिल्ली दरबार में भेजे। बलबन ने मुग़लों को परास्त करने का प्रयत्न किया किन्तु मुग़लों की शक्ति बढ़ती ही गई। बलबन की मृत्यु के समय व्यास नदी तक मुग़लों का शासन था। महमूद के शासन काल में उन्होंने बहुत सत्ता प्राप्त कर ली। उनके आक्रमण से बचने के लिये दिल्ली राज्य को उन्हें बहुत सा धन भेंट देना पड़ा। अंत में तैमूर ने सुल्तानों की रही सही शक्ति को भी समाप्त कर दिया।

ग़ज़नी का मार्ग बंद हो जाने के कारण भारत में तुर्कों के

तुर्कों की लाचारी

नए कबीले न आ सकते थे इसलिए सुल्तान जो तुर्कों की सहायता पर निर्भर थे दुर्बल हो गये। तुर्क भारतीय मुसलमानों और अन्य जातियों का सहयोग भी प्राप्त न कर सके। इसलिये ये जातियाँ उनका विरोध करती रहीं। अवसर मिलने पर भारत का छोटे से छोटा शासक भी दिल्ली राज्य पर प्रहार कर देता था।

सुल्तानों के दैवी अधिकार

यूरोप के मध्यकालीन सम्राटों की भाँति भारत के तुर्क सुल्तान भी अपने आप को खुदा के प्रतिनिधि समझते थे। बलबन ने स्पष्ट रूप से कहा था, सुल्तान भगवान् का स्वरूप है। कोई अन्य व्यक्ति उसकी बराबरी का दावा नहीं कर सकता।

स्वेच्छाचार और निरंकुशता उन्हें विनाश की ओर ले गये।

शासन विधि

ऐसे कुशासन में किसी स्थाई शासन विधि की आशा करना व्यर्थ है किंतु फिर भी उसका एक ढाँचा हमें दिखाई देता है। सुल्तान स्वेच्छाचारी होते हुए भी अपने आप को बग़दाद के खलीफ़ा के प्रतिनिधि समझते थे।

हम देख आए हैं कि दसवीं शताब्दी से पूर्व ही खलीफ़ा की शक्ति समाप्त हो चुकी थी किन्तु कई देशों के शासक फिर भी उसे सर्वोपरि मानते थे। उसके नाम का खुतबा पढ़ा जाता था, और मुद्रा पर उसका नाम खुदा होता था। बाह्य रूप से ये शासक अपने आप को खलीफ़ा के आधीन जताते थे किन्तु वास्तव में खलीफ़ा इनके किसी कार्य में हस्तक्षेप न करता था। भारत में भी कुछ इसी प्रकार की प्रथा थी।

भारत के सुल्तान अपने आप को खलीफ़ा के अधीन समझते हुए भी उसके आधिपत्य में न थे। उनकी शक्ति असीम थी। वे

शरीयत अथवा मुस्लिम नियमावली के अनुसार शासन करने का दावा करते थे किन्तु शरीयत के नियमों को पालन करना वे अपने लिये आवश्यक न समझते थे। शरीयत के नियमों का अर्थ लगाना भी उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर था। धर्म सम्बन्धी अनुमति देने के लिये उनके दरबार में एक शेखुलइस्लाम होता था किन्तु वह भी सुल्तान की इच्छा के अनुसार ही चलता था। मन्त्रियों की अनुमति का भी विशेष मूल्य न था।

प्रान्तों के राज्यपाल सेनापति होते थे जो अपने आप को सुल्तान की भाँति स्वतन्त्र समझते थे। प्रान्तों में अनुशासन स्थापित होना किसी प्रकार सम्भव न था। प्रांतों से कर एकत्रित किया जाता और व्यय निकाल कर शेष केन्द्रीय कोष में भेजा जाता था। इस के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार का प्रान्तों पर कोई अधिकार न होता था।

सेना

सुल्तान को बहुत सी सेना रखनी पड़ती थी और आय का अधिकतर भाग उसी पर व्यय होता था। सेना चार प्रकार की थी। १. स्थाई सेना जिस पर सुल्तान का सीधा अधिकार था। २. प्रान्तीय सेना जिस पर प्रांत के राज्यपाल का अधिकार था ३. वह सेना जो युद्ध के समय भरती की जाती थी। ४. साधारण मुसलमान जो बिना वेतन के युद्ध में सम्मिलित होते थे और जिनको केवल लूट का कुछ भाग मिलता था।

सरकारी आय

सरकारी आय के चार स्रोत होते थे। १. कर या खिराज जो भूमि की उपज के अनुसार निश्चित किया जाता था। २. जज़िया—यह हिन्दू देते थे। ३. लूट का पाँचवाँ भाग। ४. ज़कात और मुसलमानों से प्राप्त अन्य कर। कर की मात्रा बदलती रहती थी।

तुर्क सुल्तानों ने भारत में नई मुद्रा का निर्माण न करके

मुद्रा

भारतीय मुद्रा को ही स्वीकार किया जो स्वर्ण, रजत या मिश्रित धातु की बनी होती थी। स्वर्ण मुद्रा पर लक्ष्मी का और अन्य सिक्कों पर घुड़सवार के चित्र बने होते थे। ८० वर्ष तक तो इनका रूप भी नहीं बदला गया। बलबन ने प्रथम बार देवनागरी लिपि में अपना नाम खुदवाया।

अल्तमिश ने भारत को टंका नाम की नई मुद्रा प्रदान की। इसे वर्तमान रुपये का पूर्वज कहना चाहिये। १२२५ ई० में इस पर अरबी लिपि में ख़लीफ़ा का नाम खुदाया गया। टंके का भार एक तोला होता था। जितल और अदूल कम मूल्य के सिक्के थे। ४८ जितल का एक टंका होता था और ४ अदूल का एक जितल। इन मुद्राओं के कई नमूने प्राप्त हुए हैं। यह बात याद रखने योग्य है कि महमूद गज़नी के राज्य में मिस्कल (स्वर्ण मुद्रा) और दिरहम (रजत मुद्रा) का प्रयोग होता था।

मुसलमानों के प्रति व्यवहार

भारत में पाँच जातियों के मुसलमान इस युग में रहते थे। एक ईरानी, दूसरे अफ़ग़ान, तीसरे तुर्क, चौथे अरब और पाँचवें भारतीय। भारतीय मुसलमानों को सुल्तानों के काल में विशेष मान नहीं मिला। बलबन तो उन को घृणा की दृष्टि से देखता था। मुग़लों के काल तक इन का स्तर नीचा ही रहा। इस का बड़ा कारण यह था कि अधिकतर नीची श्रेणियों के हिन्दू ही मुसलमान बने थे। ईरानी, अफ़ग़ान, तुर्क और अरब शिष्ट वर्ग के मुसलमान समझे जाते थे और प्रायः उन में से ही राज्य अधिकार के लिये व्यक्ति चुने जाते थे। तुर्कों को चिरकाल तक विशेष सुविधाएँ रहीं क्योंकि वे राज्य वंश से सम्बन्ध रखते थे और सुल्तान के विश्वास पात्र होते थे यद्यपि वे ही षडयन्त्र रचते थे और सुल्तानों का वध कराते थे।

मुसलमानों का एक और वर्ग था। ये सुल्तानों के दास थे। दासों के इस्लाम में विशेष अधिकार होते हैं और वे अपने स्वामी के उत्तराधिकारी समझे जाते हैं। तुर्क दास मानों वंश के संरक्षक थे। जैसा हम देख आए हैं अपनी योग्यता के कारण उन में से कई सुल्तान बने। सुल्तान नियत करने और वध कराने में उन का बहुत हाथ रहा। इन दासों का स्तर वह न था जैसा यूरोप में दासों का समझा जाता था।

अफ़ग़ान तुर्कों के प्रतिद्वन्द्वी थे किन्तु वे अपने आप को श्रेष्ठ जाति गिनते थे। मुग़ल जिन्होंने भारत आकर इस्लाम धर्म स्वीकार किया अपने आप को भारत के निवासी समझने लगे थे।

भारतीयों की प्रतिक्रिया

महमूद ग़ज़नी ने मुसलमानों के प्रति भारतीय जनता के मन में घृणा के भाव भर दिये थे। यद्यपि उस की सेना में भारतीय सैनिक थे और तिलक उस का एक हिन्दू मन्त्री था फिर भी तुर्क सुल्तान हिन्दू धर्म के शत्रु थे। वे मन्दिर गिरवाना और मूर्तियों का खंडन करना पुण्य का काम समझते थे। यही कारण था कि भारतीयों ने उन का विरोध किया। अलबरूनी लिखता है कि भारत के गाँव में किसी मुसलमान का रहना संभव न था। भारतीय मुसलमानों को मलेच्छ समझते थे और जो भारतीय अपना धर्म त्याग कर इस्लाम में प्रवेश करता था उस के प्रति भी ऐसा ही व्यवहार था। शूद्र जातियों के साथ भी ऐसा व्यवहार न होता था।

मुस्लिम राज्य की प्रतिक्रिया के रूप में भारतीयों ने ऐसे उपाय निकाले जिन के कारण हिन्दू जाति छः सौ वर्ष के मुस्लिम राज्य उपरांत जीवित रह सकी। संभव है ये उपाय अधूरे रहे हों और इन के कारण हिन्दू जाति में बहुत सी त्रुटियाँ आ गई हों किन्तु उस काल के नेताओं को इस बात का श्रेय है कि वे भारत की नैया को खेते रहे और उन्होंने उसे डूबने नहीं दिया।

उत्तर में तुर्कों के मर्दन से भारतीय संस्कृति के प्रसिद्ध केन्द्र लुप्त हो गए थे किन्तु उन के उत्पात ने भारतीय जीवन की तिष्ठता को कोई विशेष हानि नहीं पहुँचाई। राजधानी के आस पास के ग्रामीण भी दिल्ली की घटनाओं को किसी दूरस्थ नाटक की घटनाओं से अधिक महत्त्व न देते थे। उनकी जीवन शैली निर्धारित थी और वे उस पर चले जा रहे थे। तुर्कों ने भारत के ग्राम्य जीवन पर आक्षेप नहीं किया। कुशासन का भी विशेष प्रभाव उस पर न पड़ता था। अलबरूनी और इब्न बतूता के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि भारतीय शासकों को भी तुर्कों के आघात पूर्णतः नष्ट न कर पाए थे। नागरिक जीवन में दुष्टता, भ्रष्टाचार और अन्य दोष जो उस समय के कान्स्टैन्टीनोपल के जीवन के गुण विशेष थे निसंदेह प्रविष्ट हो चुके थे किन्तु सर्वसाधारण के नैतिक स्तर में गिरावट उत्पन्न न हुई थी। महमूद ग़ज़नी के इतिहासकार इद्रीसी ने लिखा है, "विश्वास, सदाचार, धर्मनिष्ठता, और मित्रता भारतीयों के विशेष गुण हैं। यही कारण है कि देश देशान्तर के लोग यहाँ आकर रहते हैं।"

तुर्क ईरान की सभ्यता से प्रभावित हुए थे। ईरानी साहित्यकार और कलाकार दिल्ली सुल्तानों के दरबार में बहुत मान पाते थे। बाईज़ैन्टियन कला और साहित्य का भी कुछ न कला और साहित्य कुछ प्रभाव अवश्य था। फिर भी उनके काल का साहित्य और कला मूलतः भारतीय है। भारत का प्रभाव ग़ज़नी भी पहुँचा था और वह महमूद ग़ज़नी द्वारा निर्माणित "स्वर्ग वधु" नाम की मस्जिद में स्पष्ट रूप से दिखाई देता था। कुतुबुद्दीन और अल्तमिश द्वारा बनवाई हुई इमारतें जैसे कुतुब मीनार, अजमेर और दिल्ली की मस्जिदें भारतीय कलाकारों की दक्षता की साक्षी देती हैं। बदायूँ में भी इन दो सुल्तानों के स्मारक मिलते हैं। अलाउद्दीन खिलजी भी कई भवनों का निर्माता था। इलाही दरवाज़ा, हज़ार स्तून, जिसे हज़ार शैतान भी कहते हैं, हौज़ खास आदि उसके काल के प्रसिद्ध स्मारक हैं। इस काल

के इतिहास कार बर्नी के कथनानुसार हज़ार स्तून की नीवों में हज़ार मुग़लों के सिर दबाये गये थे।

तुग़लक वंश के सुल्तानों में फिरोज़ उच्च कोटि का निर्माता था। अम्बाला और मेरठ के निकट से अशोक के दो स्तूप उठवा कर उसने दिल्ली में लगवाये। उसने कई नगर बसाये जिन में जौनपुर बहुत प्रसिद्ध है। फीरोज़ शाह कोटला भी उसी की यादगार है।

कला की दृष्टि से जौनपुर, गुजरात, और बहमनी सुल्तानों का काम भी बहुत मूल्यवान है। वास्तव में तुर्कों और भारतीयों की मिली जुली कला इन्हीं प्रान्तीय राज्यों में दिखाई देती है, जहाँ कला के साथ साथ प्रान्तीय भाषाओं की भी उन्नति हुई।

दिल्ली के सुल्तान प्रायः फारसी भाषा के प्रेमी थे। अमीर खुसरो जिसे भारत का एक महान् कवि कहा गया है खिलजी और तुग़लक सुल्तानों के काल का प्रसिद्ध साहित्यकार था। उसे राज्य कवि नियुक्त किया गया था। उसने हिन्दी में गीत लिखे हैं और उसकी पहेलियाँ आज भी भारत के ग्रामों और नगरों में सर्वप्रिय हैं। शेख़ निज़ामुद्दीन की जीवनी का रचयिता मीर हसन देहलवी उसका समकालीन था। इतिहासज्ञों में तारीख़े फीरोज़शाही का लेखक ज़ियाउद्दीन बर्नी और यहा बिन अब्दुल्ला प्रसिद्ध हैं। फिरोज़ तुग़लक और सिकन्दर लोधी के काल में संस्कृत के कई प्रसिद्ध ग्रन्थों का अनुवाद फारसी में हुआ। तुर्क काल का संस्कृत का प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान् अलबरूनी था जिसकी कृतियाँ भारत का प्रमाणिक इतिहास प्रस्तुत करती हैं।

भारतीय साहित्यकारों में गीत गोविन्द के कवि जयदेव का नाम प्रसिद्ध है। इस काल के प्रसिद्ध नाटकों में ललित विग्रह राज, हरि केलि, पार्वती परिणय, ललित माधव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी में चन्द्रबरदाई, अल्हा खंड का कवि जगनायक, अमीर

खुसरो, बाबा गोरखनाथ, कबीर, नानक, मीराबाई इस काल के प्रसिद्ध कवि हैं।

बङ्गाली में कृतिवास, जिसने रामायण का अनुवाद किया, अति प्रसिद्ध कवि है। बङ्गाली में भागवत पुराण और महाभारत का भी अनुवाद हुआ। महाराष्ट्र का प्रसिद्ध सुधारक महात्मा नाम देव मराठी का उच्चकोटि का लेखक गिना जाता है। पंजाबी, गुजराती यहाँ तक कि दक्षिणी भाषाओं में भी बहुत से साहित्य की रचना हुई। दक्षिण के मुस्लिम बादशाहों के संरक्षण में उर्दू ने जन्म लिया।

भक्ति आन्दोलन

भक्ति आन्दोलन तुर्क कालीन भारत की सब से महत्वपूर्ण घटना है। भगवद्गीता में भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का एक मार्ग बताया गया है और इस प्रकार यह आन्दोलन कोई नया न था परन्तु इस काल में इस आन्दोलन ने एक नया रूप धारण कर लिया था।

भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात दक्षिण में हुआ था। रामानुज इस का प्रर्वतक कहा जाता है जिसकी तिथि बारहवीं शताब्दी ई० है। तुर्क काल में इसके नेता कबीर और नानक थे।

भक्ति आन्दोलन का अभिप्राय, केवल किसी इष्ट देव या भगवान् की उपासना न था। इसका अभिप्राय विभिन्न मतों के अनुयाइयों में ऐक्य स्थापित करना भी था।

बारहवीं शताब्दी ई० तक मुसलमानों का भारत के ग्रामों में रहना बहुत कठिन था। भारतीय जनता उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखती थी परन्तु पाकपटन के फरीदुद्दीन, दिल्ली के निज़ामुद्दीन औलिया, दक्षिण के गेसूदराज और अन्य मुस्लिम संतों ने आपसी मेल जोल का प्रचार किया और ये संत हिन्दुओं को भी प्रिय हो गये। इसी प्रकार नानक और कबीर सर्व प्रिय हिन्दू महात्मा थे। इनके उपदेशों का गहरा प्रभाव पड़ा।

रामानुज

रामानुज (जीवन काल १०१७—११३७ ई०) वैष्णव मत के प्रवर्तक थे जिन्हें अपने मत के प्रचार में बहुत कठिनाईयों का अनुभव हुआ। शंकराचार्य ने अद्वैत वाद का प्रचार किया था जो एक ऐसा सिद्धान्त था जिसे सर्वसाधारण न समझ सकते थे। साधारण लोगों के लिये निर्गुण देव की कल्पना करना सुगम नहीं। रामानुज ने सगुण ईश्वर का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उनके विचारों का प्रभाव न केवल दक्षिण में फैला बल्कि उत्तरी भारत ने भी उनके मन्तव्य को स्वीकार किया।

रामानन्द

उत्तर में रामानुज के सिद्धान्तों में विश्वास करने वाले प्रसिद्ध महात्मा रामानन्द थे। वे चौदहवीं शताब्दी में हुए। उन्होंने राम और सीता की भक्ति का प्रचार किया। वे हिन्दी के प्रसिद्ध कवि स्वीकार किये जाते हैं।

कबीर

कबीर जिनका जन्म १३९९ ई० में हुआ अपने आप को रामानन्द का शिष्य कहने में गर्व का अनुभव करते थे। हिन्दी काव्य में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। कहा जाता है कि उन्होंने दक्षिण के महात्माओं के साथ पर्याप्त समय व्यतीत किया था। कबीर राम के भक्त थे, परन्तु मूर्ति पूजक न थे। उन्होंने ११९ साल की आयु पाई।

चैतन्य

बङ्गाल के प्रसिद्ध महात्मा चैतन्य जिन का जन्म १४८५ ई० में और देहान्त १५३३ ई० में हुआ कृष्ण के भक्त थे। वे अपने समय के अति प्रसिद्ध वैष्णव महात्मा हुए हैं।

वल्लभाचाय

वल्लभाचार्य का जन्म १४७९ ई० में हुआ था और इस प्रकार वे चैतन्य महाप्रभु के समकालीन थे। वे १५३० ई० तक जीवित रहे। वल्लभाचार्य दक्षिण के अति प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं जो कृष्ण के उपासक थे।

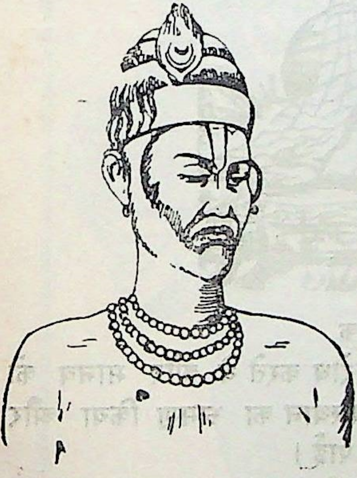

भक्त कवीर

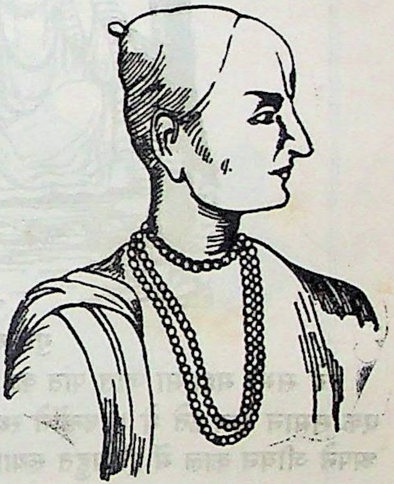

तुलसी दास

नानक

गुरु नानक का जन्म १४६९ ई० में हुआ था। गुरु नानक को सिख मत के संचालक होने का श्रेय प्राप्त हुआ। गुरु नानक ने देश विदेश का भ्रमण किया और एक ईश्वर की उपासना का पाठ दिया। उन का देहाँत १५३९ ई० में हुआ।

नामदेव

नामदेव जिन का जन्म १२६७ ई० में हुआ महाराष्ट्र के सर्वप्रिय महात्मा थे। वे भी एक ईश्वरवाद के अनुयायी थे। नामदेव प्रसिद्ध महात्मा ज्ञानेश्वर के शिष्य थे।

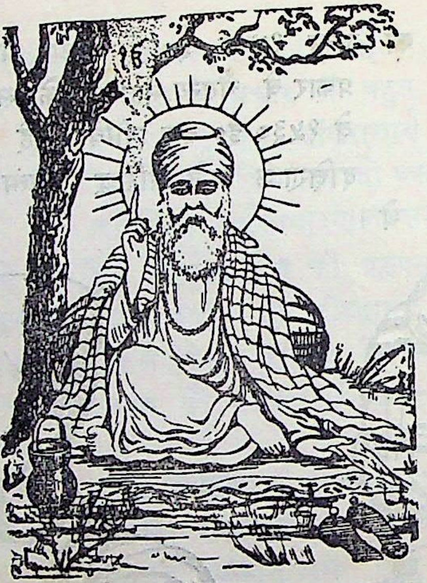

गुरु नानक

ये सभी महात्मा जात पांत का विरोध करते थे और मानव को एक समान समझते थे। उन्होंने स्थान स्थान का भ्रमण किया और अपने जीवन काल में ही बहुत ख्याति पाई।

कुछ इतिहासज्ञों का मत है कि भक्ति आन्दोलन एक प्रकार की प्रतिक्रिया थी। इस आन्दोलन का सूत्रपात इस लिए हुआ था कि मुसलमान शासकों के अत्याचार से पीड़ित हो कर हिन्दू हताश हो चुके थे और भक्ति में ही उन्हें सान्तवना मिल सकती थी। इस मत को निर्धारित करना कठिन है क्योंकि दक्षिण में रामानुज के काल में मुस्लिम शासन का प्रभाव न पहुँचा था। चैतन्य, कबीर, वल्लभाचार्य, नामदेव और नानक के सिद्धान्तों में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता जिस से निराशा झलकती हो। मुस्लिम शासन की कठोरता का आभास हिन्दुओं को आगे चल कर हुआ जिस की प्रतिक्रिया के रूप में गुरु गोविंदसिंह और शिवा जी उत्पन्न हुए।

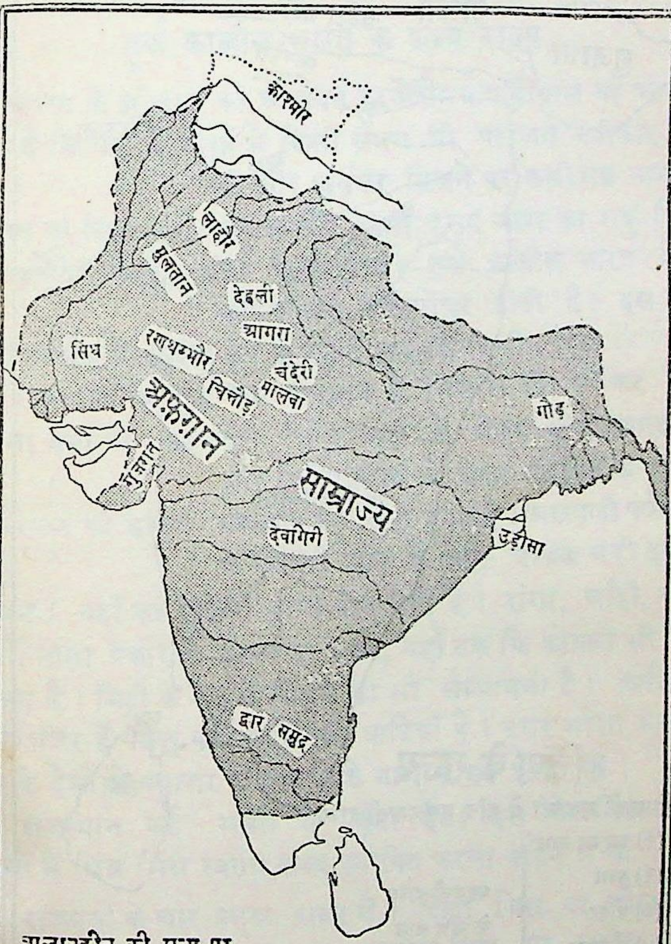
कश्मीर
लाहौर
मुलतान
देहली
आगरा
सिंध
रणथम्भौर
चंदेरी
चित्तौड़
मालवा
अफ़ग़ान
गुजरात
साम्राज्य
गौड़
देवगिरी
उड़ीसा
द्वार समुद्र

अलाउद्दीन की मृत्यु पर
अफ़ग़ान साम्राज्य
(१३१६ ई०)

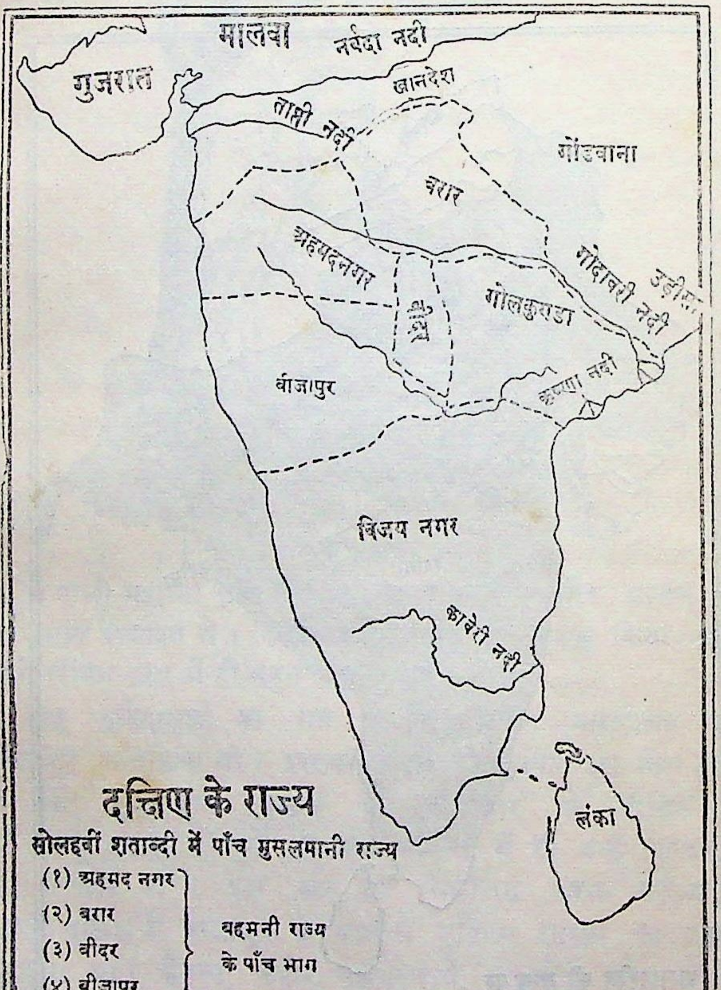
मालवा
नर्बदा नदी
गुजरात
खानदेश
ताप्ती नदी
गोंडवाना
बरार
अहमदनगर
बीदर
गोलकुण्डा
गोदावरी नदी
उड़ीसा
बीजापुर
कृष्णा नदी
विजय नगर
कावेरी नदी
लंका

दक्षिण के राज्य

सोलहवीं शताब्दी में पाँच मुसलमानी राज्य

(१) अहमद नगर
(२) बरार
(३) बीदर
(४) बीजापुर
(५) गोलकुण्डा

बहमनी राज्य के पाँच भाग

एक हिंदू राज्य विजय नगर

परिच्छेद २०

तुर्क कालीन भारत के अन्य राज्य

भारत के इतिहास का अध्ययन करते समय अनायास यह आभास होता है कि यहाँ के लोगों ने किसी समय भी पराजय स्वीकार नहीं की और अवसर मिलने पर कभी एक भाग का शासक और कभी दूसरे भाग का शत्रु विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। तुर्क कालीन भारत में भी यही प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। इस काल में राजस्थान में विशेष रूप से स्फूर्ति पाई जाती थी।

भारत की विलक्षण राजनैतिक प्रक्रिया

राजस्थान का शुद्ध नाम रायथान है जिस से बिगड़ कर राजपूताना बना था। यह प्रदेश सिन्धु नदी से लेकर बुंदेलखण्ड तक और विन्धियाचल से लेकर सतलुज के तट के मरुस्थल तक फैला हुआ है। अरावली पर्वत इस के धन की खान हैं और चम्बल नदी इस का जीवन। यहाँ कई खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। रांगा, चाँदी, ताँबा, सुर्मा, नाना प्रकार के मूल्यवान पत्थर, यहाँ तक कि कोयला भी मिल सकता है। मिट्टी के तेल के मिलने की भी सम्भावना है। अधिकतर भाग बंजर है परन्तु कहीं कहीं उर्वर घाटियाँ हैं। उत्तर भारत का समुद्र पार के देशों से व्यापार राजस्थान के मार्ग से ही होता था।

राजस्थान की भूमि

राजस्थान कई भागों में बँटा है। इस के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न स्वतंत्र राज्य स्थापित करना कठिन न था।

राजपूतों के चार प्रमुख राज्य थे। दिल्ली जिस पर चौहानों का राज्य था, कन्नौज जिस पर राठौर वंशीय राजपूत राज्य करते थे, मेवाड़ गहलातों के आधीन था और अन्हलवाड़ पर सोलंकी शासन करते थे।

राजस्थान के प्रमुख राज्य

महमूद ग़ज़नी के आक्रमण से पूर्व चौहान राज्य का विस्तार सिन्धु नदी तक था। उत्तर में यह हिमालय तक फैला हुआ था। दक्षिण में अरावली पर्वत इस की सीमा थी।

कन्नौज की पूर्वी सीमा काशी था। दिल्ली और मेवाड़ राज्य के बीच का समस्त इलाका इस के अन्तर्गत था। मेवाड़ अर्थात् मध्यवार दिल्ली, कन्नौज और अन्हलवाड़ के राज्यों के मध्य के इलाके को कहते थे। अन्हलवाड़ समद्र तक फैला हुआ था। इस की एक सीमा पर सिन्धु नदी और दूसरी पर उत्तर की मरुभूमि थी।

बाबर के आगमन के समय मेवाड़, मारवाड़, अम्बर प्रमुख राज्य थे। बून्दी यद्यपि एक छोटा सा राज्य था परन्तु इस के शासकों ने बड़े मार्के के काम किये।

मेवाड़—स्थापना

इस राज्य की स्थापना बाप्पा रावल ने ७२८ ई० में की थी। उसके विषय में अनेक लोक गाथाएँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि वह ७६४ ई० में अपनी राजधानी छोड़ कर ईरान चला गया। उसके पश्चात् उदयपुर के इतिहास में संग्राम सिंह का नाम प्रसिद्ध है जिस का विवाह पृथ्वी राज चौहान की बहिन से हुआ था। इस ने पृथ्वीराज की मुहम्मद ग़ोरी के विरुद्ध सहायता की थी और उस के लिये अपनी जान गंवाई थी। उस की वीरता की गाथा चन्द्र बरदाई ने सुन्दर शब्दों में वर्णन की है। उस की तिथि ११६३ ई० के लगभग कही जाती है। लक्ष्मण सिंह के समय से जिस ने १२७५ ई० में सिंहासन ग्रहण किया मेवाड़ का इतिहास विश्वस्त रूप से मिलता है।

अलाउद्दीन की विजय और उसके पश्चात्

कहानी प्रसिद्ध है कि लक्ष्मण सिंह के चाचा भीम सिंह ने लंका की राजकुमारी पद्मनी से विवाह किया था। पद्मनी इतनी सुन्दर थी कि पूर्व और पश्चिम में उस का प्रतीक न था। अलाउद्दीन ने उस की प्रशंसा सुनी तो वह उसे देखने के लिये अधीर हो उठा और उस ने चित्तौड़ का घेरा डाल लिया। राजपूत

हार मानने वाले न थे। अलाउद्दीन ने कहला भेजा कि यदि उसे पद्मनी को देखने का अवसर मिल जाए तो वह वापिस दिल्ली चला जाएगा। जब उस की यह बात मान ली गई तो उस ने छल से भीम सिंह को बन्दी बना लिया। मेवाड़ की गाथाओं के अनुसार पद्मनी ने चतुराई से अपने पति को मुक्त करा लिया जिस पर अलाउद्दीन ने किले पर हल्ला बोल दिया।

राजपूत जान तोड़ कर लड़े किंतु दिल्ली सम्राट् की सेना का मुकाबला न कर सके। एक एक राजपूत रण में खेत रहा। पद्मनी ने अन्य वीरांगणाओं सहित जौहर किया। अलाउद्दीन ने दुर्ग में प्रवेश किया तो उसे सिवाए चिता के धुएँ के जीवन का कोई चिह्न दिखाई न दिया।

राज्यकुल का केवल एक राजकुमार जीवित रहा था जिसने अरावली पर्वत पर शरण ली। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उस के वंशज हम्मीर सिंह ने अपनी पत्नी की सहायता से जो चित्तौड़ के राजपूत राज्यपाल की विधवा की पुत्री थी चित्तौड़ पुनः प्राप्त कर लिया। सब राजपूत वंशों ने हम्मीर सिंह को सर्वोपरि स्वीकार किया। वे उसे खिराज देने में गर्व अनुभव करते थे। इन में मारवाड़, अम्बर बूंदी, ग्वालियार, चंदेरी, सीकरी, कालपी, और आबू के राज्य प्रसिद्ध थे।

अलाउद्दीन के पश्चात् तुर्क और अफ़गान सुल्तानों के साथ मेवाड़ की मित्रता रही। इस काल में मेवाड़ ने बहुत उन्नति की। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को तहस नहस कर दिया था। हम्मीर सिंह ने न केवल उस का जीर्णोद्धार किया बल्कि बहुत से नए भवन बनवाए। उस की मूल्यवान कृतियाँ अब तक मेवाड़ में पाई जाती हैं। उस ने ऐसी राज्य व्यवस्था स्थापित की जिस का उदाहरण आधुनिक यूरोप भी संभवतः प्रस्तुत नहीं कर सकता। हम्मीर के पितृ व्यवहार ने

जनता में वे भाव उत्पन्न किये जिन के कारण मेवाड़ अजय प्रदेश कहलाया।

१३६४ ई० से १५०८ ई० तक चित्तौड़ पर खेत सिंह, लक्ष सिंह, मोकल, कुम्भा, और रायमल ने राज्य किया। ये सब शासक विद्वान्, शूरवीर और जनता के हितैषी थे। उदय सिंह ने जो रायमल से पहले हुआ अपने पिता का हनन कर राज्य प्राप्त किया था इस लिये उसे जनता ने स्वीकार न किया और उसे राज पाट छोड़ना पड़ा। कुम्भा का राज्य उस की पत्नी मीरा बाई के कारण प्रसिद्ध है जो उच्च श्रेणी की तपस्विनी और कवियित्री थी।

मीरा कृत भजन आज भी सर्वप्रिय है।

कुम्भा बहुत शूरबीर था। उस के अपने पड़ौसी मुसलमान शासकों से कई युद्ध हुए। मालवा के शासक पर विजय पाने के पश्चात् उस ने विजय बुर्ज वनवाया था जो आज तक स्थित है और चित्तौड़ के वैभव को चार चान्द लगाता है।

राणा संग्राम सिंह

राणा संग्राम सिंह जो राणा साँगा के नाम से प्रसिद्ध है १५०८ ई० में चित्तौड़ का शासक बना। उस का जीवन राजस्थान के चारणों की अनेक गाथाओं का विषय है।

सिंहासन आरोहण के पश्चात् साँगा ने अठारह युद्ध किये जिन में उसे विजय प्राप्त हुई और शत्रु के सहस्रों सैनिक और वीर सेना पति खेत रहे। इस के फलस्वरूप साँगा का राज्य विंध्याचल तक, और सिन्धु नदी से लेकर मालवा तक फैल गया।

संभव था कि राणा साँगा भारत के प्राचीन सम्राटों की भाँति चक्रवर्ती राजा कहलाता किन्तु बाबर के आक्रमण ने यह न होने दिया। खानुआ के स्थान पर १५२७ ई० में राजपूतों का बाबर से

सामना हुआ । बाबर के १५०० सैनिक गाजर मूली की भाँति काट दिये गए । दूसरी कुमुक की भी यही दशा हुई ।

बाबर जो घोर संकट सहन कर चुका था इस क्षति से हताश नहीं हुआ । यहाँ उस ने वह ऐतिहासिक सौगंध खाई जिस ने उस का नाम अमर बना दिया । मदिरा परित्याग कर उस ने मुग़ल वीरों में नया उत्साह उत्पन्न किया ।

इस पर भी बाबर की सेना राजपूतों का सामना न कर सकी । जिस समय बाबर को अपनी हार सामने दिखाई दे रही थी तोमर वंश का सरदार बाबर से जा मिला । यह एक ऐसा आघात था जिसे राजपूत सेना सहन न कर सकी । रावल उदय सिंह, सालम्बर के राणा रत्न सिंह, रायमल राठौर, रामदास, गोकल दास परमार, मानिक चन्द और चन्द्रभान चौहान, मेवात का हसन खाँ और इब्राहीम लोधी का पुत्र असंख्य सूरमाओं के साथ खेत रहे । बाबर ग़ाज़ी कहलाया और उस ने तैमूर की भाँति मुंडों के विजय बुर्ज बनाकर राजपूतों की पराजय का व्यंग उड़ाया ।

राणा साँगा ने व्रत लिया कि वह बाबर को परास्त कर के ही चित्तौड़ में प्रवेश करेगा किन्तु किसी ने उसे विष खिला दिया और साल के भीतर वह बैकुण्ठ सिधार गया ।

राणा संग्राम सिंह से राणा प्रताप सिंह तक

चित्तौड़ का वैभव जाता रहा और यद्यपि शेरशाह द्वारा हुमायूँ की पराजय ने चित्तौड़ को फिर स्वतन्त्रता प्रदान की तथापि उस के अयोग्य शासक राणा विक्रमाजीत के कारण उदयपुर राज्य अधोगति को प्राप्त हुआ । गुजरात के सुल्तान बहादुर ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और हम्मीर सिंह द्वारा अपनी पराजय का बदला लिया । चित्तौड़ के वीरों और वीरांगणाओं

ने अपने जीवन की आहुति दी और केवल राणा साँगा का बालक पुत्र उदय सिंह जीवित बचा।

इस आपत्ति के समय हुमायूँ ने जिसे चित्तौड़ की रानी करणावति ने अपना राखी बन्द भाई बनाया था चित्तौड़ की सहायता की और बहादुर को पराजित कर चित्तौड़ को त्राण प्रदान किया।

बाणबीर जो राणा सांगा के भाई पृथ्वी राज का पुत्र था चितौड़ की गद्दी पर बैठा। बाणबीर अपनी दुष्टता के लिये बदनाम है। राज्य के प्रलोभन ने उसे अंधा कर दिया और वह उदय सिंह की जान लेने पर उतारू हो गया। उदय सिंह की धाया पन्ना ने अपने पुत्र की बलि दी और राजकुमार को चित्तौड़ से बाहर भिजवा दिया।

उदय सिंह १५३७ ई० में चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा किन्तु वह योग्य शासक सिद्ध न हुआ। अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की और यद्यपि दो बार पराजित होकर उसे वापिस लौटना पड़ा तथापि उदय सिंह की कायरता ने अन्त में अकबर को विजय प्रदान की। इस युद्ध में जैमल और फत्ता दो राजपूत वीरों ने वे हाथ दिखाये कि अकबर ने भी उनका लोहा माना और प्रशंसा के रूप में सम्राट् ने उनकी मूर्तियाँ अपने किले के द्वार के दोनों ओर स्थापित कीं।

राणा प्रताप सिंह

राणा प्रताप सिंह जिस ने १५७२ ई० में मेवाड़ का सिंहासन सम्भाला जानता था कि उसका मुकुट काँटों का ताज है।

कई राजपुत सरदार जो किसी समय चित्तौड़ की आन की खातिर अपना रक्त बहाने में गर्व अनुभव करते थे अकबर से जा मिले। यहाँ तक कि प्रताप का अपना भाई शक्ति सिंह भी देश द्रोही सिद्ध हुआ।

चित्तौड़ हाथ से जा चुका था। नई राजधानी उदयपुर जिसकी

नींव उदय सिंह ने डाली थी भारत के सम्राट का विरोध करने के लिये पर्याप्त सामग्री न जुटा सकती थी। किन्तु प्रताप को इन कठिनाइयों का सामना करने के लिये ही चुना गया था। उसने शपथ ली "जब तक चितौड़ पर राजपूतों का अधिकार न होगा मेवाड़ का कोई सूरमा सोने चाँदी के पात्रों में भोजन ना करेगा और न ही पंलगों पर शयन करेगा। पत्ते उसके पात्र होंगे और कुशा उसका बिस्तर।"

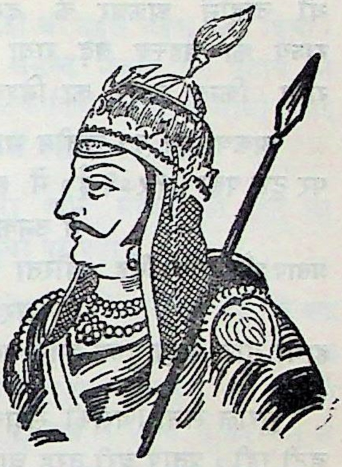

महाराणा प्रताप सिंह

भोग विलास के जीवन का परित्याग कर प्रताप अपने गिने चुने साथियों समेत "चित्तौड़ की विजय का बीड़ा उठाये क्षेत्र में निकला। उर्वर भूमि ने एक जंगल का रूप धारण कर लिया। उस भू-भाग से मुग़ल साम्राज्य के व्यापारी माल लेकर सूरत जाया करते थे। प्रताप ने उन पर छापे मारने आरम्भ किये। प्रताप को दमन करना सम्राट् के लिये अनिवार्य हो गया।

अकबर भारत का सर्व प्रिय सम्राट् बनने का गौरव प्राप्त करना चाहता था। उसे यह न भाता था कि मेवाड़ का साधारण राणा भी उसके वैभव के आगे शीश ना निवाए।

मारवाड़ के मालदेव ने अकबर को सर्वोपरि स्वीकार किया था। उसके पुत्र उदय सिंह ने अपनी पुत्री जोधा बाई की भेंट सलीम को दे एक भारी जागीर प्राप्त की थी। अम्बर का राजा भगवान दास अकबर के आगे शीश निवाता था। उसका पुत्र मानसिंह अकबर का विश्वास पात्र था।

जिन जिन राजपूतों ने अकबर की आधीनता स्वीकार की थी उन्होंने अकबर के दरबार में मान पाया और उनके राज्य का महत्त्व बढ़ गया। प्रताप को भी यह प्रलोभन दिया गया किन्तु प्रताप का निश्चय अडिग था।

अकबर का पुत्र सलीम भारी सेना लेकर मान सिंह के साथ प्रताप पर टूट पड़ा। १५७६ ई० में हल्दी घाट के पवित्र स्थान पर प्रताप ने उनका सामना किया। राजपूतों ने अपनी वीरता के जौहर दिखाए। सलीम राणा की तलवार का लक्ष्य बनने ही वाला था कि उसका हाथी भाग खड़ा हुआ और सलीम बाल बाल बच गया।

प्रताप और शक्ति सिंह

मुगल सेना जिसकी सहायता राजस्थान के रणबाँकुरे कर रहे थे डटी रही। प्रताप बुरी तरह घायल हो चुका था। वह मूर्छित हो गया और उसका वफ़ादार घोड़ा चेतक उसके मूर्छित शरीर को लेकर रणक्षेत्र से भाग निकला। शत्रु के कुछ घुड़ सवारों ने उसका पीछा किया इन में से एक शक्ति सिंह था। दूर जंगल में चेतक थक कर निढाल हो गया। इतने में शक्ति सिंह जिसने अन्य धुड़ सवारों का वध कर दिया था पास आ गया और भाई के मुँह में पानी चुआ कर उसे होश में लाया। फिर उससे क्षमा याचना की। जब सलीम को इसकी सूचना मिली तो उसने शक्ति सिंह को पद विहीन कर दिया। शक्ति सिंह ने प्रताप की शरण ली।

हल्दी घाटी की लड़ाई के पश्चात् अकबर ने लगातार प्रताप का पीछा किया और उसे जंगलों की शरण लेनी पड़ी। गाथा प्रसिद्ध है कि एक बार उसने विवश होकर अकबर को मैत्री का पत्र लिखा क़िन्तु पृथ्वी सिंह ने, जो बीकानेर के नरेश का भाई था, और जिसका विवाह मेवाड़ की एक राजकुमारी से हुआ था, सम्राट् से कहा कि यह पत्र प्रताप का लिखा नहीं हो सकता। स्वयं उसने प्रताप से आग्रह किया कि वह राजपूतों की आन की रक्षा करे। इस

आग्रह से प्रोत्साहित होकर प्रताप ने फिर सेना एकत्रित की और मुग़ल सेना का जो उसका पीछा कर रही थी तहस नहस कर दिया। चित्तौड़ को छोड़ कर लग भग समस्त मेवाड़ पर प्रताप का अधिकार स्थापित हो गया। इस मुहिम के लिये मेवाड़ के भामा शाह ने अपना महान कोष प्रताप के चरणों में रख दिया था।

१५६७ ई० में प्रताप स्वर्ग सिधारा और मेवाड़ की रक्षा का भार उसके ज्येष्ठ पुत्र अमर सिंह के कंधों पर पड़ा।

अमर सिंह और शाहज़ादा खुर्रम

अकबर के पश्चात जहाँगीर (सलीम) ने शिशोदिया वंश के एक राजकुमार को चित्तौड़ का राज्यपाल नियुक्त किया किन्तु जिस प्रकार राजपूत सरदारों ने उस की अवज्ञा की उस से क्षुब्ध होकर उस ने सम्राट् के सम्मुख आत्म-हत्या कर ली।

अकबर की मृत्यु के पश्चात अमरसिंह ने बहुत से दुर्ग विजय कर लिये और मेवाड़ में मुग़लों का प्रभुत्व समाप्त हो गया। किन्तु मुग़ल सम्राट् की उस पर आँख लगी थी। जब वह युद्ध द्वारा सफल न हुआ तो शाहज़ादा खुर्रम जो तत्पश्चात् शाहजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ राणा अमरसिंह के पुत्र करण सिंह का पगड़ी बदल भाई बना, और करण मुग़ल दरबार में पधारा। अंग्रेज राजदूत सर टामस रो ने लिखा है कि उसका स्तर नरेश के समान था। उसे शस्त्रों की अपेक्षा उपहारों से जीता गया था।

इतना होने पर भी अमर सिंह को इस सन्धि का खेद रहा और उस ने सिंहासन का परित्याग कर दिया।

मेवाड़ के राणा मुग़लों के मित्र बने रहे परन्तु औरंगज़ेब ने मेवाड़ के राणा राज सिंह से बैर मोल ले लिया। इस बार भी मेवाड़ की जीत हुई और मुग़ल सम्राट् को मुँह की खानी पड़ी।

मारवाड़, मरुवार या मरुस्थलि से बिगड़ कर बना है। यहाँ

मारवाड़

राठौर वंश के राजपूतों का राज्य था। पुरोहितों के चिट्ठों के अनुसार राठौरों का आदि स्थान उत्तर में था। उन के एक वंश ने कन्नौज में अपना राज्य स्थापित किया। इस शाखा का सर्वेसर्वा नैनपाल था जिस ने ४७० ई० में कन्नौज के राजा अजयपाल की हत्या की थी। इस वंश का अन्तिम राजा जय चन्द था जिसकी पुत्री संयुक्ता की गाथा सुप्रसिद्ध है। उस के भतीजे शिवा जी ने इस महान् साम्राज्य के एक भाग में जिसे मरुदेश कहते थे नया राज्य स्थापित किया। मरुदेश में इस वंश का प्रसिद्ध राजा जसवन्त सिंह था जिस की मृत्यु १६७६ ई० में हुई।

राठौरों के शौर्य की गाथाएँ चारणों के संगीत में सुरक्षित हैं। उन के शौर्य की सराहना चौहानों ने भी की है। गौर के सुल्तान के साथ कन्नौज के राजा जय सिंह के युद्ध का वर्णन मिलता है। जय सिंह को मंडालिका कहा गया है जिस से प्रतीत होता है कि उसे भारत के नरेश सर्वोपरि स्वीकार करते थे।

मेवाड़

१३६३ ई० के लगभग कन्नौज के अन्तिम नरेश के दो राजकुमार राजस्थान आए। उन्होंने अन्हलवाड़ के नरेश की शरण ली और उसकी सहायता से उन में से एक ने मेवाड़ की स्थापना की। मेवाड़ शब्द का सम्बन्ध मेवा शब्द से बताया जाता है।

१४४४ ई० में इस वंश के प्रतिनिधि रनमल ने मेवाड़ की राजकुमारी से विवाह किया और इस प्रकार उस की शक्ति बहुत बढ़ गई। रनमल ने मेवाड़ का राज्य हथियाने की चेष्टा की जिस के दण्डस्वरूप मेवाड़ के राजकुमार चन्द्र ने उस का वध कर दिया। रनमल के पुत्र जोधा ने जोधपुर नगर की स्थापना की। मीरा बाई जिस का विवाह मेवाड़ के राणा कुम्भा से हुआ था उस की पौत्री थी।

राठौरों के शौर्य का प्रदर्शन १५२६ ई० के युद्ध में हुआ। बाबर

की इस युद्ध में जीत हुई किन्तु वह राजस्थान पर अधिकार स्थापित करने में सफल नहीं हुआ। शेर शाह ने १५५४ ई० में इस पर आक्रमण किया। उस समय वहाँ मालदेव का राज्य था।

एक मास तक दोनों सेनाएँ आमने सामने खड़ी रहीं किन्तु शेर शाह को प्रहार करने का साहस न हुआ। आखिर उसे चतुराई सूझी। उस ने एक पत्र लिखा और इस प्रकार मालदेव के पास पहुँचाया कि उसे अपने सहायकों पर सन्देह हो गया। फिर भी राजपूतों ने जान तोड़ कर मुकाबला किया किन्तु उन की कमर टूट चुकी थी। विजय प्राप्त करने के पश्चात् शेर शाह ने कहा था, "एक मुट्ठी भर बाजरे के लिये मैं भारत का साम्राज्य खो बैठा था।"

जिस समय हुमायूँ शेरशाह से मात खा कर मारा मारा फिरता था उस ने माल देव से आश्रय की प्रार्थना की थी किन्तु मालदेव ने उसे आश्रय नहीं दिया था। अकबर की माता ने सम्भवतः इसी के प्रतिकार के रूप में अकबर को मारवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये प्रेरित किया था। १५६१ ई० में अकबर ने मारवाड़ में स्थित नगर मालकोट का परिवेष्ठन किया, और उसे प्राप्त कर लिया। नागोर भी उस के हाथ आया और उस ने राठौर वंश के राजकुमारों को राजन्यक नियत कर ये स्थान उन्हें सौंप दिये। बीकानेर राज्य की स्थापना इसी प्रकार हुई।

अकबर ने जोधपुर को प्राप्त करने के लिए भारी सेना भेजी। मालदेव को सन्धि करनी पड़ी। उस ने अपना पुत्र उदय सिंह अकबर के दरबार में भेजा जिसे अकबर ने एक हजारी का मन्सब प्रदान किया। उदय सिंह मोटा राजा के नाम से प्रसिद्ध है। वह अकबर का विश्वास पात्र था।

मालदेव ने किसी समय राजस्थान का अधिकतर भाग विजय किया था और उस की गणना भारत के प्रसिद्ध नरेशों में होती थी। अकबर की आधीनता स्वीकार करने का उसे बहुत क्षोभ हुआ।

जिस समय मेवाड़ के क्षितिज पर प्रताप सूर्य बन कर उदय हुआ मेवाड़ का यह भानु अस्त हो गया।

राठौर वंश के सूर सिंह ने उदय सिंह की मृत्यु पर उस की पदवी प्राप्त की। उस ने गुजरात के सुल्तान मुज़फ्फर शाह को परास्त किया जिस के फलस्वरूप उसे गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। जसवंत सिंह जिस ने औरंगज़ेब के काल में काबुल और कंधार में अपने शौर्य की धाक बिठाई थी मारवाड़ का शासक था। जसवन्त सिंह के पश्चात् मारवाड़ ने कोई विभूति उत्पन्न नहीं की।

अम्बर

अम्बर जिसे जयपुर भी कहते हैं कछवाहा राजपूतों का राज्य था। इस राज्य का संस्थापक धौला राव था जिस ने अजमेर की राजकुमारी से विवाह किया था। १५४८ ई० तक अम्बर के नरेशों ने भारत के इतिहास में विशेष नाम नहीं पाया। धौला ने बाबर का साथ दिया था। हुमायूँ के काल में उसे पँचहज़ारी का मन्सब प्रदान हुआ। अम्बर के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अकबर से किया। जहाँगीर इसी राजकुमारी का पुत्र था। अम्बर का राजन्य भगवान दास अकबर का विश्वास पात्र था। दक्षिण की विजय का श्रेय उस के भतीजे मान सिंह को है जिस ने उस के पश्चात् जयपुर की गद्दी सम्भाली।

उस ने आसाम, गोंडवाना और उड़ीसा को मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित किया। काबुल के लगातार विद्रोहों को दमन करने का सेहरा भी उसी के सिर है। वह क्रमशः बङ्गाल, बिहार, दक्षिण और काबुल का सूबेदार नियुक्त हुआ। यह कहना अनुचित न होगा कि उस का सहयोग ही अकबर की सामरिक शक्ति का आधार था। अनुशासन स्थापित करने में भी उस ने महत्त्वपूर्ण काम किया। कहा जाता है कि उस की बढ़ती हुई शक्ति से न केवल

शहज़ादे बल्कि सम्राट् स्वयं भयभीत रहता था। सम्भव है कि उस की अकाल मृत्यु का कारण यही स्पर्धा हो। औरंगज़ेब के काल में जय सिंह ने जो मिर्जा राजा के नाम से प्रसिद्ध था मान सिंह की भाँति नाम पाया और उस का अन्त भी कुछ इसी प्रकार हुआ।

सवाई जय सिंह इस वंश का अन्तिम प्रमुख राजा था। उसने अपने विज्ञान और साहित्य प्रेम के लिए बहुत ख्याति प्राप्त की। उस का और अन्य राजपूत शासकों का वर्णन हम उचित स्थान पर करेंगे।

बूंदी

बूंदी राज्य की स्थापना राव देव ने १३४२ ई० में की थी। वह चौहान वंश से था जो किसी समय समस्त पश्चिमी भारत पर छाया हुआ था। उस के पूर्वजों का वर्णन महमूद गज़नी के इतिहासकारों के वृत्तान्त में मिलता है। यह भी कहा जाता है कि उसी के पूर्वजों ने झाँसी, गोलकंडा आदि नगरों की स्थापना की थी। इस वंश का प्रसिद्ध शासक सुर्जन सिंह था जिस ने १५५४ ई० में सिंहासन आरोहण किया। रणथम्भोर जिस पर अफ़गानों का अधिकार था उस ने विजय किया। इसी के ऐतिहासिक परिवेष्ठन के समय सुर्जन और अकबर में सन्धि हुई जिस के अनुसार तय पाया कि :

१. बूंदी राज्य पर जज़िया न लगाया जायगा।

२. बूंदी राज्य के सरदार शाही राजधानी में धूम-धाम से निकल सकेंगे।

३. वे दरबार में अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो कर जायेंगे।

४. उन के घोड़ों पर सम्राट् की मोहर न लगेगी।

५. सम्राट् कभी इस बात का आग्रह न करेगा कि बूंदी की किसी राजकुमारी को शाही हरम में भेजा जाय।

अकबर ने सुर्जन सिंह को बहुत मान प्रदान किया। सुर्जन सिंह ने उस के लिए गोंडवाना और गुजरात राज्यों को विजय किया,

जिस के प्रतिकार के रूप में उसे काशी की जागीर मिली। काशी के कई भवन अब भी उस की याद दिलाते हैं। उस के बनवाए हुए घाट अब तक स्थित हैं।

बूंदी के शासक मुग़ल सम्राटों के वफ़ादार बन कर रहे।

बूंदी का दूसरा प्रसिद्ध शासक छत्रसाल (१६५२-१६५८ ई०) था। उस ने मुग़लों के लिए दौलताबाद, बीदर और गुलबर्ग आदि के नगर विजय किये। छत्रसाल शाहजहाँ की ओर से औरंगज़ेब के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया। औरंगजेब ने इस का बदला लेने के लिए बूंदी पर आक्रमण किया किन्तु उस की हार हुई। मुग़ल सम्राट् ने पांसा पलटा और बूंदी के शासक भाव सिंह को औरंगाबाद का सेनाध्यक्ष नियुक्त किया। इस के पश्चात् बूंदी राज्य की सत्ता घटती चली गई।

राजस्थान की राज्य व्यवस्था

को जागीरदारी अर्थात् फ़्यूडलिज्म का नाम दिया जाता है। किन्तु जिस रूप में यह प्रथा मध्यकालीन यूरोप में दृष्टिगोचर होती है उस रूप में राजस्थान में नहीं। राजस्थान की जागीरदारी का आधार स्वामिभक्ति के पवित्र अनुभाव पर था।

जब हम किसी यूरोपीय संस्था की तुलना भारत की संस्था से करते हैं तो हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि धार्मिकता और भौतिकता भारतीय जीवन का आधार है। वचन पर कटिबद्ध रहना, कर्तव्य पालन करना, धर्मपरायणता, जीवन की सरलता ये भारतीयों के गुण विशेष हैं जिनका परित्याग उनके लिये मृत्यु के समान है और उस से भी बुरा। यूरोप और भारत में एक बहुत बड़ा अन्तर है इसलिए भारतीयों की प्रथाओं की तुलना यूरोप की प्रथाओं से नहीं हो सकती।

राजस्थान में राजा का प्रजा से पितृ-सम्बन्ध था इसकी उपकृति के रूप में प्रजा अपने राजा के लिए सब कुछ न्योछावर करने को तैयार थी, किन्तु तभी तक जब तक राजा प्रजा की इच्छा का सम्मान करता था, उसके सहयोग से राज्य कार्य चलाता था और उसका आचरण उच्च होता था। यदि वह जनता की अनुमति की अवहेलना करता था तो वह स्वामित्व के पद से वंचित कर दिया जाता था। तब उसका स्तर एक साधारण पथभ्रष्ट जन के समान होता था।

भूमि और उसकी उपज पर जनता का मौलिक अधिकार था। उसकी रक्षा करना राजा का कर्तव्य था।

राजस्थान में प्रचलित जागीरदारी प्रथा को समझने के लिए इन तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

राज्य व्यवस्था प्रायः प्रथाओं पर आधारित थी। शासन के नियम सरल थे। उन के निरूपण में जागीरदारों या सरदारों का कोई हाथ न होता था। राज्य मन्त्री और उप मन्त्री और अन्य राज्य कर्मचारी राजा को परामर्श देते थे। ऐसे नियम जिनका जातीय जीवन से सम्बन्ध होता था जनता की मन्त्रणा से बनाये जाते थे।

राजा निर्देश द्वारा इन नियमों की घोषणा करता था। कई निर्देश लिखे मिले हैं। इन में से एक के अनुसार तम्बाकू के व्यापार पर से एकाधिकार हटाया गया है। एक अन्य निर्देश छींट (कपड़ा) पर से कर हटाने के विषय में है। एक और विज्ञप्ति के अनुसार एक नगर विशेष पर से चुंगी हटाकर उसे स्थानीय स्वराज्य प्रदान किया गया है। एक विज्ञप्ति में लिखा है, कोई व्यक्ति सहभोज में से खाद्य सामग्री उठाकर न ले जाय। बैलों से अमावस के दिन काम लेने का निषेध एक अन्य विज्ञप्ति का विषय है। इन आदेशों और विज्ञप्तियों का संग्रह

राजस्थान में प्रचलित नियमों को संयत करने में बहुत सहायक होगा।

राजस्थान में जागीर पट्टे द्वारा प्रदान की जाती थी। कुछ जागीरें ऐसी थीं जो जीवन पर्यन्त के लिये दी जाती थीं। इस प्रकार के जागीरदारों को भूमिये कहते थे। भूमिया होना गर्व की बात थी।

दूसरी प्रकार के जागीरदार ग्रासिये कहलाते थे। इनकी जागीर साल के साल निर्धारित की जाती थी।

चित्रकार, चारण, राज्यवैद्य, राजदूत, पनिहारे, मन्त्री इन सब को ही जागीरें दी जाती थीं। प्रायः ये पद पीढ़ी दर पीढ़ी चलते थे। राज्य कर्मचारी वेतन की अपेक्षा जागीर स्वीकार करना अच्छा समझते थे।

चार प्रकार के जागीरदारों का वर्णन मिलता है : १. वे जिनकी जागीर ५० सहस्र से ऊपर की होती थी। इन्हें विशेष अवसरों पर ही राज्य दरबार में उपस्थित होना पड़ता था। इनकी उपस्थिति के लिये राजा की ओर से निमन्त्रण आना अनिवार्य था। २. पाँच सहस्र से पचास सहस्र तक की जागीर वालों को सदैव राजधानी में रहना पड़ता था, या राज्य कार्य के लिये किसी प्रान्त में इन्हें नियुक्त किया जाता था। फौजदार आदि यही लोग होते थे। ३. पाँच हजार से नीचे की जागीर वाले सदैव राजा के साथ रहते थे। ४. राजवंशीय लोग जिनका कोई स्तर न होता था और जिन्हें किसी समय भी राज्य कार्य के लिये बुलाया जा सकता था।

भूमि कुछ तो जागीरदारों में बाँटी जाती थी कुछ खालसा भूमि कहलाती थी जो राजा के आधीन होती थी। इस पर काम करने वाले जागीरदार न कहलाते थे।

जागीर प्रायः देश-वावासियों को प्रदान की जाती थी। यदि विदेशियों को अनुग्रहीत किया जाता तो उन्हें काला पट्टा दिया

जाता था जिसका तात्पर्य था कि किसी समय भी उन्हें जागीर से वंचित किया जा सकता है।

अनुशासन के हेतु प्रदेश ज़िलों में बंटा हुआ था। एक ज़िले में प्राय: ८४ गाँव और नगर होते थे। प्रत्येक ज़िले के लिये एक फ़ौजदार और एक कोषाध्यक्ष नियत किया जाता था। स्थानीय समिति होती थी जिस के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते थे। इस पंचायत की बैठक खालसा भूमि में होती थी, फ़ौजदार या कोषाध्यक्ष के निवासस्थान पर नहीं। यदि कोई राज्य कर्मचारी निर्णय करने में विलंब करता था तो राजा की ओर से सैनिकों का जत्था भेज दिया जाता था जिस के भोजन आदि का प्रबन्ध उस कर्मचारी के ज़िम्मे होता था। इसे रोज़ाना कहते थे और यह ऐसा दबाव था कि प्रायः निर्णय में विलम्ब न होता था।

गाँव के पटेल और पटवारी पंचायत के सदस्य होते थे। ज़िले का मुख्य न्यायाधीश नगर सेठ होता था।

प्रत्येक जागीरदार राजा की भाँति मन्त्री नियुक्त करता था और कचहरी लगाता था। आवश्यकता पड़ने पर उसे नियत घुड़सवार और सैनिक लेकर राजा की सहायता करनी होती थी। यदि कोई जागीरदार अपना कर्तव्य पालन न करता था तो वह जागीर से वंचित कर दिया जाता था। वेतन देकर सैनिक न रखे जाते थे।

प्रत्येक जागीरदार का कर्तव्य था कि वह अपने कुटम्बियों के निर्वाह का प्रबन्ध करे।

व्यवहार में यह प्रथा अति उपयोगी सिद्ध हुई किन्तु कालान्तर में भूमि के छोटे छोटे भाग हो गये। राजनैतिक संयोजन ढीला पड़ जाने पर केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गई। जागीरदारों की आपसी रिपुता ने सेना को अशक्त कर दिया। 'रखवाली' अर्थात् संरक्षण जो एक अति उपयोगी प्रथा थी स्वार्थ भाव के कारण राजस्थान में दासता की जन्मदाता बन गई।

न्याय

पंचायत द्वारा न्याय करने की प्रथा थी। प्रत्येक पक्ष अपने दो पंच नियुक्त करता था। प्रायः निर्णय सौगन्ध द्वारा हो जाता था। झूठी सौगन्ध खाना बहुत बड़ा पाप समझा जाता था। अग्नि परीक्षा अपराध सिद्ध करने का दूसरा उपाय था। पंचायत के फैसले की आखिरी अपील राजा के पास होती थी। अपील करने वाले को फीस देनी होती थी। साधारणतः फैसले पंचायतों में ही हो जाते थे।

अपराधों के लिये बहुत साधारण दंड दिया जाता था। राजस्थान में यह कहावत मशहूर थी, बाहर ना मिले राबड़ी, अन्दर जेल में मिलें लाडू। मृत्यु दंड का अभाव था।

कर

राज्य की आय का आधार खालसा भूमि की उपज, नमक और अन्य खनिज पदार्थ, विभिन्न प्रकार के कर जैसे भूमि कर, हासिल, अंगा, घसवाली, किवाड़ी, साईर आदि थे। कर की मात्रा बहुत थोड़ी होती थी। जो कृषक जागीरदारों की भूमि पर काम करते थे उन्हें उस से भी कम देना पड़ता था। कर शस्य और मुद्रा किसी रूप में भी दिया जा सकता था। कर उगाहने वाले पटवारियों को एक मन में से आधा सेर शस्य वेतन के रूप में मिलता था।

व्यापार

राजस्थान के व्यापारी भारत क्या संसार भर में प्रसिद्ध थे। उनके नाम की हुंडियाँ चलती थीं। कारवाँ जिन्हें राजस्थानी भाषा में कितार कहते हैं भीलवाड़ा, चूरू, मालपुरा और पाली की मंडियों में चीन, यूरोप और भारत के विभिन्न प्राँतों का माल लाकर उतारते थे। उत्तरी भारत का समुद्री व्यापार राजस्थान के मार्ग से होता था।

स्त्रियों की स्थिति

राजस्थान में नारी जाति का बहुत मान होता था। उन की वास्तविक दशा का अनुमान निम्नलिखित उदाहरणों से लगाया जा सकता है।

आल्हा और ऊदल दो प्रसिद्ध राठौर सूरमा हुए हैं। अपने नरेश से उन की अन बन हो गई और वे नगर छोड़ कर चले गये। नगर पर विपद् आ पड़ी। इन की माता देवल देवी ने सन्देश भेजा "यदि तुम मेरी कोख से उत्पन्न हुए हो और यदि तुम्हारी रगों में राठौर रक्त है तो उस की सिद्धि का समय आ गया है। यदि मैं अपनी आँखों के सम्मुख तुम्हें वीरता से मरते देखूँगी तो अपना जीवन धन्य समझूँगी।

इन शब्दों का जो परिणाम हुआ वह राजपूती माताओं के शौर्य का सूचक है।

पृथ्वी राज मुहम्मद ग़ोरी का मुकाबला करने के लिये चलने लगा तो उस की रानी संयुक्ता ने पति को स्वयं शस्त्रों से सुसज्जित किया था और कहा था "आप रण में जाएं। आपकी विजय होगी। यदि ऐसा न हुआ और आप ने वीर गति पाई तो मैं तुरन्त स्वर्ग लोक में आप के दर्शन करूँगी।" पृथ्वी राज की मृत्यु के पश्चात् संयुक्ता ने वीरांगणा की भाँति चिता आरोहण किया। राजस्थान के इतिहास में ऐसे उदाहरण अनेक हैं।

राजपूत महिलाएँ अपने शौर्य के लिए प्रसिद्ध थीं। उन की वीरता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। दुर्गावती ने जिस मरदानगी से मुग़ल सम्राट् की सेना का सामना किया उसे देख कर भारत को ही नहीं संसार भर को नारीत्व पर गर्व होता है।

चतुराई का ज्वलंत प्रमाण मेवाड़ की रानी पद्मनी ने प्रस्तुत किया है। इतिहासकार इस पर एक मत हैं कि राजपूत वीरांगणाएँ शासन विधि और सैनिक नियमों में दक्षता रखती थीं और समय पड़ने पर

अपना कर्तव्य पालन करती थीं। उन के त्याग भाव की कोई सीमा नहीं थी। उपकृति के रूप में नहीं बल्कि अपना कर्तव्य समझ कर, जीवन पर्यन्त नहीं अपितु परलोक में भी राजपूत महिला पतिव्रत धर्म निभाने का दावा कर सकती थीं। उस के सम्मुख सीता और सावित्री का उदाहरण था।

स्वतन्त्रता

अपना जीवन साथी चुनने में कन्या को पूर्ण स्वतन्त्रता थी यद्यपि अनुचित परिस्थितयों के कारण इस पर कुछ सामान्य प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। उदाहरणतः एक राठौर कन्या राठौरों की किसी भी जाति में विवाह नहीं कर सकती थी। माता पिता के मान के हेतु वह प्रायः उन की आज्ञानुसार अनुसरण करती थी किन्तु ऐसे विवाह-सम्बन्धों की कमी नहीं जिन की स्वीकृति माता-पिता से प्राप्त नहीं की गई थी। गोंडवाना की दुर्गावती का विवाह इस का उदाहरण है।

पर्दे की प्रथा आरम्भ हो चुकी थी। उच्च वर्ग के तुर्क और मुग़लों की देखा-देखी यह रिवाज प्रचलित हुआ था। फिर भी इस ने राजस्थान में वह रूप धारण नहीं किया जिस से पर्दे का रिवाज निकृष्ट समझा जाता है। राजस्थान की प्रत्येक नारी का यह विश्वास था कि उसके मान के हेतु राजस्थान का बच्चा बच्चा कट मरने को तैयार है। पर्दे के कई कारण थे परन्तु यहाँ यह कहना पर्याप्त होगा कि किसी देशवासी से एक नारी को अपने प्रति दुर्व्यवहार की शङ्का कभी न थी। यदि किसी ने कोई अधम काम किया भी तो ये महिलाएँ जान पर खेलना जानती थीं।

साधारण रूप से स्त्रियों पर कोई प्रतिबन्ध न था। पुरुष के बाह्य जीवन से उनका सम्बन्ध हो या न हो घर में उनकी इच्छा का विरोध नहीं हो सकता था।

राजस्थान का सामाजिक जीवन धर्म युक्त था। तुर्कों के आक्रमण

से पूर्व वे शिव के पुजारी थे और गौरी को पूज्यदेवी समझते थे। किन्तु कृष्ण जी की मूर्ति की स्थापना हो जाने पर जिसे द्वारका से राजस्थान लाया गया था लोगों की रुचि "कान्हा" की ओर हो गई। वे न केवल इन देवी-देवताओं की सत्ता में विश्वास रखते थे बल्कि धन और सम्पत्ति उन के निमित्त समर्पण करना अपना कर्तव्य मानते थे। यही कारण था कि राजस्थान के मन्दिरों की सम्पत्ति साधारण राजानकों की सम्पत्ति से बढ़ गई। इस में अन्धविश्वास का बहुत हाथ है जो सोलहवीं शताब्दी के पश्चात् तीव्र गति से बढ़ता गया।

सामाजिक जीवन

पुरोहितों को राजस्थान में उचित मान दिया जाता है किन्तु उन्हें यूरोप के ईसाई पादरियों की सी पदवी कभी भी प्राप्त न थी। व्यापारी वर्ग का या चारणों का प्रायः अधिक मान होता था और राज्य कार्य में पुरोहितों से परामर्श लेने की आवश्यकता न समझी जाती थी।

पुरोहित

जीवन को रसिक बनाने के लिये राजस्थान में त्योहार बड़े समारोह से मनाए जाते थे। स्त्रियों के लिये तीज का और सर्वसाधारण के लिये होली का बहुत महत्त्व था। दशहरा वीरों का त्योहार था। इस अवसर पर सेना का प्रदर्शन किया जाता था।

त्योहार

वर्ण व्यवस्था कठोर बनती जा रही थी किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि आपसी भेद भाव उत्पन्न हो गए थे या किसी वर्ग विशेष को अन्य वर्ग से हेय समझा जाता था।

वर्ण व्यवस्था

दास प्रथा भारत में कब और कैसे आई और कैसे इस का निषेध हुआ यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता किन्तु राजस्थान के वसाई और गोले यह प्रदर्शित करते हैं कि राजस्थान समाज इस से कलंकित

था। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से दासों को विशेष कष्ट न होता था फिर भी इन्हें वे असुविधाएँ अनुभव करनी पड़ती थीं जो दासता के साथ सम्बन्धित हैं।

कला

राजस्थान की कला प्रियता का अनुमान उदयपुर, जोधपुर और अन्य नगरों के भवन देखने से लगाया जा सकता है। उनकी कला का मुग़ल कला पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। चित्रकारी, नाट्यविद्या, संगीत और अन्य कलाओं को प्रोत्साहन देना सभी राजपूत जातियाँ आवश्यक समझती थीं। प्रत्येक राजपूत कन्या और युवक से यह आशा की जाती थी कि वह न केवल धर्म ग्रन्थों का ज्ञाता हो बल्कि कला कौशल का भी।

आर्थिक स्थिति

आर्थिक रूप से राजस्थान स्वावलम्बी था यद्यपि लगातार आक्रमण होते रहने के कारण वहाँ की बहुत सी खाने बन्द हो चुकी थीं और कृषि और उद्योग को बहुत हानि पहुँची थी। उर्वर भूमि पर शत्रु का अधिकार स्थापित हो जाने के कारण मुग़ल काल के अन्तिम भाग में राजस्थान को लगातार दुर्भिक्षों से पीड़ित होना पड़ा। इतनी कठिनाइयां होने पर भी इन राजाओं ने राजस्थान की आर्थिक स्थिति को बिगड़ने नहीं दिया। यह अति सराहनीय है।

राजपूतों के दोष

जहाँ हम राजपूतों के गुणों की सराहना करते हैं वहाँ हमें वंशीय-रिपुता जैसे दोष को नहीं भूल जाना चाहिए। यही रिपुता राजस्थान के विनाश का कारण बनी। चारण इस प्रकार के युद्धों का वर्णन बड़े समारोह से करते हैं। ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जहाँ पुरोहितों ने इस का अन्त करने के लिये जान की आहुति दी। शक्ति सिंह और प्रताप का द्वन्द्व और उसका निवारण उदाहरण के रूप

में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस रिपुता का अन्त करने का एक उपाय विवाह-सम्बन्ध था।

इस द्वन्द्व को समझदार शासक स्पर्धा का रूप देकर देश गौरव के लिये प्रयुक्त करते रहे। मेवाड़ के राणा अमर सिंह ने चन्द्रावतों और शक्तावतों के आपसी द्वन्द्व का लाभ उठा कर एक महान् दुर्ग को विजय किया था। और भी इस के अनेक उदाहरण मिलते हैं। किन्तु दुर्बल शासकों के लिये राजपूतों की उबलती हुई शक्ति को अनुशासन में रखना संभव न था। इसी से समस्त जाति की सत्ता का प्रस्खलन हो गया।

विजय नगर

विजय नगर का एक प्रमाणिक इतिहास मिलता है। इस इतिहास में विजय नगर की स्थापना के विषय में सात मत प्रकट किये हैं, जिन में से एक का हम यहाँ वर्णन करते हैं।

वारंगाल राज्य से दो भाई हरि हर और बुक्का ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पण्डित विद्यारण्य की सहायता से उन्होंने १३३६ ई० में विजय नगर की स्थापना की। हरि हर उसका नरेश घोषित हुआ। वारंगल के राजा रुद्र देव ने उन्हें सहयोग दिया और वे दक्षिण में छोटे छोटे राज्यों को परास्त करने में सफल हुए। विजय नगर राज्य कृष्णा नदी से लेकर कावेरी तक फैल गया, पूर्वी और पश्चिमी सीमाएँ समुद्र को छूती थीं।

हरि हर के पश्चात् बुक्का ने सिंहासन आरोहण किया। उस के काल में एक शिष्ट मण्डल भारत से चीन गया।

देव राय

देव राय जिस ने १४१९ से १४४६ ई० तक राज्य किया विजय नगर का सब से प्रतापी शासक कहा जाता है। बहमनी राज्य से उस के कई युद्ध हुए जिन के फलस्वरूप विजय नगर की धाक समस्त दक्षिण में बैठ गई।

उसके राज्य का वर्णन इटली के निकोलो कौन्टी और ईरान के

अब्दर्रज़ाक ने किया है।

देव राय के उत्तराधिकारी इतने योग्य और सशक्त न थे कि विजय नगर की रक्षा कर सकते। दक्षिण से तालुबा जातीय नरीसा नायक ने विजय नगर पर अधिकार प्राप्त कर लिया। कृष्ण देव (१५०६ से १५२६ ई० तक) उसी के वंश से था। उसने विजय नगर के वे सब इलाके प्राप्त कर लिये जो विगत कुशासन के कारण उस से छिन गये थे।

कृष्ण देव राय

कृष्ण देव के उड़ीसा, बीजापुर और बहमनी राज्य के साथ सफल संग्रामों का हाल मिलता है। पुर्तगाल देशीय अलबुकर्क ने उस से मैत्री स्थापित की और उस के परिपोषण में गोआ पर जो बीजापुर के आधीन था अधिकार प्राप्त कर लिया। विजय नगर में वाखतल के स्थान पर भी पुर्तगालियों को फैक्ट्री स्थापित करने की आज्ञा मिल गई।

कृष्ण देव राय के पश्चात् विजय नगर की राजसत्ता क्षीण हो गई। बीजापुर, गोलकंडा, अहमदनगर और बीदर की संयुक्त सेना ने १५६५ ई० में इस पर चढ़ाई की। विजय नगर के सूरमाओं ने डट कर मुकाबला किया किन्तु शत्रु की महान शक्ति के सम्मुख उनकी वीरता काम न आई। हताहत सैनिकों की संख्या का अनुमान एक लाख के लग भग लगाया जाता है। विरोधियों को लूट में इतना धन हाथ आया कि प्रत्येक सैनिक धनाड्य बन गया। सोना, चाँदी और हीरे मणियाँ असीम मात्रा में उनके हाथ लगे। इसे तिल्लीकोट का युद्ध कहते हैं।

१५७० ई० में तिरुमला ने विजय नगर में एक नए वंश की स्थापना की। वह अति योग्य शासक था। कला और साहित्य से उसे बहुत प्रेम था। तिरुमला ने विजयनगर की खोई हुई कीर्ति पुनः स्थापित की।

तिरुमला

तिरुमला का वंश अधिक काल तक स्थाई न रहा। इस की भस्म से मदुरा और तंजोर के राज्य उत्पन्न हुए।

राज्य व्यवस्था

विजय नगर के शासक स्वच्छन्द होने पर भी राज्य समिति से परामर्श लेते थे जिसके सदस्य कवि, पुरोहित, व्यापारी और मन्त्री होते थे। मुख्य मन्त्री कोषाध्यक्ष और रक्षा मन्त्री विशेष रूप से प्रमुख गिने जाते थे।

समस्त प्रदेश २०० प्रान्तों में विभक्त था जिन के छोटे छोटे अनेक उपभाग थे। एक उपभाग में कई कई ग्राम और नगर समूह होते थे। नगर और गाँव की पंचायत को नियम बनाने और न्याय के पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। भूमि और व्यापार कर लगाया जाता था जिस की मात्रा इतनी न्यून थी कि उस की उग्राही में कभी कठिनाई अनुभव न होती थी।

अपराधियों को कठोर दंड दिये जाते थे। चोरी के अपराध में मृत्यु दंड साधारण बात थी।

पुरोहितों का मान किया जाता था और अपराधी होने पर भी कठोर दंड न दिया जाता था।

स्त्रियों का विशेष रूप से मान किया जाता था। उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी और वे अपनी इच्छा से जो व्यवसाय चाहती थीं ग्रहण करती थीं। बहुत सी ऐसी स्त्रियों का वर्णन मिलता है जो ज्योतिष, रसायन, औषध विज्ञान या मल्लयुद्ध में दक्ष थीं। राज्य कार्यालयों में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ साथ काम करती थीं।

राजधानी

इटली के पर्यटक निकोली कौंटी ने विजय नगर का वृतान्त दिया है। उसने लिखा है—विजय नगर बहुत उदग्र पर्वतों के पास स्थित है। नगर का परिमाप ६० मील है। इस के परकोटे पहाड़ों पर भी बने हुए हैं और उनके बीच कई घाटियाँ

हैं ज़िसके कारण नगर का फैलाव बहुत अधिक प्रतीत होता है। इस नगर में ६० हज़ार व्यक्ति ऐसे हैं जो सेना में भरती हो सकते हैं।"

निकोली कौंटी १४२० ई० के लगभग भारत आया था। उसने राजा के वैभव का भी वर्णन किया है। उसने कहा है कि बहु विवाह का रिवाज था और पति की मृत्यु पर विधवा अपनी इच्छा से सती होती थी जिसे वह गर्व की बात समझती थी।

त्योहारों और उत्सवों का वर्णन करते हुए उसने लिखा है, "यहाँ के रहने वाले साल में तीन महान उत्सव मनाते हैं। नर नारी सब सुबह सवेरे स्नान करते हैं और सुन्दर और स्वच्छ वस्त्र पहनते हैं। प्रत्येक उत्सव तीन तीन चार चार दिन मनाया जाता है जब लोग खूब रंग रेलियाँ मनाते हैं।"

इन त्योहारों में उसने दीवाली और होली का भी जिक्र किया है। उसने रथ यात्रा का भी वर्णन किया है और कहा है, "साल में एक बार ये लोग अपने इष्ट देव की मूर्ति का जलूस निकालते हैं। मूर्ति दो रथों के बीच टिकी होती है। रथों में आभूषित नव नारियाँ बैठी गायन करती जाती हैं। जलूस में बहुत लोग होते हैं जिन में से कतिपय पहियों के नीचे गिर पड़ते हैं और कुचले जाते हैं। वे इसे पुण्य का काम समझते हैं और उनकी यह धारणा है कि इस प्रकार मरने से वे सीधे वैकुंठ जायेंगे।"

अबेदुर्रज़ाक जो ईरान के सम्राट् का दूत था और जो १४४२ ई० में विजय नगर पहुँचा लिखता है, "विजय नगर ऐसा शहर है कि आँख ने कभी ऐसा नगर नहीं देखा। संसार में ऐसा नगर कभी सुनने में भी नहीं आया। एक के अन्दर एक इस प्रकार परकोटे की सात फसीलें हैं।"

इटली के एक अन्य पर्यटक पेईस ने जो १५२२ ई० में भारत आया विजय नगर का वर्णन इस प्रकार किया है, "यह नगर रोम जितना बड़ा है और देखने में बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। यहाँ की सुन्दर नहरें और भव्य उपवन मन को लुभाते हैं। यह नगर इस प्रकार आयोजित है कि यहाँ सभी चीज़ों की बहुतायत है। ऐसा नगर संसार भर में कोई नहीं।" पेईस ने विजय नगर के सम्राट् की भी बहुत प्रशंसा की है।

बाज़ारों, भवनों और राजमहलों की सभी ने सराहना की है।

कला और साहित्य

विजयनगर आन्ध्र और चालुक्य साम्राज्यों की भस्म पर स्थापित हुआ था। यह एक द्रविड़ राज्य था जिस ने तैलगू साहित्य को प्रोत्साहन दिया किन्तु संस्कृत साहित्य की भी बहुत उन्नति हुई। सायणाचार्य जिस ने वेदों का भाष्य लिखा है विजय नगर का प्रसिद्ध विद्वान था।

विजय नगर के सम्राट् विख्यात निर्माता थे जिन्होंने अति सुन्दर भवन और मन्दिर बनवाए। विजय नगर के कुछ मन्दिरों के खंडहर अब तक पाये जाते हैं और वे कला के विलक्षण नमूने हैं। स्वयं विजयनगर उन की कला प्रियता का ज्वलन्त उदाहरण था।

विजय नगर के नरेशों ने जन-कल्याण के भी बहुत काम किये। सिंचाई के लिये नहरें बनवाईं और कुएं खुदवाये।

विजय नगर में कलाकारों और साहित्यकारों को विशेष मान मिलता था। कृष्ण देव राय स्वयं एक साहित्यकार था जिस ने उच्च कोटि के ग्रन्थों की रचना की।

तैमूर के आक्रमण ने दिल्ली के सुल्तानों की रही सही शक्ति भी समाप्त कर दी थी। बीस वर्ष तक एक छाया के रूप में राज्य करने

अफ़गान

के पश्चात् तुग़लक वंश समाप्त हो गया। तब दौलत खाँ लोधी ने दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार प्राप्त कर लिया किन्तु सैयद वंशीय खिज़र खाँ ने जो पंजाब का राज्यपाल था उस का वध कर दिया।

सैयद दुर्बल सुल्तान थे। पञ्जाब उन के हाथ से निकल गया। इस वंश के सुल्तान अलाउद्दीन के काल में सैयद राज्य केवल दिल्ली नगर तक सीमित था।

अलाउद्दीन सिंहासन त्याग और उसे बहलोल लोधी के सुपुर्द कर बदायूं के स्थान पर जा कर रहने लगा।

इस प्रकार लोधी वंश की १४५१ ई० में पुनः स्थापना हुई।

बहलोल लोधी का दादा जो अफ़गान वंश से था फ़िरोज़ तुग़लक के काल में मुल्तान का गवर्नर था। लोधी अपनी शक्ति बढ़ाते रहे

लोधी

और सैयदों के अत्याचार होने पर भी वे समस्त पञ्जाब पर शासन स्थापित करने में सफल हो गए। जब उसे दिल्ली आने का निमन्त्रण मिला बहलोल पञ्जाब पर शासन कर रहा था।

बहलोल दिल्ली के सिंहासन पर बैठा ही था कि जौनपुर के बादशाह ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। जौनपुर के बादशाह के साथ उसका २० वर्ष तक युद्ध रहा। इस काल में कई बार संधि हुई। अन्त में जौनपुर को दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित होना पड़ा।

बहलोल का राज्य यमुना से हिमालय तक और पूर्व में बनारस तक फैला हुआ था।

बहलोल की मृत्यु पर उस के पुत्र सिकन्दर लोधी को अमीरों ने १४९८ ई० में सिंहासन पर बिठाया। सिकंदर का उस के भतीजे और दो भाइयों ने विरोध किया किन्तु सिकंदर सफल हुआ। उस ने बिहार और बुंदेलखण्ड को अपने राज्य में सम्मिलित किया।

सिकंदर की माता हिन्दू थी। उस की हिन्दू राजाओं ने सहायता की थी किन्तु सुल्तान बनते ही उस ने हिन्दुओं पर अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। उस ने बहुत से मन्दिरों को गिरवाया और मूर्तियों का खण्डन किया। उस की आज्ञा थी कि कोई व्यक्ति किसी तीर्थ स्थान की यात्रा के लिए न जाय। पूजा पाठ ने अपराध का रूप धारण कर लिया।

सिकंदर को कला और साहित्य से बहुत प्रेम था और वह विद्वानो का बहुत मान करता था। उस के राज्य काल में फ़ारसी साहित्य ने बहुत उन्नति की।

सिकंदर की मृत्यु १५१७ ई० में हुई। उस का पुत्र इब्राहीम लोधी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। वह एक अयोग्य शासक सिद्ध हुआ और उस के सूबेदारों ने विद्रोह कर स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की। पञ्जाब के सूबेदार दौलत खाँ ने बाबर को जो काबुल को विजय कर पश्चिम में सुदृढ़ मुग़ल राज्य की नींव डाल चुका था भारत आने का निमन्त्रण दिया। बाबर ने पञ्जाब विजय कर पानीपत के स्थान पर १५२६ ई० में इब्राहीम को परास्त किया और भारत में मुग़ल साम्राज्य की स्थापना की।

बङ्गाल

बंगाल पर तुर्क पूर्ण रूप से कभी भी अधिकार स्थापित न कर पाए थे। उस की समृद्धि और दिल्ली से दूरी उस के सूबेदारों को विद्रोह के लिए उत्तेजित करती थी। मुहम्मद तुग़लक ने इस प्रान्त का विभक्त कर तीन विभिन्न सूबेदार नियुक्त किये थे किन्तु इस से भी बंगाल की स्थिति में कोई विशेष अन्तर उत्पन्न न हुआ था। १३४५ ई० में शमसुद्दीन समस्त प्रान्त का स्वामी बन गया और उस ने नरेश की पदुवी ग्रहण की। उस के वंशज १४४१ ई० तक स्वतंत्र रूप से शासन करते रहे। इन के काल में बंगाल का चीन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा। हुशीन और फिन-

शीन दो चीनी राजदूत चौदहवीं शताब्दी के मध्य में बङ्गाल दरबार में रहे। १४१४ ई० में सईद्दीन ने एक चीनी सम्राट् को एक जिराफ भेंट किया था। चीनी जिराफ को पजनीय मानते हैं। उस समय चीन में मिंग वंश (१३६८-१६४४ ई०) का शासन था।

तत्पश्चात् राजा गणेश, जो बङ्गाल का एक ब्राह्मण ज़मींदार था, बङ्गाल के सिंहासन पर बैठा। इस के पुत्र यदु ने इस्लाम ग्रहण किया और वह जलालुद्दीन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस काल के दनुजवर्धन देव के नाम के सिक्के प्राप्त हुए हैं और अनुमान लगाया जाता है कि यह राजा गणेश का दूसरा नाम था। इन सिक्कों पर बंगाली लिपि में संस्कृत भाषा लिखी है। रघुनन्दन इस युग का प्रसिद्ध बंगाली लेखक है।

इस के पश्चात् १४९३ ई० तक बंगाल में कुशासन रहा। १४९३ ई० में सैयद हुसैन को बङ्गाल का नरेश चुना गया जिस ने बङ्गाली साहित्य और कला को परिपोषण दिया। उस के पुत्र नुसरत ने पिता का अनुकरण किया। इस समय बङ्गाल राज्य का विस्तार उड़ीसा और कूच बिहार तक था। चण्डी दास, विद्यापति, कृतिवास, विजयगुप्त, चैतन्य इस काल के प्रसिद्ध बंगाली कवि और संत हुए हैं। रामायण और महाभारत के बंगाली अनुवाद का श्रेय इसी काल के नरेशों को दिया जाता है।

शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति के सामने ये नरेश ठहर न सके और बंगाल पर सूर वंश का अधिकार हो गया। यह वंश १५७६ ई० तक स्थित रहा जब कि अकबर ने इस राज्य को मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित किया।

कन्नौज के वैभव का वर्णन हम पहले कर आए हैं। इस वीर भूमि पर ग्यारहवीं शताब्दी में भोज का राज्य था जिस ने तुर्कों को

मालवा

परास्त कर कोंकण विजय किया था। भोज के पश्चात् मालवा पर गुजरात के बघेलों का राज्य स्थापित हो गया। तेरहवीं शताब्दी में अल्तमिश ने इसे क्षत विक्षत किया और विक्रम की महान् मूर्ति का खण्डन किया। तत्पश्चात् अलाउद्दीन ने इसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया।

मालवा के सूबेदार लाव खाँ गौर ने दिल्ली राज्य की आधीनता परित्यक्त कर दी। परन्तु उस ने अपने आप को नरेश घोषित नहीं किया। उस के पुत्र हुशांग शाह ने (१४०४–३४ ई०) मालवा राज्य का बहुत विस्तार किया।

पन्द्रहवीं शताब्दी में मालवा पर खिलजी वंशीय सुल्तानों का राज्य था। इन में महमूद प्रसिद्ध है। उस ने एक विजय स्तूप बनवाया यद्यपि कहा जाता है कि जिस विजय को यह स्मृति है वह मेवाड़ के राणा कुम्भा को प्राप्त हुई थी। यह काल (१४३६–६६ ई०) मालवा के इतिहास में कला और साहित्य की उन्नति का काल है।

तत्पश्चात् मालवा में एक राजपूत सरदार मेदनी राय ने सत्ता प्राप्त कर ली। उस ने राणा संग्राम सिंह की सहायता से गुज़रात नरेश को पराजित किया।

१५३१ ई० में मालवा पर गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह का अधिकार हो गया जिस से हुमायूं ने इसे जीत लिया। अकबर के समय इस पर पठान शासक बाज़ बहादुर का अधिकार था। इस के स्मारक मांडू के स्थान पर मिलते हैं।

गुज़रात

गुजरात की उर्वर भूमि, वहाँ के व्यापारियों की असीम सम्पत्ति और समुद्री तट आक्रमणकारियों को आकर्षित करते रहे। सोमनाथ का विशाल मन्दिर महमूद का लक्ष्य बना। उसके पश्चात् तुर्क सम्राटों ने इसे विजय करने का भरसक प्रयत्न किया और अन्ततः अलाउद्दीन

ने इसे विजय कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया। (१२६७ ई०)।

दिल्ली सुल्तानों के दुर्बल होने पर यहाँ के सूबेदार ज़फ़र खाँ ने, जो गुजरात के प्रसिद्ध राजपूत वंश से था, १४०१ ई० में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। वह मुज़फ्फर शाह के नाम से प्रसिद्ध है। उसके वंशज १५७२ ई० तक गुजरात में राज्य करते रहे।

कला और साहित्य

पुर्तगालियों से युद्ध और मालवा की विजय इनके मुख्य कार्य थे। अहमद शाह और महमूद इस वंश के प्रसिद्ध शासक हुए हैं जिन्होंने गुजराती साहित्य और कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। महमूद ने १५०८ ई० में पुर्तगालियों को परास्त किया किन्तु तत्पश्चात् सन्धि कर उन्हें ड्यू के स्थान पर फैक्ट्री बनाने की आज्ञा दे दी। बहादुर शाह को हुमायूँ ने पराजित किया और न केवल मालवा उसके हाथ से निकल गया बल्कि गुजरात के भी अधिकतर भाग पर मुग़लों का अधिकार स्थापित हो गया। हुमायूं के निर्वासन के समय बहादुर शाह ने पुनः शक्ति प्राप्त कर ली। १५७२ ई० में अकबर ने गुजरात पूर्ण रूप से विजय किया।

जौनपुर

१३५६ ई० में बङ्गाल के गवर्नर ने विद्रोह किया। फ़िरोज़ ने उस पर चढ़ाई की तो उसे ज़फराबाद के स्थान पर विश्राम करने का अवसर मिला। उस स्थान की सुन्दरता को देख कर उसे वहाँ एक नया नगर बसाने का प्रलोभन हुआ। यह नया नगर जौनपुर के नाम से प्रसिद्ध है।

तैमूर के आक्रमण के पश्चात् जौनपुर स्वतन्त्र हो गया। वहाँ का पहिला प्रसिद्ध शासक सरवर अर्थात् ख्वाजा जहाँ था। उसने अपनी वीरता से पूर्वी भारत का बहुत सा भाग विजय किया। और जाजनगर और लखनौती का राजा उस को सर्वोपरि स्वीकार करने लगे।

यहाँ का सब से प्रसिद्ध शासक इब्राहीम था। उसे कला और साहित्य से बहुत प्रेम था और उसका दरबार भारत के गुणी व्यक्तियों का केन्द्र था। शेरशाह का परिपोषण इसी दरबार में हुआ। शहाबुद्दीन मलिक-उल-उलमा उस का प्रसिद्ध कवि था। इब्राहीम ने कई स्मारक छोड़े हैं जिन में से अतला की मस्जिद सब से सुन्दर है।

इब्राहीम के पश्चात् जौनपुर दिल्ली सम्राटों का लक्ष्य बन गया और इसका वैभव जाता रहा।

खान्देश

खान्देश ताप्ती नदी की घाटी में स्थित है। फ़िरोज़ तुग़लक की मृत्यु के पश्चात् मलिक राजा फ़ारूक़ी ने इस पर अधिकार प्राप्त कर अपने आप को सुल्तान घोषित किया। वह अपनी उदारता और सहिष्णुता के लिये प्रसिद्ध है। यह राज्य १६०१ ई० तक स्थित रहा जिस के पश्चात् इसे मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

बहमनी राज्य

महमूद के काल में इस्माइल माख़ ने दौलताबाद के स्थान पर एक नए राज्य की स्थापना की, किन्तु वह दरवेश वृत्ति का व्यक्ति था। १३४७ ई० में वह हसन गंगू को जो उसका योग्य सेनापति था राज्य कार्य संभाल कर विरक्त हो गया। हसन का साम्राज्य वैनगंगा से कृष्णा तक फैला हुआ था।

बहमनी वंश का सब से प्रसिद्ध शासक फ़िरोज़ शाह हुआ है जिसने १३९७ से १४२२ ई० तक राज्य किया। कहा जाता है कि वह और उसकी बेगमें हाथ से काम करते और जीविका कमाते थे।

इस राज्य के विषय में ऐथेनियस निकतन ने जो रूस का व्यापारी था लिखा है। उसने १४७० ई० में इस राज्य में स्थित बीदर नगर की यात्रा की थी। उस समय वहाँ मुहम्मद शाह राज्य करता था।

उसने अपने राज्य में बहुत से सुधार किये। शिक्षा, न्याय, शासन प्रबन्ध, सेना, भूमिकर, और अन्य सभी विभागों को उसने नया रूप प्रदान किया।

बहमनी नरेशों के विजय नगर के साथ बहुत से युद्ध हुए किन्तु जब कभी दिल्ली से दक्षिण पर चढ़ाई हुइ तो इन्होंने मिलकर शत्रु का सामना किया। बहमनी वंश १५१८ ई० में समाप्त हो गया और इसकी भस्म से बरार. बीजापुर, अहमद नगर, गोलकंडा और बीदर के राज्य उत्पन्न हुए। बहमनी राज्य के विद्वान मन्त्री महमूद गवान ने इसकी बिगड़ती हुई अवस्था सम्भालने की चेष्टा की किन्तु उसका वध कर दिया गया।

बरार

बरार राज्य की स्थापना इमाद शाह ने की थी जो जन्म से हिन्दू था। उसके वंशज १५७४ ई० तक राज्य करते रहे। तत्पश्चात् बरार को अहमद नगर राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

बीजापुर

इसकी स्थापना यूसुफ़ आदिलशाह ने १४८९ ई० में की। इसे औरंगज़ेब ने विजय किया।

अहमदनगर

अहमद नगर राज्य का संस्थापक निज़ामुलमुल्क बाहरी था। इतिहास में इसका महत्त्व चाँद बीबी के कारण है जिस ने अकबर की महान और सुसज्जित सेना के दाँत खट्टे कर दिये थे। अकबर १६०० ई० में इसे विजय करने में सफल हुआ।

गोलकंडा — बीदर

गोलकंडा में कुतुब शाही वंश का राज्य १५१८ से १६८७ ई० तक रहा। यह दक्षिण के राज्यों में सब से दुर्बल राज्य था। बीदर में १५२६ से १६०९ ई० तक अमीर बरीद के वंशजों ने राज्य किया।

मुस्लिम राज्यों की व्यवस्था

मुस्लिम राज्य निरंकुश राज्य थे। वहाँ की राज्य व्यवस्था शासक के अपने व्यक्तित्व पर निर्भर थी। उस का प्रायः प्रजा से कोई सीधा सम्बन्ध न था। भूमि प्रशासन सम्बन्धी प्रथाएँ वे ही थीं जो प्राचीन काल से चली आ रही थीं। राज्य दरबार में कर्मचारियों के गुट होते थे जो सदैव एक दूसरे के विरुद्ध षड़यन्त्र रचते रहते थे। इन राज्यों का इतिहास आलस्य, अयोग्यता पक्षपात और भ्रष्टाचार की कहानी है। कहीं कहीं विशेष रूप से गुजरात, बङ्गाल और बहमनी राज्य में कला और साहित्य की मूल्यवान कृतियों का निरूपण हुआ।

इंडो-मुस्लिम कला और साहित्य

अधिकतर दिल्ली सुल्तान अयोग्य सिद्ध हुए। जो योग्य थे उन में से भी सभी पक्षपात के दोष से पाक न थे। यही बात उस काल के अन्य मुस्लिम शासकों पर लागू होती है। फिर भी कला और साहित्य की दृष्टि से यह काल भारत के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस काल में एक नई कला शैली ने जन्म लिया जिसे इंडो-मुस्लिम कला का नाम दिया जाता है।

इस कला का वास्तविक रूप दिल्ली की अपेक्षा प्रान्तीय राजधानियों में अधिक स्पष्टरूप से दिखाई देता है। जौनपुर के सुल्तान कला और साहित्य के परिपोषक थे। लाल दरवाज़ा, अतला और जामा मस्जिद कला के अद्भुत नमूने हैं। ग़ौर के भवन और भी विलक्षण हैं जिन में केवल ईटों का प्रयोग किया गया है। हिन्दू कला का प्रभाव इन भवनों की बनावट में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। हुसैन शाह का मकबरा, सुनहरी मस्जिद, तथा अदीना मस्जिद ग़ौर के भवनों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गुजरात में मुस्लिम कला पर जैनियों का प्रभाव पड़ा। अहमद नगर का

शहर गुजरात की नई कला की जीती जागती तस्वीर है। मुहाफिज़ खाँ की मस्जिद गुजरात के सुल्तानों की एक मल्यवान् यादगार है। इन सुल्तानों ने नहरें और कुयें भी बनवाये।

मांडू का छोटा सा राज्य भी अपनी कला प्रियता के लिये प्रसिद्ध था। हिन्डोला महल, रूपमती और बाज़ बहादुर के महल तथा जहाज़ महल देखने से सम्बन्ध रखते हैं। मांडू की जामा मस्जिद और हुशंग शाह का मकबरा भी उच्च कोटि के भवन हैं।

बहमनी सुल्तानों को दुर्ग बनवाने का चाव था परन्तु गुलबर्गा की जामा मस्जिद, दौलताबाद का चान्द मीनार और महमूद गवान का कालिज अद्भुत कृतियाँ हैं जिन्हें ईरानी कलाकरों ने बनाया था।

साहित्य की उन्नति में भी इन राज्यों ने योग दिया। बङ्गाल राज्य की साहित्य प्रियता का हम वर्णन कर आये ह। गुजरात के नरेश भी कला और साहित्य के प्रेमी थे। फारसी के साथ साथ प्रान्तीय भाषाओं में भी काफी साहित्य की रचना हुई।

परिच्छेद २१

मुग़ल कालीन भारत

मुग़ल कौन थे

मुग़ल जिन का दूसरा नाम मंगोल है पहली बार बारहवीं शताब्दी ई० में एकाएक इतिहास के रंग मंच पर आये, और उन्होंने अपने शौर्य और बुद्धि से संसार को चकित कर दिया। चीन, जापान, तिब्बत आदि देशों में प्राचीन काल से इसी नसल के लोग रहते आये हैं किन्तु जिन कबीलों से मुग़लों का सम्बन्ध था वे चीन के उत्तर पूर्व में रहते थे और चीन के "किन" राज्य को खिराज देते थे। वे यायावर थे और घोड़े रखते थे, घोड़ी के दूध और आखेट पर निर्वाह करते थे। एक बार उन की "किन" राज्य से मुठभेड़ हो गई। चीनियों से मुग़लों ने युद्ध विद्या ग्रहण की और बारूद का प्रयोग सीखा। उन्होंने सैनिक रूप धारण कर लिया और वे चीनियों को भी अपनी सेना में भरती करने लगे।

चंगेज़खां और मंगोल साम्राज्य

तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में चंगेज़ खाँ ने मंगोल कबीलों को संगठित किया और किरगीज़ और उज़बकों को परास्त कर अपना मित्र बना लिया। १२१४ ई० में उस ने "किन" राज्य पर आक्रमण किया और चीन की राजधानी पीकिंग पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इस के पश्चात् चीन ने चंगेज़ खाँ का साथ दिया।

चंगेज़ खाँ ने काश़ग़र, खोख़ंद, बाख़ारा और समरकन्द को विजय किया। फिर वह ईरान की ओर बढ़ा। उस ने यूरोप में तहलका मचा दिया। उस की सामरिक चालों को देख कर यूरोप के राजनीतिज्ञ हैरान होते थे।

हम बता आये हैं कि चंगेज़ ख़ाँ ने अल्तमिश के शासन काल में भारत का रुख़ किया था परन्तु गर्मी के उत्ताप और दिल्ली के सुल्तान की चतुराई के कारण वह वापिस लौट गया।

१२२७ ई० में चंगेज़ ख़ाँ की मृत्यु हुई परन्तु उस के योग्य चीनी मन्त्री योलियो चुत्साई ने शासन व्यवस्था को बिगड़ने नहीं दिया। मंगोलों ने रूस, पोलैंड, जर्मनी और मध्य एशिया के कई देशों पर विजय पाई। कुछ समय पश्चात् इस विशाल साम्राज्य के तीन भाग हो गये। मंगोलिया साम्राज्य का शासक मंगू ख़ाँ था, चीनी साम्राज्य का कुबलाय ख़ाँ और ईरान का हलाकू ख़ाँ। मंगू ख़ाँ की मृत्यु पर मंगोलिया भी कुबलाय ख़ाँ के आधीन हो गया। कुबलाय ख़ाँ ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया और हलाकू ख़ाँ ने इस्लाम धर्म। विभिन्न मत होने पर भी इन सम्राटों में मैत्री बनी रही।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी साम्राज्य के पूर्वी भाग में तैमूर ने शक्ति प्राप्त कर ली। वह अपनी माता के पक्ष से चंगेज़ ख़ाँ का वंशज था परन्तु वह खालिस मंगोल न था! उस ने समरकन्द को अपनी राजधानी बनाया और १३६६ ई० में महान खान की पदवी ग्रहण की।

तैमूर

तैमूर पश्चिम की ओर बढ़ा और रूस, तातार, ज्यौरजिया मैसोपोटामिया आदि देशों को विजय करता हुआ १३९८ ई० में भारत पहुँचा।

दिल्ली के सुल्तान महमूद तुग़लक ने उस के आने का समाचार पाया तो वह सिंहासन छोड़ कर भाग गया। तैमूर ने अपने आप को भारत का सम्राट् घोषित किया। उस के सैनिकों ने दिल्ली की लूट मार आरम्भ की। पाँच दिन तक लूट मार और काट-पीट होती रही। दिल्ली की गलियाँ लाशों से भर गईं। तैमूर के

तैमर भारत में

सैनिक यह कुकर्म करते करते थक गये तब कहीं जा कर उन्होंने बस की।

तैमूर ने दिल्ली से प्रस्थान किया और मेरठ, हरिद्वार, जम्मू होता हुआ वापिस लौटा। जहाँ-जहाँ से भी वह गुज़रा उस ने लाशों के अंबार लगा दिये।

तैमूर को खोपड़ियों के बुर्ज बनाने का बड़ा शौक था। एक स्थान पर उस ने सत्तर हज़ार खोपड़ियों का बुर्ज बनवाया।

जैसे हम पहले कह आये हैं मंगोल भारत में आबाद हो गये थे और तेरहवीं शताब्दी में उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। चंगेज़ खाँ के पौत्र उग़लू खाँ ने जलालुद्दीन की पुत्री से विवाह किया था। मंगोल अपने आप को भारत के निवासी कहने में गर्व अनुभव करते थे। उन्होंने अन्य जातियों में विवाह सम्बन्ध स्थापित किये थे और वे प्रायः मुग़ल कहलाते थे। पश्चिमी भारत में उन्होंने शासन सत्ता भी प्राप्त कर ली थी परन्तु जिस काल का वर्णन हम इस परिच्छेद में कर रहे हैं उस का आरम्भ बाबर के भारत में आगमन से हुआ।

बाबर

बाबर को गर्व था कि वह चंगेज़ खाँ और तैमूर के वंश की उपज है। उस का पालन पोषण समरकन्द में हुआ था जो साहित्य और कला का केन्द्र बन चुका था। यूरोपीय शासकों और पादरियों के सन्ताप से डर कर अनेक कलाकार और विद्वान मंगोल राजधानी में आकर रहने लगे थे। बाबर अपने आप का चुग़ताई कहता था।

इस समय यूरोप की स्थिति भी बदल रही था। वहाँ रेनेसांस अर्थात् पुनर्जागरण काल का प्रादुर्भाव हो रहा था। बाबर को भी पुनर्जागरण की उपज कहा जाता है।

यूरोप में पुनर्जागरण और बाबर

बाबर निश्चय ही सुशिक्षित और शिष्ट व्यक्ति था परन्तु यह कहना कि वह भारत में जागृति के नये युग का प्रवर्तक बना अत्योक्ति है।

बाबर ने दिल्ली पर १५२६ ई० में अधिकार प्राप्त किया। उस समय तक यूरोप विज्ञान के पथ पर काफ़ी आगे बढ़ चुका था।

यूरोप की जागृति के कई कारण थे। रोजर बेकन ने स्वतन्त्र रूप से तेरहवीं शताब्दी में उन तथ्यों की खोज की जिन का उल्लेख अरस्तू ने तीसरी शती ई० पूर्व में किया था। उस का मन्तव्य था, "प्रकृति के अध्ययन से ही यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। उस का कोई दैवी स्रोत नहीं।" रोजर बेकन ने बारूद का प्रयोग भी किया था।

रोजर बेकन इंग्लैण्ड का विद्वान् था। रेनेसांस का आन्दोलन इटली और जर्मनी में अधिक बलिष्ट था। जर्मनी में मार्टिन लूथर ने इसे धार्मिक रूप दिया। इटली में ब्रूनी, ल्यो नार्डो डा विंसी और गैलीलियो, जिसने दूरेक्ष का आविष्कार किया, वैज्ञानिक रूप से इस युग के प्रभाव में सहायक हुए।

इटली के प्रसिद्ध नगर वैनिस के निवासी मार्को पोलो ने (१२७१—९५ ई०) चीन की यात्रा की और उसके विषय में ऐसी-ऐसी कहानियाँ लोगों को सुनाईं कि यूरोप के साहसी पुरुष चीन जाने के लिये अधीर हो उठे। इसी उत्सुकता के फलस्वरूप कोलम्बस ने १४९२ ई० में अमेरिका की खोज की और वास्को-डा-गामा १४९८ ई० में समुद्र के मार्ग से भारत पहुँचा। ये सब बहुत बड़ी घटनायें थीं जिनका शायद बाबर को बोध भी न था।

बाबर अपने पूर्वजों से कुछ कम अत्याचारी न था। फिर भी जिस राज्य की उसने स्थापना की वह भारत के लिये कई पहलुओं में

हितकर हुआ। कुछ इतिहासकारों का तो यह मत है कि मुग़ल सम्राटों का ध्येय भारत में राष्ट्रीय शासन स्थापित करने का था।

बाबर संसार के कुछ अति योग्य सम्राटों और नरेशों का समकालीन था। ईरान का सम्राट् सुलेमान, इंग्लैंड का नरेश हैनरी अष्टम, फ्रांस का फ्रांसिस प्रथम और जर्मनी का चाल्स पञ्चम लगभग उसी काल में हुए हैं।

मुग़लों का शासन काल

दिल्ली के सुल्तानों के कुशासन को देखते हुये मुग़ल काल स्वर्ण युग प्रतीत होता है। मुग़लों में आपस में सिंहासन प्राप्त करने के लिये अनेक युद्ध हुए किन्तु इन से उनकी राज्य सत्ता में दुर्बलता उत्पन्न नहीं हो पाई। अकबर से औरंगज़ेब तक अर्थात् १५५६ ई० से १७०७ ई० तक मुग़लों का अटूट राज्य रहा। इस दीर्घ काल में भारत पर बाहर से कोई आक्रमण नहीं हुआ। इसलिये इतिहासकारों को आश्चर्य होता है कि मुग़ल यूरोप से भौतिक ज्ञान प्राप्त कर आधुनिकता के प्रवर्तक क्यों नहीं बने।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार मुग़ल उन गुणों से परिपूर्ण थे, जो यूरोप के उन प्रगतिशील शासकों में थे जो पुनर्जागरण के हेतु बने तथापि भारत इतना हीन हो चुका था कि मुग़ल उसे प्रगतिशील देशों की पंक्ति में न ला सके। यह मत स्वीकार करने के लिये हमें भुलाना होगा कि जहाँगीर, शाहजहाँ, और अन्य मुग़ल सम्राटों ने सिंहासन प्राप्त करने के लिये अपने कुटुम्बियों का रक्त बहाया। इस कथन को मिथ्या सिद्ध करना सुगम नहीं कि अकबर ने अपने राज्य को सुगठित और सुरक्षित बनाने के लिये ही राजपूतों से मैत्री स्थापित की थी। अतिशय इतिहासकार उसे योग्य राजनीतिज्ञ कहते हैं, भारतीयों का हितैषी नहीं। इसी प्रकार मुग़ल काल को पुनर्जागरण काल का नाम नहीं देते बल्कि उसे मध्य काल की वृद्धि कहते हैं। यदि ऐसा न होता

तो राणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह और शिवाजी का व्यक्तित्व माननीय प्रतीत न होता । आज भी वे क्रान्तिकारियों के लिये आदर्श कहे जाते हैं। भारतीय जनता मुग़ल राज्य से सन्तुष्ट न थी फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मुग़ल सम्राटों का अपना व्यक्तित्व सराहनीय था और यद्यपि उन्होंने विरसे में प्राचीन भारत की उत्तम प्रथाओं के रूप में मूल्यवान् निधि पाई थी तथापि यह भी कोई तुच्छ बात नहीं कि उन्होंने उसके सहारे एक भव्य प्रासाद खड़ा किया। निश्चय ही मुग़ल शासकों में बाबर का उच्च स्थान है ।

बाबर की भारत विजय

बाबर का पिता शेख मिर्ज़ा फरगना नाम के प्रदेश में राज्य करता था। किन्तु उसकी मृत्यु पर बाबर को अपना देश छोड़ना पड़ा। बाबर उस समय केवल ग्यारह वष का था।

बाबर को अपने कुटुम्बियों से बहुत युद्ध करने पड़े जिन में वह प्रायः पराजित हुआ। उसने कई बार समरकन्द प्राप्त करने की चेष्टा की किन्तु सफल न हुआ। अन्त में ईरान के बादशाह की सहायता से उसने काबुल का राज्य पाया। काबुल का राज्य सुरक्षित न था। बाबर ने पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ के निमन्त्रण को स्वर्ण अवसर समझा और वह सेना लेकर लाहौर आ पहुँचा।

बाबर के पंजाब पहुँचने से पूर्व अफ़ग़ानों ने दौलत खाँ को लाहौर से निकाल दिया। बाबर को अफ़ग़ानों की भारी सेना का सामना करना पड़ा किन्तु उसकी विजय हुई।

लाहौर की विजय से बाबर का बहुत प्रोत्साहन मिला और उसने अगले साल अर्थात् १५२६ ई० में दिल्ली का रुख किया। पानीपत के स्थान पर इब्राहीम लोधी ने बाबर का सामना किया। इब्राहीम की सेना में १०,००,००० सैनिक थे और बाबर की सेना में केवल १२,००० किन्तु उसने ऐसी चतुराई दिखाई कि न केवल इब्राहीम की हार हुई बल्कि वह स्वयं भी खेत रहा। यह युद्ध भारत के इतिहास में बहुत महत्त्व रखता है।

बाबर आगरे तक बढ़ता गया किन्तु आगरा और दिल्ली को विजय कर लेने से वह भारत का सम्राट् न बन सका। दिल्ली और आगरे के आस-पास अनेक राजा थे जिन्होंने बाबर का आधिपत्य स्वीकार न किया।

पूर्व में गंगा पार का भाग दरिया खाँ लोहानी के आधीन था। उसने सम्राट् की पदवी ग्रहण की।

यमुना के पश्चिम के बहुत से स्थान अफ़ग़ानों के आधीन थे। जैसा हम पहिले कह आये हैं, दक्षिण और राजस्थान चिरकाल से स्वतंत्र थे। जो स्थान बाबर ने विजय किये थे उन पर भी उसका पूर्ण अधिकार न था। वहाँ की जनता ने उसे कोई सहयोग न दिया। गर्मी ने बाबर की कठिनाइयों को बहुत बढ़ा दिया और उसके अफ़सरों ने अनुरोध किया कि वे काबुल लौट चलें। बाबर भारत में ठहरने का निश्चय कर चुका था। उसने उन अफ़सरों को काबुल जाने की आज्ञा दे दी जो वहाँ जाना चाहते थे। स्वयं वह भारत में ही रहा।

बाबर की कठिनाई

बाबर के भारत में ठहरने के निश्चय ने उस के शत्रुओं की संख्या में बहुत कमी उत्पन्न की। बहुत से सरदारों और राजाओं ने, जिन्होंने समझा था कि बाबर चंगेज़ खाँ और तैमूर की भाँति लूट मार के पश्चात् लौट जाएगा, उस का आधिपत्य स्वीकार किया। इनकी सहायता से कुछ महीनों में ही बियाना, धौलपुर और ग्वालियर उसके आधीन हो गये। कुछ ऐसे राजा भी थे जिन्होंने अभी तक उसका इस विचार से विरोध न किया था कि वह भी तैमूर की भाँति लूट खसोट करने के पश्चात् लौट जाएगा। उन में से कुछ राजाओं ने उसका विरोध किया।

मेवाड़ में राणा सांगा जो राणा हम्मीरसिंह का वंशज था एक विस्तृत प्रदेश पर शासन कर रहा था। वह दिल्ली

राणा साँगा से युद्ध

राज्य को समाप्त करना चाहता था। जब बाबर दिल्ली की ओर बढ़ा तो साँगा ने बाबर का विरोध नहीं किया किन्तु इब्राहीम की पराजय के पश्चात् साँगा ने अपनी शक्ति बढ़ानी आरम्भ की। उसने कई अन्य राजा अपने साथ मिलाये। महमूद लोधी जो इब्राहीम के वंश से था और मेवात का राजा हसन खाँ राणा साँगा के साथ थे। हसन खाँ की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये बाबर ने उसके पुत्र को जो उसकी क़ैद में था मुक्त कर दिया। इसका उल्टा असर पड़ा। हसन खाँ ने अब खुल्लम खुल्ला बाबर का विरोध किया।

बाबर ने मेवात पर आक्रमण कर दिया। उधर राणा साँगा ने मेवात की सहायता के लिये सेना भेजी। १८ फरवरी १५२७ ई० को सीकरी के स्थान पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ। राणा साँगा के आघात के सामने बाबर की सेना न ठहर सकी।

बाबर की विपत्ति को काबुल के एक ज्योतिषि ने और भी बढ़ा दिया। उसने कहा कि इस युद्ध में बाबर की पराजय निश्चित् है। इस से मुग़लों के दिल टूट गये और बाबर के बहुत से साथी साँगा से जा मिले।

बाबर हताश नहीं हुआ। उसने अपने शेष सैनिकों को प्रोत्साहन दिया। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि इस युद्ध में उसकी जीत हुई तो वह कभी मदिरा का सेवन न करेगा, दाढ़ी रखेगा और सच्चा मुसलमान बनने का प्रयत्न करेगा। सैनिकों को विश्वास दिलाने के लिये सोने चाँदी के सब प्याले उसने दान कर दिये।

युद्ध फिर आरम्भ हुआ। बाबर प्रत्येक सैनिक के पास जाता और उसका उत्साह बढ़ाता। उसने प्राणों की बाज़ी लगाई, आख़िर उसकी जीत हुई।

साल के अन्त तक उसका राज्य गंगा तक फैल गया।

अगले साल बाबर ने चन्देरी के विरुद्ध सेना भेजी। चंदेरी का

चंदेरी का हत्याकाँड

शासक मेदनी राए एक साधारण राजा था। राणा साँगा की पराजय के पश्चात् उस ने बाबर को हाथ दिखाने का निश्चय किया किन्तु उसके पास इतनी सेना न थी कि दिल्ली के सम्राट् का सामना कर सके।

रणक्षेत्र में बाबर ने हृदय वेधक दृश्य देखा। सब राजपूतनियाँ चिता में जल कर मर गईं और सब सैनिकों ने वीर गति पाई।

चंदेरी की विजय के पश्चात् बाबर अवध की ओर बढ़ा जहाँ अफ़ग़ानों का शासन था। उसकी विजय हुई। अफ़ग़ान बंगाल की ओर भाग गए।

रणथम्भोर का दुर्ग जो किसी समय राणा साँगा के आधीन था बाबर के हाथ आ गया। इस से उसका आधिपत्य समस्त राजस्थान पर जम गया। अफ़ग़ानों के भाग जाने के कारण बिहार पर भी बाबर का शासन स्थापित हो गया। उत्तर पूर्वी भारत में केवल बङ्गाल स्वतंत्र रह गया।

बाबर ने बङ्गाल पर चढ़ाई की। बङ्गाल के सम्राट् ने मित्रता का हाथ बढ़ाया जिसे बाबर ने स्वीकार किया।

बाबर की मृत्यु

बाबर का स्वास्थ्य बिगड़ चुका था। बङ्गाल से वापिस आकर वह केवल पंद्रह महीने जीवित रहा।

बाबर की मृत्यु के विषय में एक कहानी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि हुमायूँ को ऐसा रोग लग गया जिस से उसका बचना कठिन था। किसी ने बाबर को सुझाया कि वह कोहनूर हीरा न्योछावर करे तो हुमायूँ अच्छा हो जाएगा। बाबर ने कहा कि उसके पास कोहनूर से भी अधिक मूल्यवान् रत्न है और वह है उसका जीवन। वह अपने जीवन को हुमायूँ पर न्योछावर कर देगा।

बाबर ने ऐसा ही किया। वह हुमायूँ के पास आया और बोला "मैंने हुमायूँ की बीमारी ले ली।"

इस के पश्चात् हुमायूँ अच्छा होता गया और बाबर की दशा बिगड़ती गई।

बाबर ने भारत में केवल चार साल (१५२६-३०ई०) राज्य किया। इतने न्यून काल में उसकी विजय आश्चर्यजनक प्रतीत होती है।

हुमायूँ

बाबर के चार पुत्र थे। सबसे बड़ा हुमायूँ था। कामरान, हिन्दाल और मिर्ज़ा असकरी अन्य पुत्र थे। हुमायूँ ने पिता के साम्राज्य को भाइयों में बाँट दिया जिस से उस की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। उस के सिंहासन पर बैठते ही देश में विद्रोह होने लगे। बंगाल के शासक शेर खाँ ने जो तत्पश्चात् शेरशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ चुनार के स्थान पर हुमायूँ का सामना किया किन्तु उस समय शेर ख़ाँ ने सन्धि करने में ही भलाई देखी। हुमायूँ वापिस आ गया।

शीघ्र ही उसे बहादुर शाह के विरुद्ध, जो गुजरात का सुल्तान था, सेना भेजनी पड़ी।

बहादुरशाह ने भारत में स्थित पुर्तगाली सेना की सहायता ली थी और उस की सेना की कमान रूमी खान के हाथ में थी जो कान्स्टैन्टीनोपल का रहने वाला था और सामरिक विद्या में निपुण था। किन्तु बहादुर शाह हुमायूँ का सामना न कर सका और उसे मैदान छोड़ कर भागना पड़ा।

हुमायूँ गुजरात में ही था कि उसे शेर खाँ के विद्रोह का समाचार मिला। हुमायूँ ने गुजरात अपने भाई मिर्ज़ा असकरी को सौंपा और स्वयं आगरे की ओर बढ़ा। हुमायूँ का गुजरात से जाना था कि उस के सरदारों ने मिर्ज़ा असकरी को सम्राट् बनाने

की योजना बनाई। किन्तु मिर्ज़ा असकरी गुजरात को सम्भाल न सका और बहादुर शाह ने उसे गुजरात से निकाल दिया।

गुजरात का विचार छोड़ कर हुमायूँ शेर खाँ को परास्त करने के लिए पूर्व की ओर बढ़ा। शेर खाँ ने बहुत चतुराई से काम लिया। हुमायूँ के पहुँचने से पूर्व उस ने समस्त बंगाल पर शासन जमा लिया। पहले पहल हुमायूँ को विजय हुई किन्तु वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाने पर शेर खाँ ने हुमायूँ पर आक्रमण किया। वर्षा के कारण सम्राट् का आगरा से सम्बन्ध टूट गया और उस के लिये यह सम्भव न रहा कि वह शेर खाँ का मुकाबला कर सके।

चाम के दाम

शेर खाँ ने सम्राट् की पदवी ग्रहण की और हुमायूँ पर लगातार आक्रमण किये। हुमायूँ जान बचा कर भागा। मार्ग में गंगा नदी पार करनी थी। उस का घोड़ा इतना दुर्बल हो गया था कि वह एक पग भी न चल सका। हुमायूँ गोते खाने लगा। एक भिश्ती ने उसे देख लिया और अपनी मशक पर बिठा कर उसे गंगा पार ले गया। जब हुमायूँ आगरा पहुँचा तो पुरस्कार के रूप में भिश्ती को आधे दिन के लिये सम्राट् नियुक्त किया। कहते हैं कि भिश्ती ने चमड़े की मुद्रा चलाई।

आगरा पहुँच कर भी हुमायूँ को चैन न मिला। उस के भाई कामरान और हिन्दाल ने उस की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर भारत का सम्राट् बनने की योजना बनाई। हुमायूँ इस समस्या को हल करने में लगा था कि शेर खाँ आगरे की ओर बढ़ आया।

शेर खाँ जो अब (१५४० ई०) शेर शाह कहलाने लगा था गंगा तक आ पहुँचा। हुमायूँ सेना लेकर उसे परास्त करने चला। दुर्भाग्य उस के साथ था। हुमायूँ की हार हुई और उस की

सेना को बहुत हानि पहुँची। इस बार भी हुमायूँ गंगा में डूबते-डूबते बचा।

अकबर का जन्म

शेर शाह बढ़ता आ रहा था। आगरा और दिल्ली की रक्षा करना भी हुमायूँ के लिये असम्भव हो गया। वह अपने भाई कामरान के पास लाहौर गया किन्तु कामरान ने उसे शरण नहीं दी। उस ने काबुल का राज्य बचाने के हेतु पञ्जाब शेर शाह को सौंप दिया, और स्वयं काबुल चला गया।

हुमायूँ हताश हो कर सिंध की ओर भागा किन्तु यहाँ उसे और भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कभी एक राजा से सहायता की आशा रखता कभी दूसरे से किन्तु कहीं उस को आश्रय न मिला। वह मरुस्थल की खाक छानता फिरा। इस विपत्ति काल में ही अकबर का जन्म (१५४२ ई०) हुआ।

सिंध का शासक हुसन अर्गुन था। उस ने सम्राट् को निःसहाय देख कर उस पर आक्रमण कर दिया। हुमायूँ को जान के लाले पड़ गए। उस ने हुसैन की मिन्नत की और मुश्किल से कन्धार जाने की आज्ञा प्राप्त की।

हुमायूँ पत्नी और बच्चे को कन्धार में छोड़ कर अपने कुछ साथियों सहित सीस्तान की ओर बढ़ा।

हुमायूँ ईरान में

सीस्तान ईरान साम्राज्य में था। वहाँ के गवर्नर ने हुमायूँ का बहुत सम्मान किया और उसे हिरात भेज दिया। प्रत्येक स्थान पर हुमायूँ का समारोह से स्वागत हुआ। ईरान के सम्राट् ने भी उसे बहुत मान दिया किन्तु हुमायूँ सुन्नी था, ईरान का सम्राट् शिया। इस मत भेद के कारण हुमायूँ और ईरान के सम्राट् में मैत्री स्थापित न हो सकी। धीरे-धीरे हुमायूँ का अपमान होने लगा और

उस के लिये ईरान छोड़ना अनिवार्य हो गया। सम्राट् से सहायता ले कर वह अपना राज्य वापिस लेना चाहता था। इस लिए उसे सब अपमान सहन करना पड़ा।

ईरान के सम्राट् ने उसे १४,००० घुड़सवार दिये। इन की सहायता से हुमायूँ ने अपने भाइयों को परास्त किया। कन्धार और काबुल पर उस का शासन स्थापित हो गया। हुमायूँ ने बचन दिया था कि वह कन्धार इरान के सम्राट् को सौंप देगा किन्तु ईरान के सम्राट् की मृत्यु हो गई। हुमायूँ अपने बचन से विमुख हो गया। उस ने बहुत से ईरानियों का वध कर दिया, शेष भाग कर बचे और खाली हाथ अपने देश लौटे।

हुमायूँ ने काबुल, कन्धार और बदखशाँ पर शासन जमा लिया किन्तु उसके भाई विद्रोह करते रहे और उसे लगातार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कामरान ने विशेष रूप से उस का विरोध किया। दंड के रूप में हुमायूँ ने कामरान की आँखें निकलवा दीं।

कामरान की मृत्यु के पश्चात् हुमायूँ की कठिनाई बहुत कुछ कम हुई। शेरशाह की मृत्यु हो चुकी थी और उस के उत्तराधिकारियों की दुर्बलता के कारण दिल्ली का राज्य पाँच भागों में बट गया था। हुमायूँ को भारत पर आक्रमण करने का उत्साह हुआ। जनवरी १५५५ ई० में उस ने लाहौर पर आक्रमण किया और फिर दिल्ली और आगरे पर।

दिल्ली विजय के छः महीने पश्चात् अर्थात् १५५६ ई० में हुमायूँ की मृत्यु हो गई।

शेर शाह सूरी

शेर शाह का बचपन का नाम फरीद था। उसके वंशज ग़ौर के रहने वाले थे किन्तु उसका पिता हसन भारतीय कहलाने में गर्व अनुभव करता था। सहसराम के स्थान पर उसकी जागीर थी। किसी कारण फरीद बाल्यकाल में ही घर से भाग

गया और जौनपुर दरबार में नौकर हो गया। अपनी वीरता के कारण वहाँ उसने शेर खाँ नाम पाया।

शेर खाँ को विद्याध्ययन का बहुत शौक था। उसने अपने परिश्रम से शीघ्र ही कला और साहित्य में दक्षता प्राप्त कर ली। जौनपुर दरबार में वह प्रतिष्ठित व्यक्ति समझा जाने लगा।

होते होते उसकी ख्याति दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोधी तक पहुँची और उसने शेरखाँ को अपने दरबार में बुला लिया।

पिता की मृत्यु पर शेर खाँ सहसराम का जागीरदार नियुक्त हुआ।

१५२६ ई० में बाबर के हाथों सुल्तान इब्राहीम की पराजय के पश्चात् शेर खाँ बङ्गाल के शासक मुहम्मद शाह लोहानी के दरबार में रहने लगा। शीघ्र ही मुहम्मद शाह लोहानी उस से रुष्ट हो गया और उसकी जागीर छीन ली। शेर खाँ ने सेना एकत्रित की और मुहम्मद शाह लोहानी के इलाके पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये।

बाबर शेर खाँ की वीरता से बहुत प्रभावित हुआ और उसने चंदेरी का दुर्ग उसको सौंप दिया। मुहम्मद शाह लोहानी की मृत्यु के पश्चात् शेर खाँ ने चतुराई से उसकी पत्नी की सहानुभूति प्राप्त कर ली और बिहार पर अधिकार जमा लिया।

शेर खाँ अपनी शक्ति बढ़ाता गया। जब हुमायूँ सिंहासन पर बैठा तो शेरशाह को दिल्ली के सम्राट् का सामना करने का साहस हुआ। हुमायूँ गुजरात को परास्त करने में लगा हुआ था। शेर खाँ ने सुगम ही बङ्गाल और बिहार पर अपना शासन जमा लिया।

उस ने १५३९ ई० में चौसा और १५४० ई० में कन्नौज के स्थान पर हुमायूँ को परास्त किया। सिंहासन पर बैठते ही शेरशाह ने पंजाब पर अधिकार जमा लिया, अगले साल मालवा और सिन्ध पर। उसने जोधपुर पर चढ़ाई की किन्तु सफलता प्राप्त न हुई।

चितौड़ को प्राप्त कर वह कालिंजर का घेरा डाले हुए था कि बारूद में आग लग गई और वहीं उसका अन्त हो गया।

शासन प्रबन्ध

शेरशाह ने अपने पाँच साला (१५४०–४५ ई०) शासन काल में ही बहुत महत्त्व पूर्ण काम किया।

उसने समस्त साम्राज्य को ४७ प्रान्तों में विभक्त किया। प्रत्येक प्रान्त को परगनों में बाँटा और हर परगने और प्रान्त का प्रबन्ध करने के लिए योग्य और विश्वसनीय कर्मचारी नियुक्त किये।

भूमि का प्रबन्ध नए सिरे से किया। इस कार्य में उसकी सहायता राजा टोडर मल ने की जो तत्पश्चात् अकबर का मन्त्री रहा। लगान भूमि की उपज का चौथा भाग होता था जो अनाज या अन्य उपज के रूप में दिया जा सकता था। लगान उगाहने के लिये जो कर्मचारी रखे जाते थे उन्हें हुक्म था कि कृषकों को किसी प्रकार कष्ट न पहुँचे। कृषकों को समय पड़ने पर ऋण भी दिया जाता था।

यदि कोई नम्बरदार अपराधी का पता न लगा सकता था तो उसे दण्ड दिया जाता था। किसी यात्री को मार्ग में हानि पहुँचने पर भी ऐसा ही होता था। इस प्रथा के फलस्वरूप चारों ओर शान्ति और सुशासन था।

स्थान स्थान पर सम्राट् के गुप्तचर थे, वे सम्राट् को प्रत्येक घटना की सूचना देते थे। शेरशाह ने ऐसे व्यक्ति भी नियुक्त कर रखे थे जो प्रजा के दुःख निवारण और शिक्षा आदि का प्रबन्ध करते थे। शेरशाह अपने न्याय के लिए प्रसिद्ध था।

सर्वहित के काम

शेरशाह ने कई सड़कें बनवाईं जिन पर छाया दार वृक्ष लगे थे और कुएँ और सराएँ बनी थीं। चार सड़कें प्रमुख थीं। एक सड़क अटक से ढाका तक, दूसरी आगरे से बुरहानपुर तक, तीसरी आगरे से जोधपुर तक, चौथी लाहौर से मुल्तान तक।

शेरशाह ने दिल्ली और रोहतास के स्थान पर नए नगर बसाए । सहसराम में उसने अपना मकबरा स्वयं बनवाया जो अति सुन्दर है ।

शेरशाह ने डाक का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर रखा था । हरकारे डाक ले जाते थे । थोड़े थोड़े अन्तर पर डाक की चौकियाँ थीं । प्रायः यह डाक सरकारी होती थी ।

उसने विशुद्ध चान्दी के सिक्के बनवाये जिससे व्यापार में बहुत वृद्धि हुई ।

उस ने बहुत से स्कूल और कालिज खोले । दरिद्र छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाती थी । कई लंगर चलते थे जहाँ भोजन मुफ़्त मिलता था । उन पर प्रति वर्ष एक लाख अस्सी हज़ार स्वर्ण मुद्रा व्यय होती थी ।

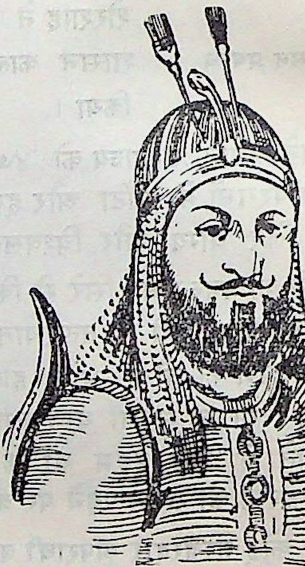

शेरशाह सूरी

शेरशाह ने घोड़ों पर छाप लगाने और सैनिकों की पहचान लिखने की रीति चलाई । १५०००० घुड़सवार और २५००० पैदल उसकी सेना में थे । सैनिकों को योग्यता के अनुसार नकद वेतन दिया जाता था । सैनिकों की भरती का काम सम्राट् स्वयं करता था । सेना को आदेश था कि किसी प्रकार खेती को हानि न पहुँचाएँ ।

शेरशाह की धारणा थी कि राजा का जीवन श्रम का जीवन है । भोग विलास का नहीं । वह निश्चय ही अकबर का अग्रसर था ।

शेरशाह के उत्तराधिकारी

शेरशाह के उत्तराधिकारी योग्य न थे इसीलिये हुमायूँ ने सुगमता से ही विजय पाई ।

परीच्छेद २२

मुग़ल साम्राज्य का यौवन काल

अकबर

हुमायूँ की मृत्यु के समय अकबर की आयु केवल १३ वर्ष की थी उस समय वह पंजाब में था और ईंटों के जिस चबूतरे पर उसका अभिषेक हुआ उसके अतिरिक्त वह भारत के किसी भाग को भी अपना न कह सकता था।

जिस समय अकबर सिंहासन पर बैठा पंजाब में शेरशाह के उत्तराधिकारी सिकन्दर सूरी का ज़ोर था। पूर्व में आदिल शाह सिंहासन प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा था। काबुल में अकबर का सौतेला भाई मिर्ज़ा हकीम स्वतन्त्र हो बैठा था।

अकबर के अतिरिक्त दिल्ली सिंहासन का मुख्य दावेदार शेरशाह के भतीजे मुहम्द शाह आदिल का सेनापति हेमू था। दिल्ली और आगरे पर उसने सुगमता से अधिकार प्राप्त कर लिया और वह एक महान् सेना लेकर अकबर को भारत से भगाने के लिये पंजाब की ओर बढ़ा।

अकबर के अहलकारों ने उसे अनुमति दी कि वह भारत का विचार छोड़ काबुल का रुख करे। बैरम खाँ, जो अकबर का मामा, शिक्षक और सेनापति था, इसके पक्ष में न था। अकबर भी काबुल की ओर प्रस्थान करने को कायरता समझता था। उसने सेना को दिल्ली की ओर कूच करने का हुक्म दिया।

हेमू और अकबर की पानीपत के ऐतिहासिक रणक्षेत्र में मुठभेड़ हुई जहाँ तीस वर्ष पूर्व बाबर ने इब्राहीम लोधी पर विजय पाई थी। हेमू अकबर के आक्रमण की ताब न ला सका और आखिर मारा गया।

बैरम खाँ

बैरम खाँ एक योग्य सेनापति था और उसने अकबर के लिये बाबर के राज्य का बहुत सा भाग पुनः विजय किया किन्तु उसके परिपोषण में रहना अकबर को अखरता था। उसके अहलकार भी बैरम खाँ से ईर्ष्या रखते थे और उसके विरुद्ध अकबर के कान भरते थे। अकबर और बैरम खाँ में खिचाव उत्पन्न हो गया। जब सम्राट् का रुख बदला देखा तो बैरम खाँ ने विद्रोह कर दिया किन्तु मात खाई। सम्राट् ने उसे क्षमा प्रदान की और मक्का जाने का आदेश दिया। बैरम खाँ अभी मार्ग में ही था कि किसी ने उसकी हत्या कर दी।

१८ वर्ष की आयु में अकबर ने बैरम खाँ से छुटकारा प्राप्त किया और शासन प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया।

राजपूतों से मित्रता

अकबर ने अनुभव किया कि उसकी सफलता का एक ही उपाय है। अर्थात् उसे भारतीय शासकों से मैत्री स्थापित करनी चाहिये। इस अभिप्राय से उस ने राजपूतों से विवाह सम्बन्ध स्थापित किये और उन्हें अपने दरबार में उच्च पद प्रदान किये। राजा मान सिंह अकबर का विश्वास पात्र था। सम्राट् ने उसे पहले काबुल का और फिर बंगाल का राज्यपाल नियुक्त किया। टोडर मल की गणना, अकबर के नवरत्नों में होती है। बीरबल जिस के व्यंग अब भी सर्वप्रिय हैं सम्राट् का घनिष्ट मित्र और मन्त्री था।

अकबर ने जातीयता या साम्प्रदायिकता के भेद को कभी स्वीकार नहीं किया। एक नया मत दीनेइलाही चला कर उस ने अपनी विशाल हृदयता का प्रमाण दिया। उस ने किसी को इस नए मत में प्रवेश करने के लिये बाध्य नहीं किया।

अकबर ने हिन्दुओं पर से जजिया हटाया और उन्हें तीर्थाटन की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की। कहा जाता है कि वह हिन्दुओं की

भाँति सूर्य का उपासक था और प्रायः उन्हीं की भाँति वस्त्र पहनता था। मांसाहार को वह पाप समझता था।

राणा प्रताप

जैसा हम पहले कह आए हैं राजस्थान में मेवाड़ एक प्रसिद्ध राज्य था जिस के शासक राणा सांगा ने बाबर को सम्रांगण में ललकारा था । उस के उत्तराधिकारी राणा प्रताप ने अकबर की अधीनता स्वीकर करने से इन्कार कर दिया ।

राणा प्रताप की राजधानी चितौड़ में थी। राणा को चितौड़ छोड़ना पड़ा किन्तु सम्राट् और उस के सहायक राजपूत राजाओं के निरन्तर आघात सहन करने पर भी वह अटल रहा । उस की और उस के साथियों की वीरता और धैर्य ने शत्रुओं को भी प्रभावित किया और जब हल्दी घाटी के स्थान पर राणा की हार हुई तो राजा मान सिंह और अन्य राजपूत सरदार अपनी विजय पर गर्व करने की अपेक्षा लज्जित थे। राणा प्रताप राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गया । उस के प्राणपण के आगे अकबर को झुकना पड़ा। राणा प्रताप ने कई दुर्ग जो वह खो बैठा था पुनः प्राप्त किये।

साम्राज्य का प्रसार

मेवाड़ को छोड़ कर शेष सभी राजपूत अकबर को सर्वोपरि मानते थे । उन की सहायता से अकबर ने काश्मीर, काबुल, कन्धार, जौनपुर, बंगाल, गोंडवाना, गुजरात और सिन्ध विजय किये और शीघ्र ही समस्त उत्तरी भारत पर उस का साम्राज्य स्थापित हो गया।

अकबर ने दक्षिण को विजय करने का प्रयास किया। दक्षिण में एक विचित्र प्रथा स्थापित हो गई थी। वहाँ भिन्न-भिन्न राज्यों के शासक आपस में लड़ते भिड़ते रहते थे किन्तु यदि दिल्ली राज्य की ओर स आक्रमण होता तो वे सब मिल कर एक हो जाते थे। इस लिये जब अकबर ने अहमद नगर पर आक्रमण किया तो उस को मुंह की खानी पड़ी।

कुछ समय पश्चात् दक्षिणी राज्यों में फूट पड़ गई और अहमदनगर को अकेले ही अकबर का मुकाबला करना पड़ा। उस समय वहाँ की शासक चाँद बीबी थी। उस ने डट कर मुकाबला किया। अन्ततः चांद बीबी की मृत्यु पर अहमद नगर को हार माननी पड़ी। इस के पश्चात् बीजापुर और गोलकन्डा के सुल्तानों ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

अकबर का राज्य प्रबंध

अकबर यद्यपि लिखा पढ़ा न था फिर भी वह एक अति योग्य शासक था और उस में योग्य व्यक्तियों को परखने की क्षमता थी। अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी, राजा टोडर मल, बीरबल, मान सिंह और अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने अकबर को स्थाई और सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना करने में सहायता दी। राजा टोडर मल ने भूमि कर के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण सुधार किये। बहुत सीमा तक अकबर ने शेर शाह सूरी का अनुकरण किया। अकबर के राज्य का वृतान्त अबुलफ़ज़ल द्वारा रचित आइने अकबरी में मिलता है।

अकबर ने आगरे के निकट एक नई राजधानी बनाई जिसे फतहपुर सीकरी कहते हैं। यह इस समय भी एक रमणीय स्थान है।

अकबर ने १५५६ से १६०५ ई० तक राज्य किया।

जहाँगीर

अकबर के तीन पुत्रों में से केवल सलीम ही जीवित था। वह बिना किसी विरोध के १६०५ ई० में सिंहासन पर बैठा और जहाँगीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह पिता की भाँति समझदार न था किन्तु उस की बेग़म नूर जहाँ ने शासन के पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिये और वह योग्यता से राज्य कार्य चलाती रही।

नूर जहाँ जिस का नाम मेहरउलनिसा था एक ईरानी सौदागर ग़यास की बेटी थी। वह अकबर का अहलकार था। सलीम की

इस ईरानी ललना से अनायास भेंट हो गई और वह तुरन्त उस के प्रेम में फंस गया। किन्तु नूर जहाँ के पिता ने उस का विवाह बर्दवान के राज्यपाल शेर अफ़ग़न से कर दिया। जहाँगीर सिंहासन पर बैठा और धोखे से उस ने शेर अफ़ग़न का वध करा दिया। नूर जहाँ सम्राट् के महलों में लाई गई किन्तु उस ने छः वर्ष तक सम्राट् को पास तक न आने दिया। अन्ततः जहाँगीर के प्रेम ने उस का मन जीत लिया।

जहाँ नूर जहाँ एक योग्य शासक थी वहाँ वह सम्राट् और उस के पुत्र खुर्रम में जो तत्पश्चात् शाह जहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ झगड़े का कारण बनी। खुर्रम ने विद्रोह किया। खुर्रम को परास्त करने के लिये नूर जहाँ ने महाबत खाँ को भेजा। महाबत खाँ सफल हुआ किन्तु अब नूर जहाँ को भय हुआ कि कहीं महावत खाँ सिंहासन प्राप्त करने की चेष्टा न करे। वह शहरयार को जिस के साथ उस की पुत्री का विवाह हुआ था सिंहासन पर बिठाना चाहती थी।

महाबत खाँ ने सम्राट् को बन्दी बना लिया किन्तु नूर जहाँ चतुराई से उसे मुक्त कराने में सफल हुई। महाबत खाँ दक्षिण की ओर भाग गया।

बङ्गाल के राज्यपाल उसमान ने भी विद्रोह किया किन्तु पूर्व इसके कि जहाँगीर की सेना वहाँ पहुँचती उसमान की मृत्यु हो गई। दक्षिण में मलिक अम्बर ने अहमद नगर पर अधिकार जमा लिया और सम्राट् को खिराज देना बन्द कर दिया। कंधार पूर्णतः जहाँगीर के हाथों से निकल गया।

जहाँगीर के शासन काल के विषय में इंग्लैंड के राजदूत सर टामस रो ने जो उस के दरबार में कई साल तक रहा विस्तार से लिखा है। उसके कथनानुसार जहाँगीर का शासन प्रबन्ध अच्छा न था। सड़कें डाकुओं से पटी पड़ी थीं और यद्यपि सम्राट् अपने

शासन प्रबन्ध

न्याय के लिये प्रसिद्ध था फिर भी अपराध बहुत होते थे। सम्राट् की ओर से निषेध होने पर भी अपराधियों को कड़े दण्ड दिये जाते थे। मदिरा का निषेध होने पर भी उस का सेवन व्यापक था और सम्राट् प्रायः नशे में चूर रहता था।

जहाँगीर की मृत्यु

जहाँगीर का स्वास्थ्य मदिरा सेवन के बाहुल्य के कारण बहुत बिगड़ गया था। वह दमे का रोगी था। वह काश्मीर जा रहा था कि लाहौर के स्थान पर १६२७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। नूरजहाँ ने उसका एक अति सुन्दर मकबरा बनवाया जो अब भी लाहौर की शोभा बढ़ाता है। नूर जहाँ जहाँगीर के पश्चात् लगभग बीस साल तक जीवित रही और शाह जहाँ ने उसको बहुत मान दिया किन्तु शासन कार्य में उसका कोई हाथ न था।

शाह जहाँ

शाहजहाँ १६२७ ई० में सिंहासन पर बैठा। वैभव और कला प्रेम के विचार से वह मुग़ल सम्राटों में सर्वश्रेष्ठ गिना जाता है। अपनी प्रिय पत्नी मुमताज़ महल की याद में बनाया हुआ ताज महल उसकी अद्भुत स्मृति है। मुमताज़ नूरजहाँ के भाई आसफ़ खां की पुत्री थी।

शाह जहाँ एक योद्धा के रूप में

जहाँगीर ने विरसे में एक सुदृढ़ और विस्तृत साम्राज्य प्राप्त किया था किन्तु वह पिता की भाँति नीतिज्ञ, वीर और समझदार न था। उस के शासन संभालते ही साम्राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोह होने लगे।

सम्राट् स्वयं भोग विलास में व्यस्त था। इन विद्रोहों को दमन करने का काम उसने शाहज़ादा खुर्रम (शाह जहाँ) के सुपुर्द किया। चित्तौड़ जो मेवाड़ की राजधानी था अकबर ने विजय किया

चित्तौड़

था किन्तु उसके जीवन काल में ही राणा प्रताप ने मेवाड़ का बहुत सा भाग पुनः प्राप्त कर लिया था। अकबर की मृत्यु के पश्चात् राणा प्रताप के पुत्र राणा अमर सिंह ने चित्तौड़ जीत लिया और स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

खुर्रम ने उस पर चढ़ाई की और अपने शौर्य और अपने विक्रम से राणा को ऐसा प्रभावित किया कि उसने खिराज देना स्वीकार कर लिया। राणा खुर्रम का विश्वास पात्र बन गया और उसने खुर्रम के सम्राट् बनने के पश्चात् उसकी बहुत सहायता की।

काँगड़ा

अकबर ने उत्तर पश्चिमी भारत में अफ़गानिस्तान, काश्मीर, पंजाब आदि को विजय किया था किन्तु बार बार प्रयत्न करने पर भी वह काँगड़े के दुर्ग पर अधिकार प्राप्त न कर सका था। खुर्रम ने १६२० ई० में काँगड़े पर आक्रमण किया और विजय पाई। इस से खुरम की वीरता की धाक बैठ गई।

अहमद नगर

चाँद बीबी का उसके किसी अहलकार ने वध कर दिया। उसके पश्चात् मलिक अम्बर जो एक दास था अहमद नगर के सिंहासन पर बैठा। उसने स्वतंत्रता की घोषणा की। खुर्रम ने मलिक अम्बर को परास्त किया और अहमद नगर मुग़ल साम्राज्य का भाग बन गया।

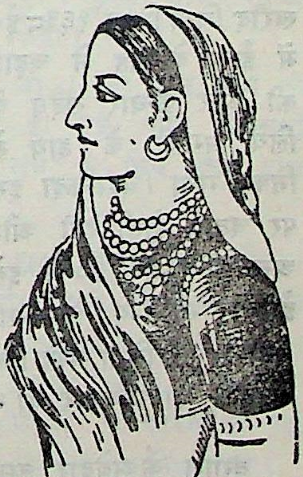

चाँद बीबी

अफ़गानिस्तान के तीन विभिन्न प्राकृतिक भाग हैं काबुल, कन्धार और बल्ख़। काबुल पर मुग़लों का पूर्ण अधिकार था किन्तु कन्धार जो पश्चिमी संसार और भारत के

अफ़गानिस्तान

व्यापारिक मार्ग पर स्थित था ईरान और भारत के सम्राटों के बीच झगड़े का कारण बना रहा। ऐसे ही बल्ख़ उज़बक और मुग़ल सत्ता-परीक्षण का क्षेत्र बना रहा। अकबर ने अफ़गानिस्तान पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था किन्तु फिर भी कन्धार और बल्ख़ पूर्णत: उसके आधीन न हुए थे। उसके राजपूत सरदारों ने ईरानियों और उज़बकों से निरन्तर युद्ध किये।

जहाँगीर खुर्रम को कंधार भेजना चाहता था जिस पर ईरानियों ने अधिकार स्थापित कर लिया था किन्तु उस ने बहाना कर दिया और कंधार मुग़लों के हाथ से निकल गया। अपने राज्य काल में शाहजहाँ ने कंधार के ईरानी राज्यपाल अली-मर्दन ख़ाँ से मित्रता स्थापित कर कन्धार उससे ख़रीद लिया किन्तु १६३८ ई० में ईरान के शाह ने चढ़ाई की और कन्धार सदैव के लिये मुग़लों के हाथ से निकल गया। यदा-कदा इस पर चढ़ाई होती रही और अन्त में १६५३ ई० में इसे ईरानी साम्राज्य का भाग स्वीकार कर लिया गया। बल्ख़ पर १६४७ ई० में मध्य एशिया के उज़बकों का अधिकार हो गया।

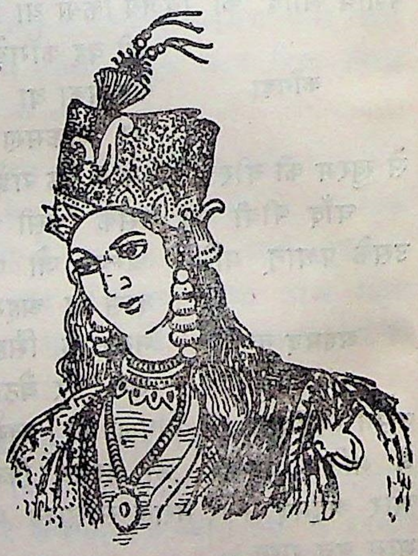

नूरजहाँ

बंगाल के सूबेदार उसमान ने विद्रोह किया किन्तु पूर्व इस के

बंगाल

कि खुर्रम सेना ले कर वहाँ पहुँचता उसमान की मृत्यु हो गई। बंगाल में हुगली के स्थान पर पुर्तगालियों ने कोठी बना ली थी। शाहजहाँ उन से रुष्ट हो गया और उसने उन्हें हुगली से निकल जाने पर विवश किया।

शाहजहाँ की शासन प्राप्ति

अकबर के काल में ही जहाँगीर के पुत्र खुसरो को सिंहासन पर बिठाने की याजना बनाई गई थी किन्तु अकबर ने जहाँगीर को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। यह षड्यन्त्र खुसरो के लिये अभिशाप बन गया और १६२२ ई० में उस की दुखद मृत्यु का कारण हुआ। खुर्रम का प्रतिद्वन्द्वी अब केवल शहरयार था। नूरजहाँ उसे सम्राट् बनाना चाहती थी किन्तु नूरजहाँ के भाई आसफ़ख़ाँ ने उस की आँखें निकलवा दीं और वह इस जहान से कूच कर गया।

जहाँगीर की मृत्यु के समय खुर्रम दक्षिण में था किन्तु आसफ़ ख़ाँ ने समय पर खुर्रम को सूचना भेज दी। खुर्रम आगरे पहुँचा और उस ने रक्त-पात द्वारा सिंहासन प्राप्त किया।

शाहजहाँ के पुत्र

विधना प्रतिषोध के लिये उत्कट थी। इस दुष्ट कार्य की प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई, और शाहजहाँ के पुत्रों में सिंहासन के लिए संघर्ष होने लगा।

शाहजहाँ के चार पुत्र थे। दारा, शुजा, मुराद और औरंगजेब। दारा शाहजहाँ का चहेता था और अपने पूर्वजों की भाँति भारतीय संस्कृति से प्रेम करता था और राजपूतों से मित्रता के पक्ष में था। उस में एक बहुत बड़ा दोष था कि वह किसी के परामर्श को स्वीकार न करता था। इस हठीलेपन के कारण ही उस के बहुत से शत्रु बन गये थे। वह प्रायः पिता के पास रहता था।

शुजा बंगाल का राज्यपाल था। वह शूरवीर था किन्तु जहाँगीर की भाँति विलास-प्रिय होने के कारण उस की वीरता मिट्टी में मिल गई।

मुराद गुजरात का राज्यपाल था। वह मदिरा का भक्त होने के साथ-साथ चतुराई और छल कपट से वंचित था।

औरंगज़ेब संयमी और चतुर था और उस का जीवन विशुद्ध था। विलासता उसे छू भी न पाई थी। वह शरीयत का पक्का था और सुन्नी मत को मानता था। वह दक्षिण का राज्यपाल था। उस समय शाहजहाँ के दरबार में सुन्नी सरदारों का प्रभुत्व था।

पिता के जीवनकाल में ही औरंगज़ेब ने अपने भाइयों को परास्त कर उन की हत्या कर दी और शाहजहाँ को आगरे के दुर्ग में नज़र बन्द कर दिया (१६५८ ई०)।

औरंगज़ेब और शाहजहाँ के सम्बन्ध

औरंगज़ेब का व्यवहार शाहजहाँ के लिए विचित्र नहीं था क्योंकि वह स्वयं पिता के प्रति वैसा ही व्यवहार दिखा चुका था।

औरंगज़ेब ने शाहजहाँ के लिये दक्षिण को परास्त किया था। गोलकंडा, बीजापुर ने पूर्णतः शाहजहाँ को सर्वोपरि स्वीकार किया था। औरङ्गज़ेब दक्षिण में शान्ति स्थापित करने में सफल हुआ था। उस ने अफ़गानिस्तान में भी वीरता दिखाई थी।

वह पिता का आदर करता था और यद्यपि सम्राट् को उस ने बन्दी बना लिया था फिर भी उसे सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं। शाहजहाँ के जीवन के अन्तिम समय पिता-पुत्र में मेल हो गया और औरंगज़ेब ने पिता से क्षमा याचना की। यह मत सर्वस्वीकृत नहीं है।

औरंगजेब काल के पूर्वार्ध अर्थात् १६५८ ई० से १६८२ ई० में

औरंगज़ेब और उस के उत्तराधिकारी

उस के सेनापति मीर जुमला ने जो किसी समय गोलकुण्डा का जौहरी और मंत्री था कूच बिहार को विजय किया। वह आसाम को भी जीतना चाहता था किन्तु वर्षा और मलेरिया ने उसे सफल न होने दिया। वह रुग्ण हो गया और उस की मृत्यु हो गई।

मीर जुमला के पश्चात् शाइस्ता खाँ जो औरंगजेब का मामा था बंगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ। इस पदवी पर उस ने तीस वर्ष रह कर चिटगाँव विजय किया। १६८८ ई० में उस ने अंग्रेज़ों को कलकत्ता से निकाल दिया और समुद्री डाकुओं को दमन किया।

बुन्देल-खण्ड के चम्पतराय और छत्रसाल, मथुरा के जाट, सतनामी, यूसुफज़ई और अफ़ीदी, राजपूत, सिख, मराठे और अन्य जातियाँ औरंगजेब के विरुद्ध उठ खड़ी हुई। सामायिक रूप से औरंगज़ेब इन आन्दोलनों को दमन करने में सफल हुआ किन्तु अन्ततः इन में से कई जातियाँ स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफल हुईं। अपने काल का उत्तरार्ध औरंगजेब ने दक्षिण में बिताया। उस ने बीजापुर को १६८६ ई० में और गोलकण्डा को १६८७ ई० में मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित किया।

मराठों के साथ निरन्तर युद्ध करने पर भी वे पूर्ण रूप से परास्त न हो पाए। बीजापुर और गोलकण्डा की विजय से भी औरंगजेब को विशेष लाभ नहीं हुआ क्योंकि इन के अस्तित्व से दक्षिण की शक्तियों में समतुलन था, इन राज्यों के समाप्त हो जाने से न केवल दक्षिण का वातावरण अशान्त हो गया बल्कि यह इलाका सुगमता से मराठों के हाथ आ गया।

औरंगजेब की मृत्यु पर उस के पुत्रों में सिंहासन के लिये युद्ध मुग़ल प्रथा के अनुसार हुआ। उन में से बहादुर शाह जिसे औरंगजेब स्वयं

अन्तिम मुग़ल

सम्राट बनाना चाहता था और जो बंगाल का राज्यपाल रह चुका था, सिंहासन पर बैठा। सैय्यद भाई जिन्होंने छल द्वारा राज्य दरबार में बहुत शक्ति प्राप्त कर ली थी उस की हत्या के जिम्मेदार थे। उन्होंने दूसरे बादशाह जहाँदार शाह का और तीसरे बादशाह फरुखसियर का भी वध कराया। तत्पश्चात् वे स्वयं हनन कर दिए गए। इन तीन सम्राटों ने क्रमशः १७१२, १७१३ और १७१९ ई० तक राज्य किया।

मुहम्मद शाह रंगीला जो सैय्यद भाइयों की सहायता से सिंहासन पर बैठा राज्य-कार्य की ओर से अत्यन्त बेसुध था। १७३९ ई० में नादिरशाह के आक्रमण ने मुग़ल-सत्ता पर ऐसा आघात किया कि। उसका रहा-सहा जीवन भी समाप्त हो गया। मुग़ल सम्राट् अब एक छायामात्र व्यक्ति रह गया।

शाह आलम द्वितीय जिसने १७५९ से १८०६ ई० तक सिंहासन संभाले रखा कभी मराठों की आधीनता में रहा कभी अपने सुबेदारों की अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों ने उसे कठपुतली बना दिया और उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं रहा। अंग्रेज़ों ने उस से बंगाल, बिहार और उड़ीसा में दिवानी के अधिकार प्राप्त कर लिये।

१८५७ ई० में अंग्रेज़ों ने यह छाया भी समाप्त कर दी और, बहादुर शाह द्वितीय के साथ चग़ताई वंश का अंत हो गया।

मुग़ल सम्राट्

मुग़ल सम्राट् १५२६ ई० से १८५७ ई० तक राज्य करते रहे किन्तु वास्तव में बाबर, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की गणना ही महान् मुग़लों में होती है। शेर शाह सूरी भी यद्यपि वह पठान था बहुत सी मुग़ल प्रथाओं का प्रवर्तक होने के कारण इन्हीं की पंक्ति में सम्मिलित किया जा सकता है।

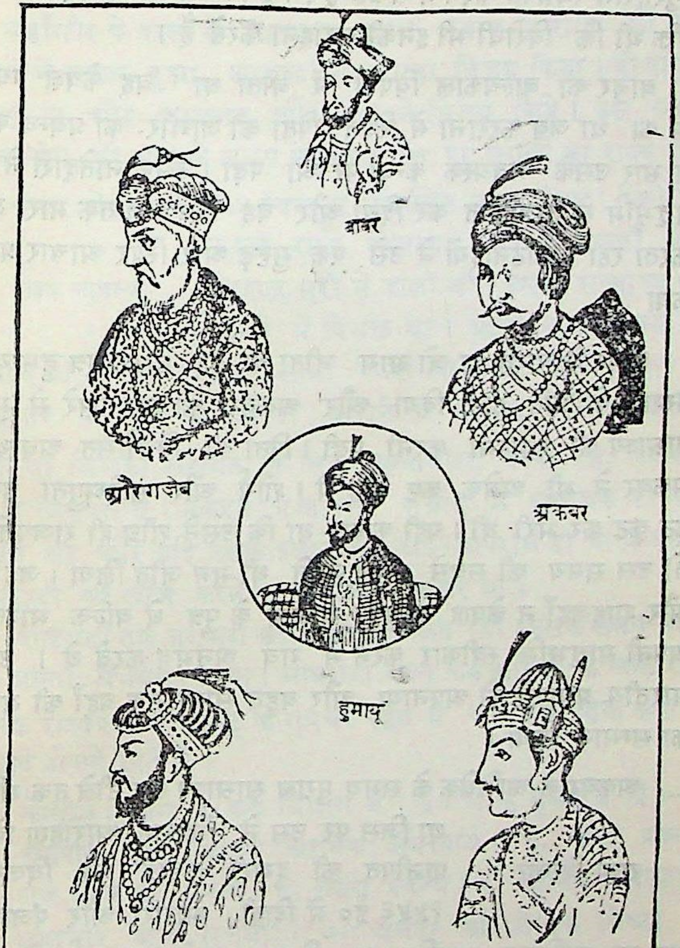
बाबर
औरंगज़ेब
अकबर
हुमायू
शाहजहाँ
जहागीर

मुगल-सम्राट्

बाबर और अकबर को प्रकृति ने विशेष प्रकार का व्यक्तित्व प्रदान किया था जिसके कारण वे शीघ्र ही सर्वप्रिय बन गए और देश में

अनुशासन स्थापित करने में सफल हुए । इनके आनन में वह आकर्षण शक्ति थी कि विरोधी भी इनकी सराहना करते हैं ।

बाबर का बाल्यकाल विपदा में बीता था । वह केवल ग्यारह वर्ष का था जब फरग़ना में स्थित पिता की जागीर का प्रबन्ध करने का भार उसके अवयस्क कन्धों पर आ पड़ा । उसके नातेदारों ने उसे मातृभूमि से निर्वासित कर दिया और वह चिरकाल तक मारा मारा फिरता रहा । कठिनाइयों ने उसे एक सुदृढ़ और स्थिर आचार प्रदान किया ।

बाबर ने भारत का जो भाग जीता था वह उसके पुत्र हुमायूँ ने शेरशाह के प्रति हार दिया। और अकबर को नए सिरे से मुग़ल साम्राज्य की स्थापना करनी पड़ी । पिता की निर्वासित अवस्था में अकबर ने भी अनेक कष्ट सहे थे । शौर्य और सहिष्णुता उस में कूट कूट कर भरी थी । यही कारण था कि उसने शीघ्र ही राजपूतों का जो उस समय की सबसे प्रबल जाति थी मन जीत लिया । जहाँगीर और शाहजहाँ न केवल राजपूत रानियों के पुत्र थे बल्कि भारत को अपनी मातृभूमि स्वीकार करने में गर्व अनुभव करते थे । उन्होंने भारतीय प्रथाओं को अपनाया और बहुत सीमा तक यहाँ की मर्यादा का सम्मान किया ।

अकबर के अभिषेक के समय मुग़ल साम्राज्य उस टीले तक सीमित था जिस पर उस ने सिंहासन आरोहण किया ।

राज्य विस्तार

पानीपत की दूसरी लड़ाई की विजय ने १५५६ ई० में दिल्ली, आगरा और पंजाब पर उस का अधिकार स्थापित कर दिया । अगले चार वर्ष में उस ने ग्वालियार, अजमेर और जौनपुर प्राप्त कर लिए! मालवा १६६२ ई० में उसके आधीन हुआ । काश्मीर, गुजरात, गोंडवाना, बङ्गाल १५७६ ई० तक मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित करलिये गए । १५९१ ई० में उड़ीसा और १५९५ ई० में काबुल और कन्धार विजय हुए । अहमद

नगर १६०० ई० में अकबर के साम्राज्य का भाग बना।

जहाँगीर के काल में शहज़ादा खुर्रम मेवाड़ के राणा को मित्र बनाने में सफल हुआ, शाहजहाँ ने कांगड़ा विजय किया। बीजापुर, गोलकुंडा और अराकान औरंगज़ेब ने विजय किये। इस प्रकार औरंगज़ेब की मृत्यु के समय समस्त भारत पर मुग़लों का राज्य था।

राज्य व्यवस्था

बाबर कोई स्थाई राज्य व्यवस्था संचालित न कर पाया। जिसे हम मुग़ल राज्य व्यवस्था कहते हैं उसकी नींव शेरशाह सूरी ने डाली थी। उसका साम्राज्य ४७ प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त में कई कई परगने थे। परगने की सीमा जनसंख्या और भूमि उपज के अनुसार निर्धारित की गई थी। परगने का हाकिम सैनिक अफ़सर होता था जिसकी सहायता के लिये न्यायाधीश, कोषाध्यक्ष, पटवारी आदि नियुक्त थे। मुकद्दम प्रजा और सम्राट् में संयोजक का काम करता था और यदि उसके इलाके में कोई अपराध हो जाता था तो अपराधी की ख़ोज करने का दायित्व उस पर था।

शाहजहाँ तक लगभग यही पद्धति प्रचलित रही। उसके समय भारत २० प्रान्तों में विभक्त था। साधारण राज्य कर्मचारियों के अतिरिक्त प्रत्येक राज्यकेन्द्र में सम्राट् के गुप्तचर रहते थे जो उसे क्षण क्षण का संवाद भेजते रहते थे।

केन्द्रीय शासन के कई विभाग थे। इन में से मुख्य ये थे :—
१. व्यापार, कृषि आदि आर्थिक समस्यायें। २. सेना प्रबन्ध। ३. राज महल का प्रबन्ध। ४. न्याय प्रबन्ध। ५. धार्मिक समस्यायें। ६. समाचार और सूचना। ७. जनता की नैतिक निष्ठा की समस्यायें। ८. टकसाल इत्यादि। एक विभाग प्रायः एक मन्त्री के सुपुर्द होता था जिसका कार-व्यवहार सम्राट् के आदेश पर आधारित था। सम्राट् राज्य कार्य पर कड़ी दृष्टि रखता था।

प्रान्तों में प्रायः सम्राट के नातेदार या विश्वास पात्र सूबेदार

नियुक्त होते थे। यही कारण था कि वे स्वच्छन्द हो जाते थे और विद्रोह कर देते थे। स्वभाविकत: भी वे स्वेच्छारी होते थे। प्रान्तीय सेना पर सूबेदार का पूर्ण अधिकार था।

सेना

मुग़लों की सेना में पैदल, तोपची, घुड़सवार, हाथी और ऊँटवान विभिन्न भाग थे। इन के अतिरिक्त जलसेना थी जो एक पृथक् भाग समझा जाता था। मुग़ल सेना का अनुमान लगाना सुगम नहीं क्यों कि केन्द्रीय सेना के अतिरिक्त सूबेदारों, सामांतों, मनसबदारों और सम्राट् के कुटुम्बियों के आधीन भी बहुत से सैनिक थे जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर ही बुलाया जाता था। अकबर के काल में केन्द्रीय सेना की शक्ति दो लाख के लगभग थी। शाहजहाँ की सेना की संख्या पाँच लाख के लगभग थी। अब्दुल रहीम लाहौरी ने इसका व्योरा इस प्रकार दिया है, घुड़सवार दो लाख, पैदल चालीस सहस्र। वे घुड़सवार जो सरदारों और राजकुमारों के आधीन थे, एक लाख पचासी सहस्र, मनसबदारों की सेना आठ सहस्र, शिष्ट और स्वच्छन्द सैनिक सात सहस्र, समस्त सेना चार लाख चालीस सहस्र। ये आंकड़े प्रमाणिक नहीं कहे जा सकते।

कृषि और उद्योग

भारत में अनेक वस्तुएँ बनती थीं। मुगल सम्राट् उद्योगों को बहुत प्रोत्साहन देते थे। लाहौर, आगरा, फतहपुर सीकरी, अहमदाबाद, गुजरात, बुरहानपुर और काश्मीर में दिन प्रतिदिन के व्यवहार की वस्तुएँ बनाने के कारखाने थे जिनका बना हुआ माल राज्यकर्मचारी विशेष रूप से प्रयोग में लाते थे।

जलयान बनाने के कारखाने लाहौर, काश्मीर, अलाहाबाद में थे। इन पर सरकारी नियन्त्रण था।

इनके अतिरिक्त व्यक्तिगत कारखाने थे जिन का माल देश में

भी खपता था और विदेशों में भी जाता था।

भूमि सिंचन के लिये शेरशाह ने नहरों का प्रबन्ध भी किया था। मुग़ल सम्राटों ने शेरशाह के कार्य की वृद्धि की।

आवश्यकता पड़ने पर कृषकों को राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। भूमिकर की मात्रा भूमि की दशा के अनुसार निर्धारित की जाती थी और किसी अवस्था में भी कर अनुचित न होता था। कर उगाहने वालों को शिष्ट व्यवहार करने का आदेश था।

कर नीति

अकबर के शासनकाल में राजा टोडरमल ने ज़मीन का जो बन्दोबस्त किया वह भारतीय इतिहास की महत्त्व पूर्ण घटना है। इस से पूर्व एक साधारण ग्रामीण का केन्द्रीय सरकार से कोई सम्बन्ध न होता था। अब केन्द्रीय राज्य की कुशलता और अयोग्यता से वह प्रभावित होने लगा।

शाहजहाँ के काल में मुर्शदकुली खाँ ने भूमि कर सम्बन्धी नियमों को संयत किया। उसने भूमि की तीन श्रेणियाँ बनाई। एक वह भूमि जिस का आधार केवल वर्षा पर था। इस की आधी फसल कर के रूप में ली जाती थी। जिस भूमि की कुएँ या नहरों द्वारा सिंचाई होती थी वहाँ उपज का एक तिहाई। जिस भूमि में फल उगाये जाते थे उस पर कर की मात्रा प्रायः और भी कम होती थी।

गाथा प्रसिद्ध है कि किसी गाँव से एक साल अधिक कर प्राप्त हुआ। शाहजहां ने इस वृद्धि का कारण पूछा। बताया गया कि नदी ने कुछ भूमि छोड़ दी है जिसके कारण गाँव से कर-आय बढ़ गई है। सम्राट् को रोष आया और उसने कहा, "यदि भगवान् ने गाँव वालों के जीवन निर्वाह के लिये अधिक भूमि प्रदान की है तो तुम्हारा क्या अधिकार है कि उस पर कर वसूल करो।"

प्रत्येक गाँव में ऐसी भूमि होती थी जिस पर कोई कर वसूल नहीं किया जाता था। शिक्षा संस्थाओं या धार्मिक स्थानों को जो भूमि अर्पित होती थी उस से कर न लिया जाता था।

भूमिकर के अतिरिक्त व्यापार, जायदाद बेचने और विशेष स्थानों की यात्रा पर कर लगाया जाता था। सरकारी फीस और सम्राट् को भेंट किये हुए नज़राने राज्य की आय का भारी स्रोत थे।

आर्थिक दशा

शाहजहाँ के काल में कई दुर्भिक्ष पड़े जिन के कारण गुजरात को विशेष रूप मे बहुत संकट सहन करने पड़े। दक्षिण में भी भीषण अकाल पड़ा। आगरे के निकटवर्ती गाँव में भी लोग कई साल तक अकालों से पीड़ित रहे। राज्य की ओर से लोगों की सहायता की गई किन्तु संकट इतना भारी था कि यह सहायता समुद्र में एक बून्द जल डालने के समान था।

कई यूरोपीय पर्यटकों ने इस युग का वर्णन किया है। इन में से बर्नियर, ट्रेवर्नियर, मैनूची, पीटर मण्डी, मैन्डलसलो प्रमुख हैं। लोगों की आर्थिक स्थिति के विषय में इन्होंने परस्पर विरोधी मत प्रकट किये हैं। यह सब ने कहा है कि प्रायः बिना वेतन किसी से काम न लिया जाता था। आय कम थी किन्तु भाव सस्ते होने के कारण मुग़ल काल का साधारण श्रमिक आज कल के श्रमिक से अच्छा भोजन करता था।

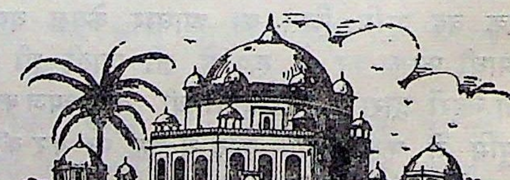

शेरशाह का मकबरा

अकबर के काल में गेहूँ १२ दाम की एक मन आती थी, आटा २२ दाम का एक मन, चावल ११० दाम प्रति मन और खाँड ३ दाम प्रति सेर। अन्य वस्तुएँ भी इसी प्रकार सस्ती थीं।

साधारण मज़दूर दिन में दो दाम कमाता था और कारीगर सात दाम। उस समय मन ५५.५ पौंड का होता था। रुपये में चालीस दाम होते थे और शिलिंगों के परिमाण में रुपये का मूल्य २ शिलिंग ४ पैंस होता था।

शेरशाह और अकबर ने जागीरदारी की प्रथा समाप्त कर दी थीं किन्तु अकबर के उत्तराधिकारियों ने इसे फिर प्रचलित किया जिस का परिणाम जनता के लिये अच्छा नहीं हुआ।

वास्तु कला

मुग़ल कालीन भारत का वैभव वास्तु कला के विलक्षण नमूनों में मिलता है जो आज भी स्थित हैं। शेरशाह सूरी का मकबरा, बीजापुर का गोल गुम्बद, गुजरात की जुमा मस्जिद स्पष्टत: भारतीय प्रभाव दर्शाती हैं। मुग़लों की कला में भी राजपूत शैली का प्रभाव दिखाई देता है, विशेष रूप से जहाँगीर और शाह जहाँ द्वारा आयोजित स्मारकों में।

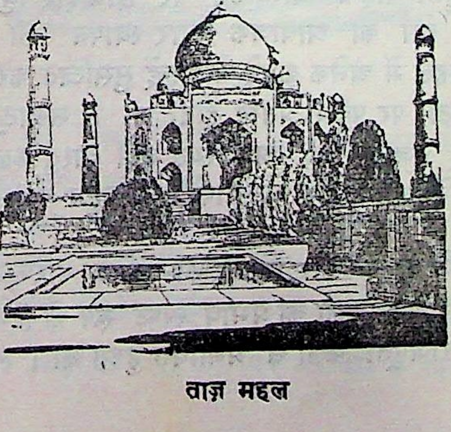

ताज़ महल

मुग़ल कला के उदाहरण दिल्ली, आगरा और फतह पुर सीकरी में विशेष रूप से दिखाई देते हैं। जिस समय बाबर ने सीकरी में पदार्पण किया वह दर्शनीय नगर न था किन्तु उस की कला प्रियता रंग लाई । बाबर द्वारा रचित भवन और बाग बगीचों को देख कर उस की पुत्री गुल बदन बेग़म काबुल को भूल गई।

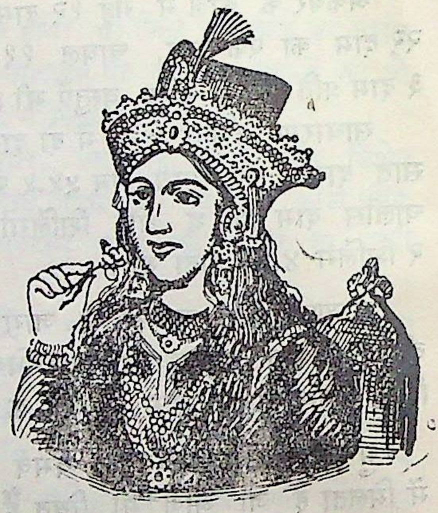

मुमताज़ महल

अकबर ने सीकरी को चार चाँद लगाए। गुजरात की विजय के पश्चात् अकबर ने इस नगर को फतेहपुर सीकरी का नाम दिया। "सीकरी के वृहद् द्वार, भव्य मस्जिदें, सर-सरिताएँ, नहरें और बाग, विशाल और सुन्दर भवन, मनोरंजन के स्थान, पाठशालाएँ और मठ, खुली सड़कें और उन पर छायादार वृक्ष यह सिद्ध करते हैं कि उस का आयोजक नगर स्थापन की कला में दक्ष था।" राज महल में अनेक कमरे थे जिन्हें सुसज्जित करने में लावण्य कला पराकाष्टा पर पहुँची प्रतीत होती थी। सम्राट् का इबादत खाना अर्थात् पूजागृह जो अब स्थित नहीं वास्तु कला का अनुपम नमूना था। विदेशी पर्यटकों ने सीकरी की बहुत प्रशंसा की है।

शाहजहाँ ने बाबर और अकबर की कला को परिष्कृत किया। उस की शैली पर राजपूत कला का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जहाँगीर भी राजपूती कला से प्रभावित हुआ था। लाहौर का दुर्ग

इस का उदाहरण है। दिल्ली शाहजहाँ की कला प्रियता का ज्वलन्त उदाहरण है।

दिल्ली के किले में स्थित मोती मस्जिद सादगी की प्रतिमा है। ताज महल में यह सादगी सीमा को पार कर गई है। ताज मानों एक अनमोल मोती है। यह उस ने अपनी प्रिय पत्नी मुमताज़ महल की स्मृति में बनाया था। (१६३१ से १६५३ ई०)।

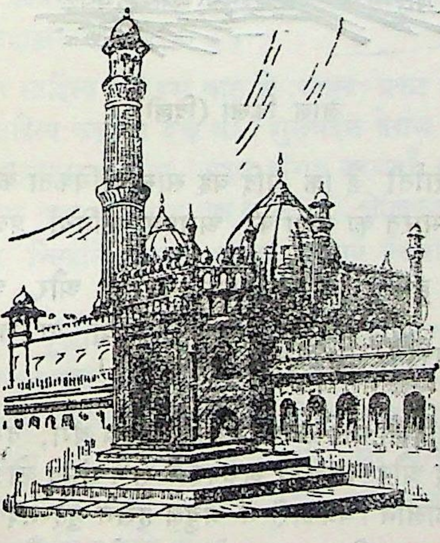

जामा मस्ज़िद

शाहजहाँ को बाग़ लगवाने का विशेषरूप से शौक था। इन बाग़ों को प्रायः शालामार बाग़ कहते हैं। श्रीनगर और लाहौर में ये बाग़ अब तक इन नगरों की शोभा को बढ़ाते हैं। दिल्ली में यह बाग़ नष्ट हो गया है। इन्हें आयोजित करने में कन्धार के भूतपूर्व ईरानी सूबेदार अली मर्दान का हाथ था।

औरंगजेब कला का शत्रु था फिर भी उस के काल की बनी हुई

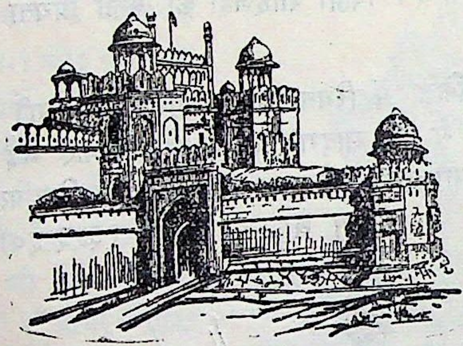

लाल किला (दिल्ली)

मस्जिदें यह दर्शाती हैं कि यदि वह साम्प्रदायिकता के अन्धकार में नहीं फंसता तो भारत को कला की अनुपम कृतियाँ प्रदान करता ।

संगीत और चित्रकारी

ईरान से हुमायूँ अपने साथ तबरेज़ और अबुसमाद दो प्रसिद्ध चित्रकार लाया था जिन्होंने अकबर को दीक्षा प्रदान की ।

इनके अतिरिक्त मीर सय्यद अली, फरुख बेग, दसवन्त, सांवल दास, तारा चन्द और जगन्नाथ अकबर के राज संसद को विभूषित करते थे । जहाँगीर कालीन चित्रकारों में अबुल हसन मुहम्मद मुराद, आका रज़ा, उस्ताद मन्सूर, बिशन दास, केशव, मनोहर, और माधव प्रसिद्ध कलाकार थे । फकीरुल्ला, मीर हाशिम, अनूप चित्र, और चित्रामणि सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के चित्रकार थे ।

संगीत और नृत्य का इन सम्राटों को वहुत शौक था और उनके दरबार में अनेक नर-नारी इन कलाओं का प्रदर्शन करते थे । अकबर कालीन संगीताचार्य तानसेन और बैजनाथ जो बैजू वावरा के नाम से प्रसिद्ध है आज तक अतुल्य माने जाते हैं ।

साहित्य

फारसी तथा संस्कृत और वे भाषाएँ जो सुल्तानों के काल में उन्नत हुई, मुग़ल सम्राटों के परिपोषण की आभारी हैं। रामायण, महाभारत, उपनिषद्, अथर्ववेद और लीलावती का गणित का अनुपम ग्रन्थ का फारसी में अनुवाद हुआ। फारसी लेखकों में ग़िजाली और फैज़ी दो महान् कवि हुए हैं। खानखाना, अबुलफ़ज़ल, अबुल हमीद लाहौरी, मुहम्मद हाशिम, तथा सुजान सिंह की गणना साहित्यक इतिहासकारों में होती है।

मुग़लों का साहित्य प्रेम इस बात से स्पष्टतः प्रकट होता है कि कई शहज़ादियाँ साहित्य कला में दक्ष थीं। गुलवदन बेगम जिसने हुमायूँ नामा लिखा, सुल्ताना सलीमा, महम अंगा, नूरजहाँ, मुमताज़ महल, जहाँ नारा बेगम तथा ज़ेबुनिसा उच्च कोटि की लेखिकाएँ थीं। बाबर और जहाँगीर जिन्होंने अपनी जीवन कथाएँ लिखीं उच्च श्रेणी के लेखक थे।

हिन्दी में अब्दुर्रहीम खान खाना की रहीम सतसई और तुलसी कृत रामचरित मानस अद्भुत ग्रन्थ माने जाते हैं। टोडर मल, भगवान् दास, मानसिंह, बीरबल आदि न केवल तलवार के धनी थे बल्कि शिष्ट कवि भी थे। करण, नरहरि, सूर दास, नन्द दास, विट्ठल दास, परमानन्द दास, कुम्भन दास और रसखान सोलहवीं शताब्दी के अन्य प्रसिद्ध कवि थे।

तुलसी दास, केशव दास, सुन्दर और भूषण सत्रहवीं शताब्दी में हुए हैं।

बङ्गाली साहित्य में रघुनन्दन, काशीनाथ दास, घनाराम, कंकन चक्रवर्ती और राम प्रसाद ने मूल्यवान् वृद्धि की। राम दास, तुकाराम, वमन, महीपति, म्यूर पंडित, सुर्जन राय खत्री, भीमसेन और ईश्वर दास नागर इस युग के मराठी साहित्यक थे। शेख़ मुहम्मद जो मराठी का संत कवि गिना जाता है सोलहवीं शताब्दी की उपज था।

भारत की अन्य भाषाओं ने भी सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में बहुत उन्नति की।

विज्ञान

यह खेद का विषय है कि समृद्ध, शक्तिशाली और प्रगति शील होते हुए भी मुग़ल काल में भारत ने वैज्ञानिक उन्नति नहीं की। अकबर को अन्वेषण में रुचि थी। उसने ऐसा यन्त्र निर्माण किया था जिस से एक साथ सोलह बन्दूकें साफ हो सकती थीं। गुलाब की सुरभि निकालने का श्रेय नूरजहाँ को है किन्तु इस के अतिरिक्त कोई महत्त्व का अन्वेषण इस युग में नहीं हुआ। मुद्रण की ओर मुग़ल सम्राटों की उदासीनता अक्षम्य है।

विदेशीपर्यटक

मुग़ल कालीन भारत का वर्णन कई विदेशी पर्यटकों ने दिया है। अकबर के पास इंग्लैण्ड की महारानी अलीज़ेबथ का दूत जौन मिल्डेन महारानी का संदेश ले कर आया था। पुर्तगाल के जैसुएट पादरी मोंसरेट तथा जेवियर भी उस के दरबार में रहते थे। उस का अपना दूत गोआ में रहता था जो उस समय पुर्तगालियों के आधीन था। ईरान और कान्स्टैन्टीनोपल से मुग़लों के घनिष्ट सम्बन्ध थे।

फिच जो इंग्लैण्ड का रहने वाला था १५८५ ई० में यात्रा के हेतु भारत आया। उस ने लिखा है कि ग्रामों में भी घर बहुत सुन्दर और हवादार हैं, सड़कें और गलियाँ बहुत खुली हैं।

सर टामस रो जो इंग्लैण्ड के जेम्ज़ प्रथम का दूत था १६१५ से १६१६ ई० तक भारत में रहा। विलयम हाकिंस भी अंग्रेज़ यात्री था। उस ने लिखा है कि जब कभी सम्राट् राजधानी से बाहर जाता है तो उसके साथ इतने व्यक्ति और इतना सामान होता है कि उसका पड़ाव परिधि में लन्दन नगर से बड़ा होता है। हाकिंस ने जहाँगीर से सूरत में व्यापार केन्द्र स्थापित करने की आज्ञा प्राप्त की थी।

जीन बैटिस्टे टैवर्नियर जो फ्रांस का जौहरी था चिरकाल शाहजहाँ

के दरबार में रहा । उसने शाहजहाँ की निधि के आंकड़े दिये हैं। उसने लिखा है कि सम्राट् के पास सात अनमोल सिंहासन हैं। मयूर सिंहासन की जिस पर एक करोड़ रुपया व्यय हुआ था टैवर्नियर ने विशेष रूप से प्रशंसा की है । फ्रांस का चिकित्सक बर्नियर १६५६ से १६६८ ई० तक भारत में रहा। उस ने लिखा है कि संसार के सब देशों से घूम घुमा कर सोना चान्दी भारत में आ कर लोप हो जाता है। चीज़ों के दाम बहुत कम हैं।

१६२६ ई० में डच व्यापारी पालसेअर्ट भारत आया। उस ने लिखा है कि प्रान्तीय शासन व्यवस्था सन्तोष जनक नहीं। सर टामस रो ने भी मज़दूरों और कृषकों की स्थिति के विषय में खेद प्रकट किया है। उस ने लिखा है कि व्यापारी राज्य कर्मचारियों की दया पर निर्भर है। वे चाहें तो क्षण भर में उनकी सालों की कमाई छीन कर ले जाएँ । राज्य कर्मचारियों के अत्याचार के विरुद्ध वे किसी से शिकायत नहीं कर सकते। गौ हत्या का निषेध है।

बङ्गाल और गुजरात की निधि का सभी ने वर्णन किया है। बङ्गाल में रेशम और रुई का कपड़ा बनता था। वहाँ खांड भी बनाई जाती थी। ये पदार्थ विदेशों में जाते थे। इटली के यात्री निकोलो मैनुक्की ने लिखा है कि बङ्गाल में निधि प्रवेश के सैंकड़ों द्वार हैं किन्तु बाहर निकलने का एक भी नहीं।

राष्ट्रीय ऐक्य अथवा जातीयता

भारत में एक बार आ जाने पर मुग़ल सम्राटों ने इसे अपनी मातृभूमि स्वीकार किया । अकबर ने राजपूतों से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर भारतीयों को प्रोत्साहन दिया कि वे भी अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित कर एक संयुक्त भारतीय जाति की स्थापना करें। राजपूतों को मुग़लों के समान राज्यपद प्रदान कर अकबर ने जहाँ कौटुम्बिक विद्रोह दमन करने के साधन जुटाये और अपनी राज्य सत्ता सुदृढ़ की वहाँ इस प्रक्रिया से नई प्रथा

स्थापित हो गई जिस से देश-विदेशीय भेद भाव उत्पन्न नही होने पाये। सम्राट् का व्यक्तित्व एक आदरणीय संस्था बन गया जिसने राष्ट्रीय संयोजक का काम किया। हिन्दी द्वारा परामर्श का सरल माध्यम प्राप्त हुआ।

जहाँ मुग़ल कालीन सम्राटों ने राष्ट्रीय ऐक्य स्थापित करने की चेष्टा की वहाँ भारतीय साहित्यक भी इसके प्रवर्तक बने। गुरु नानक, रामानन्द, कबीर, एकनाथ, और महाराष्ट्र के अनेक कवि इस ऐक्य के प्रसव में सहायक हुए। उन्होंने अन्तर्जातीय सामंजस्य की ओर मूल्यवान् काम किया। फिर भी भारत के लोगों ने एक जाति का रूप धारण नहीं किया क्योंकि औरंगज़ेब ने अपने पूर्वजों के काम को मिट्टी में मिला दिया। उसकी साम्प्रदायिकता ने विष का काम किया और भारत की सामाजिक और राजनैतिक देह को ऐसा रोग लगा कि उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज़ों ने भारत को उसी के धन और उसी की मानव शक्ति से सुगमता से जीत लिया।

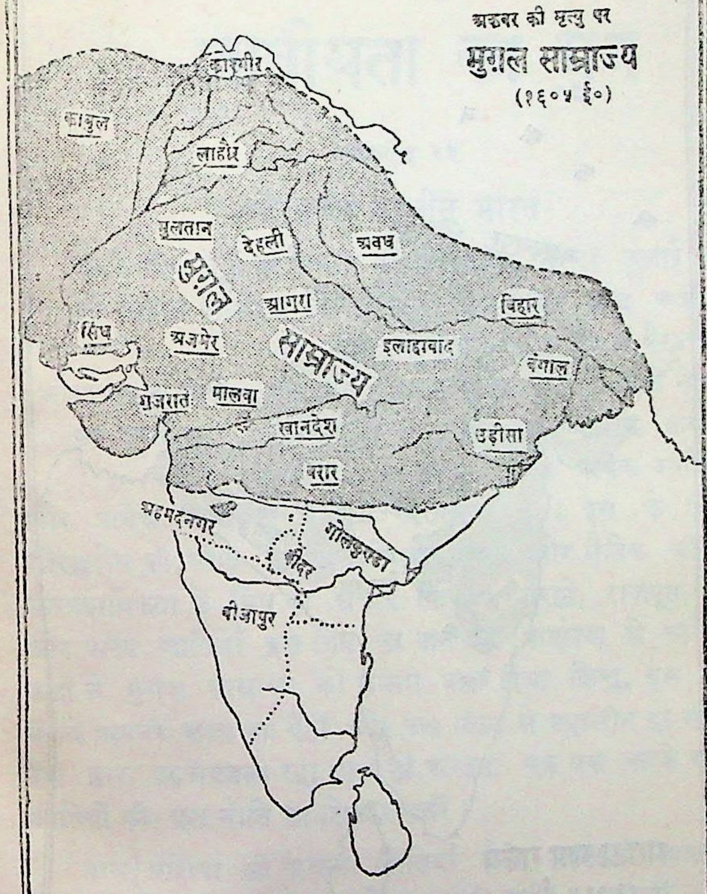
काश्मीर
काबुल
लाहौर
मुलतान
देहली
अवध
मुग़ल
आगरा
बिहार
सिंध
अजमेर
साम्राज्य
इलाहाबाद
बंगाल
गुजरात
मालवा
खानदेश
उड़ीसा
बरार
अहमदनगर
गोलकुण्डा
बीदर
बीजापुर

अकबर की मृत्यु पर
मुग़ल साम्राज्य
(१६०५ ई०)

अकबर के सूबे (१) काबुल (२) लाहौर (३) मुलतान (४) देहली (५) आगरा। (६) अवध (७) इलाहाबाद (८) अजमेर (९) गुजरात (१०) मालवा (११) बिहार (१२) बंगाल (१३) खानदेश (१४) बरार (१५) उड़ीसा (१६) सिंध (१७) काश्मीर (१८) अहमद नगर (थोड़ा भाग)

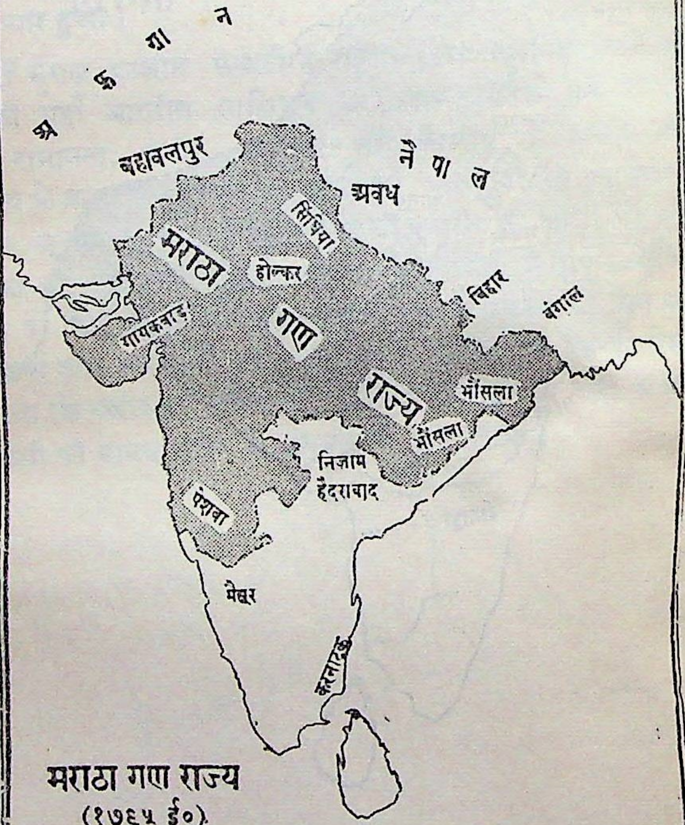
अफगान
बहावलपुर
नैपाल
अवध
सिंधिया
मराठा
होल्कर
गण
राज्य
बिहार
बंगाल
गायकवाड़
भौंसला
भौंसला
निज़ाम
हैदराबाद
पेशवा
मैसूर
करनाटक

मराठा गण राज्य
(१७६५ ई०)

जातीयता का युग

परिच्छेद २३

औरङ्गज़ेब कालीन भारत

औरङ्गज़ेब का सिंहासन आरोहण

अपने विरोधियों को समाप्त कर औरंगजेब ने २१ जुलाई १६५८ ई० को सिंहासन आरोहण किया, और भारत का काल चक्र पीछे की ओर चल पड़ा। १६४८ ई० में वैस्टफैलिया की सन्धि द्वारा यूरोप की जातियों ने अपने साम्प्रदायिक झगड़ों को समाप्त कर यह स्वीकार कर लिया था कि प्रत्येक व्यक्ति को और प्रत्येक जाति को धार्मिक स्वतन्त्रता है। इस के विपरीत औरङ्गजेब की नीति ने भारत के सामाजिक और नैतिक जीवन में साम्प्रदायिकता के विष का संचार किया। मराठे, राजपूत, सिख और अन्य जातियाँ इस विष का पान कर प्राणपण से उठीं और उन्हों ने मुग़ल साम्राज्य को समाप्त कर दिया किन्तु, इस प्रयास में वे अपनी सत्ता खो बैठीं और उस संकट से उदासीन हो गईं जो देश द्वार पर मण्डला रहा था। वे अन्ततः एक एक करके यूरोपीय जातियों की कूट नीति का शिकार बनीं।

यूरोपीय जातियों का उत्थान

मध्य एशिया की यायावर जातियाँ जैसे भारत में आती रही वैसे ही वे यूरोप में भी प्रवेश करती रहीं। दसवीं शताब्दी में यूरोप में कई नई जातियाँ आ बसीं जिन्हें सामूहिक रूप से कैल्टिक जातियाँ कहते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी ई० यूरोप के इतिहास में नये राज्यों के संस्थापन की शती थी। प्रायः

इन सभी जातियों ने ईसाई धर्म स्वीकार किया था। इन में से कुछ जातियों ने रोम के प्रभाव में आकर लातीनी भाषा का प्रयोग किया, कुछ जातियों ने कान्स्टैंटीनोपल के प्रभावाधीन यूनानी भाषा का। परन्तु राजनैतिक रूप से वे स्वतन्त्र थीं और सामाजिक प्रथाएँ भी उन की अपनी अपनी थीं। अलग अलग भू भागों के जिन में ये जा कर बसीं इन जातियों ने अलग-अलग नाम रख लिए। लातीनी अथवा यूनानी भाषाओं को छोड़ कर इन्होंने अपनी निजी बोलियों को अपनाया जिन्होंने सोलहवीं शताब्दी में भाषाओं का रूप धारण कर लिया।

एक जाति की अब एक भाषा थी और वह एक विशेष भू-भाग को ही अपना देश समझती थी।

इन सभी जातियों में सामन्त शाही की प्रथा थी। छोटे-छोटे सरदार प्रायः स्वतन्त्र होते थे और वे किसी का हस्तक्षेप सहन करने को तैयार न थे। १२१५ ई० में इंग्लैंड में इस वर्ग के लोगों ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया और वहाँ के नरेश जौन से 'मैग्ना कार्टा' नाम के प्रलेख पर हस्ताक्षर कराये जो इंग्लैंड की जनता के 'अधिकारों का महान् चिट्ठा' कहलाता है। इंग्लैंड की लोकसभा का निर्माण इसी के आधार पर हुआ। लोकतन्त्र ने जातीयता के भावों को पोषण दिया।

नई भूमियों की खोज के पश्चात् यूरोप के व्यापारी दूर देशों में गये। उन्होंने वहाँ उपनिवेश स्थापित किये। व्यापारियों को अपने अपने देश की सरकार का संरक्षण प्राप्त था। इस लिए इन उपनिवेशों पर देश-देश की सरकार का अधिकार था। व्यापार की वृद्धि और उपनिवेशों की स्थापना से अन्तर्जातीय स्पर्द्धा उत्पन्न हुई जिस ने उन्नीसवीं शताब्दी में विकराल रूप धारण कर लिया। यही स्पर्द्धा संसार के दो महान् युद्धों का कारण बनी।

विदेशी व्यापार और जातीयता

यूरोपीय जातियाँ भारत में

कोलम्बस ने १४६२ ई० में स्पेन नरेश की सहायता से भारत पहुँचने के उद्देश्य से पश्चिम का रुख किया और नई दुनियाँ खोज निकाली जो तत्पश्चात् अमेरिका के नाम से प्रसिद्ध हुई। कोलम्बस को आयुपर्यन्त यही भ्रम रहा कि वह समुद्री मार्ग से भारत पहुँचने वाला पहला यूरोपीय था।

समुद्री मार्ग से भारत पहुँचने का श्रेय पुर्तगाल को प्राप्त हुआ।

पुर्तगाल यूरोप के पश्चिमी तट पर एक छोटा सा देश है जिसका स्पेन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय व्यापार का केन्द्र था।

पुर्तगाल का राजा हैनरी (१३६४—१४६० ई०) जो नाविक के नाम से प्रसिद्ध है नाव विद्या की गवेषणा में यूरोप का अगवा गिना जाता है। उसने यूरोप में प्रथम नाविक-निरीक्षण-शाला स्थापित की, नाविकों के शिक्षण का प्रबन्ध किया तथा समुद्री मार्ग के चित्र बनवाये।

उसके कार्य की पूर्ति पुर्तगाल के मल्लाहों ने की। बोर्थोलेमेयू ने १४८६ ई० में उस अन्तरीप का पता लगाया जिसे वास्को डि गामा ने 'आशा अन्तरीप' का नाम दिया।

हैनरी के समान पुर्तगाली मल्लाहों के भी तीन उद्देश्य थे :— १. कैथोलिक मत का प्रचार। २. व्यापार की वृद्धि। ३. मुसलमानों को परास्त करना।

पुर्तगाल नरेश स्पेन का नेतृत्व करना चाहता था किन्तु पश्चिमी मार्ग से भारत पहुँचने के प्रयास में उस का भेजा हुआ जहाज़ी बेड़ा असफल रहा। पुर्तगाली बेड़े अफ्रीका के पश्चिमी तट के साथ-साथ बढ़े। पुर्तगाली अफ्रीका में ही स्थित हो गये। वे वहाँ के लोगों को पकड़ते और उन्हें दास बना कर यूरोप में बेचते थे। इस से उन्हे

पर्याप्त आय थी परन्तु उन की भारत पहुँचने की लालसा कम न हुई थी।

आखिर वास्को डि गामा नाम का मल्लाह भारी बेड़ा लेकर दक्षिण की ओर बढ़ा। दूर दक्षिण में पहुँच कर उसे अन्तरीप दिखाई दी जिसे उस ने 'आशा अन्तरीप' का नाम दिया। उस का जहाज़ हिन्द महासागर में दाखिल हो गया था और उसे उम्मीद थी कि अब वह भारत पहुँच जायेगा। मिलिन्द की बंदरगाह पर पहली बार उस की भारतीय व्यापारियों से भेंट हुई और उनकी चमक दमक को देख कर डि गामा को बहुत हर्ष हुआ।

प्रोत्साहित हो डि गामा ने भारत के पश्चिमी तट की ओर अपना बेड़ा बढ़ाया। १४६८ ई० में वह कालीकट पहुँचा जो उस समय ज़मोरिन के आधीन था। नरेश ने डि गामा का बहुत सत्कार किया किन्तु पुर्तगालियों के व्यवहार से स्थानीय जनता रुष्ट हो गई और डि गामा को वापिस लौटना पड़ा।

डि गामा पुनः कालीकट आया किन्तु भारत में उपनिवेश स्थापित करने का श्रेय अलबुकर्क को है जो यहाँ १५०६ से १५१५ ई० तक रहा। गोआ जो उस समय बीजा पुर के आधीन था पुर्तगालियों ने प्राप्त कर लिया। विजय नगर नरेश कृष्ण देव राय से अलबुकर्क ने मैत्री स्थापित की और उस के राज्य में एक स्थान पर व्यापार केन्द्र बनाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। इस के पश्चात् उन्होंने बंगाल में हुगली के तट पर व्यापार केन्द्र स्थापित किया जहाँ से उन्हें शाह जहाँ ने निर्वासित किया।

पुर्तगालियों ने मलक्का में भी उपनिवेश स्थापित किये। इस प्रकार हिंद महासार का व्यापार उन के हाथ आया। हम मारवाड़ नरेश के पुर्तगालियों के साथ युद्ध का वर्णन कर आए हैं। हम यह भी बता आए हैं कि पुर्तगाली जैसुइट, अर्थात् वे लोग जिन्हों ने रिनेसांस के पश्चात् कैथोलिक मत को पुनः जीवन प्रदान

किया, अकबर के दरबार में रहते थे। किन्तु पुर्तगाली भारतीय आचार व्यवहार को समझ न सके और केवल गोआ, डामन और ड्यू ही उन के आधीन रहे।

स्पेन और पुर्तगाल

१५१६ ई० में पुर्तगाल विरासत के रूप में स्पेन के सम्राट चार्लस पञ्चम को प्राप्त हुआ। स्पेन पश्चिमी सागर का स्वामी था। वहाँ के मल्लाह मैगलिन ने पश्चिम से हो कर भारत पहुँचने का प्रयास किया और उस का बेड़ा दक्षिणी अमेरिका की अन्तरीप केप हार्न से होता हुआ फिलिपीन द्वीपों में पहुँचा। यहाँ उसे प्राणों की बलि देनी पड़ी किन्तु उस का बेड़ा पूर्वी द्वीप समह से होता हुआ वापिस स्पेन पहुँच गया।

स्पेन के मल्लाह निर्भीक हो कर लूट मार करते थे किन्तु इंग्लैंड के मल्लाहों ने भी समुद्र का रुख किया और स्पेन के मल्लाहों से अंगरेज़ मल्लाहों की कई बार मुठ भेड़ हुई।

इंग्लैंड और स्पेन का द्वन्द्व बढ़ता गया और आखिर स्पेन ने इंग्लैंड पर आक्रमण करने के हेतु एक बहुत बड़ा बेड़ा तैयार किया। १५८८ ई० में इस बेड़े की हार हुई और स्पेन और पुर्तगाल की साख को बहुत हानि पहुँची।

पुर्तगालियों का प्रभाव

कहा जा सकता है कि भारत में पश्चिमी सभ्यता के अग्रदूत पुर्तगाली ही थे। गार्सिया डि ओर्टा ने भारत के उन पौदों का वर्णन लिखकर जो औषधि के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं विज्ञान की भारी सेवा की। पुर्तगालियों ने ही भारत में पहला छापा खाना लगाया। पुर्तगाली पादरियों ने शिक्षा का प्रचार किया।

कला की दृष्टि से पुर्तगालियों का सब से महत्त्वपूर्ण कार्य गिरजा घरों का निर्माण था। उनके बनवाये हुये गिरजा घर पश्चिमी तट पर

आज भी दिखाई देते हैं। बंगले जो आज भारत में बहुत व्यापक हैं पहिले पहल पुर्तगालियों ने ही बनवाये।

पुर्तगालियों ने कैथोलिक मत के प्रचार के लिये भारत में कई संस्थायें स्थापित कीं। मालावार में बहुत से ईसाई रहते थे जो भारतीय संस्कृति के प्रभाव में आ चुके थे। पुर्तगालियों ने उन्हें कैथोलिक मत की दीक्षा दी। यह उन्हीं के प्रयास का फल है कि आज भारत में कैथोलिक मत के मानने वाले ईसाइयों की संख्या इतनी अधिक है। अन्य सभी मतों के ईसाई जो भारत में रहते हैं संख्या में कैथोलिक मत के ईसाइयों के बराबर हैं।

पुर्तगाल का यह दुर्भाग्य था कि अलबुकर्क के अतिरिक्त उसे कोई योग्य व्यक्ति न मिला जो उसके पूर्वी साम्राज्य को स्थाई रख सके।

पुर्तगालियों के पतन के कारण

अलबूकर्क की नीति यह थी कि गोआ पर ऋजु शासन स्थापित किया जाय, तथा अन्तर्जातीय विवाहों द्वारा इसे पुर्तगाल का उपनिवेश बनाया जाय। दूसरे महत्त्व पूर्ण स्थानों पर दुर्ग बनाये जायें। तीसरे स्थानीय राजाओं से मित्रता स्थापित की जाय।

उसकी यह नीति बहुत सफल रही। पुर्तगाल १०० वर्ष तक पूर्वी समुद्रों का अविरुद्ध स्वामी बना रहा। परन्तु पुर्तगाल ने भारत में साम्राज्य स्थापित करने की चेष्टा न की थी। दूसरे स्पेन की क्षति के पश्चात् पुर्तगाल की समुद्री शक्ति को बहुत हानि पहुँची। इसके अतिरिक्त पुर्तगालियों की कैथोलिक मत फैलाने की लालसा, उनकी क्रूर्ता, विलासता, तथा भ्रष्टाचार उनके अवसान का कारण बने।

पूर्वी और पश्चिमी देशों का व्यापार अरबों के हाथ में था जिनसे इसे सोलहवीं शताब्दी के पुर्तगालियों ने छीन लिया था। वे रेशम, मल मल, चीनी, बासन, हीरे, मोती, मणियाँ और अन्य मूल्य-

वान पत्थर नील आदि रंग, सुगन्धियाँ, गोंद
डच गरम मसाला और शृंगार की सामग्री
वेनिस के व्यापारियों द्वारा लिसबन की
बन्दरगाह तक पहुँचाते थे। यह बन्दरगाह पुर्तगाल में स्थित है। वहाँ से डच यह माल यूरोप के अन्य देशों में ले जाते थे। आन्तिरिक व्यापार जर्मनों के हाथ में था। उन के 'कौमतर' नाम के व्यापार केन्द्र रूस, स्कैन्डेनेविया, फ्लैंडर्स और इंग्लैंड आदि सभी देशों में थे।

यूरोपीय देशों से भारत को विशेष माल की आवश्यकता न थी। इस लिये इस माल का मूल्य वे चान्दी सोने में चुकाते थे। इंग्लैंड से गरम कपड़ा ईरान आता था। वहाँ से चमड़ा और कुछ धातुएँ भारत आती थीं। इंग्लैंड भारत का साल्टपीटर विशेष रूप से खरीदता था क्योंकि वह बारूद बनाने के काम आता था।

१५८० ई० में पुर्तगाल के नरेश फिलिप द्वितीय ने डचों के लिये लिसबन की बन्दरगाह बन्द कर दी। डचों के लिए यह एक बहुत बड़ी चुनौती थी। उन्होंने व्यापार मंडल स्थापित किये और समुद्र यात्रा के लिये निकल पड़े। आशा अन्तरीप का मार्ग खुल गया था। पहला डच बेड़ा १५६५ ई० में हालैंड से चला और उन टापुओं से होकर जिन्हें आजकल इन्डोनीशिया कहते हैं १५६७ ई० में वापिस लौटा। इस के पश्चात् नियमित रूप से वे मलाया, जावा, सुमात्रा आदि देशों से व्यापार करने लगे। डच पुर्तगाल नरेश की प्रजा थे परन्तु उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त कर लोक तन्त्रीय राज्य स्थापित किया था। हालैंड के रहने वाले चाहे वे यहूदी थे चाहे ईसाई, निर्धन थे या धनवान् अपने आप को डच कहलाने में गर्व अनुभव करते थे।

डचों ने जावा में बटेविया नाम का नगर बसाया जो उनके

व्यापार का केन्द्र बन गया। आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और तस्मानिया की खोज का श्रेय भी डचों को ही है। उत्तरीय द्वीपों के नाम उनके दिये हुए हैं।

डचों का साहस बढ़ रहा था। १६०२ ई० में उन्होंने डच ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम से एक संयुक्त, व्यापार मंडल स्थापित किया जिसे डच सरकार का सहयोग प्राप्त था। उन्होंने पुर्तगालियों का मुकाबला किया और पुर्तगालियों की बैन्तम के स्थान पर हार हुई।

डचों ने लंका पर आक्रमण किया और १६५८ ई० में उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

डचों की सफलता का बहुत बड़ा कारण यहूदियों का सहयोग था जिन्होंने ईसाइयों के अत्याचारों से तंग आकर हालैंड में शरण ली थी।

अंग्रेज़

गरम मसाले की माँग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। १५९९ ई० में डचों ने काली मिर्च का दाम बढ़ा दिया। इस द्रव्य की इंग्लैंड में बहुत खपत थी। अंग्रेज़ व्यापारियों ने इस की प्रतिक्रिया के रूप में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की और दिसम्बर १६०० ई० में महारानी अलिज़ेबथ से पूर्वी देशों से व्यापार करने का निर्देश अर्थात् चार्टर प्राप्त कर लिया।

इस से पूर्व ही ब्रिटिश सरकार की सहायता से अंग्रेज़ व्यापारियों ने जर्मन व्यापारियों को इंग्लैंड से निकाल दिया था। हैनरी सप्तम ने कई देशों से व्यापारी समझौते किये जिन से इन व्यापारियों के हौसले बढ़ गये। १४९६ ई० में जौन कौबिट उत्तरी मार्ग से भारत जाने के प्रयास के हेतु इंग्लैंड से एक भारी बेड़ा लेकर चला। वह एक नई भूमि पर जा पहुँचा जिसे उस ने न्यू फाउंडलैंड का नाम दिया।

असह्य शीत और अथाह हिम ने कौबिट को आगे बढ़ने न दिया। अब अंग्रेज़ों ने रूस के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये।

राल्फ फिच नामी अंग्रेज़ व्यापारी रूस से ईरान होता हुआ भारत पहुँचा। वह अकबर के नाम अलीज़बेथ का पत्र लाया था। अकबर ने उसके साथी लीड्ज़ को अपने दरबार में उच्च पद प्रदान किया। फिच गंगा के मार्ग से बङ्गाल पहुँचा और वहाँ से बर्मा, मलाया आदि देशों से होता हुआ भारत के पश्चिमी तट के साथ साथ फारस की खाड़ी और अलैप्पो के मार्ग से अपने देश लौटा। उसने उस व्यापार के आंकड़े दिये हैं जो गंगा के मार्ग से होता था।

जेम्ज़ लंकास्टर जो इंग्लैंड से १५६१ ई० में समुद्री बेड़ा लेकर चला भारत में आने वाला पहला अंग्रेज़ नाविक था। वह १५६२ ई० में बङ्गाल की खाड़ी के परीक्षण के पश्चात् अपने देश लौट गया।

१५६२ ई० में पुर्तगालियों का एक जलयान अंग्रेज़ों के हाथ आ गया। द्रव्य और मालअसबाब के अतिरिक्त उस में से अंग्रेज़ों को कुछ हस्तलेख मिले जिन में पूर्वी देशों के बारे में मूल्यवान जानकारी दी हुई थी। इस जानकारी ने अंग्रेज़ व्यापारियों को बहुत प्रोत्साहित किया और चार्टर प्राप्त करने में इसने उनकी बहुत सहायता की।

१६०६ ई० में इंग्लैंड का दूत हाकिंज़ भारत आया। जहाँगीर से मैत्री स्थापित कर उसने न केवल व्यापार की सुविधायें प्राप्त कीं बल्कि जहाँगीर ने उसे जागीर भी प्रदान की। उस के पश्चात् सूरत, अहमद नगर, और कैम्बे में अंग्रेजों ने व्यापार केन्द्र जिन्हें वे फैक्ट्रियाँ कहते थे स्थापित किये। माल बेचने पर अंग्रेज़ों को केवल साढ़े तीन प्रति शत कर देना पड़ता था।

१६१२ ई० तक शनैः शनैः अंग्रेज़ी बेड़े भारत आते रहे। वे गरम

कपड़ा ईरान में बेचते थे। वहाँ से कच्चा रेशम और घोड़े भारत लाते थे। भारत का माल वे मलाया ले जाते और वहाँ से गरम मसाला इंग्लैंड पहुँचाते थे। इस के साथ साथ वे अन्य व्यापारियों का माल भी अपने जलयानों में लादते थे।

चीन का माल भारत में आकर बिकता था और विदेशी माल भारत से ही चीन को जाता था। इस प्रकार चीन के व्यापार का द्वार भी उनके लिये खुल गया।

पूर्वी संसार में केवल भारत ही व्यवस्थित देश था। भारत के साहूकार अंग्रेज़ों की आन्तरिक व्यापार में सहायता करते थे। यातायात के साधन प्राप्त थे और मार्ग सुरक्षित थे। लोगों की धर्मपरायणता के कारण छल या धोखे की कोई शंका न थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भावी लाभ का अनुमान लगाया और वह तिष्ठता से भारत में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के प्रयास में लग गई।

अंग्रेज़ों ने पुर्तगालियों से १६२२ ई० में उर्मुज़ प्राप्त कर लिया जिस के कारण उनका ईरान से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। १६६१ ई० में पुर्तगाल की शहज़ादी कैथराइन का विवाह चार्ल्स द्वितीय से हुआ और दहेज़ के रूप में बम्बई का टापू उसे प्राप्त हुआ। उसने वह टापू कम्पनी के सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार अंग्रेज़ भारत में शासक के रूप में स्थित हो गए।

अंग्रेज़ों ने अपना व्यापार उत्तर की ओर बढ़ाया और १६३६ ई० में उन्होंने एक भू-भाग बटाई पर ले लिया जहाँ उन्होंने मदरास नगर की स्थापना की।

१६२४ ई० में अंग्रेज़ों ने बङ्गाल से व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त की। १६३२ ई० में पुर्तगालियों ने अपने व्यवहार से शाहजहाँ को रुष्ट कर दिया। उनकी बस्ती हुगली के किनारे थी। शाहजहाँ ने उन पर

आक्रमण किया और उन्हें निर्वासित कर दिया। अंग्रेज़ों ने इस का लाभ उठाया और १६५१ ई० में बङ्गाल में करमुक्त व्यापार की आज्ञा प्राप्त की। १६९० ई० में उन्होंने कलकत्ता नगर की आधार शिला रखी।

अंग्रेज़ों ने अपने संयम, दूरदर्शिता, परिश्रम और ज्ञान से भारी लाभ उठाया। केवल नील में ही उनको प्रति पौंड करीब ३ शिलिंग की बचत थी। कम्पनी को २०० प्रतिशत का लाभ हुआ। भारत के कच्चे माल और अपरिमाणित लाभ ने इंग्लैंड की शिल्पकारी को प्रोत्साहित किया।

फ्रांस

डच और पुर्तगाली अंग्रेज़ों के मार्ग से हट गए किन्तु १६४२ ई० में फ्रांस ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया। फ्रैंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई उसी समय फ्रांस का प्रसिद्ध कवि और दार्शनिक बर्नियर मुग़ल दरबार में आकर रहने लगा। उसके पराक्रम से फ्रांसीसियों को भारत में व्यापार करने के लिये सुविधाएँ प्राप्त हो गईं।

फ्रैंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने १६७४ ई० में पांडीचेरी की स्थापना की। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक फ्रांसीसियों के कदम भारत में पूर्ण रूप से जम गए। उनके आधीन चन्द्र नगर जिसे १६८८ ई० में प्राप्त किया गया था, माही और कारीकाल जो क्रमशः १७२२ ई० और १७३९ ई० में उनके हाथ लगे और अन्य व्यापारिक केन्द्र थे।

फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों की पहली मुठ भेड़ १७४६ ई० में हुई। यह द्वन्द्व १७६३ ई० तक चलता रहा। अन्ततः फ्रांसीसियों की पराजय हुई और भारत का क्षेत्र अंग्रेज़ों के हाथ रहा।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुर्तगालियों और

फ्रांसीसियों के अाधीन भारत के केवल कुछ ही स्थान रह गए। उन में इतनी सामर्थ्य न थी कि अंग्रेज़ों का मुकाबला कर सकते।

बंगाल में डेन लोगों की भी बस्तियाँ थीं। तत्पश्चात ये बस्तियाँ अंग्रेज़ों ने खरीद लीं।

औरंगज़ेब और यूरोपीय जातियाँ

पुर्तगालियों की मुग़लों से कई बार मुठ भेड़ हुई थी। पुर्तगालियों ने मुग़लों के कई जहाज़ जो मक्का की ओर जा रहे थे लूटे थे परन्तु इनके विरुद्ध कोई ऐसा कदम न उठाया गया था जिस से पुर्तगालियों की शक्ति को विशेष हानि पहुँचे।

अकबर और जहाँगीर ने कभी यह अनुभव न किया कि उन्हें अपनी सत्ता को कायम रखने के लिये भारी समुद्री बेड़े की आवश्यकता है।

शाहजहाँ ने एक छोटी सी नाव सेना बनाई किन्तु उस समय पुर्तगालियों की शक्ति समाप्त हो चुकी थी।

औरंगज़ेब यूरोपीय जातियों को शंका की दृष्टि से देखता था परन्तु वह मराठों को परास्त करने के विचार में इतना व्यस्त था कि उसने यूरोपीय जातियों की बढ़ती हुई शक्ति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

इसके विपरीत मराठों ने एक बलवान नव सेना का निर्माण किया। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक पश्चिमी तट के समुद्र में मराठों का प्रभुत्व रहा।

परिच्छेद २४

मराठों का उत्थान

मराठा देश : (महाराष्ट्र)

महाराष्ट्र अर्थात् मराठा प्रदेश विंध्याचल पर्वत की शृङ्खलाओं के साथ साथ नर्मदा के दक्षिण की ओर स्थित है। पश्चिमी घाट इस प्रदेश की विशेषता है। इसकी ऊँचाई केवल तीन हजार फीट से लेकर पाँच हज़ार फीट तक है फिर भी यह एक अजेय दुर्ग की भाँति है। कुछ थोड़े भाग को छोड़ कर जहाँ चावल उत्पन्न होते हैं शेष भाग घने जंगलों से ढका है। इस भूमि की नदियाँ गहरी और तेज़ रफ़तार हैं जिन्हें पार करना सुगम नहीं। कहीं कहीं पर्वतों की चोटियों पर दुर्ग बने थे जिन पर आक्रमण करना जान जोखिम का काम था।

मराठों के गुण

महाराष्ट्र में अनेक छोटे छोटे कबीले रहते थे जिन का आपस में विशेष सम्बन्ध न था। किन्तु उन में आचार व्यवहार और विचारों की समानता थी। ये लोग नाटे कद के सांवले, कठोर हृदय और वज्र शरीर व्यक्ति थे। पौराणिक कथाओं में इन्हें बहुत रुचि थी। इन कबीलों में ऐक्य स्थापित करना कठिन न था। संत तुकाराम, एकनाथ, वामन पंडित और राम दास ने अपनी कविता से इन लोगों में राष्ट्रीयता के भावों का संचार किया। सत्रहवीं शताब्दी में जब औरंगज़ेब ने सिंहासन आरोहण किया मराठे एक संगठित जाति के रूप में प्रकट हुए।

यथार्थता और व्यवहारिकता मराठों के विशेष गुण थे। वे वीर थे किन्तु लड़ कर मर जाने की अपेक्षा विजय का अधिक महत्त्व देते थे। लूट मार या चतुराई द्वारा जिस प्रकार भी हो विजय प्राप्त

करना ही उनका उद्देश्य था। छिप कर शत्रु पर आघात करना, अवसर के अनुसार डट कर मुकाबला करना या मैदान छोड़ कर भाग जाना, पीछे से छापा मारना या शत्रुसेना में फूट डलवाना उनकी व्यूह नीति का भाग थे। इन्हीं गुणों के कारण उन्होंने अहमद नगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों में मान प्राप्त किया था। दक्षिण के सुल्तानों ने उन्हें ऊँचे ऊँचे पद प्रदान किये थे।

उनकी भाषा मराठी कई राज्यों की भाषा थी। मराठा सरदार, मराठा न्यायाधीश, मराठा दीवान दक्षिण के सभी राज्यों में दृष्टि गोचर होते थे।

मराठा शब्द का प्रयोग पहले पहल फरिश्ता ने किया पर मराठा जाति अशोक के काल में भी सुदृढ़ जाति थी। इसका वर्णन राष्ट्रिक (महाराष्ट्रिक) के नाम से अशोक के कम से कम चार शिला लेखों में मिलता है। शतकर्णि प्रथम का विवाह जिस जाति में हुआ था उसे महारथी जाति कहा जाता था। हो सकता है महारथी से बिगड़ कर मराठा शब्द बना हो, या महाराष्ट्रिक से बिगड़ कर। कुछ भी हो सत्रहवीं शताब्दी में मराठा जाति की शक्ति का आभास हो सकता था।

मराठों की सैनिक शक्ति का लोहा मुग़ल सम्राटों ने भी माना था। इस शक्ति का स्रोत एक धार्मिक आन्दोलन था जो तेरहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शती तक लगातार चलता रहा।

इस आन्दोलन का सूत्रपात पुंडलीक ने किया जो ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। उसके पश्चात् ज्ञानेश्वर एक प्रसिद्ध संत हुआ जिसके द्वारा रचित तीन महान ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। ज्ञानेश्वरी उनमें से एक है। तब मेहर जाति से चोखमल, माली जाति से सवात, कुम्हार जाति से राक और गोरा, चमार जाति से रईदास, सुनार जाति से नर हरि और नाम देव, जो दर्जी था, एक के पश्चात् एक ने इस आन्दोलन की बाग डोर सम्भाली।

ये सन्त लोग पन्धारपुर में रहते थे जिसे कबीर ने भी कुछ समय के लिये अपना निवास स्थान बनाया था।

परिणाम यह हुआ कि मराठा देश में जातपांत का भेद भाव उत्पन्न न होने पाया। सामाजिक समानता मराठों का गुण विशेष रही और यही उनकी शक्ति का रहस्य था।

शिवाजी
(१६२७—१६८० ई०)

इसी वीर जाति में शिवाजी का जन्म हुआ। उस का दादा मालो जी मलिक अम्बर की सेना में उच्च पद पर नियुक्त था। मालोजी के पुत्र शाह जी का विवाह यदु वंशीय कन्या जीजी बाई से हुआ। इस से अपनी विरादरी में मालो जी का मान बहुत बढ़ गया।

शाहजी ने बीजापुर दरबार में बहुत महत्त्वपूर्ण काम किये थे जिन के पारितोषिक के रूप में सुल्तान ने करनाटक और पूना में उसे भारी जागीर प्रदान की थी। शाहजी अपने पुत्र शिवाजी को दादा जी कोण देव के सुपुर्द कर करनाटक में रहने लगा। शिवाजी का बाल्यकाल पूना के दुर्ग में बीता।

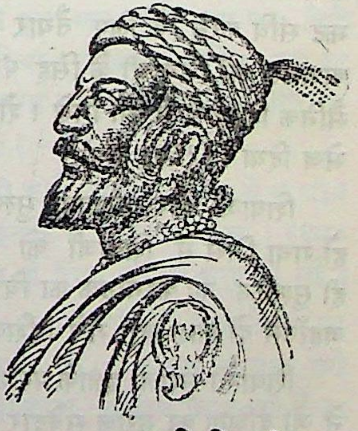

छत्रपति शिवाजी

शिवाजी अभी सोलह वर्ष का था कि उस ने अपने साथियों की एक टोली बनाई और आस पास छापे मारने आरम्भ कर दिये। उस की वीरता को देख कर मराठों की मवाली जाति ने उसे अपना नेता स्वीकार किया। मवालियों की सहायता से शिवाजी ने तोरण, सिंहगढ़ और पुरन्धर के दुर्ग जिन पर बीजापुर के सुल्तान का अधिकार था प्राप्त कर लिये।

शिवाजी का साहस बढ़ता गया और उस ने बीजापुर सुल्तान का कुछ कोष लूट लिया। बीजापुर सुल्तान ने रुष्ट होकर शाहजी को बन्दी बना लिया किन्तु शिवाजी ने शाहजहाँ की शरण ली जिस के कहने पर शाहजी मुक्त हो गया। शाहजहाँ ने शिवाजी को पाँच हज़ारी का मन्सब प्रदान किया।

१६५५ ई० में औरंगज़ेब दक्षिण का राज्यपाल नियुक्त होकर आया। मुग़ल राजकुमार गोलकुण्डा को परास्त करने की चिन्ता में था। शिवाजी ने इस का लाभ उठाया और अहमदनगर तथा अन्य स्थानों पर जो मुग़लों के आधीन थे छापे मारे। औरंगज़ेब को इस की सूचना मिली किन्तु शाहजहाँ की रुग्णता ने उसे आगरा पहुँचने पर विवश किया।

शिवाजी की ढिठाई बढ़ती जा रही थी। बीजापुर सुल्तान ने अपने सेनापति अफ़ज़ल खाँ को उसे परास्त करने के लिये भेजा। शिवाजी झट संधि करने के लिए तैयार हो गया परन्तु यह एक चाल थी। अफ़ज़ल खाँ शिवाजी के सिंह पंजे का आखेट बना। उस के बहुत से सैनिक शिवाजी से आ मिले। शेष को शिवाजी ने आदर सहित वापिस भेज दिया। (१६५६ ई०)।

शिवाजी और बीजापुर सुल्तान के बीच खुल्लम खुल्ला युद्ध आरम्भ हो गया जिस में शिवाजी को अपने कई दुर्ग छोड़ने पड़े किन्तु शीघ्र ही सुल्तान को करनाटक का विद्रोह दमन करने के लिये जाना पड़ा, जहाँउसे दो साल लग गये। शिवा जी ने पुनः अपनी शक्ति बढ़ा ली।

शिवाजी मुग़ल इलाके पर छापे मारता था इस लिये शाइस्ता खाँ ने जो दक्षिण का मुग़ल सूबेदार था शिवाजी पर आक्रमण किया और फिर बहुत से दुर्ग उस के हाथ से निकल गये। शाइस्ता खाँ पूना के दुर्ग में स्थित था कि शिवा जी ने रात को चुपके से दुर्ग में प्रवेश किया। शाइस्ता खाँ भाग निकला किन्तु भागते भागते शिवाजी ने उस की दो उंगलियाँ काट दीं। (१६६३ ई०)।

औरंगज़ेब ने राजा जसवन्त सिंह और मुअज़्ज़म को शिवा जी से बदला लेने के लिये भेजा। किन्तु शिवा जी ने मुअज़्ज़म से मैत्री स्थापित कर ली और उसे सम्राट् से विद्रोह करने की प्रेरणा दी। औरंगज़ेब को इस की सूचना मिल गई और उस ने जय सिंह की कमान में एक महान् सेना भेजी। शिवाजी ने जय सिंह से सन्धि कर ली। वह औरंगज़ेब के दरबार में प्रस्तुत हुआ जहाँ औरंगज़ेब ने उसे क़ैद कर लिया। शिवा जी चतुराई से भाग निकला। (१६६५ ई०)।

शिवाजी नौ मास पश्चात् अपने राज्य में वापिस लौटा।

१६७० से १६७४ ई० तक दिलेर खाँ दक्षिण का सूबेदार रहा। उस ने शिवाजी को परास्त करने का प्रयत्न किया और उस के बहुत से दुर्ग छीन लिये। इस युद्ध के अन्तर्गत शिवा जी ने सूरत पर दो बार आक्रमण किया और वहाँ से करोड़ों रुपये का धन प्राप्त किया। १६७४ इ० में काबुल में अफ़गानों ने विद्रोह कर दिया और दिलेर खाँ को वापिस जाना पड़ा। शिवा जी ने पुनः सब दुर्ग प्राप्त कर लिये और अपने आप को सम्राट् घोषित किया। शास्त्रोक्त रीति से उस का अभिषेक हुआ और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो विजय नगर साम्राज्य फिर सजीव हो उठा है। (१६७४ ई०)।

शिवाजी का विरोध करने वाली कोई शक्ति दक्षिण में न थी। उस ने लूट मार द्वारा आस पास के इलाके से धन प्राप्त किया। १६८० ई० में जब दिलेर खाँ दक्षिण को लौटा तो शिवा जी की मृत्यु हो गई।

शम्भा जी—१६८० से १६८६ ई० तक

पिता के जीवन काल में ही शम्भाजी अपनी विलासिता का परिचय दे चुका था। मराठा सरदार उसे सिंहासन का दावेदार स्वीकार करने को तैयार न थे। वे शिवा जी के छोटे पुत्र राजा राम को गद्दी पर बिठाना चाहते थे किन्तु शम्भा जी ने एक हत्या काण्ड मचा दिया। उस के रोष की ज्वाला से बड़े बड़े सरदार भी न बच सके।

औरंगज़ेब के लिये विलासिता के इस दास को परास्त करना कठिन न था। संगमेश्वर के सुन्दर महलों में शम्भा जी रंग रेलियाँ मना रहा था कि सम्राट् की सेना वहाँ जा पहुँची। मदमस्त मराठा नरेश बन्दी बना लिया गया और वह मुग़ल सम्राट् के कोप का आखेट बना।

निर्दयता, प्रतिशोध की भावना और विलासिता शम्भा जी के अक्षम्य दोष थे किन्तु मृत्यु के समय उस ने वह वीरता दिखाई जिस ने शम्भा जी की स्मृति को परिष्कृत कर दिया। उसकी मृत्यु मराठा सरदारों के ऐक्य का हेतु बनी।

राजा राम—१६८६ से १७०० ई० तक

शम्भा जी की महारानी यसूबाई ने राजा राम को अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय का संरक्षक नियुक्त किया। सिंहासन प्राप्ति के लिये जिस युद्ध की सम्भावना थी वह यसूबाई की समझदारी से टल गया और उसने मराठा सरदारों को घरेलू फूट से बचा लिया।

राजा राम ने विलक्षण सामरिक बुद्धि का परिचय दिया। जैसे ही औरंगज़ेब ने रायगढ़ को विजय किया राजा राम दूर दक्षिण में जिंजी की ओर बढ़ा। जिंजी को विजय करना लोहे के चने चबाने के सदृश था।

रायगढ़ की विजय पर शिवा जी और उसकी माता यसुबाई औरङ्गज़ेब के हाथ आई। इतकाद खाँ ने जिसे रायगढ़ की विजय पर औरंगज़ेब ने जुलफिकार खाँ की उपाधि प्रदान की थी यसुबाई को आश्वासन दिलाया था कि वह उसका और उसके पुत्र का बाल बांका न होने देगा। संभव था जुलफिकार खाँ का आश्वासन मिथ्या सिद्ध होता किन्तु औरंगज़ेब की पुत्री ज़ीनत ने इन्हें अपने संरक्षण में ले लिया। राजकुमारी की इस दयालुता का क्या कारण था इस के विषय में कई अनुमान लगाये गये हैं। किन्तु इसमें सब एक मत हैं कि राजकुमारी ने इन्हें पूर्ण सम्मान दिया। शिवाजी द्वितीय शाहू के

नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मराठों के प्रमुख दुर्ग औरङ्गज़ेब के हाथ आ चुके थे किन्तु मराठा घुड़सवार मुग़लिया इलाके में बे रोक टोक घूमते और लूट मार करते थे। अवसर पाने पर वे मुग़ल सेना पर हल्ला बोल देते और जो हाथ लगता ले भागते।

मराठों ने औरंगज़ेब का सचमुच नाक में दम कर दिया। विवश होकर उसे जिंजी की ओर सेना भेजनी पड़ी। जिंजी का परिवेष्ठन कर लिया गया। राजा राम ने यसूबाई के आदेश पर मराठों को आत्म-विहीनता के भावों से बचाने के लिये नरेश की उपाधि ग्रहण कर ली थी।

जिंजी के घेरे के लिये जुलफिकार को नियुक्त किया गया किन्तु वह इस कार्य की कठिनाइयों को जानता था। उस ने राजा राम से समझौता कर लिया और परिवेष्ठन केवल नाम मात्र का परिवेष्ठन रह गया।

औरंगज़ेब ने अपने पुत्र काम बख्श को भेजा किन्तु उस पर भी राजा राम का जादू चल गया और काम बख्श ने राजा राम से मिल कर पिता के विरुद्ध षड़यन्त्र रचा।

मुग़ल सम्राट् को शंका हुई और उस ने जुलफिकार के पिता असद ख़ाँ को सेनापति नियुक्त किया।

मराठा सरदारों के हथकंडों से किसी भी मुग़ल सेनापति का बचना कठिन था। यद्यपि जिंजी का दुर्ग परास्त हुआ फिर भी राजा राम और उस के सैनिक वहाँ से सुरक्षित निकल आये। (१६९८ ई०)।

कुशल इसी में थी कि औरंगज़ेब मराठों से समझौता कर ले किन्तु उस की हठ ने मुग़ल विजय को पराजय में परिवर्तित कर दिया।

१७०० ई० में राजा राम की मृत्यु हो गई और औरंगज़ेब को

महाराष्ट्र विजय कर लेने की आशा हुई परन्तु राजा राम की रानी ताराबाई पति से भी अधिक कुशल सिद्ध हुई।

ताराबाई—१७०० से १७०७ ई० तक

ताराबाई राजा राम की मुख्य रानी थी। उसके पुत्र का नाम भी शिवा जी था। शम्भा जी की मृत्यु के पश्चात् जिस प्रकार मराठा सरदारों ने ऐक्य कायम रखा था, उसी प्रकार तारा बाई उन्हें एक सूत्र में बान्धे रखना चाहती थी। किन्तु कुछ सरदार चाहते थे कि शाहू को नरेश स्वीकार करते हुए ताराबाई संरक्षक का काम करे। ताराबाई की युक्ति थी कि राजा राम ने यसूबाई के आदेश पर नरेश का पद ग्रहण किया था। सिंहासन पर उसके पुत्र शिवा जी तृतीय का अधिकार था। मराठा सरदार बन्दी नरेश की अपेक्षा स्वतन्त्र शिवाजी को नरेश स्वीकार करने में अधिक गर्व अनुभव करेंगे।

ताराबाई अति योग्य स्त्री थी। उसने अपनी कुशलता से मराठा सरदारों का सहयोग प्राप्त किया और वह अपने पुत्र शिवाजी की संरक्षिका नियुक्त हुई। मराठा सरदारों में फूट डलवाने का प्रयास असफल रहने से औरंगजेब की आशायें भंग हो गईं।

लगातार मात खाने के पश्चात् औरंगज़ेब ने दक्षिण से लौट जाने का निश्चय किया किन्तु वह लौट न पाया और १७०७ ई० में उस की मृत्यु हो गई। उस का पुत्र मुअज्ज़म बहादुर शाह के नाम से सम्राट बना और उस ने मराठों से मित्रता स्थापित करने में ही भलाई अनुभव की। शाहू को मुक्त करना अनिवार्य हो गया।

शाहू—१७०७ से १७४७ ई० तक

शाहू के मुक्त हो जाने पर महाराष्ट्र में नई स्थिति उत्पन्न हो गई। ताराबाई पद छोड़ने को तैयार न थी किन्तु शाहू ने बल और चतुराई से मराठा सरदारों को अपने साथ मिला लिया।

शाहू १७४७ ई० तक जीवित रहा किन्तु उस के काल में शासन की बाग डोर पेशवा के हाथ में आ गई । शाहू की मृत्यु के पश्चात् ताराबाई ने एक नया षड़यन्त्र रचा । उस ने घोषणा की कि उस के पुत्र शिवा जी का पुत्र राम राजा जिस की मृत्यु की घोषणा की जा चुकी थी जीवित है ; शाहू के पुत्रहीन होने के कारण मराठा सिंहासन पर राम राजा का अधिकार है ।

वास्तव में राम राजा शिवाजी के कुल से न था। अन्ततः ताराबाई उस से विमुख हो गई और राम राजा का अधिकतर जीवन ताराबाई के बन्दी गृह में बीता। इस से पेशवा की शक्ति बहुत बढ़ गई और भोंसला वंश का वैभव मंद पड़ गया।

कोल्हापुर में ताराबाई ने अपने पुत्र शिवा जी के नाम पर एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की थी और रुष्ट मराठा सरदारों के लिए ताराबाई के दरबार में सदैव स्थान था । शाहू के सेनापति ने भी विद्रोह किया और वह तारा बाई के साथ जा मिला ।

बालाजी विश्वनाथ
१७१३ से १७२० ई०

इस से बालाजी विश्वनाथ को जो एक चितपावन ब्राह्मण था स्वर्ण अवसर हाथ आया। १७११ ई० में शाहू ने उसे नई सेना भरती करने का आदेश दिया। बालाजी विश्वनाथ ने न केवल रणक्षेत्र में शौर्य का प्रदर्शन किया बल्कि राजनीति में भी दक्षता दिखाई ।

राजा राम के दूसरे पुत्र शम्भा जी की माता को ताराबाई के विरुद्ध भड़काना और ताराबाई और उस के पुत्र को बन्दी बनाना उसी का काम था। अन्य कई मराठा सरदारों को भी उस ने शाहू के झंडे के नीचे ला खड़ा किया। उस की सेवाओं की प्रशंसा के रूप में शाहू ने १७१३ ई० में उसे पेशवा की उपाधि प्रदान की। शाहू के राज्य

में शान्ति स्थापित करने का श्रेय निश्चय ही बालाजी विश्वानाथ को दिया जा सकता है।

बाजी राव
१७२० से १७४० ई०

पिता की मृत्यु के समय बाजी राव की आयु २२ वर्ष की थी किन्तु वह कई बार रणक्षेत्र में विलक्षण शौर्य का प्रदर्शन कर चुका था। शाहू ने उस की योग्यता से प्रभावित हो अपने मुख्य महारथियों के परामर्श के विपरीत बाजी राव को पेशवा नियुक्त किया।

शीघ्र ही बाजी राव ने अपनी विजय योजना निर्धारित की। उस ने मुग़ल साम्राज्य में छापे मारने का निश्चय किया और सर्वप्रथम मध्यभारत को विजय करने का बीड़ा उठाया।

अन्य सरदारों ने आना कानी की और युक्ति दी कि पहले महाराष्ट्र को सुदृढ़ और सशक्त बनाया जाय। बाजी राव के पास इस युक्ति का उत्तर था। उस ने शीघ्र ही शाही कोष की दशा सुधार दी। वह भारी लश्कर ले कर मालवा की ओर बढ़ा और समस्त मध्यभारत पर झंझा की भाँति छा गया। उस ने उदोजी पवार को जिस ने धार राज्य की नींव डाली, मल्हार राव होल्कर को जिस ने इन्दौर राज्य की स्थापना की और रानो जी सिंधिया को जिस ने ग्वालियर को अपना गढ़ बनाया नरेश की ओर से इस प्रदेश की रक्षा के लिये नियुक्त किया।

बाजी राव को परास्त करने के लिये हैदराबाद के निज़ाम ने जिस के साथ शाहू का सेनापति जा मिला था और जिस की सहायता राजा राम का पुत्र शम्भा जी कर रहा था भारी सेना भेजी। बाजी राव ने सफलता से उस का मुक़ाबला किया और निज़ाम की सब चालें असफल रहीं।

बाजी राव के शासन काल का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य शम्भा जी को परास्त करना था। शम्भा जी के आधीनता स्वीकार कर लेने से मराठा राज्य की सत्ता बहुत बढ़ गई।

बाजी राव और बुन्देल खण्ड के छत्रसाल की मित्रता ने बाजीराव को लगभग आधे बुन्देल खण्ड का स्वामी बना दिया। उस ने बे रोक टोक मुग़लिया साम्राज्य पर आक्रमण किये और दिल्ली के द्वार तक पहुँच गया। उधर गुजरात और बंगाल तक उस का सिक्का बैठ गया। पूर्वी पञ्जाब और राजस्थान में भी उस का लोहा माना जाता था। दक्षिणी प्रान्तों से वह चौथ वसूल करता था।

पुर्तगालियों के साथ भी मराठों के युद्ध हुए और पुर्तगालियों को मात हुई। अंग्रेज़ों की भी आरम्भ में मात हुई किन्तु अन्त में उन्होंने मराठों से सन्धि कर ली और मित्रता का आश्वासन दिया।

शिवाजी के काल में सरकारी अफ़सरों को वेतन दिया जाता था। अब परिस्थिति बदल चुकी थी। शाहू इतना योग्य न था कि इतने विस्तृत राज्य का प्रबन्ध भली भाँति कर सकता। बाजीराव ने परामर्श दिया कि राज्य कर्मचारियों को जागीरें दी जाएँ। इस से मराठा सरदारों की सत्ता बढ़ गई और मराठा राज्य संघ ने जन्म लिया। इस प्रथा में दोष थे किन्तु इसी के कारण मराठा शक्ति इतने साल तक बनी रह सकी।

१७४० ई० में बाजी राव की मृत्यु हो गई और उस का पुत्र बालाजी बाजी राव पेशवा नियुक्त हुआ।

बाला जी बाजी राव
१७४० से १७६१ ई०

बालाजी बाजी राव पिता की भाँति वीर और समझदार था। उस के काल में मराठों ने दक्षिणी भारत को परास्त किया। उन की फ़्राँसीसियों के साथ टक्कर हुई। फ्रांसीसियों ने चतुराई से मराठों के साथ सन्धि कर ली।

शाहू की मृत्यु के पश्चात् बाला जी बाजी राव ने राम राजा को नरेश स्वीकार किया किन्तु वह पेशवा के हाथों में कठपुतली बना रहा। ताराबाई ने नया षढ़यन्त्र रचने की चेष्टा की किन्तु बालाजी की चालों क सम्मुख वह असफल रही। अतएव इस से पेशवा की शक्ति और भी बढ़ गई। तत्पश्चात् शिवा जी के उत्तराधिकारी सितारा में एक बन्दी की दशा में रहने लगे।

बाह्य शक्तियों के साथ-साथ बाला जी पेशवा को घरेलू कठिनाइयों ने आ घेरा अर्थात् ताराबाई के उकसाने पर कई मराठा सरदार उस से विमुख हो गये और खुल्लम-खुल्ला उस का विरोध करने लगे किन्तु बाला जी उन का दमन करने में सफल हुआ।

बाला जी का ध्यान दक्षिण विजय की ओर लगा था कि उत्तर से अहमद शाह अब्दाली का आक्रमण हो गया। नादर शाह के आक्रमण ने मराठों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्रदान किया था किन्तु अहमद शाह के साथ उन्हें स्वयं टक्कर लेनी पड़ी। पानीपत के स्थान पर एक बहुत बड़ा हत्याकांड हुआ जिस में मराठों की बहुत हानि हुई। बाला जी इस आघात को सहन न कर सका। १७६१ ई० में उस की मृत्यु हो गई।

माधव राओ पेशवा
१७६१ से १७७० ई०

पिता की मृत्यु के समय माधव राव की आयु केवल सोलह बर्ष की थी। उस के चाचा रघुनाथ राव ने शक्ति सम्भालनी चाही और एक समय माधव राव को बंदी का स्तर दिया किन्तु माधव राव की समझदारी और वीरता शीघ्र ही प्रकट हो गई। उस ने चाचा के षड़यन्त्रों से बचने के लिये उसे बन्दी बना लिया।

रघुनाथ राव की पत्नी बहुत महत्त्वाकांक्षी थी। उस ने पति को शक्ति प्राप्त करने पर उतारू किया और माधव राव की मृत्यु पर उस के भाई नारायण राव पेशवा का वध करवा दिया।

माधव राव के दरबार में नाना फड़नवीस और राम शास्त्री दो अति योग्य व्यक्ति थे। उन्होंने रघुनाथ राव को अशक्त बनाने का पूरा प्रयत्न किया। रघुनाथ राव ने अंग्रेज़ों की सहायता लेनी चाही किन्तु नाना ने अंग्रेज़ों से सन्धि कर ली। अंग्रेज़ों ने माधव राव प्रथम के पुत्र माधव राव द्वितीय को पेशवा स्वीकार कर लिया।

माधव राव द्वितीय पिता की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न हुआ था। उस का संरक्षण नाना फड़नवीस ने किया। अंग्रेज़ों से मिलकर फ्रांसीसियों, निज़ाम और टीपू सुल्तान के विरुद्ध नाना ने युद्ध किये किन्तु मराठा शक्ति बट चुकी थी। माधव राव द्वितीय ने आत्म हत्या कर ली। उस की अकाल मृत्यु ने नाना की कठिनाई और भी बढ़ा दी।

माधव राव द्वितीव —
१७७० से १७९५ ई०

माधव राव द्वितीय ने मरते समय आदेश दिया था कि उस के पश्चात् रघुनाथ राव का पुत्र बाजी राव पेशवा का पद ग्रहण करे। बाजी राव द्वितीय के मन में नाना फड़नवीस के प्रति शत्रुता के भाव थे, क्योंकि उस ने उस के पिता रघुनाथ राव का विरोध किया था। फिर भी नाना को परिस्थितियों ने विवश किया कि वह बाजी राव द्वितीय को पेशवा स्वीकार करे।

बाजी राव द्वितीय में शासक के गुण न थे। घरेलू झगड़ों ने और बाह्य प्रहारों ने उसे चैन न लेने दिया। उस ने अंग्रेज़ों का विरोध किया और आखिर मात खाई। ईस्ट इन्डिया कम्पनी की ओर से उसे पैन्शन दी गई और वह कानपुर के निकट बिठूर के स्थान पर रहने लगा। उस की मृत्यु १८५१ ई० में हुई।

बाजी राव द्वितीय—
१७९५ से १८१८ ई०

बाजी राव द्वितीय ने धुन्धुपन्त नाम के बालक को गोद लिया

था। धुन्धुपन्थ नाना साहिब के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस ने १८५७ ई० के स्वतन्त्रता संग्राम में खूब हाथ दिखाए।

मराठा राज्य संघ

शाहू के काल में मराठा सरदारों को जागीरें प्रदान किये जाने की प्रथा प्रचलित हो गई थी। इस के अन्तर्गत ग्वालियर में सिन्धिया, बड़ौदा में गायकवाड़ इन्दौर में होल्कर, धार में पवार और नागपुर में भोंसला नाम के वंशों ने उपराज्य स्थापित किये।

इन के अतिरिक्त कोल्हापुर में मराठों का राज्य था। कोल्हापुर राज्य की नींव शिवा जी के पुत्र राजा राम ने डाली थी। तंजौर राज्य की स्थापना का श्रेय शिवा जी के भाई विंकोजी को था। मराठों ने और भी कई छोटे छोटे राज्यों की स्थापना की।

गायकवाड़

गायकवाड़ वंश का संस्थापक पिलाजी था। कहा जाता है कि उस के पूर्वजों ने एक कसाई के हाथ से गौओं की रक्षा की थी। इसी से इस वंश का नाम गायकवाड़ पड़ा। पिलाजी एक मराठा सेनापति का सेवक था जिस ने उसे कुछ बीमार घोड़ों की देखभाल पर नियुक्त किया। पिलाजी की देख रेख में घोड़े अच्छे हो गये। स्वामी ने प्रसन्न होकर उसे एक दुर्ग प्रदान किया। पिलाजी ने अपनी योग्यता से इसे सुदृढ़ बना लिया। गुजरात में दो मुग़ल अफ़सरों के आपसी झगड़े का लाभ उठा कर पिलाजी ने इस प्रदेश के आधे भाग से चौथ वसूल करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। यहीं से इस वंश का उत्थान आरम्भ हुआ। १७३२ ई० में जोधपुर के महाराजा अभय सिंह ने जो मुग़ल सम्राट् के नाम पर गुजरात विजय करना चाहता था धोखे से पिलाजी का वध करवा दिया। किन्तु पिलाजी के भाई महादा जी ने अभय सिंह को मात दी। बड़ौदा का वर्तमान वैभव माहदा जी के कारण है। पिलाजी का पुत्र दम्भा जी उन विरले मराठा सरदारों में से था जो पानी पत की तीसरी लड़ाई से जीवित बच कर आए थे।

दम्भा जी १७३२ से १७७० ई० तक शासन करता रहा। उस के पश्चात् फतह सिंह प्रसिद्ध शासक हुआ जिसने अंग्रेज़ों की सहायता की। १८५७ ई० में खाण्डेराव बड़ौदा का शासक था।

होल्कर

होल्कर वंश की स्थापना मल्हार राव ने की थी। उस के पूर्वज गवाले हुआ करते थे किन्तु मल्हार राव ने अपनी वीरता से बाला जी विश्वनाथ का मन जीत लिया। पेशवा ने उसे पाँच सौ सवारों पर अधिकार प्रदान किया। १७३१ ई० में मल्हार राव को स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। मालवा के मुग़ल सूबेदार के अत्याचारों से तंग आकर मालवा के प्रतिष्ठित लोगों ने जयपुर के राजा सवाई जय सिंह से सहायता के लिये प्रार्थना की जिस ने उन्हें बाजी राव के पास जाने का परामर्श दिया। बाजी राव ने मल्हार राव को इस काम के लिए नियुक्त किया। मल्हार राव ने इस अवसर का लाभ उठाया और शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। १७६६ ई० में मल्हार राव की मृत्यु हो गई। उसका पुत्र खाण्डे राव पहले ही जान दे चुका था। खाण्डे राव का पुत्र मलेराव उस की जागीर का अधिकारी बना किन्तु उसकी भी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् उसकी विधवा अहल्याबाई ने काम काज सम्भाला। अहल्याबाई शान्ति प्रिय स्त्री थी। उस ने अपने राज्य की सुव्यवस्था की, सड़कें और मन्दिर बनवाये। पवित्र धामों पर अब तक उस के नाम से लंगर चलते हैं। वह एक साधवी स्त्री थी जिस का सभी मान करते थे। चोर डाकू भी उसके इलाके में लूट मार मचाने से डरते थे। १७६५ ई० में अहल्याबाई की मृत्यु के पश्चात होल्कर राज्य गणपत राव के हाथ में आ गया। वास्तव में शासन का अधिकार तुलसी बाई की संरक्षता में राजकुमार मल्हार राव को प्राप्त हुआ था। गणपत राव ने १८१८ ई० में अंग्रेज़ों से टक्कर ली किन्तु मात खाई। मल्हार राव ने अंग्रेज़ों से सन्धि कर ली। १८५७ ई० के युद्ध काल में होल्कर राज्य तुकोजी राव द्वितीय के आधीन था जो अंग्रेज़ों का वफ़ादर रहा।

सिन्धिया वंश का संस्थापक रानो जी सिन्धिया था। वहमनी सुल्तानों के काल में उस के वंशजों ने बहुत नाम पाया था। उन का असली नाम कुछ और था जो बिगड़ कर शिन्डे हो गया शिन्डे अपने आप को क्षत्रीय जाति से बताते हैं। औरंगज़ेब के काल में वे मुग़ल दरबार में उच्च पद पर नियुक्त थे। एक शिन्डे सरदार की पुत्री सावित्री का विवाह औरंगज़ेब ने शाहू से किया था।

सिन्धिया

रानो जी का सम्बन्ध इस वंश की एक अन्य शाखा से था। उस का पिता बाला जी विश्वनाथ के यहाँ नौकर था। रानोजी और बाजी राव साथ साथ खेले थे। रानोजी की स्वामी भक्ति से प्रभावित हो बाजी राव ने पेशवा बनने पर उसे उच्च पद प्रदान किया।

रानो जी सिन्धिया के पुत्रों में सब से प्रमुख माधवराव सिन्धिया था। जो महादा जी सिन्धिया के नाम से प्रसिद्ध है। अपनी वीरता से उस ने मुग़ल दरबार में बड़ा नाम पाया और वकील-मुतलिक की पद्वी प्राप्त की। मुग़ल सम्राट् शाह आलम द्वितीय ने राज्य का सब काम उसे सौंप दिया। सिन्धिया ने सम्राट् की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया।

माधवराव सिन्धिया ने राजस्थान का बहुत सा भाग विजय किया। १७६१ ई० में उस की सेना इतनी सुव्यवस्थित हो गई कि किसी भी सम्राट् को उस पर गर्व होता किन्तु पूना सरकार ने सिन्धिया की बढ़ती हुई शक्ति को शंका की दृष्टि से देखा। सिन्धिया के विरुद्ध तुको जी होल्कर को भड़काया गया किन्तु होल्कर की क्षति हुई। माधवराव सिन्धिया पूना दरबार में अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा था कि १७६४ ई० में उसे ज्वर हो गया और कुछ दिन पश्चात् पूना के निकट वह चल बसा।

सिन्धिया वंश की प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। माधवराव के उत्तराधिकारी दौलत राव सिन्धिया ने अंग्रेज़ों से संधि कर ली। उस का उत्तराधिकारी जयाजीराव १८५७ ई० के युद्ध में अंग्रेजों का बफ़ादार रहा।

भोंसले

नागपुर के भोंसले वंश का संस्थापक परसोजी भोंसले था जिस ने पहले पहल औरंगजेब के विरुद्ध वीरता का प्रमाण दिया था। वह शाहू को सहयोग देने वाला पहला मराठा सरदार था। इस वंश का दूसरा प्रसिद्ध सूरमा राघो जी भोंसले हुआ। वह चितपावन ब्राह्मणों के विरोधी दक्षिण दल का नेता था। यह दल न चाहता था कि चितपावन ब्राह्मणों को पेशवा नियुक्त किया जाय। राघोजी स्वयं पेशवा बनना चाहता था किन्तु शाहू ने बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् बालाजी को पेशवा नियुक्त किया। फिर भी राघोजी का मान बना रहा। उस ने तञ्जौर, अरकाट आदि स्थानों में मारके के काम किये। फ्रांसीसियों को सन्धि पर विवश करना उस का प्रमुख कार्य था।

राघो जी भोंसले ने बंगाल में तहलका मचा दिया। बालाजी के साथ सामायिक शत्रुता के पश्चात् दोनों में १७४४ ई० में सन्धि हो गई जिस के अनुसार राघोजी को बंगाल की लूट खसोट के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। १७५० ई० में बंगाल के सूबेदार अली वर्दी खां ने राघो जी को उड़ीसा का प्रांत भेंट किया।

शाहू राघोजी भोंसले के पुत्र माधोजी को गोद लेना चाहता था किन्तु ताराबाई की चाल ने माधोजी को इस सम्मान से वंचित कर दिया। राघोजी ने नये नरेश के प्रति श्रद्धा का प्रमाण दिया। १७५५ ई० में राघोजी की मृत्यु के पश्चात उस का पुत्र जानोजी गद्दी पर बैठा।

एक समय जानोजी ने हैदराबाद के निज़ाम का साथ दिया किन्तु अवसर आने पर वह मराठा सेना से मिल गया। निज़ाम की इस विद्रोह के कारण हार हुई। १७६५ ई० में माधो राव पेशवा और निज़ाम ने मिल कर जानोजी पर आक्रमण कर दिया जिस में जानोजी की हार हुई। १७७७ ई० में जानोजी की मृत्यु के पश्चात

उस का दत्तक पुत्र राघोजी १७८८ ई० में गद्दीपर बैठा। राघोजी की मृत्यु १८१६ ई० में हुई जिस के पश्चात् भोंसले राज्य अप्पा साहब के संरक्षण में आ गया। अप्पा साहब ने २७ मई १८१६ ई० को अंग्रेज़ों से सन्धि कर ली। अगले साल अप्पा साहब ने अंग्रेज़ी दूत जैन्किन्स को क़त्ल कर दिया जिस के फलस्वरूप अंग्रेज़ों ने नागपुर पर आक्रमण किया और २४ दिसम्बर १८१७ ई० को उसे जीत लिया। इस प्रकार नागपुर राज्य अंग्रेज़ी राज्य में सम्मिलित हो गया।

मराठों की नीति

हम मराठा जाति के सामान्य गुणों का वर्णन कर आए हैं। मराठों का व्यवहार शास्त्रोक्त था। युद्ध में प्राप्त समस्त धन पर राज्य का अधिकार था और उसे सरकारी कोष में जमा कराना अति आवश्यक था। शिवाजी का यह आदेश था कि ब्राह्मणों को बन्दी न बनाया जाय, न ही बच्चों और स्त्रियों को किसी प्रकार संताप दिया जाय। यदि शत्रु हार मान ले तो उस के राज्य में लूट मार न की जाय।

कई बार बीजा पुर और मुग़ल वंश की बेग़में मराठों के हाथ पड़ीं किन्तु शिवा जी ने आदर से उन्हें वापिस भेज दिया। शिवाजी .इस्लाम धर्म का मान करता था। उस की सेना में मुसलमानों को ऊँचे ऊँचे पद प्रदान किये जाते थे। फारसी भाषा के अनेक शब्द राज्य परिभाषा में प्रयुक्त होते थे। पेशवा फारसी का ही शब्द है।

जब राज्य उत्सव मनाये जाते थे तो सभी जातियों के लोग निमन्त्रित किये जाते थे। सब साथ बैठ कर खान पान करते थे।

जात पांत का भेद भाव मराठों में न था। उन का मन इन अनुभावों से प्रभावित था कि संसार में कोई ऊँचा नहीं,

कोई नीचा नहीं। भगवान के सम्मुख सब एक समान हैं। गंगा का जल किसी निम्न जातीय व्यक्ति के नहाने से अपवित्र नहीं होता, न ही वायु उस के श्वास से अशुद्ध हो जाती है। पृथ्वी भी उस के पाँव के छू जाने से पलीद नहीं हो जाती।

राज्य व्यवस्था

शिवाजी ने नई प्रथाएँ प्रचलित की। जागीर दारी समाप्त कर दी, राज्य कर्मचारियों को वेतन दिया। पटेल, कुलकर्णि, देशमुख और देशपाण्डे जो किसानों से कर उगाहते थे और प्रांतों और ज़िलों का प्रबन्ध करते थे अपने अत्याचार के कारण बदनाम हो चुके थे, शिवाजी ने उनको हटा दिया।

शिवाजी ने देश को प्रांतों, तार्फों और मौज़ों अर्थात् ग्रामों में विभक्त किया और प्रत्येक इकाई का प्रबन्ध करने के लिये वैतनिक कर्मचारी नियुक्त किये। समस्त भूमि नापी गई और उस पर ३० प्रतिशत कर उपज के अनुसार लगाया गया। तत्पश्चात् कर की मात्रा ४० प्रतिशत कर दी गई।

किसानों को यह कर देने में कभी कष्ट नहीं हुआ। यदि संयोगवश वे कर चुकाने में असमर्थ होते थे तो उन्हें विवश न किया जाता था। अंग्रेजी इतिहासकार ग्रान्ट डफ़ ने यह स्वीकार किया है कि आवश्यकता पड़ने पर कृषकों की धन से भी सहायता की जाती थी। भूमि-कर के अतिरिक्त चौथ, सरदेश मुखी और लूट राज्य की आय के तीन अन्य स्रोत थे।

दक्षिण में प्राचीन काल से देश मुख एक प्रमुख राज्य अधिकारी होता था। उस के आधीन बहुत से गाँव होते थे जिन से वह कर उगाहता था और जिन का वह प्रबन्ध करता था। वह केन्द्रीय सरकार को उत्तरदायी होता था और राज्य दरबार में ग्रामीणों का प्रतिनिधित्व भी करता था। उसे कर की रक़म का दसवाँ भाग वेतन के रूप में मिलता था। यह वेतन देशमुखी कहलाता

उस का दत्तक पुत्र राघोजी १७८८ ई० में गद्दीपर बैठा। राघोजी की मृत्यु १८१६ ई० में हुई जिस के पश्चात् भोंसले राज्य अप्पा साहब के संरक्षण में आ गया। अप्पा साहब ने २७ मई १८१६ ई० को अंग्रेज़ों से सन्धि कर ली। अगले साल अप्पा साहब ने अंग्रेज़ी दूत जैन्किन्स को कत्ल कर दिया जिस के फलस्वरूप अंग्रेज़ों ने नागपुर पर आक्रमण किया और २४ दिसम्बर १८१७ ई० को उसे जीत लिया। इस प्रकार नागपुर राज्य अंग्रेज़ी राज्य में सम्मिलित हो गया।

मराठों की नीति

हम मराठा जाति के सामान्य गुणों का वर्णन कर आए हैं। मराठों का व्यवहार शास्त्रोक्त था। युद्ध में प्राप्त समस्त धन पर राज्य का अधिकार था और उसे सरकारी कोष में जमा कराना अति आवश्यक था। शिवाजी का यह आदेश था कि ब्राह्मणों को बन्दी न बनाया जाय, न ही बच्चों और स्त्रियों को किसी प्रकार संताप दिया जाय। यदि शत्रु हार मान ले तो उस के राज्य में लूट मार न की जाय।

कई बार बीजा पुर और मुग़ल वंश की बेग़में मराठों के हाथ पड़ीं किन्तु शिवा जी ने आदर से उन्हें वापिस भेज दिया। शिवाजी इस्लाम धर्म का मान करता था। उस की सेना में मुसलमानों को ऊँचे ऊँचे पद प्रदान किये जाते थे। फारसी भाषा के अनेक शब्द राज्य परिभाषा में प्रयुक्त होते थे। पेशवा फारसी का ही शब्द है।

जब राज्य उत्सव मनाये जाते थे तो सभी जातियों के लोग निमन्त्रित किये जाते थे। सब साथ बैठ कर खान पान करते थे।

जात पांत का भेद भाव मराठों में न था। उन का मन इन अनुभावों से प्रभावित था कि संसार में कोई ऊँचा नहीं,

कोई नीचा नहीं। भगवान के सम्मुख सब एक समान हैं। गंगा का जल किसी निम्न जातीय व्यक्ति के नहाने से अपवित्र नहीं होता, न ही वायु उस के श्वास से अशुद्ध हो जाती है। पृथ्वी भी उस के पाँव के छू जाने से पलीद नहीं हो जाती।

राज्य व्यवस्था

शिवाजी ने नई प्रथाएँ प्रचलित की। जागीर दारी समाप्त कर दी, राज्य कर्मचारियों को वेतन दिया। पटेल, कुलकर्णि, देशमुख और देशपाण्डे जो किसानों से कर उगाहते थे और प्रांतों और ज़िलों का प्रबन्ध करते थे अपने अत्याचार के कारण बदनाम हो चुके थे, शिवाजी ने उनको हटा दिया।

शिवाजी ने देश को प्रांतों, तार्फों और मौज़ों अर्थात् ग्रामों में विभक्त किया और प्रत्येक इकाई का प्रबन्ध करने के लिये वैतनिक कर्मचारी नियुक्त किये। समस्त भूमि नापी गई और उस पर ३० प्रतिशत कर उपज के अनुसार लगाया गया। तत्पश्चात् कर की मात्रा ४० प्रतिशत कर दी गई।

किसानों को यह कर देने में कभी कष्ट नहीं हुआ। यदि संयोग-वश वे कर चुकाने में असमर्थ होते थे तो उन्हें विवश न किया जाता था। अंग्रेज़ी इतिहासकार ग्रान्ट डफ़ ने यह स्वीकार किया है कि आवश्यकता पड़ने पर कृषकों की धन से भी सहायता की जाती थी। भूमि-कर के अतिरिक्त चौथ, सरदेश मुखी और लूट राज्य की आय के तीन अन्य स्रोत थे।

दक्षिण में प्राचीन काल से देश मुख एक प्रमुख राज्य अधिकारी होता था। उस के आधीन बहुत से गाँव होते थे जिन से वह कर उगाहता था और जिन का वह प्रबन्ध करता था। वह केन्द्रीय सरकार को उत्तरदायी होता था और राज्य दरबार में ग्रामीणों का प्रतिनिधित्व भी करता था। उसे कर की रक़म का दसवाँ भाग वेतन के रूप में मिलता था। यह वेतन देशमुखी कहलाता

था। सरदेशमुख का दर्जा देशमुख से ऊँचा होता था। शिवा जी अपने आप को प्राचीन राजाओं का उत्तराधिकारी समझता था, इस लिये जो इलाके उस के आधीन न थे उन से वह सरदेशमुखी वसूल करता था। चौथ भी इसी प्रकार का कर था। जो प्रदेश चौथ या सरदेश मुखी देना स्वीकार करते थे उन की लूट मार न की जाती थी। आक्रमणकारियों से भी उन की रक्षा की जाती थी।

औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की पदवी प्रदान की थी किन्तु अपने इलाका से कर वसूल करने का अधिकार न दिया था। औरंगजेब के उत्तराधिकारी दुर्बल थे। वे मराठों से सहायता लेना चाहते थे। इस लिए मराठों को सम्राट की ओर से इस प्रकार राज्य कर का अंश प्राप्त करने का अधिकार दिया गया।

जिन इलाकों से सरदेशमुखी वसूल की जाती थी वहाँ का प्रबन्ध मराठों के ज़िम्मे था। सरदेशमुखी के बदले में सम्राट की सहायतार्थ सेना भेजना ज़रूरी न था। सरदेशमुखी की मात्रा १० प्रतिशत होती थी।

जिन इलाकों से चौथ वसूल की जाती थी उनके बदले १५००० घुड़सवारों की सहायता देनी पड़ती था।

जिस समय मुग़ल सम्राट् की शक्ति क्षीण हो गइ, मराठे जिस इलाके से भी चाहते थे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करते थे।

व्यापारियों से भी कर वसूल किया जाता था।

मराठों के दीवानी बन्दोबस्त का शिलाधार ग्राम होता था। ग्राम का मुखिया पटेल कहलाता था। यह उपाधी पुश्त दर पुश्त चलती थी और बेंची जा सकती थी। पटेल का काम लगान उगाहना, ग्राम में शाँति स्थापित करना, ग्रामीणों के आपसी झगड़े निपटाना और उन के आराम के साधन जुटाना था। वह

मराठों का दीवानी बन्दोबस्त

साधारण अपराधों के लिए दण्ड भी दे सकता था। दीवानी मामले ग्राम की पञ्चायत सुलझाती थी। वह दीवानी अभियोगों का निर्णय करती थी। पञ्चों को वेतन मिलता था। अपना कर्त्तव्य पालन न करने पर पञ्चों को दण्ड दिया जाता था।

पटेल की सहायता के लिए कुलकर्णि होता था जो हिसाब किताब रखता था। पाँच प्रकार के वही खाते ग्राम में रखे जाते थे। १. भूमि के विषय में। २. खेतों की मिलकियत के विषय में। ३. ग्राम निवासियों के विषय में। ४. लगान की किस्तों के विषय में। ५. लगान का विस्तार पूर्वक लेखा।

कुलकर्णि को या तो वेतन मिलता था या उसे भूमि प्रदान की जाती थी। वह ग्रामीणों के पत्र आदि लिख कर अपनी आय बढ़ाता था।

प्रत्येक ग्राम में पटेल के आधीन बारह बलूत अर्थात् कार्य कर्त्ता होते थे—: १. बढ़ई २. लोहार ३. धोबी ४. नाई ५. कुम्हार ६. सुनार ७. पुजारी ८. झींवर ६: मोची १०. रस्सी बाटने वाला अर्थात् कूच बन्द ११. चौकीदार १२. मुल्ला। इनके अतिरिक्त एक ज्योतिषी भी होता था। इन सब को उपज के अनुसार मैरास मिलती थी।

पटेल के ऊपर सूबेदार और सूबेदार के ऊपर सर सूबेदार होता था।

लगान प्रायः उपज का एक चौथाई भाग होता था और समस्त ग्राम पर इकट्ठा लगाया जाता था। बाला जी बाजीराव ने लगान के विषय में महत्त्वपूर्ण सुधार किये। उसकी लगान विधि को "कमाल" कहा जाता है।

ग्रामीणों के अधिकारों की रक्षा के हेतु देशमुख और देशपाण्ड्य होते थे और सरकार के हित की रक्षा करने के लिए फड़नवीस

और पोतनवीस थे। यदि कोई सूबेदार दुराचरण करता था तो ये पेशवा को सूचना भेजते थे।

ग्राम के प्रबन्ध के लिए भी कर्मचारी होते थे जिन्हें पुलीस मैन कहा जा सकता है। इनके साथ साथ "तपसनवीस" अर्थात् गुप्तचर होते थे जो अपराधियों की खोज करते थे। यह प्रबन्ध इतना कुशल था कि ग्राम में विरले ही कहीं कोई अपराध होता था।

मराठों का यह नियम था कि जिस प्रदेश को वे विजय करते थे उसमें अपनी शासन पद्धति साथ साथ प्रचलित करते जाते थे। लगातार युद्ध करते रहने पर भी मराठा राज्यों में समृद्धि और शक्ति रही और सांस्कृतिक उन्नति होती रही।

शिवाजी एकाधिपति था परन्तु वह अपने मन्त्रियों के परामर्श से राजकार्य चलाता था। उसके मन्त्रिमण्डल को अष्टप्रधान कहते हैं।

राज्याध्यक्ष

पेशवा के अतिरिक्त जो सब से बड़ा राज्याधिकारी होता था सात मन्त्री और थे। अमात्य अर्थात् कोषाध्यक्ष, राज्यमन्त्री जो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पेशवा से भी अधिक शक्तिशाली बन गया, सुमन्त अर्थात् परादशिक मन्त्री, सचिव अर्थात् गृहमन्त्री, दानाध्यक्ष जिस के आधीन मन्दिरों, मस्जिदों और अन्य धार्मिक संस्थाओं का प्रबन्ध होता था, सेनापति और न्यायाधीश। प्रान्तों के सूबेदारों को भी आदेश था कि वे अपने मन्त्री मण्डल की सहायता से राज्य कार्य चलाएें। उन के मन्त्रिमण्डल में भी आठ व्यक्ति होते थे।

सेना

शिवाजी एक अति कुशल योद्धा था। उसने अपनी सेना की नये सिरे से व्यवस्था की। जागीरदारी का उन्मूलन कर उस ने सैनिकों को वेतन देना आरम्भ किया। सिलाहदार प्रथा को भी हटा दिया। सिलाहदार स्वतन्त्र रूप से सेना रखते थे और स्वयं उसका

खर्च देते थे। जब अधिपति को उन की सेवाओं की आवश्यकता होती थी तो वे उस से नियत धन वसूल करते थे।

शिवाजी ने सेना में भिन्न भिन्न दर्जे बनाये। सेना का मुख्य अध्यक्ष सेनापति होता था।

शिवाजी ने बहुत से दुर्ग बनवाये। ये दुर्ग सुरक्षित स्थानों पर बने थे और इन का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। किलेदार के अतिरिक्त वहाँ दो अन्य कर्मचारी रहते थे जिनको किलेदार के समान ही अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार किलेदार के विद्रोह करने का कोई भय न होता था।

जिस समय सेना रण क्षेत्र में होती थी तो स्त्रियाँ सैनिकों के साथ न जाती थीं। और भी कई प्रकार से सेना में अनुशासन स्थापित करने का प्रयास किया गया था। लूट के माल पर सैनिकों का कोई अधिकार न होता था।

हाथीवान, पैदल और घुड़सवारों के अतिरिक्त शिवाजी ने एक बलिष्ट नावसेना की स्थापना की। पश्चिमी तट पर मराठा नाविक किसी भी सामुद्रिक शक्ति से लोहा ले सकते थे। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक पश्चिमी तट पर मराठों का बोल बाला रहा और अंग्रेज़, पुर्तगाली तथा फ्राँसीसी उन का कुछ न बिगाड़ सके।

मराठा युद्ध शैली को गुरेला युद्ध कहते हैं। मराठे शत्रु को असहाय देखकर उस पर आक्रमण करते थे। वे घात लगाये बैठे रहते थे और अवसर देखकर प्रहार करते थे। वे खुले मैदान में न लड़ते थे।

बालाजी बाजी राव ने इस युद्ध विधि में परिवर्तन कर दिया। उसने सेना को दीक्षा देने के लिए फ्राँसीसी भरती किये और सेना की व्यवस्था आधुनिक ढंग पर की। अब मराठे खुले मैदानों में युद्ध

करते थे। बाजी राव प्रथम ने जागीरदारी की प्रथा पुनः प्रचलित कर दी थी। स्त्रियों को युद्ध में साथ ले जाने का रिवाज भी हो गया था। अनुशासन की कमी और आधुनिक युद्ध विधि को अपनाना मराठों के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ।

शिवाजी की सेना में एक लाख पैदल, ४० हज़ार के लगभग घुड़सवार और एक हज़ार से ऊपर जंगी हाथी थे। २५ सिपाहियों की एक टोली होती थी जिन पर एक हवलदार होता था। जुमलादार के नीचे पांच हवलदार और हज़ारी के नीचे दस जुमलादार होते थे। पंच हज़ारियों के ऊपर सर-ए-नौबत होता था।

शिवाज़ी कलाकारों और साहित्यकारों का परिपोषण करता था। राम दास का जो मराठी का प्रसिद्ध कवि था शिवाजी बहुत सम्मान करता था। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि भूषण पर उसकी कृपा थी। शिक्षा के लिये कर की एक राशि नियत थी।

कला और साहित्य

शिवाजी के पश्चात् भी मराठा दरबार में साहित्य और कला को परिपोषण मिलता था। गवालियर, इन्दौर, बड़ौदा, आदि मराठों की कला प्रियता के सजीव उदाहरण हैं। अहल्याबाई ने सोमनाथ और बनारस के विश्वनाथ के मन्दिर की पुनः स्थापना करवाई। उज्जैन का महाकालेश्वर का मन्दिर भी मराठों ने ही दोबारा बनवाया था।

यह सच है कि मराठों को लड़ने भिड़ने से अवकाश नहीं मिला फिर भी यह बात सराहनीय है कि वे शिक्षा, कला और साहित्य की ओर से उदासीन नहीं हुये।

परिच्छेद २५

राजपूत तथा सिक्ख

औरंगज़ेब और राजपूत— राठौर

औरंगज़ेब की नीति राजपूतों की स्वामी भक्ति के प्रति घातक सिद्ध हुई । राजा जसवन्त सिंह राठौर जो १६३८ ई० में मारवाड़ की गद्दी पर बैठा, इस नीति का पहला शिकार बना। १६३५ ई० में गोंडवाना के जुझार सिंह को पराजित कर जसवन्त सिंह ने अपनी,स्वामी भक्ति और वीरता का प्रमाण दिया था जिस के पारितोषिक के रूप में दारा शिकोह ने जो शाहजहाँ का उत्तराधिकारी घोषित हुआ था, उसे मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। १६५७ ई० में शाहजहाँ रुग्ण हो गया। उस समय उसका पुत्र शुजा बङ्गाल में था, औरंगज़ेब दक्षिण में और मुराद गुजरात में। पिता की बीमारी का समाचार पाते ही ये तीनों सिंहासन प्राप्त करने के अभिप्राय से राजधानी की ओर बढ़े।

दारा ने जसवन्तसिंह को एक भारी सेना देकर दक्षिण की ओर जाने का आदेश दिया। औरंगज़ेब ने मुराद को झांसा देकर अपने साथ सम्मिलित कर लिया। उन दोनों की संयुक्त सेना का मुकाबला जसवन्त सिंह ने किया। इस ऐतिहासिक संग्राम का वर्णन बर्नियर ने किया है। औरंगज़ेब की सेना में आधुनिक सामरिक विद्या के मर्मज्ञ फ्रैंच सेनापति थे, उस के पास भारी तोप खाना था। इतनी शक्ति को देखकर जसवन्ताधीन मुग़ल सेना घबरा कर क्षेत्र छोड़ गई।

जसवन्त की अपनी सेना में तीस हज़ार राजपूत थे। उस ने डट कर मुकाबला किया और औरंगज़ेब और मुराद की हत्या होते होते बची। जसवन्त की सेना को भी भारी क्षति

पहुँची थी । अगले दिन वह संग्राम करने योग्य न था । उस ने जोधपुर की राह ली किन्तु उस की वीर पत्नी ने दुर्ग के द्वार बन्द कर दिये और कहा, "रण से भागे हुए को इस दुर्ग में स्थान नहीं ।" किन्तु जसवन्त अन्धी वीरता का उपासक न था । मुग़ल सेना का व्यवहार देख कर वह व्यर्थ ही प्राण गँवाने को तैयार न था । उस के मन में प्रतिशोध की ज्वाला भड़क रही थी ।

औरंगज़ेब विजय प्राप्त कर आगरे में दाखिल हुआ । उस ने जसवन्त सिंह से मैत्री स्थापित करने के अभिप्राय से उसे निमन्त्रित किया । जसवन्त ने इसे प्रतिशोध का स्वर्ण अवसर समझ कर स्वीकार कर लिया । खजवा के स्थान पर औरंगज़ेब और शुजा के आपसी युद्ध में उस ने औरंगज़ेब का साथ दिया किन्तु उस का अभिप्राय शाहजहाँ के निकट पहुँच कर उसे मुक्त कराना था । उसे आशा थी कि दारा इस अवसर का लाभ उठायेगा किन्तु उसकी आशा बर न आई ।

घरेलू झगड़ों से निपट कर औरंगज़ेब ने अपने पुत्र मुअज़्ज़म सहित जसवन्तसिंह को दक्षिण में शिवाजी को परास्त करने के हेतु भेजा । शिवा जी ने मुअज़्ज़म और जसवन्त को सम्राट् से विद्रोह करने के लिये तैयार कर लिया । यह समाचार पाकर औरंगज़ेब ने जसवन्त को काबुल भेज दिया जहाँ अफ़ग़ानों ने विद्रोह कर दिया था ।

पृथ्वीसिंह जिसे जसवन्त ने मारवाड़ का शासन सौंप दिया था, पिता की भाँति शूरवीर था । कहते हैं औरंगज़ेब ने उसे विषैला खिलअत प्रदान किया जिसे पहनते ही राजकुमार के शरीर में ज्वाला भड़क उठी और वह इस यातना में तड़प-तड़प कर मर गया ।

काबुल के प्रतिकूल जलवायु ने जसवन्त सिंह के अन्य दो

पुत्रों की जान ले ली । पुत्रों की मृत्यु का शोक जसवन्त सहन न कर सका ।

जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् (१६७६ ई०) उस की पत्नी ने जो मेवाड़ की राजकुमारी थी जसवन्त के उत्तराधिकारी अजीत को जन्म दिया । अजीत की रक्षा राजपूतों के लिये जन्म मरण का प्रश्न बन गई ! औरंगज़ेब उसे प्राप्त करना चाहता था किन्तु वीर दुर्गादास राठौर और मारवाड़ के अन्य सरदारों ने नन्हे राजकुमार को मेवाड़ भिजवा दिया ।

औरंगज़ेब ने राजस्थान पर चढ़ाई की किन्तु तीस वर्ष लगातार युद्ध करते रहने पर भी मुग़ल राजपूतों को परास्त न कर सके । इसी के अन्तर्गत औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई ।

औरंगज़ेब के जीवन काल में ही उस के पुत्रों में सिंहासन प्राप्ति के लिए संघर्ष आरम्भ हो गए थे । अकबर जिसे औरंज़ेब ने राजपूतों को परास्त करने के लिये भेजा था राजपूतों से मिल गया था, किन्तु औरंगज़ेब की चतुराई ने राजपूतों के दिलों में शंका उत्पन्न कर दी थी जिस से बहुत से सरदार उसे छोड़ कर चले गये थे । दुर्गादास ने उसका अन्त समय तक साथ दिया और उसे सुरक्षित महाराष्ट्र में पहुँचा दिया । राठौरों ने मुग़ल सेना को परास्त कर चौथ देने पर विवश किया ।

औरंगज़ेब के अन्य तीन पुत्रों में बहादुर शाह सिंहासन प्राप्त करने में सफल हुआ । बहादुर शाह में राठौरों का विरोध करने की सामर्थ्य न थी । उस ने अजीतसिंह से सन्धि कर उसे दक्षिण में भेज दिया । बहादुर शाह के हनन के पश्चात् फरुखसियर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा किन्तु १७१६ ई० में उस का भी वध कर दिया गया । १७२० ई० में अजीत सिंह ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी और मारवाड़ को जो लगातार क्षत-

विक्षत होने के कारण दुर्बल और दरिद्र हो गया था, पुनः व्यवस्थित किया ।

नये सम्राट् मुहम्मद शाह ने अजीत सिंह को परास्त करने की असफल चेष्टा की । अन्त में उसे राठौरों से सन्धि करनी पड़ी । अजीत सिंह का पुत्र अभयसिंह सम्राट् के दरबार में उपस्थित हुआ । १७२४ ई० में अजीत सिंह की अकाल मृत्यु हो गई ।

अभय सिंह जिस ने १७२४ से १७५० ई० तक राज्य किया मारवाड़ का अन्तिम योग्य शासक सिद्ध हुआ । १७५० से १८०३ ई० तक मारवाड़ गृहयुद्धों से पीड़ित रहा और कुशासन और भ्रष्टाचार ने इस वीर भूमि को कलंकित कर दिया । मान सिंह जिस ने १८०३ से १८४३ ई० तक राज्य किया ऐसा शासक था जिस के व्यवहार को देख कर समस्त राजस्थान लज्जित है ।

कछवाहा

अम्बर एक छोटा सा राज्य था जिस का महत्त्व मुग़लों के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर बहुत बढ़ गया । जय सिंह जो मिर्ज़ा राजा के नाम से प्रसिद्ध है औरंगज़ेब का विश्वासपात्र था । जसवन्त सिंह को काबुल भेजने के प्रश्चात् औरंगज़ेब ने जय सिंह को और मुअज्ज़म को भारी सेना देकर शिवजी को परास्त करने के लिये भेजा । शिवजी के साथ सन्धि करने से जो मान उसे प्राप्त हुआ था वह वीर मराठा के औरंगज़ेब की कैद से भाग निकलने पर सम्राट् के रोष में बदल गया और उस ने मिर्ज़ा राजा को उस के पुत्र के हाथों विष दिलवाकर सुरपुर पहुँचा दिया ।

१६६३ ई० में अम्बर की गद्दी को दूसरे जय सिंह ने सुशोभित किया जिसे सवाई जय सिंह कहते हैं । जयपुर नगर की स्थापना का श्रेय उसी को है । इस सुन्दर नगर को

बङ्गाल के विद्याधर ने आयोजित किया था। यह मध्यकालीन भारत का पहला नगर था जिस में सड़कें लाम्बिक हैं

जय सिंह इतिहास में नक्षत्र शास्त्र और इतिहास के ममज्ञ के रूप में प्रसिद्ध है। पुर्तगाल के इम्मैनुएल से नक्षत्र विद्या पर उस ने बहुत सा साहित्य प्राप्त किया। दिल्ली, उज्जैन, मथुरा, बनारस और जयपुर के जन्तर-मन्तर अर्थात् नक्षत्र गृह उसी के बनवाये हुए हैं। जिस समय मेवाड़ और मारवाड़ गृह युद्धों से क्षत-विक्षत हो रहे थे जयसिंह अम्बर को विस्तृत और शक्तिशाली बनाने में जुटा हुआ था। उस ने इस राज्य का विस्तार साम्भर झील से यमुना तक किया। जनता के हित के बहुत काम किये। कारवाँ सराय, छायादार सड़कें, कुएँ और सदाव्रत उस की देन थे। हिन्दी का प्रसिद्ध कवि बिहारी उसकी कृपा का पात्र था, जिसे जयसिंह ने प्रति दोहे के लिये एक स्वर्ण मुद्रा प्रदान की थी।

औरंगज़ेब की मृत्यु पर उस ने आज़म का साथ दिया था जिस के कारण बहादुर शाह उस से रुष्ट था। किन्तु अम्बर को परास्त करने का संकल्प लेकर भी वह उसे प्राप्त न कर सका। आखिर उसे जय सिंह से सन्धि करनी पड़ी।

मुहम्मद शाह के काल में वह क्रमशः आगरा और मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ। १७३६ ई० में नादर शाह के आक्रमण के समय उस ने उदासीनता का प्रयोग किया और मराठा शक्ति का उत्कर्ष होते देख बाजीराव पेशवा से सन्धि कर ली। जय सिंह की मृत्यु के पश्चात् १७४३ ई० से लेकर १८१८ ई० तक जयपुर भ्रष्टाचारी और अयोग्य शासकों के आधीन रहा। जयपुर का जगत सिंह और मारवड़ का मान सिंह जो समकालीन थे मेवाड़ की कृष्णा कुमारी के वलिदान से कलंकित हैं।

बून्दी चौहान राजपूतों का गढ़ था जो किसी समय समस्त भारत

चौहान

पर छाये हुए थे। उन के शौर्य की गाथाएँ राजस्थानी चारणों के संगीत की जान हैं। बून्दी की स्थापना का श्रेय राव देव को है। बून्दी के प्रसिद्ध राव सुर्जन मल के साथ अकबर ने सन्धि की जिस की शर्तें बून्दी राजाओं के आत्म गौरव की द्योतक हैं। बून्दी राज्य उस समय चित्तौड़ के राज्य को खिराज देता था। बून्दी के छत्तरसाल ने सामूगढ़ के युद्ध में दारा का साथ दिया, यद्यपि वह औरंगज़ेब के आधीन दक्षिण में सेनापति रह चुका था। इसी क्षेत्र में उस ने वीर गति पाई।

उम्मीद सिंह (१७४३—१८०४ ई०) के काल में बून्दी में गृह युद्ध आरम्भ हो गए और आखिर बून्दी राज्य को अनुशासन स्थापित करने के लिए अंग्रेज़ों की सहायता लेनी पड़ी। अंग्रेज़ों के साथ १८१७ ई० में सन्धि हुई।

शिशोदिया

सांगा का वंशज राणा राज सिंह १६५२ ई० में गद्दी पर बैठा। उस ने मुग़लों के आपसी युद्ध में दारा शिकोह का साथ दिया था इसलिये औरंगज़ेब उस का विरोधी था। जसवन्त सिंह के पुत्र को शरण देकर राज सिंह ने औरंगज़ेब को चुनौती दी। औरंगज़ेब ने हिन्दुओं पर पुनः जज़िया लगा दिया था। राज सिंह ने उसे पत्र लिखा जिस का भाव यह था : स्वामी भक्त भी अन्याय का विरोध करने को तैयार हो सकते हैं। इस पत्र से भी औरंगज़ेब चिढ़ गया था। शिवा जी ने भी सम्राट् को इस विषय में पत्र लिखा था। राज सिंह ने सम्राट् के सम्मान पर एक इस से भी बड़ा आघात किया था।

औरंगज़ेब मारवाड़ में स्थित रूपनगर की राजकुमारी से विवाह करने का इच्छुक था, किन्तु वह राज सिंह से प्रेम करती थी। जिस समय सम्राट् की सेना राजकुमारी

को प्राप्त करने आ रही थी उस ने राज सिंह को निमन्त्रित किया और प्रतापी राणा उस का अवरोहण कर लाया ।

औरंगज़ेब अपने पुत्रों सहित एक महान् सेना लेकर मेवाड़ की ओर बढ़ा । उस का पुत्र अकबर राजपूतों के घेरे में आ गया किन्तु राज सिंह के पुत्र जय सिंह ने उसे सुरक्षित चित्तौड़ पहुँचा दिया जिस पर मुग़ल अधिकार प्राप्त कर चुके थे ।

१६८० ई० में औरंगज़ेब के सेनापति दिलेरखाँ के राजपूतों ने छक्के छुड़ा दिये । कहते हैं औरंगज़ेब को भाग कर जान बचानी पड़ी ।

राजपूतों के हौसले बढ़ गये और उन्होंने दयाल शाह के आधीन मालवा का रुख़ किया । सारंगपुर, दीवास, सिरोज, मांडू, उज्जैन, चन्देरी और नर्मदा और बेतवा के बीच का इलाका जी भर कर लूटा । भारत के इतिहास में पहली बार राजपूतों ने वे निकृष्ट काम किये जो धर्मान्ध मुस्लिम सुल्तानों ने किये थे ।

दयाल शाह ने चित्तौड़ भी प्राप्त कर लिया और मारवाड़ की ओर राठौरों की सहायता के लिये बढ़ा । राठौरों और शिशोदियों ने मिल कर न केवल औरंगज़ेब को परास्त किया बल्कि अकबर से मिलकर सम्राट् को पद विहीन करने का षड़यन्त्र रचा । औरंगज़ेब ने यह षड़यन्त्र सफल नहीं होने दिया ।

उसी वर्ष राज सिंह की मृत्यु हो गई और जय सिंह ने सिंहासन आरोहण किया । जय सिंह उदयपुर को विभूषित करने के लिये प्रसिद्ध है । उस ने अपने नाम पर एक अनुपम झील बनवाई जिस ने उदयपुर को चार चान्द लगा दिये ।

जय सिंह के पश्चात् १६६८ से १७१० ई० तक मेवाड़ पर अमर सिंह का अधिकार रहा । इस के पश्चात् राणा राज सिंह द्वितीय की मृत्यु तक अर्थात् १७६२ ई० तक मेवाड़ ने बहुत शक्ति प्राप्त कर ली किन्तु अगले शासक राणा अरि सिंह के

काल में गृह युद्ध आरम्भ हो गए। उस के उत्तराधिकारी उदय सिंह ने मराठों के बार बार आक्रमणों से तंग आकर अंग्रेज़ों से सन्धि कर ली। कृष्णा कुमारी जो जयपुर नरेश जगत सिंह और मारवाड़ नरेश मान सिंह के द्वन्द्व का कारण थी उसी की पुत्री थी।

राजपूतों के और भी कई राज्य थे। एक एक कर इन सब ने उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेज़ों से सन्धि कर ली।

सिक्खों का उत्थान

गुरु नानक, जिनका जन्म १४६९ ई० में हुआ, धार्मिक सुधारकों की उस श्रृखंला की कड़ी थे जिसका प्रारम्भ महात्मा बुद्ध से होता है। उन्होंने महात्मा बुद्ध की भाँति साधारण जनता की भाषा में धर्म प्रचार किया। गुरु नानक के सिद्धान्त सरल और आडम्बर रहित थे। यहाँ तक कि वे किसी पृथक् सम्प्रदाय की स्थापना भी न करना चाहते थे। निराकार भगवान की उपासना, धार्मिक जीवन, सहिष्णुता ये ही उनके नियम थे। गुरु नानक के शिष्य ही सिक्ख कहलाए।

सिक्खों को दसवें गुरु श्री गोबिन्दसिंह ने एक पंथ का रूप दिया। गुरु गोबिन्दसिंह ने खालसा की स्थापना की जिस का तात्पर्य यह है कि भगवान मनुष्य समाज में निवास करता है। गुरु और खालसा एक हैं। यह एक ऐसा विलक्षण नियम है जो किसी भी जाति में नए प्राण डाल सकता है। सिक्ख तो पहिले ही एक सजीव और सशक्त जाति थे।

पंजाब

गुरु नानक का जन्म पंजाब में हुआ था। यद्यपि उन्होंने समस्त भारत और विदेशों में भी प्रचार किया फिर भी सिख पन्थ केवल पंजाब में ही पराकाष्ठा पर पहुँचा।

पंजाब की सीमाएँ बदलती रही हैं। किसी समय काबुल, कन्धार और वह समस्त देश जिसे अफ़ग़ानिस्तान कहते हैं पंजाब के अन्तर्गत था। पूर्व में यमुना तक और दक्षिण में राजस्थान के मरुस्थल तक इसका विस्तार था। सिक्ख सम्राज्य की लगभग यही सीमाएँ थीं। उत्तर में काश्मीर पर भी सिक्खों का अधिकार था।

पंजाब का जलवायु गर्मियों में गर्म और आर्द्र है, सर्दियों में शीत और खुश्क। अधिकतर भाग मैदान है जिसका तल समुद्र तल के बराबर है। उत्तर में दो दो तीन तीन मील ऊँची चोटियाँ हैं। पहाड़ी इलाके में फल, इमारती लकड़ी और ऊन उत्पन्न होती है। कहीं कहीं खनिज पदार्थ भी पाये जाते हैं। मैदानों में भूमि उर्वर होने के कारण गेहूँ, गन्ना और रुई की उपज होती है।

शिल्पकारी में भी पंजाब अति उन्नत रहा है।

पंजाब के लोग

जैसा हम देख आये हैं उत्तर से आने वाली जातियों और देशीय जनता के युद्धों का अखाड़ा यही प्रदेश रहा है। आक्रमणकारियों के प्रहार पहले पहल पंजाब को ही सहन करने पड़ते थे। लगातार संघर्ष का जीवन बिताते रहने से पंजाब वासियों के आचार और स्वभाव में एक विशेष प्रकार की अक्खड़ता आगई है जिसका प्रतीक भारत में तो क्या किसी देश में भी मिलना सुगम नहीं।

औरंगज़ेब के काल तक पश्चिम से हूण, सिथियन, तुर्क, मुगल-अनेक जातियाँ आ आकर यहाँ आबाद होती रहीं। इनके मंथन से पंजाब की सभ्यता, आचार, व्यवहार और प्रथाएँ बनीं जिन पर किसी विशेष जाति की छाप नहीं।

साहित्य और कला की उन्नति के लिए यह वातावरण अनुकूल न था फिर भी पंजाब ने साहित्य और कला के अद्भुत नमूने प्रस्तुत किये हैं।

पंजाब की सब से बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ धार्मिक सिद्धान्त चाहे बौद्ध मत के थे चाहे इस्लाम के किसी सम्प्रदाय का रूप धारण न करके सामन्य जनता की जीवन शैली का भाग बन गये। यह कोई साधारण प्रक्रिया नहीं है।

सिक्ख गुरु

गुरु नानक सिक्खों के पहले गुरु थे और गुरु गोबिन्दसिंह अन्तिम। नानक और उन के पश्चात् हुए तीन गुरुओं—गुरु अंगद, गुरु अमर दास, गुरु रामदास का मुग़ल सम्राट् बहुत मान करते थे। गुरु रामदास को अमृतसर के स्थान पर मुग़ल सम्राट की ओर से कुछ भूमि प्रदान की गई थी। जिस पर उन्होंने एक तालाब बनाया जहाँ अब दरबार साहब स्थित है।

पाँचवें गुरु अर्जन देव १५८१ ई० में गद्दी पर बैठे। इन्हों ने गुरु ग्रन्थ साहब का संग्रह किया और सिक्खों को संगठित कर एक व्यवस्थित राज्य की स्थापना की। पंजाब के सरकारी कोषाध्यक्ष से विवाद हो जाने पर लाहौर सूबेदार ने उन्हें बन्दी बना लिया। कारागार में ही इनकी मृत्यु हुई।

गुरु हर गोबिन्द पिता के बलिदान के समय (१६०६ ई०) केवल ग्यारह वर्ष के थे। वे पहले गुरु थे जिन्हों ने तलवार संभाली और सिक्खों को एक सैनिक दल बनाया। उनके पास ८०० घोड़े और ३०० घुड़सवार थे। ६० बन्दूकची उनकी सवारी के साथ चलते थे। वे जहाँगीर के मित्र थे किन्तु तत्पश्चात् सम्राट् ने रुष्ट होकर उन्हें ग्वालियर के किले में कैद कर दिया। फिर लोगों की उनके प्रति श्रद्धा देख उन्हें मुक्त कर दिया गया। अब सिक्ख मुग़लों के विरोधी बन गए। मुगल सेनापति पैण्डे खाँ को सिक्खों ने भारी पराजय दी।

गुरु हरगोबिन्द सिक्खों के इतने प्रिय थे कि उन के अन्तिम संस्कार के समय (१६४५ ई०) दो सिक्ख उन के शव के साथ जल कर

मर गये । सातवें गुरु हरराय जो वहाँ उपस्थित थे आगे बढ़े और उन्होंने अन्य सिक्खों को आत्म बलिदान करने से रोका ।

नौवें गुरु तेग़ बहादुर उस बलिदान के लिये प्रसिद्ध हैं जो उन्हों ने काश्मीर के ब्राह्मणों की मान रक्षा के हेतु किया । कहते हैं कि औरंगजेब इन पण्डितों को संताप देकर मुसलमान बनाना चाहता था। वे गुरु तेग़ बहादुर के पास सहायता के लिए पहुँचे । गुरु ने औरंगज़ेब को लिखा "मुग़ल सम्राट मुझे मुसलमान बनाने का प्रयत्न करे । यदि वह सफल हो गया तो समस्त पञ्जाब मुसलमान बन जायगा ।"

पिता के बलिदान के समय गुरु गोबिन्द सिंह बालक ही थे। उन्होंने कुछ वर्ष शिक्षा प्राप्त करने में बिताए। फिर सतलुज और यमुना के बीच कई दुर्ग स्थापित किये और पहाड़ी रजवाड़ों पर अपना प्रभुत्व जमाया ! उन की सहायता के हेतु गुरु जी ने मुग़ल सेना का मुकाबला किया और उसे खदेड़ दिया।

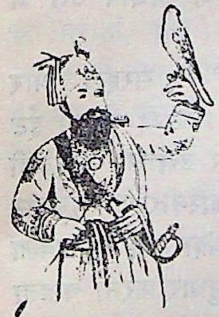

गुरु गोबिन्द सिंह
(१६७५–१७०८ ई०)

१७०१ ई० में औरङ्गज़ेब ने लाहौर और सरहन्द के सूबेदारों को सिक्खों के विरोध का निर्देश दिया । जिस समय मुग़ल सेना ने उन का परिवेष्टन किया गुरु गोबिन्द सिंह के साथ केवल चालीस सिक्ख थे किन्तु उन्होंने डट कर मुकाबला किया। इस युद्ध में गुरु गोबिन्द सिंह के दो छोटे शहज़ादे शत्रु के हाथ पड़ गये जिन्हें सरहन्द के स्थान पर एक दीवार में चिनवा दिया गया। यह घटना सिक्खों का वर्षों तक परिशोध के लिये उत्तेजित करती रही।

चमकौर के दुर्ग में मुग़ल सेना ने फिर सिक्खों को आ घेरा और गुरु गोबिन्द सिंह के शेष दो पुत्र लड़ते लड़ते उन के सम्मुख शहीद हो गये ।

औरंगज़ेब जो उस समय दक्षिण में था गुरु गोविन्द सिंह से भेंट करने का इच्छुक हुआ। गुरु गोविन्द सिंह ने औरङ्गज़ेब के संदेश का जो उत्तर दिया वह एक ऐतिहासिक लेख है और गुरु गोविंद सिंह की निर्भीकता और साहस का द्योतक है। यह पत्र पा कर औरङ्गज़ेब ने खेद प्रकट किया और गुरु गोबिंद सिंह उसे मिलने के लिए चलने लगे किन्तु उसी समय औरंगजेब की अचानक मृत्यु हो गई।

औरंजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने उन का बहुत मान किया और उन्हें मनसब प्रदान कर दक्षिण में सेनापति नियुक्त किया। दक्षिण में ही गुरु गोबिंद सिंह की बन्दा बहादुर से भेंट हुई।

वंदा बहादुर ने सिखों का नेतृत्व स्वीकार किया यद्यपि उस ने गुरु की पदवी ग्रहण नहीं की।

बन्दा बहादुर

बंदा ने पूर्वी पञ्जाब में तहलका मचा दिया। सरहन्द और लाहौर के सूबेदारों को उस ने भारी पराजय दी। सरहन्द की ईंट से ईंट बजा दी, फरुखसियर उस समय दिल्ली का सम्राट था। उस ने काश्मीर के सूबेदार अबदुल समद खाँ को बंदा का मुकाबला करने का निर्देश किया। बंदा सिक्ख पंथ में कुछ सुधार करना चाहता था जिस से कुछ सिक्ख उस से रुष्ट हो कर उस का साथ छोड़ गये। बंदा उस समय गुरदासपुर के दुर्ग में था। खान पान की सब सामग्री समाप्त हो गई और बाहर से सहायता की कोई आशा न रही। आखिर दुर्ग पर मुग़लों का अधिकार हो गया और बंदा अपने साथियों सहित जिन की संख्या बीस हज़ार बताई जाती है बंदी बना लिया गया। इन वीरों की फरुखसियर द्वारा हत्या मुग़ल सम्राटों के नाम पर बहुत बड़ा कलंक है। वन्दा ने अन्तिम समय तक वीरता का प्रमाण दिया। उसे इस बात का गर्व था कि उस ने गुरु गोविन्द सिंह के लालों की हत्या का बदला ले लिया है।

बन्दा की मृत्यु के पश्चात् सिक्खों पर वे अत्याचार हुए कि सुन कर दिल काँप जाता है। इस विपद काल में सिक्खों ने न केवल अपना अस्तित्व कायम रखा बल्कि अहमद शाह अबदाली के पश्चात् जब दिल्ली राज्य की सत्ता समाप्त हो गई उन्होंने पञ्जाब में एक सुदृढ़ और विस्तृत राज्य की स्थापना की। जस्सा नामक सरदार ने लाहौर पर अधिकार प्राप्त कर लिया और १७५६ ई० में अपने नाम का सिक्का चलाया। आला सिंह को अबदाली ने उस भाग का राजा नियुक्त किया जो इस सपय पैपसू के नाम से प्रसिद्ध है।

सिक्खों का विपद काल

१६६१ ई० में जब अहमद शाह अब्दाली ने पानीपत के स्थान पर मराठों और मुग़लों की संयुक्त सेना को पराजय दी सिक्ख पञ्जाब में अपनी स्थिति संभाल चुके थे। यहाँ तक कि अब्दाली ने पञ्जाब छोड़ते समय काबली मल को लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया।

१६६१ ई० में सिक्ख सरदार अमृतसर के स्थान पर एकत्रित हुए और एक संयुक्त राज्य की स्थापना की जिस का आधार जागीरदारी पर था किन्तु भिन्न भिन्न इकाइयों को जो मिसलें कहलाती थीं पूर्ण स्वतन्त्रता थी। ये मिसलें बारह थीं जिन में से भंगी मिसल प्रमुख थी। मिसलों के शासक एक स्थान पर मिल कर सामान्य नीति निर्धारित करते थे। इस स्थान को अकाल तख्त कहते थे।

मिसलों की स्थापना

इन मिसलों के अतिरिक्त सिक्खों में एक अन्य शक्ति उत्पन्न हुई जिसे अकाली कहते हैं। अकाली नीला बाना पहनते हैं और धमपरायणता का दावा करते हैं। सिक्ख अकालियों का बहुत मान करते हैं।

थोड़े से समय में सिक्खों ने कितनी सत्ता प्राप्त कर ली थी उस

का उदाहरण महाराजा रणजीत सिंह के काल में मिलता है। उसके पश्चात १८४९ ई० में पञ्जाब ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया।

जाट

जाटों के प्रादुर्भाव के विषय में कई गाथाएँ प्रसिद्ध हैं। कुछ इतिहासकार इन्हें योरुप की गेट जाति के सम्बन्धी बतलाते हैं, कुछ इन्हें सिथियन वंशीय सिद्ध करते हैं, कुछ का विचार है कि ये भारत के आदि वासी हैं। कुछ भी हो मुग़ल काल के अन्तिम भाग में वे इतिहास के चित्रपट पर आए। उनका मुख्य व्यवसाय खेती बाड़ी था। वे सेना में भी भरती होते थे।

१६६९ ई० में जाटों ने मथुरा के गोकल नामक व्यक्ति के आधीन सेना का रूप धारण किया और मथुरा के फौजदार का वध कर दिया। इस विद्रोह को यही दमन कर दिया गया। फिर छत्रसाल जो बुन्देल खंड का रहने वाला था मुग़ल सम्राट् के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। वह मुग़ल सेना में उच्चपद पर नियुक्त रह चुका था और दक्षिण में हाथ दिखा चुका था। औरंगज़ेब ने उसके दमनार्थ एक महान सेना भेजी। सम्राट् की सेना को बहुत क्षति पहुँची।

छत्रसाल की विजय से जाटों के हौसले बढ़ गये। सम्राट् के दक्षिण प्रस्थान करने से भी उन्हें बहुत साहस मिला। १६८५ ई० में राजा राम के आधीन फतेहपुर सीकरी पर उन्होंने धावा बोल दिया। यद्यपि कुछ समय के लिये जाटों को सफलता प्राप्त नहीं हुई तथापि वे चूड़ामणि के नेतृत्व में स्वतंत्र राज्य की स्थापना करने में सफल हुए। भरत पुर की रियासत का संस्थापक चूड़ामणि ही था। सूरजमल एक प्रसिद्ध जाट नरेश हुआ जिसने कई सुन्दर भवन बनवाये जो आज भी स्थित हैं। वे वास्तु कला के अद्भुत नमूने हैं।

सतनामी

सतनामी मेवाड़ के रहने वाले थे। पटियाला में नारनौल भी उनका गढ़ था। वे उदासीन साधु थे।

औरंगज़ेब की नीति ने सतनामियों को सम्राट् के विरुद्ध खड़ा होने के लिए उत्तेजित किया।

सतनामी अधिकतर बढ़ई, लोहार, सुनार, चमार आदि थे। उनके शस्त्र साधारण लाठियाँ थीं किन्तु सम्राट् की महान् सेना भी उनका मुकाबला न कर सकी। सतनामियों से साम्राट् के सैनिकों को भय लगने लगा। वे समझते थे कि सतनामियों के पास कोई जादू है और उन्हें परास्त करना सम्भव नहीं। औरंगज़ेब ने चतुराई से काम लिया। उसने अपने सैनिकों को तावीज़ दिये जो उन्हों ने अपने झंडों के साथ बाँध लिये।

इस प्रकार बहुत क्षति के पश्चात् सम्राट् को विजय प्राप्त हुई।

ओह्म

ओह्म उत्तर बर्मा के रहने वाले थे। उन्होंने तेरहवीं शताब्दी ई० में आसाम का रुख किया और वे वहाँ आकार आबाद हो गये। धीरे धीरे उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाई और वे समस्त आसाम के स्वामी बन गये। इन लोगों ने जो पहिले बौद्धमत के प्रभावाधीन थे हिन्दू संस्कृति अपनाई।

जहाँगीर के शासन काल में आसाम के कुछ भाग पर मुग़लों का अधिकार हो गया था किन्तु शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् ओह्मों ने गौहाटी पर जो मुग़लों के आधीन था अधिकार प्राप्त कर लिया। बङ्गाल के सूबेदार मीर जुमला ने आसाम पर चढ़ाई कर दी। कूच बिहार को रौंदता हुआ वह घड़गाँव तक जा पहुँचा और आसाम के राजा को सन्धि करनी पड़ी।

इस युद्ध में मुग़लों को बहुत क्षति पहुँची थी। मीर जुमला की वहाँ से लौटते ही मृत्यु हो गई और आह्मों ने सन्धि भंग कर दी और उस समस्त इलाके पर अधिकार कर लिया जो मुग़लों ने उनसे छीना था। बङ्गाल के अगले सूबेदार शाइस्ता ख़ाँ ने उनसे अराकान छीन लिया।

शाइस्ता ख़ाँ ने पर्तगालियों को भी बङ्गाल से निकाल दिया।

परिच्छेद २६

मुसलमान

अन्तिम मुग़ल सम्राट्

जिस समय औरंगज़ेब का देहान्त हुआ उसके तीन पुत्र जीवित थे। मुअज़्ज़म पिशावर में था, आज़म अहमदाबाद में और कामबख़्श साम्राट के साथ। औरंज़ेब ने अपने साम्राज्य को तीन भागों में बाँट कर प्रत्येक भाग एक पुत्र के निमित्त रखा किन्तु वे इस निर्णय को स्वीकार करने को तैयार न थे। मुग़ल प्रथाएँ इस बटवारे के विरुद्ध थीं।

मुअज़्ज़म सब से पहले दिल्ली पहुँचा और उसने अपने आप को सम्राट् घोषित किया। आज़म उसके विरोध के लिये आगे बढ़ा।

मुअज़्ज़म ने आज़म शाह को दक्षिण और गुजरात का राज्य प्रदान करने का प्रस्ताव किया किन्तु आज़म को यह स्वीकार न हुआ। जैजू के स्थान पर दोनों भाइयों की मुठभेड़ हुई जिसमें आज़म की हार हुई और वह रणक्षेत्र में खेत रहा।

काम बख़्श को मुअज़्ज़म ने बीजापुर और गोलकंडा भेंट करने चाहे किन्तु वह भी मुग़ल प्रथाओं को कायम रखना चाहता था। उसने भी मात खाई और हार के कुछ दिन पश्चात् वह चल बसा।

१७०८ ई० में मुअज़्ज़म, बहादुर शाह के नाम से दिल्ली का सम्राट् बना।

मुग़लों के आपसी झगड़ों का ताराबाई ने लाभ उठाया किन्तु शाहू के मुक्त हो जाने से नई स्थिति उत्पन्न हो गई। आज़म ने शाहू को गोण्डवाना, गुजरात और तञ्जौर का सूबेदार नियुक्त किया था और दक्षिण के छः प्रान्तों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दिया था। बहादुरशाह ने शाहू के अधिकार स्वीकार कर लिये।

वहादुर शाह—१७०७
से १६१२ ई० तक

सिंहासन आरोहण के समय बहादुरशाह की आयु ६७ साल

की थी। उस ने पाँच साल राज्य किया जो सिक्खों को दमन करने में व्यतीत हो गए।

जहाँदार शाह

बहादुर शाह की मृत्यु पर उसके पुत्र अज़ीमुशान ने शाही ख़ज़ाना अपने हाथ में ले लिया किन्तु जुलफिकार खाँ जिस ने दाक्षिण की लड़ाइयों में नाम पाया था बहादुर शाह के सब से बड़े पुत्र का पक्षपाती था। उसकी सहायता से वह अपने तीनों भाइयों को परास्त करने में सफल हुआ और जहाँदार शाह के नाम से १७१२ ई० में सिंहासन पर बैठा।

जहाँदार शाह एक सुन्दर युवति लालकौर के शिकंजे में फंस गया जिस के कारण राज्य सत्ता जुलफिकार के हाथ में आ गई। इस के अतिरिक्त बंगाल में अज़ीमुशान का पुत्र फरुखसियर, बिहार में सैयद हुसैन अली खाँ और इलाहाबाद में उस का भाई सैयद अब्दुल्लाखाँ स्वतंत्र हो गये। इन तीनों ने मिल कर दिल्ली का रुख किया। जुलफिकारखाँ के पिता ने अपने स्वामी से दग़ा की और उसे फरुखसियर के हाथों सौंप दिया। इस विद्रोह के कारण असदखाँ की जान बच गई किन्तु जुलफिकार खाँ नए सम्राट् के हाथों मारा गया (१७१३ ई०)।

जुलफिकार खाँ की मृत्यु का सम्राट् को तत्पश्चात् बहुत दुख हुआ क्योंकि सैयद भाइयों ने समस्त राज्य सत्ता संभाल ली और फरुखसियर नाम मात्र का सम्राट रह गया।

फरुखसियर (१७१३—१७१६ ई०)

फरुखसियर ने जसवन्त सिंह के पुत्र अजीत सिंह को जो गुजरात का सूबेदार था, निज़ामुलमुल्क को जो दक्षिण का सूबेदार था और जयपुर के नरेश सवाई जय सिंह को अपनी सहायता के लिये बुलाया। इन तीनों में से केवल जयसिंह ने सम्राट की सहायता की। किन्तु सम्राट् ने उस की सहायता का भी लाभ न उठाया। १७१६ ई० में सम्राट् सैयद भाइयों के हाथों मारा गया।

१७१६ ई० में सैयद भाइयों ने औरङ्गजेब की पौत्री के पुत्र को सम्राट घोषित किया। किन्तु वह तीन मास पश्चात् परलोक सिधार गया। मृतक के आदेश के अनुसार उसके भाई रफीउद्दौलत को सम्राट घोषित किया गया। वह भी तीन मास पश्चात् चल बसा। फिर औरङ्गजेब के परपौत्र रोशन अख्तर को मुहम्मद शाह के नाम से सम्राट नियुक्त किया गया।

एक साल में तीन सम्राट

मराठों ने सैयद भाइयों की सहायता की थी जिस के फलस्वरूप उन्हें दक्षिण में बहुत से अधिकार प्राप्त हो गये।

निज़ामुलमुल्क को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया। उस ने अपनी शक्ति को संगठित कर दक्षिण का रुख किया और उन चालों की सहायता से जो उसने मराठों से सीखी थीं सैयद भाइयों के प्रतिनिधि को मात करने में सफल हुआ। निज़ामुलमुल्क की सफलता से प्रोत्साहित हो मुहम्मद शाह ने सैयद भाइयों का अन्त करने का साहस किया। हुसैन अली खाँ का धोखे से वध करा दिया गया और अब्दुल्ला खाँ जो फतेहपुरी सीकरी में था लड़ाई में हार गया। मुहम्मद शाह की इस सफलता का श्रेय उस की माता को दिया जाता है।

मुहम्मद शाह १७१६ से १७४८ ई० तक

सैयद भाइयों के नाश के पश्चात् निज़ामुलमुल्क को वज़ीर की उपाधि प्रदान हुई किन्तु वज़ीर ने शीघ्र ही अनुभव किया कि सम्राट् आलसी और विषयी है। दिल्ली में रहते हुए उस का वही परिणाम होगा जो सैयद भाइयों का हुआ है। उस ने दक्षिण जाने का प्रस्ताव किया जो सम्राट् ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। सम्राट् ने उसे चलते समय आसफ़ जाह की उपाधि भी प्रदान की। दक्षिण पहुँच कर निज़ामुलमुल्क स्वतन्त्र शासक बन गया, यद्यपि बाह्य रूप से वह सम्राट् का वफ़ादार बना रहा। निज़ाम ने मराठों की शक्ति समाप्त करनी चाही किन्तु वह असफल रहा और १७३८ ई० में उसे मराठों से अपमान जनक सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि का कारण नादिर शाह

का आक्रमण था।

नादिर शाह का आक्रमण १७३९ ई०

नादिर शाह जिस का असली नाम नादिर कुली ख़ाँ था, डाकुओं का सरदार था। वह ईरान की सेना का अध्यक्ष बन गया और ईरान नरेश को सिंहासन से उतारने में सफल हुआ। १७३६ ई० में वह भारत की ओर बढ़ा और मार्ग में ग़ज़नी और काबुल पर अधिकार प्राप्त करता हुआ लाहौर तक बढ़ आया। किन्तु मुग़ल सम्राट् और उस के सरदार चैन की नींद सोए रहे। आखिर करनाल के स्थान पर शाही सेना ने नादिर शाह का मुकाबला किया और मात खाई। मुहम्मद शाह ने संधि के लिए प्रार्थना की और नादिर शाह उस के साथ दिल्ली में दाखिल हुआ।

नादिर शाह की मृत्यु की अफवाह फैलने से कुछ ईरानी सैनिक मारे गए जिस के प्रतिशोध के रूप में नादिर शाह ने क़त्ले आम का हुक्म दे दिया। प्रातः काल ८ बजे से शाम के तीन बजे तक मार-काट होती रही जिस में ४०० ईरानी और लगभग १२०,००० हिन्दुस्तानी मारे गये। नगर की दिल खोल कर लूट मार की गई। फिर नगर के व्यापारियों को संताप दे उन से ३ करोड़ रुपया वसूल किया गया। ८ सप्ताह तक दिल्ली को संताप सहन करना पड़ा जिस के पश्चात् नादिर शाह मुग़लों की समस्त निधि यहाँ तक कि शाहजहाँ के मयूरसिंहासन और मुहम्मद शाह के मुकुट सहित ईरान पधारा

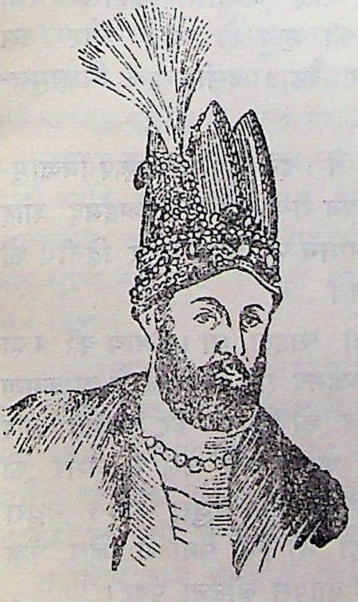

नादिरशाह

जहाँ शीघ्र ही उस की मृत्यु हो गई।

नादिर शाह के आक्रमण का मराठों ने बहुत लाभ उठाया। उन्होंने दक्षिण में अपने आप को सुरक्षित कर लिया और बङ्गाल, बिहार, मालवा और गुजरात पर हाथ साफ किया।

अहमद शाह अबदाली के आक्रमण

मराठे चारों ओर से विजय प्राप्त कर रहे थे कि उत्तर से नया संकट टूट पड़ा। यह था अहमद शाह अब्दाली का आक्रमण। अहमद शाह अब्दाली नादिर शाह की मृत्यु के पश्चात अफ़गानिस्तान का स्वतंत्र अमीर बन गया। उसने पञ्जाब पर सात आक्रमण किये।

१७४८ ई० में आक्रमण को रोकने के लिए मुहम्मद शाह ने अपने पुत्र अहमद शाह, बिहार के सूबेदार सफ़दर जंग और सवाई जय सिंह को भेजा। अहमद शाह अब्दाली वापिस चला गया। उसी साल मुहम्मद शाह की मृत्यु हो गई और उस का पुत्र अहमद शाह सिंहासन पर बैठा। उसी साल निज़ामुलमुल्क की मृत्यु हो गई।

दिल्ली दरबार में षड़यन्त्र हो रहे थे। इन के फलस्वरूप निज़ामुल्मुल्क का पुत्र ग़ाज़ीउद्दीन वज़ीर बन गया। उस ने अहमद शाह की आँखें निकलवा दीं और उस के स्थान पर आलमगीर द्वितीय को १७५४ ई० में सिंहासन पर बैठा दिया।

आलमगीर द्वितीय

ग़ाज़ीउद्दीन पंजाब को हथियाना चाहता था। पंजाब की रक्षा के लिए फिर अहमद शाह अब्दाली ने आक्रमण किया। पंजाब को विजय कर अहमद शाह पहले दिल्ली आया और उस ने नगर को दिल खोल कर लूटा। फिर उस ने अपनी सेना मथुरा भेजी। मथुरा के मन्दिरों की लूट खसोट हो रही थी कि सेना में प्लेग फैल गई और अहमद शाह के सैनिकों को वापिस लौटना पड़ा।

आलमगीर अपने वज़ीर से छुटकारा पाना चाहता था। किन्तु अब्दाली के लौट जाने पर ग़ाज़ीउद्दीन ने मराठों से सहायता की प्रार्थना की और बाला जी का भाई रघुनाथ राव भारी सेना लेकर दिल्ली पहुँचा। आलमगीर द्वितीय ने हार मान ली। फिर मराठा सेना पंजाब की ओर बढ़ी। लाहौर पर अहमदशाह अब्दाली के पुत्र का अधिकार था जो मराठों का मुक़ाबला न कर सका। अब्दाली को इसकी सूचना मिली और उस ने १७५६ ई० में भारत का रुख किया। उस ने सुगमता से ही पंजाब पर पुनः अधिकार प्राप्त कर लिया।

आलमगीर ग़ाज़ीउद्दीन के अत्याचारों से तंग आ चुका था। उस ने अब्दाली को निमन्त्रित किया किन्तु यह पत्र वज़ीर के हाथ पड़ गया और उस ने आलमगीर का वध करा कर काम बख़्श के पुत्र को १७५६ ई० में शाहजहाँ द्वितीय के नाम से सम्राट् नियुक्त किया जो केवल एक साल जीवित रहा।

इस अवसर पर मराठा सरदारों ने अयोग्यता का प्रमाण दिया और अब्दाली के लिये उन्हें मात करना सुगम हो गया। इस हार की क्षति पूर्ति के लिए दक्षिण से भारी मराठा सेना उत्तर की ओर चल पड़ी।

मराठा सरदारों में प्रमुख सदाशिव राव, विश्वास राव, इब्राहीम गार्दी आदि थे। मल्हार राव होल्कर, जानोजी सिन्धिया, दामा जी गाएकवाड़, जसवन्त राव पवार, गोबिन्द पन्त बुन्देला, राजपूत सरदारों और सूरज मल जाट ने बहुत सी सेना सहित इस भारी लश्कर का साथ दिया।

सदाशिव राव को परामर्श दिया गया कि वह प्रसिद्ध मराठा चालों द्वारा अब्दाली का मुक़ाबला करे किन्तु सदाशिव राव को अपने ऊपर इतना भरोसा था कि उस ने इस परामर्श का उपहास उड़ाया। आखिर वह दिल्ली पहुँचा और कुछ दिन के परिवेष्टन के पश्चात् शाहजहाँ का सुन्दर क़िला मराठों के हाथ आया।

सदाशिव राव ने जवाँ बख़्त को सम्राट् नियुक्त किया और बिहार के सूबेदार शुजाउद्दौला को वज़ीर।

अक्तूबर १७६० ई० में सदाशिव राव ने कुञ्जपुर नाम के नगर को विजय किया, जहाँ अब्दाली का कोष सुरक्षित था। इस विजय से सदाशिव राव का सिर फिर गया और अब्दाली के मुकाबले के लिये दक्षिण की ओर हट जाने की अपेक्षा वह उत्तर की ओर बढ़ा। पानीपत के स्थान पर उस ने डेरे डाल दिये। इससे लाभ उठा कर अब्दाली की सेना ने उस का दिल्ली का मार्ग काट दिया।

पानीपत की तीसरी लड़ाई १७६१ ई०

पानीपत में स्थित हो मराठों ने अपने लिये अनेक कठिनाइयाँ खड़ी कर लीं जिन में से प्रमुख खाद्य सामग्री की समस्या थी। कुछ काल तक दोनों सेनाएँ आमने सामने पड़ी रहीं किन्तु अन्त में दुर्बल आक्रमण होने लगे। पहला आक्रमण २२ नवम्बर १७६० ई० में जनको जी सिन्धिया ने किया और अब्दाली की शक्ति को भारी क्षति पहुँचाई यहाँ तक कि अब्दाली को पीछे हट जाने का परामर्श दिया जाने लगा। ७ दिसम्बर को उस ने जवाबी हमला किया जिस में मराठों का प्रसिद्ध सरदार बलवन्त राव मारा गया। अब्दाली की सेना की फिर भी क्षति हुई किन्तु बलवन्त राव की मृत्यु ने मराठों के दिल तोड़ दिये।

मराठा शक्ति पर दूसरा प्रहार गोबिन्द पन्त बुन्देले की मृत्यु से हुआ। इस वीर ने अब्दाली के डेरे में दुर्भिक्ष की सी स्थिति उत्पन्न कर दी थी। २२ दिसम्बर को अब्दाली ने उस के विरुद्ध सेना भेजी। अफ़गानों ने चालाकी से काम लिया और अपने आप को मराठों के मित्र प्रकट करते हुए उन के डेरे में घुस गये। बहुत सी मराठा सेना काम आई। गोबिन्द पन्त भी मारा गया।

गोबिन्द पन्त ने खाद्य सामग्री प्राप्त करने के लिए कुशल प्रबन्ध किया हुआ था। उस की मृत्यु के पश्चात् मराठा सेना को घास दाना प्राप्त करना भी कठिन हो गया। हल्ला बोलने के अतिरिक्त कोई चारा शेष न रह गया। मराठा सरदारों ने चुपके से दिल्ली पहुँचने का

परामर्श दिया किन्तु इब्राहीम खाँ गार्दी अपनी सुसज्जित सेना के हाथ दिखाना चाहता था । वह चाहता था कि शत्रु की सेना पर हल्ला बोल दिया जाए । आखिर १४ जनवरी १७६१ ई० को हल्ला बोल दिया गया ।

पहले पहल मराठों का पल्ला भारी रहा किन्तु बाजी राव के पुत्र विश्वास राव के माथे में गोली लगी और वह वहीं ढेर हो गया । भतीजे की मृत्यु से सदाशिव राव हताश हो गया और उस ने हाथी से उतर कर घोड़ा सम्भाला । घमासान का युद्ध हुआ जिस में प्रसिद्ध मराठा सरदार काम आए ।

मराठों की पराजय के कारण

सदाशिव राव ने इस अवसर पर बहुत सी भूलें कीं । उस ने सूरज मल और राजपूतों को रुष्ट कर दिया । दूसरे वह दिल्ली से उत्तर की ओर चल पड़ा जिस के कारण दिल्ली और दक्षिणी प्रदेश से उस का सम्पर्क टूट गया । तीसरे फ्रांसीसी युद्ध कला अपनाने की लालसा ने उसे मराठा प्रथाओं से विमुख कर दिया । नये ढंग न सेनापति समझते थे और न सैनिक । चौथे वह दक्षिण से सहायता की प्रतीक्षा करता रहा । यह सहायता न पहुँची क्योंकि उस के सन्देश अब्दाली के हाथ पड़ गये और वे पेशवा तक न पहुँच पाये । अन्त में जब उस ने हाथी से उतर कर घोड़ा सम्भाला तो मानो मराठा सेना नेता हीन हो गई ।

सदाशिव राव की वीरता और समझदारी में किसी को संदेह नहीं हो सकता किन्तु उसे खुले मैदानों में लड़ने का अभ्यास न था । कठिनाइयों का मुकाबला करने की असीम शक्ति का उसने प्रमाण दिया और अन्तिम समय तक धैर्य को हाथ से नहीं जाने दिया ।

पानीपत की तीसरी लड़ाई की हार का दोष बालाजी पेशवा को भी दिया जाता है जो दिसम्बर १७६० ई० में नई शादी रचाने में व्यस्त था । विवाह के पश्चात् जब वह उत्तर की ओर

बढ़ा तो पानीपत की दुर्घटना हो चुकी थी। उसे एक व्यापारी द्वारा व्यापारिक भाषा में इस विपत्ति की सूचना मिली।

बालाजी वापिस लौटा किन्तु पूना पहुँचा ही था कि उस का शरीर जवाब दे गया। उस का दिल बैठने लगा और जून के अन्त में ४० वर्ष की अवस्था में वह चल बसा।

पानीपत की विजय के पश्चात् अब्दाली अपने आप को भारत का सम्राट् घोषित करना चाहता था किन्तु उस की सेना ने जिसे वेतन न मिला था विद्रोह कर दिया और अब्दाली को वापिस लौट जाना पड़ा। उस ने मुग़ल शहज़ादे अली गौहर को शाह आलम के नाम से सम्राट् नियुक्त किया, और अवध के सूबेदार शुजाउद्दौला को उस का वज़ीर।

शाह आलम के लिए दिल्ली में ठहरना सम्भव न था। उस ने शुजाउद्दौला के पास शरण ली और जब बक्सर के स्थान पर १७६४ ई० में अंग्रेज़ों ने उसे मात दी तो सम्राट् अंग्रेज़ों की शरण में इलाहाबाद चला गया।

मराठे और दिल्ली

१७६६ ई० में दक्षिण से निपट कर माधव राव पेशवा ने दिल्ली का रुख किया। पहले मराठा सेना राजस्थान पहुँची और वहाँ से चौथ वसूल कर जाटों के प्रदेश में दाखिल हो गई। तत्पश्चात् रोहेला सरदार नजीबुद्दौलत ने मराठों से सन्धि कर ली। अन्य रोहीला सरदारों को मराठों ने खदेड़ दिया और गंगा और यमुना के दोआबे पर अधिकार स्थापित कर लिया। उन्होंने शाह आलम को मुक्त कराने की योजना बनाई और सम्राट माधव राव सिन्धिया के संरक्षण में दिल्ली आया। १७७२ ई० में सम्राट् मराठों से रुष्ट हो गया और मराठा सेना को पेशवा ने वापिस बुला लिया। इस समय दिल्ली साम्राज्य केवल दिल्ली नगर तक सीमित हो गया था।

माधव राव सिन्धिया ने पुनः दिल्ली का रुख किया और १७८८ ई० तक दिल्ली दरबार में उस की शक्ति असीम हो गई।

१७९४ ई० में माधव राव सिंधिया की मृत्यु हो गई। मराठा सरदारों को निज़ाम और टीपू सुल्तान ने ऐसा उलझाया कि वे दिल्ली का विचार भी न कर पाए। इस के साथ साथ उन की अंग्रेज़ों से मुठभेड़ हो गई जिस के फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेज़ों ने समस्त मराठा देश पर अधिकार पा लिया। कुछ मराठा सरदारों ने अंग्रेज़ों का मित्र बन कर रहना स्वीकार किया।

दिल्ली पर अंग्रेज़ों का अधिकार

अब मुग़ल सम्राट् अंग्रेज़ों के हाथ में कठपुतली बन कर रह गया। १८०६ ई० में शाह आलम जिस की रोहेला सरदार गुलाम कादिर ने आँखें निकलवा दी थीं, चल बसा। तब अंग्रेज़ों के संरक्षण में अकबर शाह द्वितीय सम्राट् बना जिस की मृत्यु पर १८३७ ई० में बहादुर शाह द्वितीय सिंहासन पर बैठा। १८५७ ई० में मुग़ल राज्य का अन्त हो गया।

मुग़लों की छाया

१७०७ ई० में औरङ्गज़ेब की मृत्यु के पश्चात् मुग़ल सत्ता अकस्मात क्षय हो गई। दरबार के षड़यन्त्र, विद्रोह और भ्रष्टाचार पराकाष्ठा पर पहुँच गए। प्रत्येक मन्त्री, प्रत्येक सूबेदार अपना अपना राज्य स्थापित करने की चिन्ता में ग्रस्त हो गया।

मुग़ल साम्राज्य समाप्त हो गया था। उस का नाम प्रचलित था। क्या अंग्रेज़, क्या मराठे और क्या मुग़ल सूबेदार, सब मुग़ल सम्राट् का दम भरते थे। वे अपने आप को उस का प्रतिनिधि कहते थे, यद्यपि वे सम्राट् की सेना से अवसर आने पर युद्ध करने में भी संकोच न करते थे। फिर भी सम्राट् का नाम उन के लिये सत्ता का साधन था।

१७१८ ई० में एक अंग्रेज़ सरजन हैमिल्टन ने फरुखसियर का

सफलता से इलाज कर जो फरमान प्राप्त किया था वह शासन शक्ति का चिट्ठा था किन्तु इस चिट्ठे द्वारा प्राप्त ग्रामों पर अधिकार करने के लिए अंग्रेजों को बल का प्रयोग करना पड़ा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी १८३५ ई० तक मुग़ल सम्राट् के नाम के सिक्के ढालती रही। मराठे चौथ और सरदेशमुखी मुग़ल सम्राट् के नाम पर उगाहते थे।

बंगाल, अवध और हैदराबाद के नवाब स्वतन्त्र होते हुए भी मुग़लों के प्रतिनिधि कहलाते थे।

मुग़ल साम्राज्य की शाखाएँ

बंगाल, अवध, और हैदराबाद मुग़ल साम्राज्य के साधारण प्रांत न थे। इन के अन्तर्गत कई छोटे छोटे प्रांत थे जिन्हें मिला कर सूबेदारों ने एक एक राज्य बना लिया। उन्होंने अपने वित्तानुसार अपने राज्य की वृद्धि की। उदाहरणतः हैदराबाद में न केवल बीजापुर, गोलकुण्डा आदि सम्मिलित थे बल्कि मालवा, बरार, खानदेश और गुजरात पर भी वहाँ के नवाब ने अधिकार स्थापित कर लिया। अवध के नवाब ने बनारस, इलाहाबाद और कानपुर पर हाथ साफ किया। बंगाल का नवाब बिहार और उड़ीसा का भी स्वामी बन गया।

हैदराबाद का निज़ाम

१७२३ ई० में आसफ जाह ने हैदराबाद का सिंहासन सम्भाला और वह निज़ामुलमुल्क के नाम से प्रसिद्ध हुआ। संक्षेप में उसे निज़ाम कहते हैं। उस की राजधानी औरंगाबाद थी।

निज़ाम का राज्य नर्मदा और महानदी से अन्तरीप कुमारी तक समस्त दक्षिण में फैला हुआ था। इसमें से केवल कुछ इलाके मराठों के आधीन थे।

करनाटक

करनाटक निज़ाम राज्य का प्रमुख प्रान्त था जिस के शासन के लिये एक सूबेदार नियुक्त था। करनाटक एक विस्तृत प्रदेश था जहाँ कन्नड भाषा प्रयुक्त होती थी। मैसूर, कुर्ग, और हैदराबाद का दक्षिण

पश्चिमी भाग करनाटक गिना जाता था।

विदेशियों द्वारा हस्तक्षेप

१७४८ ई० में आसफ़ जाह की १०४ साल की आयु में मृत्यु हो गई। अपने जीवन में उस ने दक्षिण की भिन्न भिन्न शक्तियों में सन्तुलन रखने की चेष्टा की किन्तु उस के पुत्रों के आपसी झगड़ों ने विदेशी शक्तियों को हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान किया।

इस के साथ ही करनाटक की सूबेदारी के विषय में द्वन्द्व उत्पन्न हो गया। हैदराबाद और करनाटक में आपसी द्वन्द्व फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों के द्वन्द्व बन गये।

मैसूर पर हैदर अली का अधिकार हो गया था। हैदर अली और का पुत्र टीपू सुल्तान अंग्रेज़ों से युद्ध करते रहे किन्तु १७९२ ई० में अंग्रेज़ों ने मैसूर के बहुत से भाग पर अधिकार प्राप्त कर लिया और टीपू को सन्धि करनी पड़ी। १७९९ ई० में उस की शक्ति समाप्त कर दी गई और मैसूर के सिंहासन पर प्राचीन हिन्दू वंश का एक बालक बिठा दिया गया।

बङ्गाल का मुर्शिदकुली खाँ

औरंगज़ेब ने मुर्शिद कुली खाँ को १७०४ ई० में बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया था। उस ने मुर्शिदाबाद की स्थापना की और वह राजधानी ढाके से वहाँ ले गया। १७४० ई० में अलीवर्दी खाँ ने जो तुर्क था, गद्दी सम्भाल ली।

१७५६ ई० में सिराजुद्दौला सिंहासन पर बैठा। उसकी अंग्रेज़ों से ठन गई।

जिस समय पलासी के स्थान पर १७५७ ई० में अंग्रेज़ सेना और नवाब की सेना का सामना हुआ मीरजाफर जो नवाब का सेनापति

था अंग्रेज़ों से जा मिला। सिराजुद्दौला मैदान छोड़ कर भाग गया किन्तु मीरजाफर के पुत्र ने उस का वध कर दिया।

मीर जाफ़र को गद्दी पर बिठा दिया गया। किन्तु बङ्गाल की वास्तविक शासक ईस्ट इण्डिया कम्पनी थी। उस के कर्मचारियों ने बंगाल की लूट से दिल खोल कर हाथ रंगे।

१७६० ई० में मीर कासिम को जो मीर जाफर का जामाता था, नवाब बना दिया गया। मीर कासिम ने बर्दवान, मिदनापुर और चटगांव का इलाका पूर्ण रूप से अंग्रेज़ों के सुपुर्द कर दिया। शेष प्रान्त में उन्हें दीवानी अधिकार प्राप्त हुए।

मीर कासिम भी अंग्रेज़ों की मन मानी सहन न कर सका। १७६३ ई० में वह अवध भाग गया। नवाबी पुनः मीर जाफ़र को दे दी गई जिस की मृत्यु के पश्चात् (१७६५ ई०) बंगाल की नवाबी सदैव के लिये समाप्त हो गई। बंगाल पर पूर्णतः अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया।

अवध (सादत ख़ाँ)

सादत खाँ जो खुरासान के एक ईरानी वंश से था, १७२४ ई० में अवध का सूबेदार नियुक्त हुआ। १७३९ ई० में नादर शाह के आक्रमण के समय उसे दिल्ली बुला लिया गया और उसी वर्ष उस की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् उसका जामाता सफदर जंग गद्दी पर बैठा। १७५४ से १७७५ ई० तक शुजाउद्दौला अवध का सूबेदार रहा। उस ने अंग्रेज़ों की सहायता से १७७४ ई० में रोहेलखण्ड जहाँ अफ़ग़ानों का राज्य था विजय कर लिया। उस के उत्तराधिकारी १८५६ ई० तक अवध पर शासन करते रहे। अन्तिम नवाब वाजिद अली शाह को अंग्रेज़ों ने गद्दी से उतार कर अवध पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

सिन्धु पार का इलाका पहाड़ी है और वहाँ खाद्य सामग्री मिलना सुगम नहीं। यहाँ के रहने वाले कबीलों का जीवन संघर्ष का जीवन

उत्तर पश्चिमी सीमा

है। वे प्रायः आस पास के ग्रामों और नगरों में छापे मारते हैं। लूट मार पर ही उनका निर्वाह है। इन कबीलों को वश में रखना बहुत कठिन है। मुग़ल सम्राटों को भी भारत के अन्य कई शासकों के समान इन कबीलों ने चैन नहीं लेने दिया। औरंग़ज़ेब के काल में इस भाग में विशेष रूप से अशान्ति रही। औरंगज़ेब का ध्यान इधर लगा था कि शिवा जी ने अपनी ताक़त बढ़ाई।

१६६७ ई० में यूसुफज़ाई नाम का कबीला इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने सिन्धु नदी को पार करने का साहस किया। उन का विद्रोह मुश्किल से शान्त हुआ था कि १६७२ ई० में अफ्रीदियों और खटकों ने सिर उठाया। उन के साथ कई अन्य कबीले आ मिले। १६७४ ई० में इन्होंने मिल कर शाही फौज को तहस नहस कर दिया। औरंगज़ेब स्वयं वहाँ जाना चाहता था परन्तु राजा जसवन्त सिंह ने इस इलाके में शान्ति स्थापित कर दी। उस ने कूट नीति से काम लिया और एक कबीले को दूसरे कबीले के साथ भिड़ा दिया। कुछ कबीलों को आर्थिक सहायता देकर जीत लिया।

यह शान्ति सामायिक थी। जैसे हम आगे चल कर बयान करेंगे मुग़लों की शक्ति क्षीण होते ही उत्तर पश्चिमी सीमा पर से दिल्ली के सम्राट् का अधिकार उठ गया।

मुग़लों के पतन के कारण

जैसा हम पहले कह आए हैं मुसलमानों के दो सम्प्रदाय थे— एक सुन्नी दूसरा शिया। औरंगज़ेब सुन्नी सम्प्रदाय का अनुयायी था। सुन्नियो को छोड़ कर वह सभी को विधर्मी समझता था। उस से पूर्व के मुग़ल सम्राटों की नीति के विषय में शिवाजी ने एक पत्र में लिखा था।

"अकबर बादशाह जिस ने यह साम्राज्य स्थापित किया चन्द्रमा के ५२ साल तक सशक्त रूप में राज्य करता रहा। उस के

उदार हृदय में सभी जातियों के लिए प्रेम की भावना थी। यही कारण था कि उस ने संसार के धार्मिक नेता की पदवी प्राप्त की थी। उसके पश्चात् सम्राट् जहाँगीर ने २२ साल तक संसार को सुशोभित किया। उस ने मित्रों के प्रति सहानुभूति प्रकट की और तन्देही से अपना काम किया जिस के फलस्वरूप उस की सभी इच्छाएँ पूरी हुईं। शाह जहाँ ने भी ३२ साल लोगों का संरक्षण किया।"

इस के विपरीत इस्लाम के प्रचार के हेतु औरंगज़ेब हिन्दुओं के लिए अभिशाप का रूप बन गया। उस ने मोहत्सिब नियुक्त किये जिनका काम यह देखना था कि मुसलमान शरीयत के अनुसार आचरण करें और हिन्दू प्रथाओं का परित्याग कर दें।

मुग़ल दरबार में कई प्रथाएँ ऐसी चल पड़ी थीं जो हिन्दू राजाओं के दरबार में प्रचलित थीं। औरंगज़ेब ने उन का बहिष्कार किया। १६६९ ई० में उस ने आदेश दिया कि काफ़िरों के सब मन्दिर और पाठशालाएँ गिरा दी जाय। बनारस का विश्वनाथ का मन्दिर, सोमनाथ का मन्दिर, मथुरा का केशव राय का मन्दिर उस के इस आदेश का शिकार बने। और भी बहुत से मन्दिर गिरवा दिए गए और मूर्तियों का खण्डन किया गया।

१६७४ ई० में उस ने फिर जज़िया लगा दिया जिस का उन्मूलन अकबर ने किया था।

औरंगज़ेब ने हिन्दुओं को यातना देने के और भी बहुत से काम किये जिन के कारण वे हिन्दू सरदार और राजा जो मुग़ल सम्राटों की शक्ति का स्तम्भ थे, मुग़ल सम्राट् के शत्रु बन गए। मुग़ल साम्राज्य के ह्रास का यह एक बड़ा कारण था।

अकबर का अपना जीवन संघर्ष का जीवन था परन्तु उस का शासन काल भोग विलास की प्रचुरता के लिए प्रसिद्ध है। व्यसन बढ़ते ही गए और मुग़ल सरदारों को भोग विलास के अतिरिक्त

कोई काम न रह गया। मुग़ल साम्राज्य के पतन का यह दूसरा कारण था।

औरंगज़ेब समस्त भारत को विजय करना चाहता था। उसे यह विचार न आया कि अनुशासन स्थापित करना भी सम्राट् का काम है। अनुशासन की ओर से वह उदासीन हो गया। इससे साम्राज्य विशृँखल हो गया।

राजपूत राजा और अन्य शासक तो औरंगज़ेब का विरोध करते ही थे, जनता ने भी मुग़लों से विद्रोह किया। मुग़ल कर्मचारियों का मान शेष न रह गया। औरंगज़ेब चाहता था कि पेशकार और कानूनगो जो अधिकतर हिन्दू थे मुसलमान हों। उस के इस प्रयास ने हिन्दू कर्मचारियों को विद्रोह करने पर विवश किया। औरंगज़ेब की दक्षिण सम्बन्धी नीति भी उस के विनाश का कारण बनी।

नादरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने मुग़लों की रही सही शक्ति भी समाप्त कर दी।

औरङ्ग़ज़ेब के उत्तराधिकारी योग्य सिद्ध न हुए। उन की दुर्बलता और उन की असहिष्णुता की नीति उनके पतन का कारण बनी।

परिच्छेद २७

मराठा कालीन भारत

दक्षिण भारत

दक्षिण का पठार त्रिभुजाकार है जिस के तीनों ओर पर्वत हैं—पूर्वी घाट, पश्चिमी घाट और उत्तर में विन्ध्याचल और सतपुड़ा। पश्चिमी घाट के पर्वतों की औसत ऊँचाई ४,००० फीट है। इन में कहीं कटाव नहीं। कहीं कहीं दर्रे अवश्य हैं। पूर्वी घाट के पर्वत कटे-फटे और कम ऊँचे हैं। पश्चिमी तट की समतल भूमि की औसत चौड़ाई ४० मील है। कोंकण और मालाबार इस के दो भाग हैं। बम्बई, बसीन, सालसिट आदि स्थान कोंकण में हैं। ट्रावनकोर, कोचीन आदि मालाबार में। पूर्वी तट की समतल भूमि अधिक चौड़ी है। इस का निचला भाग करनाटक कहलाता है। मद्रास, पांडीचेरी, तञ्जौर, त्रिचनापली आदि स्थान करनाटक में हैं। समस्त तट को कारोमण्डल कहते हैं।

पूर्वी और पश्चिमी घाट के पर्वत नीलगिरि में जा मिलते हैं जिस की सब से बड़ी चोटी ८,६४० फीट ऊँची है।

पर्वतों के बीच के पठार की भूमि पथरीली है। खानदेश ऐसा इलाका है जिस की काली मिट्टी बहुत उपजाऊ है। इस भाग में हैदराबाद, मैसूर और महाराष्ट्र अठारहवीं शताब्दी के प्रमुख राज्य थे।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के इतिहास का यही रंग-मंच था जिस पर पाँच शक्तियाँ (मराठे, फ्रांसीसी, अंग्रेज़, हैदराबाद का निज़ाम और मैसूर का हैदर अली तथा उस का पुत्र टीपू) अभिनय कर रही थीं। इस नाटक में कहीं दुःखान्त का रंग उभरा, तो कहीं सुखांत का; कहीं इस में भाग्य की विडम्बना की झलक दिखाई

दी, कहीं यह प्रहसन बन कर चमका। यह नाटक अति रोचक है जिस का कथानक भारत का बल और उस की निर्बलता है।

मराठे और दक्षिण

मराठों का उत्थान उस प्रक्रिया की एक कड़ी है जो प्राचीन काल से होती आई है। उत्तर भारत के सम्राट् दक्षिण भारत की सत्ता को कभी भी पूर्ण रूप से समाप्त न कर पाये और उन के दुर्बल होने पर दक्षिण भारत की किसी न किसी जाति ने उत्तर भारत पर छाने का प्रयास किया। मौर्य और गुप्त साम्राज्य के पश्चात् यह प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। दिल्ली के सुल्तानों के पतन के पश्चात् विजय नगर का अभ्युदय भी एक ऐतिहासिक पुनरावृत्ति थी।

मराठों के उत्थान ने यह भी सिद्ध कर दिया कि उत्तर भारत और दक्षिण भारत पृथक् पृथक् देश नहीं, बल्कि वे दोनों मिल कर एक इकाई बनाते हैं।

मराठों को पानीपत की तीसरी लड़ाई में बहुत हानि पहुँची थी। फिर भी १७६१ ई० के पश्चात् उन का साम्राज्य फैलता ही गया। उस समय भी यह भविष्यवाणी करना सुगम था कि मराठे ही मुग़लों के उत्तराधिकारी होंगे। यूरोपीय जातियों ने बीच में पड़ कर इस साधारण ऐतिहासिक प्रक्रिया को बदल दिया। इस में कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेज़ों ने भारत का साम्राज्य मराठों से पाया।

यूरोप का रंग मंच

नई भूमियाँ प्राप्त हो जाने पर यूरोप की विभिन्न जातियों में ईर्ष्या भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। स्पेन की बढ़ती हुई जल सेना का अंग्रेज़ों ने १५८८ ई० में अन्त कर दिया और उस के साथ ही पुर्तगाल जो उस समय स्पेन के आधीन था अधोगति को प्राप्त हुआ। इस से डचों और अंग्रेज़ों को पंख फैलाने के लिये स्वर्ण अवसर प्रदान हुआ। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में ये दो राष्ट्र ही यूरोप के रंग मंच पर दृष्टिगोचर होते हैं।

फ्रांस का वैभव

१६४३ ई० में लुई चौदहवाँ फ्रांस के सिंहासन पर बैठा जिस ने ७२ वर्ष राज्य किया। फ्रांस का नाम पहली बार उसी के काल में चमका। इतिहास में पहली बार ८४३ ई० के लगभग फ्रांस का वर्णन मिलता है। तेरहवीं शताब्दी तक फ्रांस के महत्त्वपूर्ण भाग नारमण्डी, पुआट्रेस, कैले आदि पर इंग्लैंड का अधिकार रहा किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी में अंग्रेज़ों को फ्रांस से निकाल दिया गया। इस प्रसंग में जोन ऑफ आर्क का बलिदान जगत प्रसिद्ध है।

फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक वाल्तेअर ने लुई चौदहवें की जीवनी लिखी जो व्यंग साहित्य की अनुपम कृति है। उस से फ्रांस की शक्ति और दुर्बलता का बोध होता है। वास्तव में कला और साहित्य की दृष्टि से यह युग फ्रांस के इतिहास में स्वर्ण युग समझा जाता है। इंग्लैंड क्या समस्त यूरोप के लेखक और कलाकार फ्रांस से प्रेरणा प्राप्त करते थे। यूरोप के इतिहास में इसे लुई चौदहवें की शताब्दी कहा जाता है।

विश्वव्यापी समस्याएँ

जैसे अठारहवीं शताब्दी अवतरित हुई, यूरोप का वास्तविक स्वरूप यूरोप की अपेक्षा अमेरिका और पूर्वी देशों में दिखाई देने लगा। अमेरिका में इंग्लैंड के लोगों ने बस्तियाँ बसाई थीं। किन्तु वे उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट तक जिसे आजकल न्यूयार्क कहा जाता है, सीमित थे। क्यूबेक और न्यूऔरलियन्ज़ में फ्रांसीसियों ने बस्तियाँ बसाईं। फ्रांसीसी साहसी यात्री थे किन्तु अमेरिका में बसने का उत्साह उन में न था।

१७५४ ई० में फ्रांस और इङ्गलैंड में लड़ाई छिड़ गई जिस के परिणाम स्वरूप १७५६ ई० में अंग्रेज़ों ने क्यूबेक पर अधिकार प्राप्त कर लिया। अगले साल समस्त कैनेडा उन के हाथ आ गया।

अंग्रेज़ अपनी सफलता पर फूले हुए थे कि अमेरिका की बस्तियों ने १७७६ ई० में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। एक घोर

अमेरिका की स्वतन्त्रता

युद्ध के पश्चात् १७८३ ई० में इङ्गलैंड और अमेरिका के उपनिवेशों में जिन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका का नाम दिया गया विराम सन्धि हो गई। इस संधि के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई।

अमेरिका के इन तेरह राज्यों की स्वतन्त्रता मानव इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस का प्रभाव यूरोप पर पड़े बिना न रहा। फ्रांस जहाँ किसान और मज़दूर ज़मींदारों और अमीरों के पंजे में सिसक रहे थे, खूँख्वार दरिन्दे की भाँति जाग्रत हुआ।

जहाँ सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांस ने वाल्तेअर उत्पन्न किया वहाँ अठारहवीं शताब्दी में उस ने रूसो को जन्म दिया। उस की कृतियों ने मानों फ्रांस में आग लगा दी।

इसे प्रज्वलित होने के लिए कोई बहाना चाहिये था। वह लुई सोलहवे की महारानी ने प्रदान किया। उस की फ़ज़ूलख़रचियों ने फ्रांस का कोष खाली कर दिया। लाचार हो सम्राट् को जनता के प्रतिनिधि बुलाने पड़े जिस में साधारण जनता के प्रतिनिधि बहुसंख्य थे। सम्राट् समझौते के पक्ष में था। महारानी ने विदेशी सैनिकों की सहायता से उन्हें दमन करने की चेष्टा की। परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के लोगों ने नैश्नल गार्ड नाम की सेना स्थापित की और फ्रांस की प्रसिद्ध जेल बैस्टिल पर हल्ला बोल दिया। यह घटना जुलाई १७८९ ई० में हुई और इस के साथ फ्रांस में न केवल बादशाही समाप्त हो गई बल्कि उस के ज़मींदारों का भी अन्त हो गया। पादरी भी क्रान्तिकारियों के प्रकोप से न बचे! गिलोटीन नाम की एक फाँसी स्थापित हो गई जिस पर मनों शिष्ट रक्त बहाया गया।

फ्रांस ने नए जीवन का अनुभव किया। फ्रांसीसी नवयुवक स्वाधीनता, समानता और भ्रातृत्व का संदेश लेकर देश देश जाने

की तैयारियाँ करने लगे। नैपोलियन बोनापार्ट ने उस का नेतृत्व किया।

१७९५ ई० में जब नैपोलियन बोनापार्ट पैरिस में दाखिल हुआ, फ्रांस अन्य देशों के अतिरिक्त इंगलैंड से युद्ध की घोषणा कर चुका था।

नैपोलियन ने शासन शक्ति अपने हाथ में ले ली और फ्रांस ने उसे अपना मुक्तिदाता स्वीकार किया किन्तु नैपोलियन में हृदय की वह विशालता न थी जो इन परिस्थितियों में एक नेता में होनी चाहिये। उस की महत्त्वाकाँक्षा ने उसे उस उद्देश्य पर पहुँचने नहीं दिया जिस की प्राप्ति की आशा में फ्रांस ने उसे सब कुछ सौंप दिया था। १८१४–१५ ई० में समस्त यूरोप जिस में फ्रांस भी सम्मिलित था उस के विरोध के लिये खड़ा हो गया और लगभग पन्द्रह वर्ष की निरंकुशता के पश्चात् वह एक बन्दी की दशा में सेंट हैलिना नाम के टापू में रहने लगा।

उन्नीसवीं शताब्दी का आगमन

नैपोलियन की पराजय के पश्चात् यूरोप का नया रूप दृष्टिगोचर होता है। स्वेच्छाचार के लिए यूरोप के नरेशों की अन्तिम असफल चेष्टा, इसे परिहास बनाने वाली जन-सत्ता का निर्माण और इस के साथ-साथ विज्ञान की नई शक्तियों का प्रादुर्भाव, यूरोप में नवयौवन की सी स्फूर्ति का संचार करता दिखाई देता है।

परिच्छेद २८

पूर्वी और पश्चिमी तट

कोंकण

कोंकण में मराठा जाति रहती थी जिसे आंगरे कहते थे। आंगरे लोग बहुत वीर और कुशल नाविक थे। वे अपने आप को पश्चिमी सागर के स्वामी समझते थे। उन का एक बहुत मज़बूत दुर्ग था जिसे स्वर्ण दुर्ग कहते थे। आंगरे पूना की सरकार के आधीन न थे। उन की शक्ति देख कर पेशवा को ईर्षा होती थी।

मराठों का आक्रमण

पूना की सरकार कोंकण का महत्त्व समझती थी। दक्षिण के इस भाग में प्रभुत्व स्थापित करने की इस की आकांक्षा स्वाभाविक ही थी।

कोंकण वास्तव में सिद्दी जाति का घर था। सिद्दियों ने औरंगज़ेब को मराठों के विरुद्ध मूल्यवान् सहायता दी थी जिस की उपकृति के रूप में उन्हें रायगढ़ और अन्य कई दुर्ग प्रदान हुए थे। पूना की सरकार समझती थी कि स्वर्ण दुर्ग की अपेक्षा रायगढ़ पर अधिकार स्थापित करना सुगम है। १७३३ ई० में मराठों ने रायगढ़ पर चढ़ाई की और यह और अन्य कई दुर्ग उन के हाथ आ गये परन्तु इस बीच में अंग्रेज़ों ने सिद्दियों का साथ दिया और यह युद्ध सन्धि द्वारा समाप्त हुआ।

पुर्तगेज़

कोंकण में पुर्तगाली भी रहते थे। विजयनगर नरेश की सहायता से वे १५१० ई० में गोआ में आ बसे थे। १५३५ ई० में पुर्तगालियों ने गुजरात के नरेश की हुमायूँ के विरुद्ध सहायता की और इस सहायता के फलस्वरूप उन्हें बम्बई, माही, ड्यू, डामन, चौल, और बसई (बसीन) के स्थान प्राप्त हुए। पास ही सालसिट का टापू

था जो उस की उर्वर भूमि के कारण पुर्तगालियों को बहुत प्रिय था। मराठों को यह बात न भाती थी कि पुर्तगालियों का वैभव बढ़ता जाय।

मराठों की जीत

१७३० ई० में मराठों ने सालसिट पर आक्रमण किया। मराठों की जीत हुई परन्तु पुर्तगालियों को यह विदित हो गया कि वे अधिक समय तक सालसिट को अपने आधीन न रख सकेंगे। हुआ भी ऐसा ही। जिस समय नादर शाह दिल्ली में गुर्रा रहा था मराठे पुर्तगालियों पर टूट पड़े और १७३९ ई० तक उन्होंने बसीन, सालिसट और कई अन्य स्थानों पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

अंग्रेज़ों द्वारा हस्तक्षेप

मराठों की जीत अंग्रेज़ों को बिच्छू के समान डस गई। वे इस टोह में थे कि किसी प्रकार मराठों को कोंकण से निर्वासित करें। इस विचार से कि पूना सरकार आंगरे सरदारों को टेढ़ी नज़र से देखती है अंग्रेज़ों ने पुर्तगालियों के साथ मिल कर स्वर्ण दुर्ग पर आक्रमण किया परन्तु उन्होंने मुँह की खाई। १७५६ ई० में आंगरे सरदारों में आपस में झगड़े पड़ गए और इन झगड़ों का लाभ उठा कर अंग्रेज़ों ने स्वर्ण दुर्ग पर हाथ साफ़ किया। १७७५ ई० में पुर्तगालियों ने मराठों से वे इलाके प्राप्त करने का प्रयास किया जो वे १७३९ ई० में खो बैठे थे। इस प्रयास को बहाना बना अंग्रेज़ों ने सालसिट पर अधिकार कर लिया।

अपने इस दुष्कार्य में उन्हें मराठा सरदारों से शह मिली थी। इस द्वन्द्व का वर्णन हम पहले कर आये हैं। इस द्वन्द्व के कारण आगे चल कर अंग्रेज़ों ने मराठों को पूर्ण मात दी।

१६६८ ई० में सूरत और १६६९ ई० में मसोलीपटम के स्थान पर फ्रांसीसियों ने व्यापार केन्द्र स्थापित किये थे। १६७२ ई० में फ्रैंकोआए

पांडीचेरी

मार्टिन ने करनाटक के नवाब से वलीकोंडापुरम का गाँव प्राप्त कर लिया जहाँ पांडीचेरी का नगर बसाया गया। मार्टिन, लिनाएर और डूमाज़ एक एक कर के इस के गवर्नर रहे और उन्हों ने इसे अति उन्नत नगर बना दिया। १६७४ ई० में बंगाल के नवाब ने उन्हें वह स्थान प्रदान किया जहाँ अब चन्द्र नगर स्थित है। १६६० ई० में उन्हों ने वहाँ भी व्यापार केन्द्र स्थापित किया और मौरीशश पर १७२१ ई० में, माही पर १७२५ ई० में तथा कारीकल पर १७३६ ई० में अधिकार प्राप्त कर लिया। इस बीच में उन्हों ने सूरत और मसोलीपटम को छोड़ दिया।

१७४२ ई० में डूप्ले पांडीचेरी का गवर्नर नियुक्त हुआ। वह भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। भारतीय शासकों की दुर्बलता प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती थी। उसका विश्वास था कि यदि भारतीय सैनिकों को यूरोपीय नायक दीक्षा दें तो वे बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। वह इस योजना को कार्यान्वित करने की चेष्टा कर रहा था कि यूरोप में अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों में युद्ध छिड़ गया जो भारत में भी फैल गया।

डूप्ले

१७४५ ई० में पांडुचेरी को अंग्रेज़ी आक्रमण का भय हुआ किन्तु करनाटक के नवाब ने अंग्रेज़ों को आक्रमण करने से रोक दिया। इस के विपरीत १७४६ ई० में फ्रांसीसी जनरल ला बोरडोनाए ने नवाब से शह पा कर मद्रास पर अधिकार जमा लिया।

करनाटक का नवाब अनवरुद्दीन समझे बैठा था कि मद्रास उस के हवाले कर दिया जायगा किन्तु उसे निराशा का मुँह देखना पड़ा और वह १०,००० सैनिक लेकर मद्रास की ओर बढ़ा। फ्राँसीसियों के ५०० सैनिकों ने उस का मुँह मोड़ दिया।

डूप्ले ने अंग्रेज़ों के दुर्ग फोर्ट सेंट डेविड को प्राप्त करने की चेष्टा की, जो असफल रही। अंग्रेज़ भी पांडीचेरी को प्राप्त न कर सके। आखिर १७४८ ई० में यूरोप में युद्ध समाप्त हो गया। मद्रास अंग्रेज़ों को वापिस मिल गया।

डूप्ले को एक नई सूझ सूझी। उस ने भारतीयों के आपसी झगड़ों में भाग लेने का निश्चय किया। १७४८ ई० में निज़ामुलमुल्क की मृत्यु ने इसके लिये अवसर प्रदान किया। उस के पुत्र नासिर जंग और दोहते मुज़फ्फर जंग में निज़ामत के लिये झगड़ा हो गया। डूप्ले ने मुज़फ्फर जंग का साथ दिया।

उधर करनाटक में निज़ामुलमुल्क ने वास्तविक नवाब के स्थान पर अनवरुद्दीन को नियुक्त किया था। किन्तु करनाटक की नवाबी का दावेदार चन्दा साहब भी था। डूप्ले ने अनवरुद्दीन के विरुद्ध चन्दा साहब का साथ दिया।

तञ्जौर के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप कर अंग्रेज़ों ने डूप्ले के लिये उदाहरण प्रस्तुत किया था। इस लिये डूप्ले पर पहले पहल ऐसा करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

१७४९ ई० में अनवरुद्दीन की हार हुई और वह मारा गया किन्तु उस का पुत्र मुहम्मद अली बच निकला और उस ने अंग्रेज़ों की शरण ली। अंग्रेज़ नासिर जंग की भी सहायता कर रहे थे किन्तु नासिर जंग मारा गया। १७५० ई० में मुज़फ्फर जंग जिस की फ्रांसीसी सहायता कर रहे थे मारा गया किन्तु उस के स्थान पर फ्रांसीसियों ने निज़ामुलमुल्क के सब से छोटे पुत्र सलाबत जंग को निज़ाम बना दिया। यह फ्रांसीसी जनरल बुसे की बहुत बड़ी विजय थी।

इस चाल से एक बहुत बड़ा प्रदेश डूप्ले के हाथ लगा और मसौलीपटम की बन्दरगाह फ्रांसीसियों को मिल गई।

करनाटक में डूप्ले को सफलता न मिली। अंग्रेज़ जो मुहम्मद अली का साथ दे रहे थे बहुत चतुर सिद्ध हुये और चन्दा साहब की हार हुई। १७५२ ई० में मुहम्मद अली अर्काट का नवाब बना।

अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों में १७५४ ई० में सन्धि हो गई जिस के फलस्वरूप अरकाट में अंग्रेज़ों का और हैदराबाद में फ्रांसीसियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

बुसी

बुसी ने हैदराबाद में फ्रांसीसियों का पक्ष सुदृढ़ बना दिया। अपने आप उसे निज़ाम से उत्तरी सरकार का प्रदेश प्राप्त हुआ और वह भी नवाब बन गया। डूप्ले को फ्रांसीसी सरकार ने वापिस बुला लिया और देश जाकर उसे बहुत अपमान सहन करना पड़ा।

१७५६ ई० में यूरोप में सात साला युद्ध आरम्भ हो गया। अंग्रेजों ने १७५७ ई० में फ्रांसीसियों को चन्द्र नगर से निकाल दिया।

उस समय भारत में लैली फ्रांसीसी सेनापति था। एक तो उस में डूप्ले की सी योग्यता न थी दूसरे उसे फ्रांसीसी सैनिकों का सहयोग प्राप्त न हुआ। फ्रांस से भी उसे कोई सहायता न मिली। फिर भी उस ने १७५८ ई० में फोर्ट सेंट डेविड पर आक्रमण कर दिया किन्तु उसे वापिस लौटना पड़ा। उस ने हैदराबाद से बुसी को बुला लिया और इस प्रकार हैदराबाद में फ्रांसीसियों का प्रभाव जाता रहा (१७५८ ई०)।

लैली ने मद्रास का परिवेष्टन किया किन्तु अंग्रेज़ों को सहायता पहुँच गई। उधर उत्तरी सरकार और मसुलीपट्टम भी अंग्रेज़ों को मिल गये। करनाटक में भी लैली की हार हुई और वाण्डेवाश के स्थान पर १७६० ई० में अंग्रेज़ सेनापति आयर कूट ने उसे मात दी। ६ मास के परिवेष्टन के पश्चात् १७६१ ई० में पांडीचेरी की ईंट से ईंट बजा दी गई।

डूप्ले ने अंग्रेज़ों के दुर्ग फोर्ट सेंट डेविड को प्राप्त करने की चेष्टा की, जो असफल रही। अंग्रेज़ भी पांडीचेरी को प्राप्त न कर सके। आखिर १७४८ ई० में यूरोप में युद्ध समाप्त हो गया। मद्रास अंग्रेज़ों को वापिस मिल गया।

डूप्ले को एक नई सूझ सूझी। उस ने भारतीयों के आपसी झगड़ों में भाग लेने का निश्चय किया। १७४८ ई० में निज़ामुलमुल्क की मृत्यु ने इसके लिये अवसर प्रदान किया। उस के पुत्र नासिर जंग और दोहते मुज़फ्फर जंग में निज़ामत के लिये झगड़ा हो गया। डूप्ले ने मुज़फ्फर जंग का साथ दिया।

उधर करनाटक में निज़ामुलमुल्क ने वास्तविक नवाब के स्थान पर अनवरुद्दीन को नियुक्त किया था। किन्तु करनाटक की नवाबी का दावेदार चन्दा साहब भी था। डूप्ले ने अनवरुद्दीन के विरुद्ध चन्दा साहब का साथ दिया।

तञ्जौर के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप कर अंग्रेज़ों ने डूप्ले के लिये उदाहरण प्रस्तुत किया था। इस लिये डूप्ले पर पहले पहल ऐसा करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

१७४६ ई० में अनवरुद्दीन की हार हुई और वह मारा गया किन्तु उस का पुत्र मुहम्मद अली बच निकला और उस ने अंग्रेज़ों की शरण ली। अंग्रेज़ नासिर जंग की भी सहायता कर रहे थे किन्तु नासिर जंग मारा गया। १७५० ई० में मुज़फ्फर जंग जिस कीं फ्रांसीसी सहायता कर रहे थे मारा गया किन्तु उस के स्थान पर फ्रांसीसियों ने निज़ामुलमुल्क के सब से छोटे पुत्र सलाबत जंग को निज़ाम बना दिया। यह फ्रांसीसी जनरल बुसे की बहुत बड़ी विजय थी।

इस चाल से एक बहुत बड़ा प्रदेश डूप्ले के हाथ लगा और मसौलीपटम की बन्दरगाह फ्रांसीसियों को मिल गई।

करनाटक में डूप्ले को सफलता न मिली। अंग्रेज़ जो मुहम्मद अली का साथ दे रहे थे बहुत चतुर सिद्ध हुये और चन्दा साहब की हार हुई। १७५२ ई० में मुहम्मद अली अर्काट का नवाब बना।

अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों में १७५४ ई० में सन्धि हो गई जिस के फलस्वरूप अरकाट में अंग्रेज़ों का और हैदराबाद में फ्रांसीसियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

बुसी ने हैदराबाद में फ्रांसीसियों का पक्ष सुदृढ़ बना दिया। अपने आप उसे निज़ाम से उत्तरी सरकार का प्रदेश प्राप्त हुआ और वह भी नवाब बन गया। डूप्ले को फ्रांसीसी सरकार ने वापिस बुला लिया और देश जाकर उसे बहुत अपमान सहन करना पड़ा।

बुसी

१७५६ ई० में यूरोप में सात साला युद्ध आरम्भ हो गया। अंग्रेजों ने १७५७ ई० में फ्रांसीसियों को चन्द्र नगर से निकाल दिया।

उस समय भारत में लैली फ्रांसीसी सेनापति था। एक तो उस में डूप्ले की सी योग्यता न थी दूसरे उसे फ्रांसीसी सैनिकों का सहयोग प्राप्त न हुआ। फ्रांस से भी उसे कोई सहायता न मिली। फिर भी उस ने १७५८ ई० में फोर्ट सेंट डेविड पर आक्रमण कर दिया किन्तु उसे वापिस लौटना पड़ा। उस ने हैदराबाद से बुसी को बुला लिया और इस प्रकार हैदराबाद में फ्रांसीसियों का प्रभाव जाता रहा (१७५८ ई०)।

लैली ने मद्रास का परिवेष्टन किया किन्तु अंग्रेज़ों को सहायता पहुँच गई। उधर उत्तरी सरकार और मसुलीपट्टम भी अंग्रेज़ों को मिल गये। करनाटक में भी लैली की हार हुई और वाण्डेवाश के स्थान पर १७६० ई० में अंग्रेज़ सेनापति आयर कूट ने उसे मात दी। ६ मास के परिवेष्टन के पश्चात् १७६१ ई० में पांडीचेरी की ईंट से ईंट बजा दी गई।

डूप्ले ने अंग्रेज़ों के दुर्ग फोर्ट सेंट डेविड को प्राप्त करने की चेष्टा की, जो असफल रही। अंग्रेज़ भी पांडीचेरी को प्राप्त न कर सके। आखिर १७४८ ई० में यूरोप में युद्ध समाप्त हो गया। मद्रास अंग्रेज़ों को वापिस मिल गया।

डूप्ले को एक नई सूझ सूझी। उस ने भारतीयों के आपसी झगड़ों में भाग लेने का निश्चय किया। १७४८ ई० में निज़ामुलमुल्क की मृत्यु ने इसके लिये अवसर प्रदान किया। उस के पुत्र नासिर जंग और दोहते मुज़फ्फर जंग में निज़ामत के लिये झगड़ा हो गया। डूप्ले ने मुज़फ्फर जंग का साथ दिया।

उधर करनाटक में निज़ामुलमुल्क ने वास्तविक नवाब के स्थान पर अनवरुद्दीन को नियुक्त किया था। किन्तु करनाटक की नवाबी का दावेदार चन्दा साहब भी था। डूप्ले ने अनवरुद्दीन के विरुद्ध चन्दा साहब का साथ दिया।

तञ्जौर के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप कर अंग्रेज़ों ने डूप्ले के लिये उदाहरण प्रस्तुत किया था। इस लिये डूप्ले पर पहले पहल ऐसा करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

१७४९ ई० में अनवरुद्दीन की हार हुई और वह मारा गया किन्तु उस का पुत्र मुहम्मद अली बच निकला और उस ने अंग्रेज़ों की शरण ली। अंग्रेज़ नासिर जंग की भी सहायता कर रहे थे किन्तु नासिर जंग मारा गया। १७५० ई० में मुज़फ्फर जंग जिस की फ्रांसीसी सहायता कर रहे थे मारा गया किन्तु उस के स्थान पर फ्रांसीसियों ने निज़ामुलमुल्क के सब से छोटे पुत्र सलाबत जंग को निज़ाम बना दिया। यह फ्रांसीसी जनरल बुसे की बहुत बड़ी विजय थी।

इस चाल से एक बहुत बड़ा प्रदेश डूप्ले के हाथ लगा और मसौलीपटम की बन्दरगाह फ्रांसीसियों को मिल गई।

करनाटक में डूप्ले को सफलता न मिली। अंग्रेज़ जो मुहम्मद अली का साथ दे रहे थे बहुत चतुर सिद्ध हुये और चन्दा साहब की हार हुई। १७५२ ई० में मुहम्मद अली अर्काट का नवाब बना।

अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों में १७५४ ई० में सन्धि हो गई जिस के फलस्वरूप अरकाट में अंग्रेज़ों का और हैदराबाद में फ्रांसीसियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

बुसी

बुसी ने हैदराबाद में फ्रांसीसियों का पक्ष सुदृढ़ बना दिया। अपने आप उसे निज़ाम से उत्तरी सरकार का प्रदेश प्राप्त हुआ और वह भी नवाब बन गया। डूप्ले को फ्रांसीसी सरकार ने वापिस बुला लिया और देश जाकर उसे बहुत अपमान सहन करना पड़ा।

१७५६ ई० में यूरोप में सात साला युद्ध आरम्भ हो गया। अंग्रेजों ने १७५७ ई० में फ्रांसीसियों को चन्द्र नगर से निकाल दिया।

उस समय भारत में लैली फ्रांसीसी सेनापति था। एक तो उस में डूप्ले की सी योग्यता न थी दूसरे उसे फ्रांसीसी सैनिकों का सहयोग प्राप्त न हुआ। फ्रांस से भी उसे कोई सहायता न मिली। फिर भी उस ने १७५८ ई० में फोर्ट सेंट डेविड पर आक्रमण कर दिया किन्तु उसे वापिस लौटना पड़ा। उस ने हैदराबाद से बुसी को बुला लिया और इस प्रकार हैदराबाद में फ्रांसीसियों का प्रभाव जाता रहा (१७५८ ई०)।

लैली ने मद्रास का परिवेष्टन किया किन्तु अंग्रेज़ों को सहायता पहुँच गई। उधर उत्तरी सरकार और मसुलीपट्टम भी अंग्रेज़ों को मिल गये। करनाटक में भी लैली की हार हुई और वाण्डेवाश के स्थान पर १७६० ई० में अंग्रेज़ सेनापति आयर कूट ने उसे मात दी। ६ मास के परिवेष्टन के पश्चात् १७६१ ई० में पांडीचेरी की ईंट से ईंट बजा दी गई।

फ्रांसीसियों की हार

१७६३ ई० में पैरिस की सन्धि द्वारा सात साला युद्ध समाप्त हो गया। भारत में फ्रांसीसियों को उन के इलाके लौटा दिये गये किन्तु भारत में उन की शक्ति समाप्त हो चुकी थी। समय समय पर उन्होंने शक्ति प्राप्त करने की चेष्टा की किन्तु उनका कोई भी प्रयत्न सफल न हुआ। टीपू सुल्तान ने फ्रांसीसियों की सहायता से अंग्रेज़ों को भारत से निर्वासित करने का प्रयत्न किया किन्तु फ्रांस की परिस्थिति ऐसी न थी कि वह अंग्रेज़ों से टक्कर ले सकता। नैपोलियन के काल में भारत में स्थित फ्रांसीसी उपनिवेशों ने सिर नहीं उठाया।

भारत के स्वतन्त्र होने पर फ्रांसीसी सरकार ने भारत में स्थित अपनी बस्तियों पर से अधिकार उठा लिया है।

फ्रांसीसियों की असफलता के कारण

फ्रांसीसी भारत में साम्राज्य स्थापित न कर सके। इस असफलता का सब से बड़ा कारण वहाँ की सरकार की उदासीनता थी। फ्रैंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर सरकारी अधिकार था जिस के कारण डुमाज़ और डूप्ले जैसे सेनापति भी पूर्णतः सफल न हो पाये।

दूसरा कारण था जल सेना की दुबलता। फ्रांस की जल सेना अंग्रेज़ी जल सेना का मुकबला न कर सकती थी। लैली की हार का कारण यही कमी थी। लैली को अपने देश का आर्थिक सहारा भी न था। तीसरे अंग्रेज़ों को क्लाइव जैसा व्यक्ति प्राप्त हो गया जिस ने इस प्रतियोगिता का रूप ही बदल डाला।

फ्रांस लौट कर डूप्ले की जो दुर्गति हुई उस ने भारत में स्थित फ्रांसीसी नायकों का दिल तोड़ दिया।

हम पहले कह आये हैं कि दक्षिण के प्राचीन राज्य विदेशों से व्यापार करते थे और पश्चिमी और पूर्वी तट पर कई अति उन्नत

करनाटक

बन्दरगाहें थीं। तटीय भूमि के प्रमुख-भूमि से पृथक होने के कारण तट पर स्थित राज्य या तो स्वतन्त्र होते थे या वे दक्षिण पथ के सम्राट को केवल खिराज देते थे। अठारहवीं शताब्दी की अफ़ला तफ़ली में इन में से बहुत से राज्य समाप्त हो गये थे। कई एक ने स्वतन्त्र रूप धारण कर लिया था। परन्तु उस समय के दक्षिण की दो प्रमुख शक्तियाँ मराठे और हैदराबाद का निज़ाम उन्हें अपने प्रभावाधीन रखना चाहती थीं। मैसूर का राज्य भी ऐसा ही राज्य था। करनाटक में इस प्रकार के कई राज्य थे। पश्चिमी घाट में ट्रावनकोर भी एक छोटा राज्य था। करनाटक की भूमि बहुत उपजाऊ है इस लिए इस भाग पर प्रतिद्वन्द्वियों की दृष्टि विशेष रूप से लगी थी।

करनाटक का वैभव हम चोल और पल्लव राजाओं के काल में देख आये हैं, जिन्हों ने न केवल कला और साहित्य की दृष्टि से इस प्रदेश को गौरव प्रदान किया बल्कि अपने कौशल से उसे समृद्ध भी बनाया था। सिंचाई के साधनों और लोकतन्त्रीय संस्थाओं ने करनाटक के लोगों को सुख और शान्ति का जीवन प्रदान किया था। तंजौर इस भाग का सुन्दर और भव्य नगर था। फिर यह प्रदेश विजयनगर सम्राज्य का भाग बनकर रह गया। १५६५ ई० के युद्ध के पश्चात् बीजापुर और गोलकुण्डा के नरेशों की ललचाई हुई दृष्टि इस पर पड़ी परन्तु छोटे छोटे राजन्यों को जो करनाटक में स्थित थे परास्त करना सुगम न था। १५७५ ई० में विजयनगर के निर्वासित नरेश ने पुनः शक्ति प्राप्त करने की चेष्टा की परन्तु उसे बन्दी बना लिया गया। १५७७ ई० में उसके एक सम्बन्धी जगत राय ने उसे मुक्त कराया। मुक्त होकर नरेश ने मैसूर का राज्य, जो उसके आधीन था, जगत राय को दे दिया। मैसूर में जगत राय स्वतन्त्र राज्य स्थापित न कर सका और उसे गोलकुण्डा की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। विजय नगर नरेश दुर्बल सिद्ध हुआ और करनाटक भी उसके हाथ से निकल गया।

करनाटक के राजन्यों में आपस में झगड़े होने लगे। १६६२ ई० में बीजापुर नरेश ने शाह जी को यह इलाका विजय करने के लिये भेजा। शाहजी को सफलता मिली और बीजापुर सुल्तान की ओर से शाहजी इस इलाके का सूबेदार नियुक्त हुआ।

मराठों का अधिकार

गत कुशासन के कारण करनाटक की दशा कुछ बिगड़ गई थी। शाहजी ने उस में सुधार किये। उसने अपनी ओर से दीवानी अफ़सर नियुक्त किये जिन्हों ने विजय नगर की प्रथाओं को कायम रखते हुए उनके सब दोष दूर कर दिये। करनाटक को पुनः जीवन प्रदान हुआ।

बीजापुर के सुल्तान की हार के पश्चात् करनाटक के राजन्य पुनः स्वतन्त्र हो गए। तंजौर को छोड़ कर अन्य सभी इलाके मराठों के हाथ से निकल गये। अरकाट्, कदापा, कुरनूल, आदि पर मुसलमान नवाबों ने अधिकार जमा लिया। बिदनूर पर एक हिन्दू राजन्य का अधिकार था।

तंजौर

१६६४ ई० में शाह जी की मृत्यु हुई। उसका पुत्र एकोजी तंजौर का शासक बना। उसने १६८४ ई० तक राज्य किया और पिता के स्थापित किये हुए अनुशासन को मलियामेट कर दिया। उसकी लूट खसोट से इस राज्य की उर्वर-भूमि बंजर हो गई। शाहजी द्वितीय ने उसके पश्चात् १७१२ ई० तक शासन किया। वह समझदार, शूरवीर और विद्वान् था। संस्कृत, तामिल, तैलगु के प्रसिद्ध साहित्यकारों से उसका दरबार सुशोभित था। उसके पश्चात् १७२८ ई० तक उसके भाई सरभोजी ने और १७३६ ई० तक तुकोजी ने शासन किया।

मराठों की दृष्टि उत्तर की ओर लगी थी। करनाटक में हैदराबाद का ज़ोर बढ़ गया और उसके द्वारा नियुक्त सूबेदार ने मन मानी करनी आरम्भ की। वह जिसको चाहता तंजौर की गद्दी पर बिठा

देता। अरकाट के नवाब ने और तुकौजी के पुत्र प्रताप सिंह ने जो १७३९ ई० में गद्दी पर बैठा उसे खिराज देना स्वीकार किया। एक बार खिराज न दे सकने पर उसे गद्दी से उतार दिया गया परन्तु सतारा के राजा शाहू की सहायता से उसने १७४६ ई० में पुनः गद्दी प्राप्त की।

अंग्रेज़ों द्वारा हस्तक्षेप

१७४९ ई० में तंजौर के सिंहासन का एक नया दावेदार खड़ा हो गया जिसने अंग्रेज़ों की सहायता ली। किन्तु अंग्रेज़ों को मुँह की खानी पड़ी। भारतीय सेना के शौर्य को देखकर अंग्रेज़ जनरल चकित रह गये।

करनाटक का नवाब तंजौर पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना चाहता था। प्रताप सिंह ने अंग्रेज़ों की सहायता से १७५२ ई० में उसे मात दी। नवाब ने फ्राँसीसियों से सहायता ली थी। वे १७६३ ई० तक तंजौर के मामलों में हस्तक्षेप करते रहे परन्तु इस के पश्चात् उनकी शक्ति क्षीण हो गई।

प्रताप सिंह अंग्रेज़ों के हाथ बिक चुका था। उसके उत्तराधिकारी के साथ अंग्रेज़ों ने बहुत बुरा व्यवहार किया। उसके पश्चात् तंजौर हैदर अली और अंग्रेज़ों की रणभूमि बन गया और यह लहलहाता हुआ प्रदेश उजड़ गया।

अंग्रेज़ अब तंजौर के वास्तविक शासक थे और राजा नाम मात्र को था। इस वंश का अन्तिम प्रसिद्ध राजा सरभोजी हुआ जिसे प्राचीन लेख एकत्रित करने का बहुत चाव था। उसने एक पुस्तकालय की स्थापना की, जिसका प्रतीक नहीं। इसे सरस्वती महल पुस्तकालय कहते हैं। कला क्षेत्र में भी उसने सराहनीय काम किया। उसकी मृत्यु (१८३३ ई०) पर शिवाजी ने पद संभाला जो १८५५ ई० तक जीवित रहा। उसके पश्चात् तंजौर अंग्रेज़ी राज्य का भाग बन गया।

जिंजी जिसे असद ख़ाँ और जुलफिकार ने १६९८ ई० में विजय किया अरकाट का प्रसिद्ध किला था। सआदत अल्ला खाँ अरकाट

अरकाट

का नवाब नियुक्त हुआ जिसकी मृत्यु पर (१७३२ ई०) उसका भतीजा दोस्त अली सूबेदार बना।

दोस्त अली योग्य शासक था। उस ने समस्त करनाटक पर अपना अधिकार जमा लिया। शाहू को यह बात न भाई और उस ने राघोजी भोंसला को दोस्त अली का मुकाबला करने के लिए भेजा। दोस्त अली ने अपने पुत्र सफ़दर अली और जामाता चंदा साहब की सहायता ली। चन्दा साहब बहुत चालाक था और उस ने त्रिचनापल्ली पर पहले ही अधिकार स्थापित कर लिया था।

मराठों का आगमन

१७४० ई० में दोनों सेनाओं की टक्कर हुई। दोस्त अली लड़ाई में मारा गया और चन्दा साहब ने त्रिचनापल्ली में और सफ़दर अली ने अरकाट में शरण ली। मराठों ने सफ़दर अली के साथ सन्धि कर चंदा साहब के विरुद्ध योजना बनाई। चन्दा साहब की हार हुई और वह बन्दी के रूप में सतारा पहुँचा।

१७४२ ई० में निज़ाम ने जो अपने आप को मुग़लों का उत्तराधिकारी समझता था सफ़दर की अचानक हत्या के पश्चात् अनवरुद्दीन को अरकाट का नवाब नियुक्त किया।

१७४८ ई० में निज़ाम की मृत्यु के पश्चात् हैदराबाद की निज़ामत के लिए झगड़े होने लगे जिन के फलस्वरूप अनवरुद्दीन को हैदराबाद और फ्रांसीसियों की मिली जुली सेना का मुकाबला करना पड़ा। उस ने अंग्रेज़ों का आश्रय लिया परन्तु उस की हार हुई और चन्दा साहब को जिसे फ्रांसीसी मुक्त करा लाये थे, अरकाट का नवाब बना दिया गया।

चन्दा साहब की नवाबी थोड़े दिन रही। अनवरुद्दीन लड़ाई में मारा गया था परन्तु उस के पुत्र महम्मद अली ने अंग्रेज़ों की

सहायता से नवाबी प्राप्त करने की चेष्टा की। १७५१ ई० में जिंजी के स्थान पर मुहम्मद अली की हार हुई। अगले साल किसी ने चंदा साहब का वध कर दिया और अंग्रेज़ों के संरक्षण में मुहम्मद अली अरकाट का नवाब बना। १८०१ ई० में अरकाट पूर्ण रूप से अंग्रेज़ी राज्य में सम्मिलित हो गया।

परिच्छेद २६

मैसूर और हैदराबाद

मैसूर

हम बता आये हैं कि मैसूर राज्य विजयनगर साम्राज्य का भाग था। जिस समय औरंगजेब ने दक्षिण का रुख किया वहाँ के राजा चिक्का देव ने औरंगजेब की सहायता की और औरंगजेब ने उसे मूल्यवान उपहार दिये। उस का उत्तराधिकारी चिक्का कृष्ण राज एक शक्तिहीन राजा था जो अपने सेनापति नन्दराज के हाथों में कठपुतली बना हुआ था। वह किसी प्रकार नन्दराज से छुटकारा पाना चाहता था। हैदर अली के लिये यह स्वर्ण अवसर सिद्ध हुआ।

हैदर अली

हैदर अली मैसूर में एक साधारण सैनिक भरती होकर आया था। निज़ाम की मृत्यु पर जब उस के उत्तराधिकारियों में युद्ध हुआ तो हैदर अली की अध्यक्षता में एक दस्ता इस युद्ध में भाग लेने के लिये गया किन्तु उस के वहाँ पहुँचने से पहले ही युद्ध के भाग्य का निर्णय हो चुका था। हारने वाले का कोष हैदर अली के हाथ लगा जिसे उसने स्वयं हथिया लिया। धन प्राप्त कर लेने से हैदर अली की शक्ति बहुत बढ़ गई और उस ने खांडे राव नाम के ब्राह्मण की सहायता से नन्दराज को बंदी बना लिया। हैदर अली ने उसे पिंजरे में बंद कर दिया।

इस के पश्चात् सेनापति का स्थान हैदर अली ने ग्रहण कर लिया और समस्त शासन सत्ता अपने हाथ में ले ली। मैसूर पर मराठों के लगातार आक्रमण हो रहे थे। हैदर अली ने उन्हें धन देकर संतुष्ट किया। १७६१ ई० में जब मराठे पानीपत की लड़ाई में उलझे हुए थे, हैदर अली ने चिक्का कृष्ण राज को गद्दी से

उतार कर स्वयं नरेश की पदवी ग्रहण की।

हैदर अली ने मालाबार का कुछ इलाका जो मराठों के आधीन था अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। उत्तर से अवकाश पा मराठों ने दक्षिण की ओर ध्यान दिया और १७६४ ई० में उन्होंने मैसूर पर आक्रमण करके सब इलाके पुनः प्राप्त कर लिए। १७६६ ई० में उस ने मराठों से एक अपमानजनक संधि कर अपना पिंड छुड़ाया।

माधो राव पेशवा की मृत्यु के पश्चात् मराठों में जो फूट पड़ी उस का वर्णन हम पहले कर आये हैं। रघुनाथ राव ने अपना पक्ष बलिष्ट करने के हेतु हैदर अली से मित्रता कर ली और इस प्रकार हैदर अली मराठों की ओर से निश्चिन्त हो गया।

मद्रास पर आक्रमण

अब उस का ध्यान अंग्रेज़ों की ओर गया जो अति तीव्र गति से अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। वह मद्रास के द्वार तक जा पहुँचा। हैदर अली से मात खा अंग्रेज़ों ने १७६७ ई० में अपमानजनक संधि की। इस संधि से हैदर अली की धाक बैठ गई और अंग्रेज़ों की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का पहुँचा। हैदर ने १७८० ई० में फिर करनाटक का रुख किया। घमासान का युद्ध हुआ जिस में अंग्रेज़ सेनापति कर्नल बेली बन्दी बना लिया गया। १७८१ ई० में सर आयरकूट बंगाल से एक भारी सेना लेकर आया।

यह युद्ध चल ही रहा था कि हैदर अली की कैंसर के रोग से (१७८२ ई०) मृत्यु हो गई। उस के पुत्र टीपू सुल्तान ने युद्ध जारी रखा परन्तु उस के अपने राज्य में कुशासन फैलने लगा और टीपू ने अंग्रेज़ों के साथ १७८४ ई० में मंगलौर के स्थान पर संधि कर ली।

टीपू ने अनुभव किया कि अंग्रेज़ भारत पर छाये जा रहे हैं।

टीपू सुल्तान

वह उन्हें भारत से निकालना चाहता था। उस ने विभिन्न भारतीय राज्यों से सहायता की माँग की परन्तु वह मराठों को और हैदराबाद के निज़ाम को नाराज़ कर चुका था। भारत के किसी अन्य नरेश ने भी उस की सहायता न की।

फ्रांसीसियों की अब भारत में कोई शक्ति शेष न रह गई थी। परन्तु फ्रांसीसी सेना मदगास्कर के टापू में स्थित थी। टीपू सुल्तान ने फ्रांस से सहायता के लिये याचना की। फ्रांसीसी सेना को तट पर उतारने के लिए उस ने ट्रावनकोर पर जो एक छोटा सा राज्य था और जिस ने अंग्रेज़ों का संरक्षण प्राप्त किया था, चढ़ाई कर दी। अंग्रेज़ों ने मराठों से और हैदराबाद के निज़ाम से सहायता प्राप्त कर मैसूर पर हल्ला बोल दिया। इस समस्त सेना को मुँह की खानी पड़ी। १७९२ ई० में यह आक्रमण फिर दोहराया गया। इस बार टीपू की हार हुई और उसे बहुत सा इलाका आक्रमणकारियों की भेंट करना पड़ा जो उन्होंने आपस में बाँट लिया।

टीपू की हार

१७८६ ई० में फ्रांस में क्रांति हुई। नैपोलियन बोनापार्ट ने उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी ओर आक्रमण किये। पूर्व में वह मिश्र तक बढ़ आया। टीपू को आशा हुई कि इस बार फ्रांस से उसे अवश्य सहायता मिले गी। वह योजनायें बना ही रहा था कि अंग्रेज़ों को उन का बोध हो गया और वे मैसूर की ओर बढ़े। टीपू के सम्मुख सन्धि का प्रस्ताव रखा गया जिसे स्वीकार करने में उस ने आना कानी की। अंग्रेज़ों ने पूरी शक्ति से आक्रमण किया और १७६६ ई० में मैसूर की राजधानी श्रीरंगापट्टम पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। टीपू ने सन्धि का प्रस्ताव भेजा किन्तु अंग्रेजों ने इसे ठुकरा दिया। टीपू बड़ी वीरता से लड़ता हुआ मारा गया।

मैसूर का बटवारा

मैसूर का बटवारा हुआ। पश्चिम में कन्नड, दक्षिण
कोम्बदा और पूर्व के कई जिले अंग्रेज़ों के हाथ लगे। अंग्रेज
राज्य कारोमंडल तट से मालाबार तट त
फैल गया। मैसूर का जो भाग शेष रह
गया उस पर अंग्रेजों ने चिका कृष्ण राज
के नाबालिग उत्तराधिकारी का अधिकार स्वीकार किया और उस
के संरक्षक बन कर मैसूर पर शासन करने लगे। १८३३ ई०
में कुशासन का अपराध लगा कर राजा को गद्दी से उतार दिया गया
१८८२ ई० में लार्ड रिपन ने मैसूर को एक पृथक रियासत अथवा
राज्य स्वीकार कर लिया।

हैदर अली और टीपू का चरित्र

हैदर अली और टीपू सुल्तान मुसलमान शासक थे परन्तु उन्होंने
सहिष्णुता का प्रमाण दिया। उन के शौर्य की सरहाना अंग्रेजों ने भी
की है। शिक्षित न होने पर भी हैदर अली
साहित्य और कला का प्रेमी था। टीपू ने अपने
राज्य को व्यवस्थित करने के लिए बहुत से
सुधार किये। लगातार युद्ध होने पर भी मैसूर
की जनता की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक रही।

हैदर अली के आक्रमणों से करनाटक को बहुत हानि पहुँची।
इङ्गलैंड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बर्क ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की
बहुत निन्दा की क्यों कि वह समझता था कि करनाटक की दुर्दशा
का कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी की दोषपूर्ण नीति है।

हैदराबाद

हैदराबाद निज़ामत की स्थापना, जैसे पहले बताया जा चुका
है, फिरोज़ जंग के पुत्र चिन कुलिच खाँ ने
की थी जिसे फ़रुखसीयर ने निज़ामुलमुल्क
की पदवी प्रदान की थी। उसे मुगल सम्राट
वज़ीर बनाना चाहता था परन्तु निज़ाम इस पद की जोखिम को
खूब समझता था। उस ने दक्षिण का सूबेदार बनना ही बेहतर
समझा।

मराठों से सन्धि

१७२४ ई० में वह दक्षिण पहुँचा। पहले उस ने अपने मुसलमान शत्रुओं को समाप्त किया और फिर अपनी निज़ामत का विस्तार किया। उस ने १७२६ ई० में मराठा सरदार सरभोजी से त्रिचनापल्ली का नगर छीन लिया। १७२७ ई० में पूना से सरभोजी की सहायता के लिए सेना आई किन्तु निज़ाम ने उसे मात दी। उसी साल पेशवा बाजी राव स्वयं दक्षिण की ओर बढ़ा और निज़ाम ने सन्धि करने में ही कुशल समझा। यह संधि १७२८ ई० में हुइ।

बाजी राव पेशवा की सत्ता बढ़ती जा रही थी। संभव था कि मुग़ल सम्राट् उसे दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर देता। निज़ाम मुग़ल सम्राट् को रुष्ट कर आया था। उस ने सम्राट् को पुनः प्रसन्न करने का प्रयास किया और वह दिल्ली पहुँचा। सम्राट् ने उस की सेवायें स्वीकार कीं और उसे छत्रसाल को दमन करने के लिए भेजा परन्तु पेशवा वहाँ पहले ही आ पहुँचा था। निज़ाम उलटे पाँव मुड़ा। १७३६ ई० में नादरशाह ने आक्रमण कर दिया और निज़ाम ने बाजी राव से पुनः मित्रता स्थापित करली। वह दक्षिण लौटा। फिर उसे मराठों का विरोध करने का साहस न हुआ। मानों उस ने मराठों को अपना संरक्षक स्वीकार कर लिया था। १७४८ ई० में उस की मृत्यु हो गई।

निज़ामत के दावेदार

निज़ामत के कई दावेदार खड़े हो गये। निज़ाम ने अपने दोहत्रे मुज़फ़्फर जंग को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था परन्तु निज़ामत पर उस के पुत्र नासिर जंग ने अधिकार प्राप्त कर लिया। मुज़फ्फर जंग ने मराठों की सहायता ली।

हम ऊपर कह आये हैं कि करनाटक की नवाबी का प्रश्न लगभग इसी समय उठा था। वहाँ की नवाबी का दावेदार चन्दा साहब मराठों की कैद में था। उस ने फ्रांसीसियों की शरण ली थी। फ्रांसी-

सियों को अपना मित्र बनाने के लिए मुज़फ्फर ने चन्दा साहब को मुक्त कराया।

अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों की टक्कर

अंग्रेज़ और फ्रांसीसी दोनों यह चाहते थे कि हैदराबाद और करनाटक उन के हाथ लगे। फ्रांसीसियों ने जब चंदा साहब का पक्ष लिया तो अंग्रेज़ों ने मुहम्मद अली को सहायता दी। हैदराबाद में उन्होंने नासिर का पक्ष लिया। इन भारतीय शासकों का आपसी द्वन्द्व अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों का द्वन्द्व बन गया जिस के परिणाम स्वरूप करनाटक में अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्थापित हो गया और हैदराबाद में फ्रांसीसियों का।

इस द्वन्द्व में मराठों की कूट नीति ने खूब काम किया। मराठों को यह निश्चय हो गया था कि फ्रांसीसी उनके प्रतिद्वन्दी हैं, अंग्रेज़ नहीं। इसी धारणा को सामने रखते हुए मराठों ने निज़ाम की गद्दी का एक और दावेदार खड़ा कर दिया। यह व्यक्ति गाज़ीउद्दीन था जो पहिले निज़ाम के छः पुत्रों में से था। मुज़फ्फर जिसकी फ्राँसीसी सहायता कर रहे थे एक विप्लव में मारा गया था, उसके स्थान पर उन्हों ने नासिर के भाई सलाबत जंग को निज़ाम घोषित किया। नासिर जंग की मृत्यु पहिले ही हो चुकी थी।

अब मराठों और फ्रांसीसियों की टक्कर थी। मराठे हैदराबाद की ओर बढ़े। फ्रांसीसियों ने सलाबत जंग के साथ मिलकर पूना का रुख़ किया।

पेशवा ने कमाल हुशियारी से काम लिया और सलाबत जंग के मन में फ्रांसीसियों के प्रति शंका उत्पन्न कर दी। उधर उसने हैदराबाद राज्य में लूट मार करने के लिये मराठा सेना भेज दी। गाज़ीउद्दीन मराठों की सहायता से निज़ाम बन गया। परन्तु निज़ामुलमुल्क की एक विधवा ने उसका वध करा दिया। वह अपने पुत्र निज़ाम अली को निज़ामत दिलाना चाहती थी। गाज़ीउद्दीन की मृत्यु के पश्चात्

सलाबत जंग ने निज़ामत संभाली और हैदराबाद में फ्रांसीसियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

फ्रांसीसियों के हौसले बढ़े हुए थे और संभव था वे बंगाल में अंग्रेज़ों की जीत को हार में बदल देते परन्तु पेशवा बालाजी बाजी राव ने उन्हें ऐसा उलझाया कि वे बंगाल की ओर ध्यान न दे सके।

पेशवा ने सलाबत जंग को फ्रांसीसियों से विमुख कर दिया। साथ ही उस ने निज़ाम अली की गुप्त रूप से सहायता की जिसके कारण वह सलाबत जंग का वज़ीर बन गया और फिर उसे गद्दी से उतार निज़ाम अली ने निज़ामत संभाली।

निज़ाम अली और मराठे

मराठे चाहते थे कि निज़ाम अली अपना वह वचन निभाये जो निज़ाम बनने से पूर्व उसने उन्हें दिया था। पेशवा उसका सर्वोपरि बन कर रहना चाहता था। निज़ाम अली इसके लिये तैयार न हुआ और पेशवा ने १७५६ ई० में उस पर चढ़ाई कर दी। निज़ाम अली को मराठों से सन्धि करनी पड़ी और उसने अपने कई दुर्ग मराठों को भेंट किये। इस आक्रमण से हैदराबाद की दशा बहुत हीन हो गई और ऐसा प्रतीत होता था कि हैदराबाद का राज्य मराठा साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया जायेगा परन्तु १७६१ ई० में मराठों की हार ने निज़ाम में नई जान डाल दी।

मराठा सरदारों में फूट पड़ी हुई थी। कई मराठा सरदार निज़ाम अली की सहायता करना चाहते थे। ताराबाई भी उसके पक्ष में थी।

प्रोत्साहित हो निज़ाम अली ने पूना का रुख़ किया और मराठा इलाके को लूटता खसोटता, मन्दिरों को गिराता वह आगे बढ़ा। पेशवा ने उसका मुकाबला किया और निज़ाम अली को वापिस लौटना पड़ा।

मराठा सरदारों की आपसी फूट बढ़ती जा रही थी। उन में से

कुछ ऐसे थे जो नागपुर के भोंसला को पेशवा बनाना चाहते थे। निज़ाम अली ने उनका साथ दिया। मिली-जुली सेना पूना की ओर बढ़ी। रघुनाथ राव ने उन मराठा सरदारों को जो निज़ाम के साथ मिले थे बहकाकर अपने पक्ष में कर लिया और निज़ाम अली का मुकाबला किया। गोदावरी के तट पर दोनों सेनाओं की टक्कर हुई, मराठों की हार हुआ ही चाहती थी कि युवक माधो राव जो तत्पश्चात् पेशवा बना आगे बढ़ा। निज़ाम अली की सेना के पाँव उखड़ गये और वह स्वयं मरते मरते बचा। उसने रघुनाथ राव के पाँव पकड़ कर जान बचाई और मराठों से अति अपमान जनक सन्धि की।

निज़ाम अली और अंग्रेज़

निज़ाम अली की दशा बहुत विचित्र थी। एक ओर तो वह हैदर अली से मिला था दूसरी ओर मराठों से। तीसरे वह अंग्रेज़ों से सहायता की बात चीत कर रहा था। वह मराठों की भी क्षति चाहता था और हैदर अली की भी। उधर वह अरकाट से मुहम्मद अली को जो अंग्रेज़ों का चहेता था, पदहीन करना चाहता था। मराठा सरदारों में मत भेद बहुत बढ़ गया था। नारायण राव के कत्ल से संनसनी फैली हुई थी फिर भी मराठा सेना निज़ाम अली को पाठ पढ़ा सकती थी। नवम्बर १७७३ ई० में रघुनाथ राव निज़ाम अली के राज्य में सेना सहित दाखिल हुआ। निज़ाम अली की फिर हार हुई और उसने रघुनाथ राव के पाँव पड़ कर जान बचाई।

१७८० ई० में निज़ाम अली, हैदर अली और नाना फड़नवीस ने मिलकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध संयोग बनाया, किन्तु निज़ाम ने मराठों का साथ नहीं दिया। फिर जब टीपू सुल्तान पर चढ़ाई हुई तो १७९८ में उसने अंग्रेज़ों का साथ दिया। टीपू की मृत्यु के पश्चात् नाना फड़नवीस और निज़ाम अली में फिर छिड़ गई। निज़ाम अली की फिर हार हुई।

१७९८ ई० में निज़ाम अली ने फ्रांसीसी सेना को निकाल कर अंग्रेज़ी सेना रख ली और उसके लिये बहुत सा इलाका अंग्रेज़ों को दे दिया। अंग्रेजों के साथ सहायक मैत्री स्थापित करने वाला वह पहला भारतीय राजन्य था।

हैदराबाद के निजाम को दक्षिण में मुसलमानी राज्य प्रथाओं का संरक्षक कहा जाता था, उन प्रथाओं का जो १३४७ ई० में बहमनी राज्य के साथ स्थापित हुई थीं। १५१८ ई० में टिमटिमाता चिराग़ इनका उत्तराधिकार अहमदनगर (अन्त १६०० ई०), बीदर, बरार, बीजापुर तथा गोलकुण्डा को प्राप्त हुआ जो देशीय शिया राज्य थे और जिन पर हिन्दू रीति रिवाजों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता था। यही कारण था कि ये राज्य औरङ्गजेब को एक आँख न भाते थे। बीजापुर को उसने १६८६ ई० और गोलकुण्डा को जो लोहे और हीरे की खानों के लिये प्रसिद्ध था १६८७ ई० में विजय किया। बीजापुर के वजीर मीर जुमला ने जो तत्पश्चात औरङ्गजेब का विश्वासपात्र और सेना नायक बन कर रहा अपने स्वामी से विद्रोह किया था। इसके विपरीत गोलकुण्डा के वजीर अब्दुल रज्जाक ने स्वामी भक्ति का प्रमाण दिया किन्तु वजीरों का विद्रोह अथवा उनकी स्वामी भक्ति इन राज्यों के अवसान की प्रक्रिया में विशेष महत्व नहीं रखते। सामन्त शाही, घरेलू षडयन्त्र, भ्रष्टाचार तथा शासकों का आलस्य और उनकी विलासता इन राज्यों के स्थायी अवगुण थे जो निजाम राज्य ने विरसे में पाये। निजाम की अयोग्यता और मराठों द्वारा लूटमार के कारण दक्षिण के इस मुस्लिम राज्य की प्रजा त्रस्त थी। मैत्री से उसकी दशा और भी बिगड़ गई। १८१७ ई० में सर थौमज़ मनरो ने लिखा था :—

"भारत में अयोग्य सरकार का उपचार या तो शान्तिमय घरेलू क्रान्ति रहा है या विद्रोह अथवा विदेशी आक्रमण। परन्तु ब्रिटिश

सेना की उपस्थिति से उपचार की कोई सम्भावना नहीं रहती बल्कि यह उसे (शासक को) अपनी रक्षा के लिये विदेशियों पर निर्भर रहना सिखाकर उसे आलसी और यह दिखाकर कि उसे अपनी प्रजा की घृणा से डरने की आवश्यकता नहीं अत्याचारी बनाती है। इसका परिणाम यह होगा कि गाँव उजड़ जायेंगे और आबादी कम हो जायेगी।"

हैदराबाद की स्थिति तो पहले ही बहुत बुरी थी। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने १७८४ ई० में उसके विषय में लिखा था : "उसका (निज़ाम का) राज्य बहुत संकुचित है और आय बहुत कम। उसकी सैनिक शक्ति तुच्छ है। उसने कभी शौर्य अथवा पौरुष का प्रमाण नहीं दिया। उसकी सदैव यह चेष्टा रही है कि वह अपने पड़ोसियों में आपस में युद्ध कराये और उनके द्वन्द्व से लाभ उठाये। वह अपमान सहन करने को तैयार है किंतु युद्ध की जोखिम सहन करना उसके लिये संभव नहीं।" सर जान शोर ने उसे "उद्धारहीन, पतित, शक्तिहीन" आदि नाम दिये थे।

हैदराबाद की अपेक्षा दक्षिण के अन्य राज्य कहीं अधिक प्रगतिशील थे। मैसूर उद्योगों के लिये प्रसिद्ध था और शायद अठारहवीं शताब्दी में भारत का अन्य कोई भाग उसका मुकाबला न कर सकता था। शिक्षा के क्षेत्र में मैसूर, ट्रावनकोर और कोचीन का स्थान उस समय के ब्रिटेन से भी ऊपर था। ट्रावनकोर में शिक्षा को आयोजित करने का काम १८०१ ई० में आरम्भ हुआ, ब्रिटेन में १८७० ई० में। स्त्रियों की स्थिति भी इन राज्यों में अति उत्तम थी।

परिच्छेद ३०

महाराष्ट्र

मराठों का प्रसार

हम देख आये हैं कि शिवा जी की मृत्यु के पश्चात् मराठों को संकट ने आ घेरा था। औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् उन में आपसी झगड़े आरम्भ हो गए किन्तु पेशवाओं की समझदारी से मराठा सरदारों की आपसी फूट विशेष हानि न पहुँचा सकी। यहाँ तक कि पानीपत की तीसरी लड़ाई भी मराठा साम्राज्य के प्रसार में बाधा न डाल सकी और मराठे दक्षिण और उत्तर की ओर बड़ी तीव्रता से बढ़ते गये। दक्षिण के अन्य मुख्य राज्य हैदराबाद और मैसूर मराठों को चौथ और सरदेश मुखी नामक ख़िराज देते थे। बंगाल के अलीवर्दीखाँ से जिस ने उन्हें उड़ीसा का इलाका भेंट किया था और उसके उत्तराधिकारियों से वे चौथ वसूल करते थे। उत्तर में पंजाब तक उन का प्रभाव था। राजस्थान के राजा उन से भय खाते थे। मुग़ल सम्राटों का वे संरक्षण करते थे। मध्य भारत उन के आधीन था।

शिवा जी के उत्तराधिकारी सतारा में स्थित थे। कोल्हापुर और तंजोर शाह जी के उत्तराधिकारीयों के आधीन थे। पेशवा के आधीन पश्चिमी तट के साथ का इलाका था जो हैदराबाद के राज्य से होता हुआ मैसूर की सीमा को छूता था। गुजरात और काठियावाड़ पर गायकवाड़ का और मालवा पर होल्कर का अधिकार था। गंगा यमुना के बीच की भूमि पर और पश्चिम में सतलुज तक सिंधिया शासन करता था। नागपुर से लेकर कटक तक का इलाका भोंसले के आधीन था। इस प्रकार मराठा राज्य गुजरात से उड़ीसा तक और पंजाब से दूर दक्षिण तक फैला हुआ था।

१७६३ ई० तक अंग्रेज़ फ्राँसीसियों के साथ उलझे रहे। इसके

पश्चात् उन्हें हैदर अली और फिर उस के पुत्र टीपू सुल्तान को दमन करने की चिन्ता रही। परन्तु इस बीच में भी वे मराठों की ओर से उदासीन नहीं रहे।

अंग्रेज़ों से सम्बन्ध

शाहू के दरबार में अंग्रेज दूत गौर्डन ने बहुत मान पाया था! शाहू ने देखा कि अंग्रेज़ों के साथ मित्रता मराठों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। अंग्रेज़ों ने भी मराठों को सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न किया। किन्तु १७७४ ई० में रघुनाथ राव बम्बई की अंग्रेज़ी सरकार के पास पहुँचा और उस ने नाना फड़नवीस के विरुद्ध सहायता की याचना की। बंगाल और मद्रास में अंग्रेज़ों को आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त हुई थी, उस से प्रोत्साहित हो उन्हों ने खुशी खुशी रघुनाथ का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इस के पश्चात् रघुनाथ राव और अंग्रेज़ों की संयुक्त सेना पूना की ओर बढ़ी किन्तु नर्मदा नदी चढ़ाव पर थी। अंग्रेज़ों को पीछे हटना पड़ा।

कलकत्ता की कौन्सिल ने बम्बई सरकार के कार्य की बहुत निन्दा की और नाना फड़नवीस से पुरन्धर के स्थान पर १७७६ ई० में सन्धि की जिस से रघुनाथ राव को पेशवा के पद से अपना अधिकार छोड़ना पड़ा।

रघुनाथ राव किसी नये अवसर की खोज में था। उस ने १७७८ ई० में बम्बई सरकार को पुनः नाना फड़नवीस के विरुद्ध बढ़ने के लिए उकसाया। कलकत्ता की कौन्सिल इस पक्ष में न थी किन्तु बम्बई की सरकार ने कौन्सिल की आज्ञा की अवहेलना की और पूना की ओर कूच कर दिया। नाना फड़नवीस ने इतनी तैयारी कर रखी थी कि अंग्रेज़ों को मुँह की खानी पड़ी। उन्हों ने बड़गांव की सन्धि द्वारा मराठों से पिण्ड छुड़ाया। बम्बई पहुँच कर अंग्रेज़ों ने इस की शर्तें मानने से इन्कार कर दिया।

बड़गांव के अपमान की क्षतिपूर्ती के लिए हेस्टिंग्ज़ ने १७८० ई० में एक भारी सेना गुजरात की ओर भेजी। अंग्रेज़ गायकवाड़ से सन्धि करने में सफल हुए।

हेस्टिंग्ज ने बहुत समझदारी से काम लिया था। उस ने मद्रास और मध्य भारत में भी भारी सेना भेजी थी जिस के कारण मराठे कोंकण में पूर्ण शक्ति न लगा सके और बेसीन उन के हाथ से निकल गया।

गौडर्ड जिस के आधीन अंग्रेज़ी सेना ने पूना की ओर ऐतिहासिक कूच किया था मराठों से हार कर वापिस लौटा।

इस बीच में माधव राव सिन्धिया और माधो जी भोंसले दोनों ने अंग्रेज़ों से सन्धि कर ली। इन्हीं की शक्ति पर नाना को गर्व था। नाना को सलबाई की सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि से रघुनाथ राव की सब आशाओं पर पानी फिर गया। १७८४ ई० में उस की मृत्यु हो गई।

पतन की ओर

माधव राव पेशवा ने रघुनाथ राव के पुत्र को जो बाजी राव द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ, पेशवा नियुक्त किया था। नाना फड़नवीस जो मराठा नीति का संचालन कर रहा था, उस के पिता का विरोध करता रहा था। बाजी राव द्वितीय और नाना फड़नवीस के आपसी मतभेद के कारण मराठा शक्ति क्षीण हो चुकी थी फिर भी नाना ने स्थिति सम्भाल रखी थी। १८०० ई० में नाना की मृत्यु के पश्चात् मराठों में कोई ऐसा व्यक्ति न रह गया जो इस बिगड़ी हुई दशा को सम्भाल सकता।

होल्कर और सिन्धिया में आपस में तन गई। सिन्धिया पेशवा के साथ था। परन्तु पूर्व इसके कि वह सहायता के लिये बढ़ता, होल्कर पूना में दाखिल हो गया। होल्कर की विजय के पश्चात् पेशवा ने अंग्रेज़ों की शरण ली और अपनी जान बचाई। होल्कर ने उस के

भाई अमृत राव को पेशवा नियुक्त किया।

बाजी राव द्वितीय ने बेसीन की सन्धि कर अपनी स्वतन्त्रता अंग्रेज़ों के हाथों बेच दी। अंग्रेजों की सहायता से वह पूना की ओर बढ़ा। अंग्रेज़ी सेना २० अप्रैल १८०३ ई० को पूना में दाख़िल हुई। भोंसले और सिन्धिया जो पूना की रक्षा कर रहे थे उत्तर की ओर बढ़े। उन का पीछा करते और विजय पताका फहराते अंग्रेज़ दिल्ली तक आ पहुँचे और अक्तूबर मास तक इस पर उनका अधिकार हो गया। दिसम्बर, १८०३ ई० में भोंसले ने देवगांव की और दौलत राव सिन्धिया ने सुर्जी अर्जुनगांव की सन्धि द्वारा अंग्रेज़ों का आधिपत्य स्वीकार किया।

जसवन्त राव होल्कर ने इस युद्ध में किसी का साथ न दिया था। युद्ध समाप्त होने पर उस ने अंग्रेज़ों से शत्रुता मोल ले ली। अंग्रेज़ सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया। वह इन्दौर को छोड़ कर उत्तर की ओर बढ़ा। कई स्थानों पर अंग्रेज़ों से मुठभेड़ हुई परन्तु हर बार उसकी हार हुई। आखिर सितम्बर १८०५ ई० में वह पंजाब पहुँचा। रणजीत सिंह उसे सहायता देने को तैयार न था। उस ने इतना किया कि १४ दिसम्बर १८०५ ई० में सतलुज के तट पर होल्कर और अंग्रेज़ों के बीच सन्धि करवा दी। इस सन्धि का होल्कर को बहुत दुःख हुआ। वह पागल हो गया और २० अक्तूबर १८११ ई० को चल बसा।

अंग्रेज़ों ने बाजी राव द्वितीय को पूना के सिंहासन पर बिठाया। वह उन के विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगा। ५ नवम्बर १८१७ ई० को उसने अंग्रेज़ रेज़िडैण्ट पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज़ों को समय पर सहायता पहुँच गई और वे पूना में दाखिल हुए। पेशवा पूना छोड़ कर भाग गया। परन्तु ज्यों ही अंग्रेज़ों ने पूना पर अधिकार प्राप्त किया उस ने पूना पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज़ों को बहुत क्षति पहुँची किन्तु जीत उन्हीं की हुई।

तत्पश्चात् अंग्रेज़ों ने सतारा विजय किया। मार्च २ को सिंह गढ़ ने शस्त्र त्याग दिये। ११ मार्च को पुरन्धर ने सफेद झण्डी दिखाई। ३ जून को पेशवा बाजी राव द्वितीय को भी हार माननी पड़ी। इस प्रकार उस महान् राज्य का अन्त हुआ जिस की स्थापना शिवा जी ने की थी।

मराठों के पतन के कारण

मराठा शक्ति का अन्त क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर कई प्रकार से दिया जा सकता है। उन की आपसी फूट, केन्द्र में किसी शक्तिशाली व्यक्ति का अभाव, उनकी दोषपूर्ण राज्य व्यवस्था तथा सेनाप्रबन्ध, विलासिता, भ्रष्टाचार, आधुनिक साधनों की ओर से उदासीनता आदि। किन्तु इस का प्रमुख कारण था अंग्रेज़ों की कूटनीति। जिस समय रघुनाथ राव ने अंग्रेज़ों से सन्धि की मानो मराठों की शक्ति को उसी दिन से घुन लग गया।

मराठों का विवरण देते हुए जवाहर लाल ने लिखा है: साधारण मराठा सैनिक भी अति कुशल योद्धा थे जो जहाँ डट जाते थे जान की बलि देकर भी अटल रहते थे, परन्तु युद्ध का समय हो चाहे शाँति का इस साहस की तह में युयुत्सा और अनाड़ीपन था जिसे देख कर विस्मय होता है। संसार के विषय में वे बिलकुल अनभिज्ञ थे और भारत के भूगोल का भी उन्हें अधूरा ज्ञान था। इस से भी बढ़ कर कभी उन्होंने यह मालूम करने का प्रयास नहीं किया कि अन्य स्थानों पर क्या हो रहा है और उनके शत्रु क्या चालें चल रहे हैं। इन कमियों के कारण दूरदर्शी राजनीतिज्ञता तथा प्रभावशाली युद्ध नीति की सम्भावना न थी। जिस तीव्रता और फुरती से वे कूच करते थे उससे शत्रु चकित रह जाता था और घबरा जाता था परन्तु युद्ध को वे केवल छोटी छोटी मार्मिक लड़ाइयों की शृँखला ही समझते थे।

परिच्छेद ३१

उत्तरी और पश्चिमी भारत

पंजाब

वैदिक काल का सप्तसिंधु जिस की सीमायें यमुना नदी से काबुल और कंधार तक थीं आज सिकुड़ कर यमुना और रावी तक सीमित रह गया है। अब यह पाँच नदियों का प्रदेश भी नहीं रहा।

कालान्तर में पञ्जाब ने अनेक आक्रमण सहे, अनेक विदेशियों का मुकाबला किया। उन में से कइयों को मात दी, कई जातियाँ विजयी हुईं और यहाँ रहने लगीं, कइयों का आगमन शान्तिपूर्वक हुआ। भारत का द्वार होने के कारण जो उथल-पुथल पञ्जाब ने अनुभव की है वह भारत के किसी अन्य प्रदेश ने नहीं। परन्तु अन्तिम मुग़लों ने उस पर जो अत्याचार किये उन का उदाहरण मिलना कठिन है।

सिक्खों की जीवन-शक्ति

फरुखसियर ने अबदुस्समद को जिस का बन्दा (१६७०-१७१६ ई०) की पराजय में बहुत हाथ था, पञ्जाब का गवर्नर नियुक्त किया और उसे आदेश दिया कि वह सिक्खों का सर्वनाश कर दे। अबदुस्समाद और उस के पश्चात् १७२५ से १७४५ ई० तक ज़करिया ख़ाँ ने सिक्खों को चुन चुन कर मरवाया। सिक्ख, जब भी उन को अवसर मिलता, पहाड़ों से, जहाँ जा कर वे रहने लगे थे, उतरते और छापे मारते। पञ्जाब की शाँति भंग हो गई।

१७३९ ई० में नादिर शाह ने भारत पर आक्रमण किया और मुग़लों की रही सही प्रभुता भी मिट्टी में मिल गई। किन्तु नादिर

शाह के लश्कर पर पीछे से हमला कर सिक्खों ने अपनी वीरता की धाक बिठा दी।

ज़करिया खाँ की मृत्यु के पश्चात् उस के पुत्रों में कलह उत्पन्न हो गई और अन्त में विजयी सूबेदार शाह निज़ाम ने अफ़ग़ानिस्तान के अमीर अहमद शाह अबदाली को भारत में निमन्त्रित कर लिया। दिसम्बर १७४७ ई० में अबदाली पहली बार भारत आया। मीर मन्नू नाम के तूरानी सेनापति ने अबदाली को पराजित किया किन्तु उस के आक्रमण से पञ्जाबी शासन के सूत्र ढीले पड़ गए। मीर मन्नु अभी शासन संभाल भी न पाया था कि अबदाली ने पुनः आक्रमण कर दिया। मीर मन्नू की हार हुई। पञ्जाब का कुछ भाग अबदाली को देकर उस ने अफ़गान विजेता से पिंड छुड़ाया। जालंधर के फौजदार अदीना बेग से मिल कर मीर मन्नू तीन साल तक सिक्खों का सर्वनाश करने की असफल चेष्टा करता रहा। १७५१ ई० में अबदाली ने पुनः उस पर चढ़ाई कर दी। मीर मन्नू बंदी बना लिया गया किन्तु उस के साहसी उत्तर से प्रसन्न हो कर अबदाली ने उसे अपना सूबेदार नियुक्त किया और पञ्जाब उसे सौंप दिया।

१७५३ ई० में मीर मन्नू की मृत्यु के पश्चात् उस की विधवा मुग़लानी बेगम के काल में पञ्जाब में जहाँ पहले ही कुशासन फैल हुआ था स्थिति ने भयंकर रूप धारण कर लिया। दिल्ली राज्य की ओर से पञ्जाब में हस्तक्षेप होने के कारण १७५६ ई० में अबदाली फिर पञ्जाब पर चढ़ आया। अपने पुत्र तैमूर खाँ को लाहौर का सूबेदार नियुक्त कर वह वापिस चला गया किन्तु १७५९ ई० में पुनः वापिस आया और दिल्ली को विजय करता हुआ मथुरा तक जा पहुँचा। इस आक्रमण का कारण यह था कि मराठा सरदार पञ्जाब पर अधिकार जमा बैठे थे।

मराठों का अबदाली से १७६१ ई० में पानीपत के स्थान पर घोर

सिक्खों का पुनः उत्थान

युद्ध हुआ जिस में अबदाली की जीत हुई और वह पञ्जाब का स्वामी बन गया। किन्तु जब वह लौट रहा था सिक्खों ने उस पर आक्रमण किया और उसे बहुत हानि पहुंचाई। अबदाली की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर सिक्खों ने अपनी स्थिति संभाल ली और उन्होंने लाहौर पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

छठी बार अबदाली सिक्खों को दंड देने के अभिप्राय से पञ्जाब में आया। कई स्थानों पर सिक्खों की हार हुई परन्तु अन्ततः वह उन की शक्ति से बहुत प्रभावित हुआ। १७६६ ई० में अबदाली का पञ्जाब पर आठवाँ और अन्तिम आक्रमण हुआ। इस बार भी वह सिक्खों को पूर्ण रूप से परास्त न कर सका।

खालसा संघ

इस विपद काल में सिक्खों ने अपने आप को बहुत सुदृढ़ बना लिया। उनके कई सैनिक दल बन गए। एक धार्मिक संघ का निर्माण हुआ जिसे गुरमाता कहा जाता था।

१७५८ ई० में अदीना बेग, जो जालंधर का फौजदार था और मराठों की सहायता से, जिन्होंने अबदाली के प्रतिनिधि तैमूर खाँ को परास्त किया था, लाहौर का सूबेदार नियुक्त हुआ। उसी साल उस की मृत्यु हो गई। वह सिक्खों के साथ मिला रहा था। उस की सहानुभूति के कारण सिक्ख अपने आप को सुरक्षित समझते थे। मीर मन्नू का मन्त्री कोड़ा मल भी सिक्खों का हितैशी था। इस से भी सिक्खों को संगठित रहने में सहायता मिली। सिक्खों की अपने धर्म में अगाध श्रद्धा थी। उन पर जितने अत्याचार होते थे उतनी ही उन की वृद्धि होती थी। पञ्जाब की अबतरी के दिनों में सिक्ख जत्थे साधारण ग्रामीणों की रक्षा करते थे जिस के कारण सभी उन से सहानुभूति रखते और उन की सहायता करते थे। सिक्खों के संरक्षण में आने से ग्रामीणों

को कई प्रकार की सुविधाएँ, जैसे सरकारी कर से मुक्ति, प्राप्त हो जाती थीं।

सिक्ख मिसलें

एक समय सिक्ख जत्थों की संख्या ६५ के लगभग थी। कई बार ये जत्थे एक नेता के आधीन हो मिल कर शत्रु का संहार करते थे। जस्सा सिंह और कपूर सिंह उस समय के प्रमुख नेता थे। १७६७ ई० में इन जत्थों ने व्यवस्थित रूप धारण कर लिया और ये १२ मिसलों के रूप में प्रकट हुए। प्रत्येक मिसल की अपनी अपनी ध्वजा होती थी किन्तु उन में धार्मिक और सैनिक ऐक्य था। सामान्य नीति अकाल तख्त अर्थात् अमृतसर के स्थान पर निर्धारित होती थी। इस संघीय सम्मेलन में न केवल प्रत्येक मिसल का दर्जा एक समान होता था बल्कि प्रत्येक सिक्ख को अपना मत प्रकट करने का अधिकार था। इन में से आठ मिसलें बड़ी समझी जाती थीं, चार को डेरे कहा जाता था। शासन प्रबंध सब में लगभग एक सा था। सैनिक शक्ति भिन्न-भिन्न थी।

सिंहपुरिया मिसल

सिंहपुरिया मिसल की स्थापना सब से पहले हुई थी। सिंहपुर के स्थान पर इस के संस्थापक कपूर सिंह को नवाब ज़करिया ख़ाँ ने जागीर प्रदान की थी। उस को ही सिक्खों को संगठित करने और बन्दा बहादुर के पश्चात् उन का नेतृत्व करने का श्रेय दिया जाता है। उस की मृत्यु १७५३ ई० में हुई। उस का भतीजा १७९६ ई० तक शासन करता रहा। १८१६ ई० में यह मिसल रणजीत सिंह के आधीन हो गई।

दूसरी प्रमुख मिसल आलूवालिया थी जिस की स्थापना जस्सा सिंह ने, जिसे १७४८ में खालसा दल के नेता का पद प्राप्त

आलूवालिया मिसल

हुआ, की थी। उसी ने पहली बार लाहौर पर अधिकार प्राप्त किया और सिक्का चलाया। १७६३ ई० में उस ने सरहिंद के नवाब जैन ख़ाँ को परास्त किया और दिल्ली तक बढ़ आया। उस ने पञ्जाब का बहुत सा भाग प्राप्त कर लिया। १७८३ ई० में उस की मृत्यु हो गई और उस के चचेरे भाई ने गद्दी संभाली। १८०१ ई० में इस मिसल का शासक फतह सिंह बना जिस के साथ रणजीत सिंह ने मित्रता स्थापित की। यह वंश १९४७ ई० तक कपूरथला में राज्य करता रहा।

भंगी मिसल

सैनिक सत्ता के अनुसार भंगी मिसल सब से प्रमुख थी। इस की स्थापना हरी सिंह ने जिस का अमृतसर पर अधिकार था की थी। इस का दूसरा सशक्त शासक झण्डा सिंह हुआ जिस ने जम्मू के राजा को कर देने पर विवश किया था। लाहौर भी इस मिसल के आधीन हो गया। १७८२ ई० के पश्चात् भंगी मिसल का पतन आरम्भ हो गया और अन्ततः रणजीत सिंह ने इस पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

रामगढ़िया

रामगढ़िया मिसल का संस्थापक जस्सा सिंह था। वह ज़करिया ख़ाँ और अदीना बेग की सेना में उच्च पद पर नियुक्त था। उसने १७४८ ई० में अमृतसर के युद्ध में सिक्खों की सहायता कर उन्हें विनाश से बचाया था। मीर-मन्नू की मृत्यु के पश्चात् उस ने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। १७७७ ई० में अन्य मिसलों ने संगठित हो जस्सा सिंह को पराजित किया और वह पूर्वी पञ्जाब में चला आया किन्तु जस्सा सिंह आलूवालिया की मृत्यु के पश्चात् उसने पुनः अपना प्रदेश प्राप्त कर लिया। कलानौर, कादियान, दीनानगर उस के आधीन थे।

जस्सा सिंह की मृत्यु १८०३ ई० हुई। इस मिसल पर भी १८१४ ई० में रणजीत सिंह ने अपना अधिकार स्थापित किया।

फुलकियाँ मिसल में पटियाला, नाभा और जींद सम्मिलित थे।

फुलकियां मिसल

इस का प्रसिद्ध शासक बाबा आला सिंह था जो १७६५ ई० तक शासन करता रहा। रणजीत सिंह ने इस मिसल को प्राप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु १८०६ ई० की अमृतसर की सन्धि से यह अंग्रेज़ों के संरक्षण में आ गई।

कन्हैया मिसल का महत्त्व इतिहास में मुख्यतः इस कारण है कि इस के शासक जय सिंह ने अपनी पौत्री का विवाह रणजीत सिंह से किया। सुकेरचकिया मिसल की स्थापना रणजीत सिंह के पूर्वज

कन्हैया तथा सुकेर-चकिया मिसलें

चरत सिंह ने की थी। गुजरांवाला, वज़ीराबाद आदि उस के आधीन थे। रणजीत सिंह के पिता महा सिंह की मृत्यु १७६३ ई० में हुई। उस समय रणजीत सिंह की आयु केवल १३ वर्ष की थी।

शेष पाँच मिसलों का विशेष ऐतिहासिक महत्त्व नहीं। उन में से कुछ पर अंग्रेजों ने अधिकार प्राप्त किया कुछ पर रणजीत सिंह ने। केवल करोड़ सिंहया मिसल कलसिया की रियासत के रूप में १६४७ ई० तक जीवित रही।

रणजीत सिंह

१७६३ ई० में रणजीत सिंह ने सुकेर चकिया मिसल की गद्दी प्राप्त की। उसे बचपन में चेचक के कारण बहुत कष्ट सहन करना पड़ा। इसी से वह कुरूप हो गया और उस की बाईं आँख जाती रही। रणजीत सिंह की माता ने एक महान व्यक्ति की महान माता होने का प्रमाण नहीं दिया किन्तु उस की सास एक महत्त्वाकांक्षी नारी थी और रणजीत सिंह की सफलता में उस का बहुत हाथ था।

रणजीत सिंह के पदारोहण के समय भारत में दो प्रमुख शक्तियाँ थीं एक मराठे और दूसरे अंग्रेज़। पूर्व में अंग्रेज़ों का बोल बाला था। उत्तर में गोरखा लोग सिर उठा रहे थे। उत्तर-पश्चिम में अहमद शाह के उत्तराधिकारी आपस में लड़ भिड़ कर अपनी शक्ति समाप्त कर चुके थे और शाह ज़मान जो उस समय अफ़ग़ानिस्तान का अमीर था अपने आप को सुरक्षित महसूस न करता था।

अधिकतर सिक्ख मिसलें दुर्बल हो चुकी थीं। पञ्जाब में कुछ पठान राज्य स्थित थे जिन में से कसूर और मुल्तान का राज्य प्रमुख थे। सिंध पर तीन अति दुर्बल अमीरों का अधिकार था।

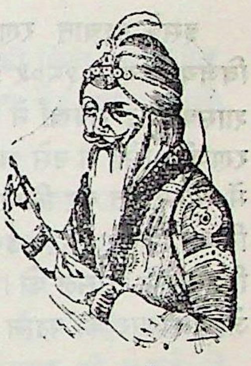

रणजीत सिंह

लाहौर पर अधिकार

१७९८ ई० में शाह ज़मान ने पञ्जाब पर आक्रमण किया किन्तु अफ़ग़ानिस्तान में विद्रोह की सूचना पा वह काबुल लौट गया। मार्ग में जेहलम नदी में उस की तोपें डूब गईं जिन्हें रणजीत सिंह ने निकाल कर शाह ज़मान को पहुँचा दिया और पारितोषिक के रूप में लाहौर प्राप्त किया।

लाहौर पर उस समय तीन भंगी सरदारों का अधिकार था जो रणजीत सिंह के वहाँ पहुँचते ही लाहौर छोड़ कर भाग गए। रणजीत सिंह ने जिस प्रकार इस नगर की सुव्यवस्था की और लोगों का आर्थिक संकट दूर किया उस से समस्त पञ्जाब प्रभावित हुआ और यह सिद्ध हो गया कि वह ही पञ्जाब का भावी सर्वोच्च शासक होगा।

विजेता के रूप में

१८०० ई० में कसूर के नवाब, अमृतसर के भंगी सरदार और अन्य सिक्ख सरदारों ने रणजीत सिंह के विरुद्ध दल बनाया किन्तु भसीन के स्थान पर

उनकी हार हुई और रणजीत सिंह की वीरता का सिक्का बैठ गया।

इसके पश्चात् रणजीत सिंह ने गुजरात और अकाल गढ़ को विजय किया। १८०५ ई० में अमृतसर पर चढ़ाई की। वहाँ की शासक माई सुक्खाँ ने डट कर मुकाबला किया, किन्तु उसकी हार हुई। रणजीत सिंह ने उसे जागीर प्रदान की और अमृतसर को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। १८०७ ई० में उसने दल्ले वाला मिसल को विजय किया, १८१० ई० में करोड़सिंघिया मिसल को, १८११ ई० में सिंहपुरिया मिसल को। इस बीच में काँगड़ा, (१८१३ ई०) कसूर और जेहलम पार की पठान जातियाँ भी उसके आधीन हो गईं।

मुलतान को विजय करने में रणजीतसिंह को बहुत कठिनाई हुई। इसके शासक मुज़फ्फ़र खाँ ने १८०२ से लेकर १८१८ ई० तक रणजीत सिंह का विरोध किया। पाँच बार उसने भारी कर देकर पिंड छुड़ाया। किन्तु १८१८ ई० में वह ऐसा डटा कि उसने रणजीत सिंह की सेना के छक्के छुड़ा दिये। अन्ततः केवल नवाब और उसके ८ पुत्र इस भारी सेना का सामना करने के लिए जीवित रह गए। इन की तलवारों से सैंकड़ों सिक्ख सैनिक खेत रहे किन्तु आख़िर नवाब मारा गया। उसके पाँच पुत्र भी लड़ाई में काम आये।

रणजीत सिंह की सब से अधिक महत्त्वपूर्ण विजय काश्मीर, अटक, पेशावर और जमरूद में हुई।

१८१३ ई० में रणजीत सिंह काश्मीर पर चढ़ाई की तैयारियाँ कर ही रहा था कि अफ़गानिस्तान के अमीर शाह महमूद ने अपने मन्त्री फतह खाँ को सेना देकर काश्मीर विजय के लिये भेजा। अफ़गान और सिक्ख सेना ने मिलकर चढ़ाई करने की योजना बनाई किन्तु फतह खाँ ने पहल की और काश्मीर पर अधिकार जमा लिया। रणजीत सिंह ने इसका बदला अटक को परास्त करके लिया। अफ़गानिस्तान का गत अमीर शाह शुजा जो काश्मीर में आश्रित

था रणजीत सिंह के हाथ आया उससे उसने कोह-ए-नूर और अन्य हीरे मणियाँ प्राप्त कीं।

फ़तह खाँ ने अटक पुनः प्राप्त करने की चेष्टा की किन्तु उसकी हार हुई। इस से रणजीत सिंह की वीरता की धाक बैठ गई। उसके सैनिकों के मन में आत्म विश्वास उत्पन्न हो गया।

१८१४ और १८१९ ई० में रणजीत सिंह ने काश्मीर पर पुनः चढ़ाई की और आख़िर उसे विजय कर लिया। उसके पश्चात् डेरा ग़ाज़ी खाँ, डेरा इसमाईल खाँ, बन्नू और पेशावर को विजय किया। पेशावर की विजय का श्रेय हरी सिंह नलवा को है। वही पेशावर का पहला सिक्ख नाज़िम नियुक्त हुआ। फिर जमरूद की लड़ाई में उसकी मृत्यु हो गई।

शासन व्यवस्था

बन्दा बहादुर का जीवन संघर्ष का जीवन रहा और उसे उस छोटे से राज्य को व्यवस्थित करने का अवसर नहीं मिला फिर भी उस ने उन प्रथाओं को जन्म दिया जो रणजीत सिंह के शासनकाल में पूर्ण रूप से विकसित हुईं। बन्दा ने जागीरदारी का उन्मूलन किया।

बन्दा के पश्चात् पञ्जाब में जो मिसलें स्थापित हुईं उनके विषय में कनिंघम ने लिखा है :

"वाहगुरु उनका एक मात्र सहारा और न्यायक था, धर्म निष्ठता उनकी प्रेरक थी और गुरु गोबिन्द की तलवार उन की शक्ति का आधार।" वे बाह्य नीति में गुरुमाता के आधीन थीं जिस की बैठक साल में दो बार अकालतख़्त के स्थान पर होती थी। इस अवसर पर सिक्ख अपने आपसी विवाद को भूल जाते थे। सभी प्रतिनिधियों को एक सा स्तर प्राप्त था।

रणजीत सिंह ने गुरुमाता की प्रथा का उन्मूलन कर लोकपरक राज्य की स्थापना की। उस का समस्त राज्य चार प्रान्तों में बटा

हुआ था और प्रत्येक प्रान्त ज़िलों में। लाहौर, मुल्तान, काश्मीर और पेशावर उस के चार प्रान्त थे। प्रान्त के मुख्य अधिकारी को नाज़िम और ज़िले के अधिकारी को कारदार कहते थे। वे लगान उगाहते थे, राज्य और न्याय का प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथ में होता था।

औसबोर्न जिसने महाराजा से भेंट की थी लिखता है, "युद्ध के अतिरिक्त कभी भी महाराजा ने किसी की हत्या नहीं की, यद्यपि उसका जीवन लेने का कई बार प्रयास हुआ। संसार में उस से भी अधिक सुसंकृत शासक होंगे परन्तु जिस सीमा तक उस का राज्य अत्याचार और निर्दयता से मुक्त है उस प्रकार कोई अन्य राज्य नहीं।"

प्रिंसेप ने इसी विषय में कहा है, "आज तक किसी एक व्यक्ति ने इतने बड़े साम्राज्य की स्थापना इतने अल्प अपराध के आधार पर नहीं की।"

रणजीत सिंह के मन्त्रियों में अज़ीज़ुद्दीन, दीनानाथ, सावनमल, गुलाबसिंह, भवानीदास और ध्यानसिंह प्रसिद्ध थे।

रणजीत सिंह की सेना सुसज्जित और सुव्यवस्थित थी जिसे यूरोपीय ढंग पर सधाया गया था। उसमें तोपखाना भी था।

अलैग्ज़ैंडर बर्न्ज़ ने जो इंग्लैंड के नरेश की ओर से उपहार लेकर सिंधु नदी के मार्ग से रणजीत सिंह के दरबार में आया महाराजा के समय के पञ्जाब का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। उस से प्रतीत होता है कि पञ्जाब वहुत समृद्ध प्रदेश था और चारों ओर शाँति थी। उस ने महाराजा रणजीत सिंह के उदार शासन के कई उदाहरण दिये हैं।

रणजीत सिंह की जिज्ञासा और वीरता की सभी ने प्रशंसा

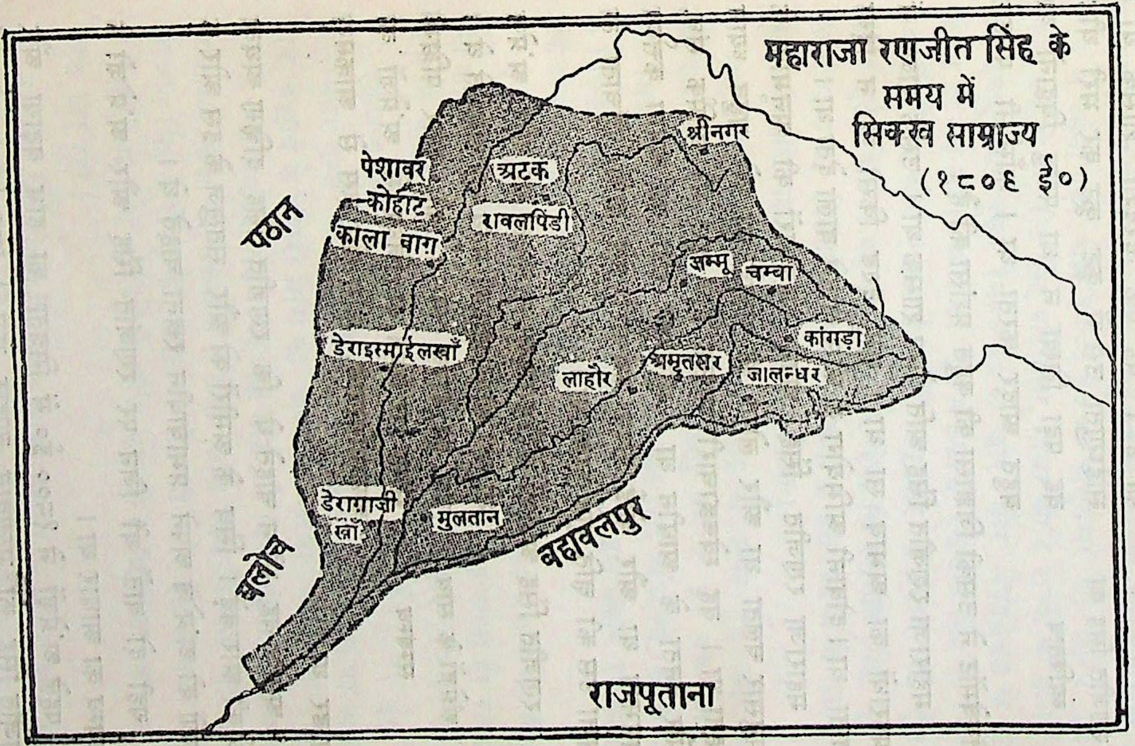

महाराजा रणजीत सिंह के
समय में
सिक्ख साम्राज्य
(१८०६ ई०)

श्रीनगर
पेशावर
अटक
कोहाट
रावलपिंडी
पठान
काला बाग़
जम्मू
चम्बा
कांगड़ा
डेराइस्माईलखाँ
अमृतसर
लाहौर
जालन्धर
डेरागाज़ी
खाँ
मुलतान
बलोच
बहावलपुर
राजपूताना

रणजीत सिंह का व्यक्तित्व

की है। वह एक दूरदर्शी शासक था। सहिष्णुता उस में कूट कूट कर भरी थी। वह पढ़ा लिखा न था परन्तु विद्वानों का बहुत आदर करता था। फ्राँसीसी पर्यटक जैक्वेमोंट ने उसकी जिज्ञासा की बहुत प्रशंसा की है।

महाराजा रणजीत सिंह अति योग्य शासक था। उसके राज्य में अपराधों का अभाव सा था। मृत्यु दण्ड किसी को न दिया जाता था। दीवानी अभियोग में फीस जीतने वाला देता था।

महाराजा रणजीत सिंह अपने अहलकारों की अनुमति के अनुसार चलता था और लोगों की भलाई का उसे बहुत ध्यान रहता था। वह स्वेच्छाचारी शासक होते हुए भी धार्मिक संघ, और जनता के आधीन था। भूमि की रक्षा वह अपना कर्त्तव्य समझता था और कोई राज्य कर्मचारी उसे हानि पहुँचाता तो राजा उस की क्षति पूर्ति करता था।

अंग्रेज़ों के साथ सम्बन्ध

रणजीत सिंह अंग्रेज़ों से बिगाड़ना न चाहता था और अंग्रेज़ भी उस की मित्रता का मूल्य खूब समझते थे। उस का राज्य भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर स्थित था जिधर से अंग्रेज़ों को अफ़ग़ानिस्तान, फ्राँस और रूस से आक्रमण का डर था।

अंग्रेज़ यह भी न चाहते थे कि रणजीत सिंह दक्षिण अथवा पूर्व की ओर बढ़े। सिंध के अमीरों को और सतलुज के इस ओर के राज्यों को अंग्रेज़ अपने प्रभावाधीन रखना चाहते थे।

यही दो बातें थीं जिन पर रणजीत सिंह और अंग्रेज़ों के सम्बन्ध का आधार था।

पहले अंग्रेज़ों ने १८०० ई० में मित्रता का हाथ बढ़ाया और रणजीत सिंह को मूल्यवान उपहार भेजे। फिर १८०५ ई० में

जसवन्त राव होल्कर के पञ्जाव पहुँचने के कारण रणजीत सिंह को बीच में पड़ना पड़ा और १८०६ ई० में अमृतसर की सन्धि हुई। किन्तु एक तो रणजीत सिंह पटियाला, नाभा आदि राज्यों को हथियाने का इच्छुक था दूसरे १८०७ ई० में ज़ार और नैपोलियन के बीच सन्धि हो गई थी। अंग्रेज़ी दूत मैटकाफ रणजीत सिंह से १८०८ ई० में मिला और १८०६ ई० में अमृतसर के स्थान पर दूसरी सन्धि हुई जिस ने यह निर्धारित कर दिया कि रणजीत सिंह पूर्व में अपने राज्य का विस्तार नहीं कर सकता। इस सन्धि ने रणजीत सिंह की शक्ति पर बहुत बड़ा आघात किया।

रणजीत सिंह को अंग्रेज़ों की ओर से शंका हुई और वह प्रतिकार की योजना बनाने लगा किन्तु १८१५ ई० तक उन में पुनः मित्रता स्थापित हो गई और रणजीत सिंह अंग्रेज़ों को नैपाल के विरुद्ध सहायता देने को तैयार हो गया। इस प्रकार १८२८ ई० तक दोनों शक्तियों में मित्रता बनी रही।

रणजीत सिंह चाहता था कि सिंध में उस का प्रभाव बढ़े किन्तु उस की इस आकाँक्षा के कारण इन दोनों में खिचाव उत्पन्न हो गया। अंग्रेज चाहते थे कि चतुराई से वे सिंध पर अधिकार प्राप्त कर लें।

रणजीत सिंह को भ्राँत करने के लिये उन्होंने १८३१ ई० में अलैग्ज़ैंडर बर्न्ज़ को सिंध के मार्ग से लाहौर भेजा। इस का अभिप्राय पञ्जाब के भीतरी भाग का अध्ययन करना और यह देखना था कि आवश्यकता पड़ने पर जल मार्ग से किस प्रकार पञ्जाब पर आक्रमण किया जा सकता है। उसी साल लाड विल्यम बैंटिंक ने रणजीत सिंह से रोपड़ के स्थान पर भेंट की और इस बीच में सिंध के अमीरों के साथ अंग्रेज़ों ने संधि कर ली। महाराजा को इस का बहुत खेद रहा।

रणजीत सिंह सिन्ध में स्थित शिकारपुर पर अधिकार प्राप्त करना चाहता था किन्तु उस ने जब इस महत्त्वपूर्ण नगर पर १८३६ ई०

में आक्रमण किया तो अंग्रेज़ी सेना वहाँ मौजूद थी। रणजीत सिंह की योजना भंग हो गई।

१८३५ ई० में अंग्रेज़ों ने फीरोज़पुर पर जो लाहौर से केवल ४० मील है अधिकार प्राप्त कर लिया। रणजीत सिंह ने इस पर रोष प्रकट किया किन्तु अंग्रेज़ नगर को खाली करने को तैयार न हुए।

रणजीत सिंह चाहता था कि अंग्रेज़ों को अपनी शक्ति का आभास कराये किन्तु आयु ने उसका साथ न दिया।

रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात

१८३९ ई० में रणजीत सिंह का देहान्त हुआ। उसके पश्चात् उसका बड़ा पुत्र खड़क सिंह गद्दी पर बैठा। किन्तु रणतीत सिंह की अन्तिम इच्छा के विरुद्ध उसने ध्यान सिंह की अपेक्षा चेत सिंह को अपना मन्त्री नियुक्त किया। ध्यान सिंह ने षड्यन्त्र रचा और खड़क सिंह के पुत्र नौनिहाल सिंह के साथ मिलकर चेत सिंह का वध कर दिया और खड़क सिंह को बन्दी बना लिया। कुछ मास पश्चात् खड़क सिंह की मृत्यु हो गई और नौनिहाल उसका अन्तिम संस्कार कर लौट रहा था कि ड्योढ़ी का द्वार टूट कर उस पर गिर पड़ा। उसी दिन उसकी मृत्यु हो गई।

रणजीत सिंह के उत्तराधिकारी

ध्यान सिंह ने शेर सिंह को गद्दी पर बिठाना चाहा किन्तु नौनिहाल की माता चाँद कौर ने शासन की बाग डोर अपने हाथ में ले ली। ध्यानसिंह, शेर सिंह और खालसा सेना ने चाँद कौर का विरोध किया और लाहौर पर चढ़ाई कर दी। चाँद कौर की हार हुई और शेर सिंह ने गद्दी प्राप्त कर ली। किन्तु उसका परिणाम भी भिन्न न हुआ। आखिर रणजीत सिंह का कनिष्ट पुत्र दलीप सिंह गद्दी पर बैठा और काश्मीर का राजा हीरा सिंह उसका मन्त्री बना। १८४४ ई० में हीरा सिंह का भी वध कर दिया गया।

अब शासन शक्ति दलीप सिंह की माता जिन्दा के हाथ आ गई। किन्तु खालसा दल की शक्ति भी बढ़ती जा रही थी।

सिक्खों की पहली लड़ाई

चिर काल से अंग्रेज़ों की आँख पंजाब पर लगी थी। उन्हों ने फीरोज़पुर को अपनी छावनी बना लिया था, सिन्ध पर उनका अधिकार हो गया था। अब वे सतलुज के पूर्वी तट पर अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा रहे थे। खालसा दल को रोष आना स्वाभाविक ही था। इसके साथ साथ रानी जिन्दाँ चाहती थी कि खालसा दल की शक्ति क्षीण हो और वह अपनी मन मानी कर सके। उसने सेना को प्रोत्साहन दिया और सिक्ख जत्थे सतलुज पार कर गए। १६ दिसम्बर १८४५ को अंग्रेज़ों ने युद्ध की घोषणा कर दी।

अंग्रेज़ी सेना मुदकी के स्थान पर पहुँची। सिक्ख सेना ने उस पर हल्ला बोल दिया। सिक्खों का पल्ला भारी था कि उनका सेनापति लाल सिंह मैदान छोड़ कर भाग गया। फिर भी सिक्ख सेना डटी रही किन्तु अन्ततः अंग्रेज़ों की जीत हुई।

कुछ दिन पश्चात् सिक्ख सेना फिर अंग्रेज़ों पर टूट पड़ी। अलीवाल के स्थान पर दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ। पहले सिक्ख सेना की जीत हुई किन्तु आखिर अंग्रेज़ों ने सिक्ख सेना पर काबू पा लिया।

१० फ़रवरी १८४६ ई० को सबरांव के स्थान पर इस युद्ध का अन्तिम हल्ला हुआ। सिक्ख सैनिक डट कर लड़े किन्तु उनके नेता साथ न थे। बहुत से सिक्ख सरदारों ने सेना से धोका किया और सहस्रों सैनिक भूख से मर गए। इस पर भी अंग्रेज़ों को बहुत हानि पहुँची। अंग्रेज़ों ने भारत में इससे अधिक घोर युद्ध न देखा था। २० फ़रवरी को अंग्रेज़ लाहौर में दाख़िल हुए।

महाराजा दलीप सिंह ने ६ मार्च १८४६ ई० को एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि के अनुसार :—

१. महाराजा ने सतलुज के दक्षिण में स्थित अपने इलाके पर से अधिकार उठा लिया।

२. सतलुज और व्यास के बीच के द्वाबे के समस्त अधिकार कम्पनी को सौंप दिये।

३. युद्ध के हरजाने के रूप में एक करोड़ रुपये के बदले काश्मीर और ४० लाख रुपया नकद देने का वचन दिया।

४. खालसा दल से हथियार छीन लिये गये।

५. अंग्रेज़ी फौज जब चाहे महाराजा के राज्य से होकर गुज़र सकती थी। महाराजा को अधिकार न रहा कि वह किसी यूरोपीय को कम्पनी की आज्ञा के विरुद्ध अपने दरबार में नौकरी दे।

६. दलीप सिंह को राजा, रानी जिन्दा को उसकी संरक्षिका और लाल सिंह को मन्त्री स्वीकार किया गया। अंग्रेज़ों की ओर से वचन दिया गया कि वे राजा के आंतिरिक मामलों में हस्तक्षेप न करेंगे।

७. महाराजा की रक्षा का भार गवर्नर जनरल ने अपने ऊपर लिया और इस अभिप्राय से आठ सरदारों की एक समिति नियुक्त की। सर हैनरी लारेंस रैज़िडेंट नियुक्त हुआ। अंग्रेज़ी सेना पंजाब में रहने लगी।

यह सन्धि केवल १८४६ ई० के अन्त तक के लिये हुई थी।

दिसम्बर में दूसरी सन्धि हुई जिस के द्वारा मार्च की सन्धि का समाधान किया गया।

पहले युद्ध की असफलता का कारण सिक्ख अपने सरदारों की धूर्तता समझते थे। अंग्रेज़ों ने सामाजिक सुधार किये जो लोगों को

सिक्खों की दूसरी लड़ाई

पसन्द न थे। रानी जिन्दाँ को शेखूपूरा भेज दिया गया। इन सब बातों से पंजाब में असन्तोष फैल गया। आग के भड़कने के लिए मुल्तान के गवर्नर मूलराज के विद्रोह ने बहाना उत्पन्न कर दिया। उसे पद से हटाने के लिये दो अंग्रेज़ों के आधीन सेना भेजी गई जिन्हें मुल्तान में कत्ल कर दिया गया। अंग्रेज़ गवर्नर जरनल डलहौज़ी ने इस विद्रोह को रोकने के लिये कोई उपाय न किया। आग भड़कने लगी।

यह घटना अप्रैल १८४८ ई० में हुई थी। सितम्बर तक अंग्रेज़ी सरकार ने कोई विशेष कदम नहीं उठाया। १० अक्तूबर १८४८ ई० को डलहौज़ी ने युद्ध की घोषणा की और १६ नवम्बर को अंग्रेज़ी सेना ने रावी नदी पार की।

२२ नवम्बर को चनाव के तट पर रामनगर के स्थान पर दोनों सेनाओं की मुठ भेड़ हुई किन्तु कोई निर्णय न हो पाया। १३ जनवरी १८४९ ई० में चिलियाँवाला के स्थान पर असफल लड़ाई हुई। इस युद्ध में अंग्रेज़ों को बहुत हानि पहुँची। २२ जनवरी को मुल्तान पर हल्ला बोल दिया गया जहाँ अंग्रेज़ों को सफलता प्राप्त हुई।

सिक्ख सेना गुजरात के स्थान पर एकत्रित हुई। यहाँ उसके साथ अफ़ग़ानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद की सेना जिसे पेशवार का नगर सौंप देने का वचन दिया गया था, सिक्ख सेना से आ मिली। फरवरी २१ को गुजरात की भीषण लड़ाई हुई जिस में सिक्खों की हार हुई और मैदान अंग्रेज़ों के हाथ रहा।

इस विजय के पश्चात् डलहौज़ी ने पंजाब को अंग्रेज़ी साम्राज्य में सम्मिलित करने का बिर्णय किया। मार्च २६, १८४९ ई० को पंजाब अंग्रेज़ी साम्राज्य का भाग बन गया। रानी जिन्दाँ को बनारस

भेज दिया गया। महाराजा दलीप सिंह को पेंशन दे दी गई और मन्त्री लाल सिंह को अपराधी ठहराया गया।

पंजाब को इस प्रकार हथिया लेने के लिये डलहौज़ी की कड़ी आलोचना हुई किन्तु अंग्रेज़ी साम्राज्य के प्रसार में यह उसका पहला कदम न था।

पंजाब पर अंग्रेज़ों का अधिकार

चार साल तक पंजाब में बोर्ड आफ़ ऐडमिनिस्ट्रेशन स्थित रहा जिसके पश्चात् सर हैनरी लारैंस को पंजाब का चीफ़ कमिश्नर नियुक्त किया गया। १८४६ ई० के पश्चात् बड़ी तीव्रता से सुधार किये गए। भूमि पर कृषकों का अधिकार स्वीकार किया गया। जिन सरदारों ने अंग्रेज़ों का साथ दिया था उन्हें जागीरें भेंट हुईं। इसके अतिरिक्त समस्त प्रान्त को ज़िलों में बाँट दिया गया। पुलीस, शिक्षा, अस्पताल और जेलखानों का प्रबन्ध किया गया और सिंचाई के लिये नहरें खोदी गईं। सर हैनरी लारैंस ने शीघ्र ही पंजाब के लोगों का मन जीत लिया। १८५७ ई० में जब समस्त भारत ने अंग्रेज़ों का विरोध किया, पंजाब ने उनका साथ दिया।

सिंध

सिंध मुग़ल सम्राटों के आधीन रहा था। अठारहवीं शताब्दी में अहमद शाह अबदाली ने इस पर अधिकार प्राप्त कर लिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् तालपुर वंशीय अमीर सिंध के स्वतंत्र शासक बन गए। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सिंध पर तीन अमीरों का शासन था एक मीरपुर, दूसरा ख़ैरपुर और तीसरा हैदराबाद में अध्यस्त था।

जिस समय पंजाब पर रणजीत सिंह ने अधिकार प्राप्त किया, उसकी शक्ति को सीमित रखने के लिये अंग्रेज़ों की दृष्टि सिंध पर पड़ी। उन्हों ने १८०६ ई० में अमीरों से सन्धि की जिस के अनुसार अमीरों को इस बात पर बाध्य किया गया कि वे अंग्रेज़ों के अतिरिक्त

किसी विदेशी शक्ति से सम्बन्ध न रखें। इसी प्रकार की सन्धि १८२० ई० में पुनः दोहराई गई।

१८३१ ई० में रणजीत सिंह ने सुझाव रखा कि सिंध के दो भाग कर दिये जाएँ जिस में से एक पर उसका अधिकार हो। यह सुझाव अंग्रेज़ों ने स्वीकार न किया। १८३२ ई० में यह निर्णय हुआ कि सिन्ध में से कोई सेना या सैनिक सामग्री नहीं गुज़र सकेगी। किन्तु प्रथम अफ़गान युद्ध में अंग्रेज़ों ने इसे सैनिक केन्द्र बनाया।

१८३८ ई० में रणजीत सिंह ने शाहपुर पर अधिकार प्राप्त कर लिया। किन्तु अंग्रेज़ों ने उसे शाहपुर ख़ाली करने के लिये विवश किया।

१८३९ ई० में सिन्ध के साथ नई सन्धि की गई जिसके अनुसार अमीरों के लिए अंग्रेज़ी सेना अपने राज्य में स्थित रखनी पड़ी। इसके व्यय के लिये १८४२ ई० में कई स्थान अंग्रेज़ों को मिले।

अंग्रेज़ों की ओर से अमीरों पर प्रतिबन्ध लगाये जाने लगे। उन्हें सिक्के ढालने की स्वन्त्रता न रही। प्रतिबन्धों को अमीर सहन न कर सके और उन्होंने अंग्रेज़ रैज़ीडैन्सी पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज़ों ने युद्ध की घोषणा कर दी। उन्हें सुगमता से ही विजय प्राप्त हुई और सिन्ध को अंग्रेज़ी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

अठारहवीं शताब्दी में जयपुर में राजा सवाई जय सिंह का शासन था जिस ने नीतिज्ञता और विद्वत्ता का प्रमाण दिया। अजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् जोधपुर नरेश अभय सिंह गुजरात का गवर्नर रहा किन्तु मराठों से उसने मात खाई। उसके पश्चात् मराठा सरदारों ने राजस्थान पर आक्रमण करने आरम्भ किये और कई राजन्यों से चौथ वसूल की। अभयसिंह के उत्तराधिकारी और पुत्र राम सिंह और उसके भाई बख़्त सिंह के

राजस्थान

आपसी झगड़ों ने मराठों को राजस्थान में हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान किया। रघुनाथ राव ने बख्त सिंह के पुत्र विजय सिंह से बहुत सा धन ले उसे राम सिंह के स्थान पर जोधपुर का नरेश स्वीकार किया।

मराठों के बार बार आक्रमण और राजस्थान नरेशों के आपसी झगड़े राजस्थान के लिए विनाशकारी सिद्ध हुए। तंग आकर वहाँ के शासकों ने अंग्रेज़ों से सहायता की याचना की। जोधपुर ने १८१७ ई० में अंग्रेज़ों से सन्धि की। अन्य राजपूत राज्य भी अंग्रेज़ों की शरण में आ गए।

करनल टाड अंग्रेज़ों का प्रथम प्रतिनिधि था जो राजस्थान में रेज़िडैन्ट नियुक्त हुआ। उसने राजस्थान का इतिहास लिखा है जो एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

मालवा

बाजी राव ने उत्तरी भारत को विजय करने की योजना बनाई थी। इस की पूर्ति के लिए उस ने निज़ाम को दक्षिण में स्वतन्त्र छोड़ दिया और स्वयं उत्तर की ओर बढ़ा। मालवा को उस ने अपना लक्ष्य बनाया।

मालवा का राज्यपाल उस समय राजा गिरधर था, जिस के पूर्वज बङ्गाल में अज़ीमुशान के मन्त्री रह चुके थे।

१६९८ ई० में एक मराठा सरदार ने मालवा पर असफल आक्रमण किया था। किन्तु जिस समय राजपूत सरदार औरंगज़ेब के दुर्व्यवहार से ऊब गए उन्हों ने मराठों को मालवा पर अधिकार प्राप्त करने के लिए निमन्त्रित किया। निमन्त्रित करने वालों में अम्बर के सवाई जय सिंह का नाम प्रमुख है।

मराठों को नन्दलाल नामक नाविक की जो मुग़ल सम्राट् की ओर से नर्मदा नदी की रखवाली के लिए नियत था, सहायता प्राप्त हो गई और मल्हार राव होल्कर नर्मदा पार कर १७२३—२४ ई०

में इन्दौर जा पहुँचा । इसी प्रकार उदोजी पवांर ने धार को जा दबोचा। राजा गिरधर और उस के चचेरे भाई दयाबहादुर एक एक कर के मैदान में काम आए। मालवा के सरदारों ने सवाई जय सिंह से सहायता की याचना की किन्तु उस ने परामर्श दिया कि उन्हें पेशवा बाजी राव से सहायता माँगनी चाहिए।

मुग़ल सम्राट् ने एक रुहेला सरदार मुहम्मद खान बंगेश को मालवा का राज्यपाल नियुक्त किया। इस से पूर्व वह इलाहाबाद का गवर्नर रह चुका था। मराठों को परास्त करने की अपेक्षा उस ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। बुन्देलखण्ड के राजा छत्तरसाल ने बाजीराव से सहायता की याचना की और जब बाजी राव की सहायता से उस ने बंगेश को परास्त किया तो छत्तरसाल ने बाजी राव को अपना आधा राज्य दे दिया। बंगेश की हार के पश्चात् उसे सम्राट् ने गवर्नर के पद से भी हटा दिया। इस के पश्चात् सवाई जय सिंह को राज्यपाल नियुक्त किया गया। सवाई जय सिंह ने आग्रह किया कि सम्राट् बाजी राव को राज्यपाल नियुक्त करें। परन्तु सम्राट् ने अपने वज़ीर ख़ान दुरान के भाई मुज़फ्फर खाँ को मराठों को परास्त करने के लिए भेजा। भाई की सहायता से भी मुज़फ्फर सफल न हुआ और आखिर सन्धि की बातचीत आरम्भ हुई। बाजी राव ने कहा कि मथुरा, इलाहाबाद और बनारस भी उसे सौंपे जाएँ, उसे पचास लाख रुपया दिया जाए और दक्षिण में ५ प्रतिशत की चौथ उस को मिले। उस समय सम्राट् ने यह माँग स्वीकार न की। बाजी राव दिल्ली के द्वार तक आ पहुँचा। उस के पश्चात् जो सन्धि हुई उस के अनुसार मालवा बाजी राव को सौंप दिया गया और दक्षिण के कर का ५ प्रतिशत उगाहने की उसे आज्ञा मिल गई।

गुजरात

गुजरात के राज्यपाल सरबुलन्द ने मराठों को चौथ और सरदेशमुखी उगाहने की आज्ञा दी थी जिसे सम्राट् और उस के वज़ीर खान दुरान ने

स्वीकार न किया। १७३४ ई० में उस के स्थान पर अजीत सिंह के पुत्र अभय सिंह को जो जोधपुर का राजा था गुजरात का राज्यपाल नियुक्त किया। अभय सिंह ने मराठों को गुजरात से निकालने का प्रयत्न किया।

पिल्ला जी गायकवाड़ गुजरात में स्थित था। उस ने अभय सिंह की एक न चलने दी। अभय सिंह ने धोखे से पिल्ला जी गायकवाड़ का वध करवा दिया। अभय सिंह के इस निकृष्ट काम से कोली, भील, और गुजरात की अन्य जातियाँ उस के विरुद्ध हो गईं। बदला लेने के लिये महादा जी और उसका पुत्र दम्मा जी गुजरात की ओर बढ़े। अभय सिंह गुजरात छोड़ कर जोधपुर चला गया।

मुग़ल सम्राट् ने उस के स्थान पर नजीबुद्दौला को नियुक्त किया जो मराठों से मिल गया और इस प्रकार गुजरात १७३५ ई० में सदैव के लिए मुग़लों के हाथों से निकल गया। इस पर गायकवाड़ का अधिकार हो गया।

भरतपुर

अठारहवीं शताब्दी में जाटों का नेता सूरजमल अतियोग्य और सशक्त शासक था। मध्य भारत उस समय भिन्न-भिन्न शक्तियों का अखाड़ा बना हुआ था किन्तु फिर भी सूरजमल ने अपनी प्रजा को आँच न आने दी। उस ने कला की जो कृतियाँ छोड़ी हैं उन्हें देख कर आलोचक दंग रह जाता है। हिन्दू मुस्लिम कला शैली का उस ने विचित्र उदाहरण प्रस्तुत किया।

जिस समय मराठा सरदार पानीपत के मैदान में अहमद शाह अब्दाली का मुकाबला करने के लिये एकत्रित हुए तो सूरजमल ने उन की सहायता का वचन दिया किन्तु मराठों के नेता सदा शिव राव ने उसे रुष्ट कर दिया और सूरज मल अपनी सेना सहित वापिस चला आया। युद्ध में हार होने के पश्चात् जिस समय मल्हार राव होल्कर भरतपुर पहुँचा तो सूरज मल ने उस की पूर्ण रूप से सहायता

की। लार्ड वैलेज़ली की सहायक मैत्री के अन्तर्गत भरतपुर ने भी अंग्रेज़ों का संरक्षण, स्वीकार किया।

१८२६ ई० में भरतपुर राज्य में दुर्जन मल नाम के व्यक्ति ने अंग्रेज़ों का विरोध किया। उस की हार हुई और उसे अंग्रेज़ों की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

अवध

अवध अति उपजाऊ प्रदेश है। इसे हिन्दू लोग पुण्य भूमि मानते हैं। मुग़लों के काल में यह एक बड़ा प्रान्त गिना जाता था। मुग़ल सम्राट् अहमद शाह के काल में अवध का सूबेदार सफ़दर जंग मुख्य मन्त्री नियुक्त हुआ।

अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने जो १७५४ ई० में सफ़दर जंग की मृत्यु के पश्चात् नवाब बना अहमद शाह अब्दाली की सहायता की थी। अब्दाली की विजय के पश्चात् उसे दिल्ली दरबार में माननीय स्थान मिला।

अंग्रेज़ों की बङ्गाल विजय से शुजाऊद्दौला को शंका हुई। उधर बङ्गाल के नवाब मीर क़ासिम ने उस से सहायता की प्रार्थना की। बक्सर के स्थान पर संयुक्त सेना का अंग्रेज़ सेना से मुकाबला हुआ जिस में शुजाउद्दोला और उस के साथियों की हार हुई। उसे इलाहाबाद और कडा के ज़िले हरजाने के रूप में अंग्रेज़ों को देने पड़े। इस के साथ ५० लाख रुपया भी देना पड़ा। अंग्रेज़ों ने ये ज़िले शाह आलम द्वितीय को दे दिये, जिस ने बक्सर के युद्ध में भाग लिया था और अब अंग्रेज़ों की शरण में रहना स्वीकार किया था। जब शाह आलम द्वितीय ने मराठों की शरण ली तो ये ज़िले पुनः अवध के नवाब को लौटा दिये गये।

१७७४ ई० में अवध के नवाब ने रुहेल खण्ड को विजय करने की योजना बनाई और अंग्रज़ों से सहायता की याचना की।

हेस्टिंग्ज़ उस समय बंगाल का गवर्नर था। उसकी आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ रही थीं। उस ने भारी रकम के बदले सहायता करने का वचन दिया। नवाब को विजय प्राप्त हुई किन्तु वह नियत रकम कम्पनी को न दे सका।

नवाब की माता और दादी जो फैज़ाबाद में रहती थीं, बहुत धनी समझी जाती थीं। हेस्टिंग्ज़ ने उन्हें अपना आखेट बनाया। अवध की इन बेगमों से निर्दयता पूर्वक धन प्राप्त किया गया।

लार्ड वेलेज़ली ने १८०१ ई० के लगभग अवध के नवाब सआदत अली से गंगा और यमुना का मध्यवर्ती प्रदेश और गोरखपुर और रुहेल खण्ड प्राप्त कर लिये। नवाब पर यह आरोप लगाया गया कि वह योग्य शासक नहीं।

१८४८ ई० में लार्ड डलहौज़ी गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। डलहौज़ी का कहना था कि अवध का शासक योग्य नहीं और उस की प्रजा दुखी है। जनता की भलाई की आड़ लेकर उस ने अवध के अन्तिम नवाब वाजिद अली शाह को गद्दी से उतार दिया। अवध अंग्रेज़ी राज्य में सम्मिलित हो गया।

अवध साहित्य और कला की उन्नति के लिए प्रसिद्ध था। समकालीन इतिहासकारों के विवरण से पता चलता है कि अवध को उन्नत करने और उस की शक्ति को बढ़ाने का नवाब ने भरसक प्रयत्न किया। उस की विलास प्रियता को अंग्रेजों ने बढ़ा चढ़ा कर संसार के सामने रखा। कुछ भी हो मुग़लों के पतन के साथ साथ उस की शाखाएँ अर्थात् अवध, हैदराबाद और बंगाल के राज्य दुर्बल हो गए थे।

बनारस भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। पवित्र स्थान होने के साथ साथ यह शिक्षा का केन्द्र था। यह राज्य तुर्क और

बनारस

मुग़ल काल में सीमित हो गया। मुग़लों के पतन के समय यह अवध के आधीन था। १७७५ ई० में कम्पनी ने उसे अपने संरक्षण में लिया। बनारस के राजा चेत सिंह ने कम्पनी को कर देना स्वीकार किया। वह २२ लाख ५० सहस्र रुपया वार्षिक कम्पनी को नियमित रूप से देता रहा। १७७७ ई० में हेस्टिंग्ज़ ने इस के इलावा ५ लाख रुपये की माँग की जो राजा ने पूरी कर दी। उस के पश्चात् माँग बढ़ती ही गई और अनमना होने पर भी राजा ने उसे पूरा किया। आखिर उसे विशेष सेना भरती करने के लिए कहा गया जिस में राजा को विलम्ब हुआ। हेस्टिंग्ज़ ने इसे बहाना बना बनारस पर चढ़ाई कर दी और राजा को बन्दी बना लिया।

हेस्टिंग्ज़ की इस क्रूरता पर जनता को रोष आ गया और बनारस में स्थित हेस्टिंग्ज़ की सेना का हनन कर दिया गया। हेस्टिंग्ज़ शान्ति स्थापित करने में सफल हुआ। राजा नगर छोड़ कर ग्वालियर भाग गया। हेस्टिंग्ज़ ने उस के भतीजे को गद्दी पर बिठाया और कर की मात्रा ४० लाख वार्षिक कर दी। बनारस का राज्य अन्ततः १९४७ ई० में उत्तर प्रदेश में सम्मिलित कर लिया गया।

रुहेल खण्ड

अवध के नवाब सफ़दर जङ्ग ने अली मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् १७४९ ई० में रुहेल खण्ड पर आक्रमण किया जो असफल रहा। सफ़दर जंग ने मराठों की सहायता ली और रुहेल खण्ड पर अधिकार प्राप्त कर लिया। १७५२ ई० में जब अबदाली ने पञ्जाब पर आक्रमण किया तो मराठों ने और सफ़दर जंग ने रुहेलखण्ड खाली कर दिया। रुहेलों ने पाँच लाख रुपया सम्राट् को प्रति वर्ष और ५० लाख सफ़दर जङ्ग को तुरन्त देने का वचन दिया। किन्तु रुहेले कभी यह ऋण न चुका सके।

जब भी अवसर मिलता मराठे रुहेलखँड पर इस बहाने से आक्रमण करते कि यह ऋण नहीं चुकाया गया। १७६९ ई० में उन्होंने रुहेलखंड का बहुत सा भाग विजय कर लिया। इसी अवसर पर उन्होंने शाह आलम द्वितीय को अपनी शरण में लिया।

रुहेलों का सरदार नजीबुल्दौलत चिर काल तक मुग़ल दरबार में मन्त्री रहा था। १७७२ ई० में उस की मृत्यु के पश्चात् मराठों ने समस्त रुहेलखंड प्राप्त कर लिया जो उन्होंने नजीबुद्दौलत के पुत्र ज़बीता खाँ को बेच दिया।

मराठा आक्रमण से बचने के लिए रुहेलों ने शुजाउद्दौला से सन्धि कर ली किन्तु वे इसे निभा न सके। इसे बहाना बना १७७४ ई० में शुजाउद्दौला ने अंग्रेज़ों की सहायता से रुहेलखंड पर चढ़ाई कर दी और उसे विजय कर लिया। इस प्रकार अंग्रेज़ों ने अवध को सुदृढ़ बना दिया जिसे वे मराठों के विरुद्ध प्रयुक्त करना चाहते थे।

रुहेले अफ़ग़ान मुसलमान थे किन्तु उन में सहनशीलता थी। उन का शासन प्रबन्ध भी सराहनीय था। हैमिल्टन के अनुसार रुहेलखंड के किसानों की दशा अवध के किसानों की दशा से अच्छी थी।

बुन्देल खण्ड

प्राचीन बुन्देल खंड यमुना, नर्मदा, चम्बल और टोंस के बीच फैला हुआ था। झाँसी, बाँदा, आदि जो इस समय उत्तर प्रदेश का भाग हैं, और मध्यभारत तथा विन्ध्याप्रदेश का अधिकतर भाग इस में सम्मिलित थे।

कहा जाता है कि इस खंड को विन्ध्याचल से ही अपना नाम मिला है। बुन्देल खंड पहाड़ी प्रदेश है। छोटी छोटी नदियाँ इस खंड को आभूषित करतीं और रमणीय बनाती हे।

बुन्देल खंड के नगरों का वर्णन पुराणों में, रामायण और महाभारत में मिलता है। रामायण के बाणासुर और महाभारत के शिशुपाल यहीं के राजा कहे जाते हैं। सम्भवतः शिशुपाल के वंशज ही चेदि और कलचुरी कहलाये। चंदेल अपना नाता शिशुपाल से जोड़ते हैं। इस वंश का प्रसिद्ध शासक जयशक्ति था जो एक पौराणिक व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। १३०४ ई० में इस प्रदेश पर बुन्देलों का शासन हो गया जो विन्ध्याचल की घाटियों की एक पहाड़ी जाति कहे जाते हैं।

बुन्देलों में राजा छत्रसाल सब से प्रसिद्ध राजा हुआ है। बुन्देलों और चंदेलों ने इस प्रदेश को उन्नत करने का भरसक प्रयत्न किया। सिंचाई के लिए अनेक तालाब बनवाए जिनमें से बहुत सों के खंडहर अब भी पाए जाते हैं। कला के भी अनेक नमूने मिलते हैं जिन पर भारत को गर्व है।

छत्रसाल जिस का शौर्य उदाहरणीय है १७३१ ई० में मालवा के सूबेदार मुहम्मद खाँ बंगेश का आखेट बना। उसने बाजीराव से सहायता प्राप्त कर बंगेश को पराजय दी। इस के बदले में छत्रसाल ने बाजी राव को बुन्देल खण्ड का एक भाग जिसमें काल्पी और सागर के प्रान्त सम्मिलित थे भेंट किया।

बाजी राव द्वितीय की हार के पश्चात् बुन्देल खण्ड के बहुत से भाग पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। छत्रसाल के वंशजों ने अंग्रेज़ों का संरक्षण स्वीकार कर लिया। १८५७ ई० के स्वतन्त्रता युद्ध में बुन्देल खंड की रानी लक्ष्मी बाई ने जो वीरता दिखाई उस का उदाहरण मिलना कठिन है। १८५७ ई० के पश्चात् ही बुन्देल खंड पूर्ण रूप से अंग्रेज़ों के आधीन हुआ। फिर भी उस में बहुत सी देसी रियासतें शेष रहीं जिन्हें अब भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया गया है।

परिच्छेद ३२

पूर्व भारत

बंगाल

१७०३—४ ई० में औरंगज़ेब ने मुर्शिद कुली खाँ को बङ्गाल का सूबेदार नियुक्त किया था। उस ने ढाका की अपेक्षा मुर्शिदाबाद को अपनी राजधानी बनाया। वह स्वतन्त्र रूप से राज्य करता था। दिल्ली की सरकार उस के काम में हस्तक्षेप न करती थी। उस की मृत्यु पर उस का दामाद शुजाउद्दीन सूबेदार नियुक्त हुआ। १७३६ ई० में उस का पुत्र सरफराज़ ख़ाँ सूबेदार बना किन्तु कुछ मास पश्चात् ही बिहार के सूबेदार अलीवर्दी खाँ ने उसे परास्त कर मार डाला और अलीवर्दी खाँ स्वयं बङ्गाल का सूबेदार बन गया। मराठों के साथ उस के सम्बन्ध का विवरण आप पढ़ आए हैं। उसे मराठों को उड़ीसा का प्रांत और बङ्गाल की चौथ भेंट करनी पड़ी। १७५६ ई० में अलो वर्दी खाँ की मृत्यु हो गई और उस का दोहत्रा सिराजुद्दौला सूबेदार बना।

बंगाल में विदेशी बस्तियाँ

पुर्तगालियों के निकल जाने के पश्चात् बङ्गाल में अंग्रेज़, डच, फ्रांसीसी और डेन पास पास रहते थे। अंग्रेज़ कलकत्ता में स्थित थे जो हुगली के दहाने पर है।

अलीवर्दी खाँ ने विदेशी व्यापारियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाए हुए थे। उस की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेज़ों ने नवाब की आज्ञा की अवहेलना की। १७१७ ई० में अंग्रेज़ों को मुग़ल सम्राट ने बङ्गाल में करमुक्त व्यापार करने की आज्ञा दी थी। अंग्रेज़ इस का अनुचित लाभ उठाते थे। कलकत्ता का अंग्रेज़ गवर्नर ड्रेक समझदार न था उस ने नवाब के एक अपराधी को शरण दी और नवाब

को रुष्ट कर दिया। अंग्रेज़ों की इस मनमानी को नवाब क्षमा न कर सका और उस ने १७५६ ई० में कलकत्ते पर आक्रमण कर अंग्रेज़ों को निर्वासित कर दिया।

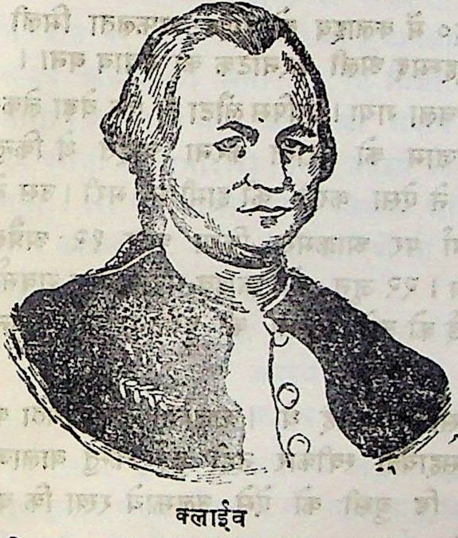

क्लाईव

कलकत्ता में हुई अंग्रेज़ों की हार की सूचना मद्रास पहुँची। वहाँ से क्लाइव जिसने फ्रांसीसियों के और हैदर अली के विरुद्ध खूब वीरता दिखाई थी, कलकत्ता आया।

क्लाइव एक नटखट बालक था जिसके स्वभाव से तंग आकर उसके कुटुम्बियों ने उसे भारत भेज दिया था। यहाँ वह ईस्ट इंडिया कम्पनी का साधारण क्लर्क भरती हुआ। उस समय वह केवल १७ वर्ष का था और उसका वार्षिक वेतन ५ पौंड।

मद्रास पर फ्रांसीसियों का अधिकार हो जाने पर अंग्रेज़ों ने पांडीचेरी का परिवेष्ठन किया था। इस समय क्लाइव को सैनिक के रूप में अपनी वीरता दिखाने का अवसर मिला।

उसने मद्रास के गवर्नर के सम्मुख एक योजना रखी कि अंग्रेज़ सेना अरकाट की ओर बढ़े जहाँ से चन्दा साहब ने अपनी समस्त सेना निकाल कर त्रिचनापल्ली भेज दी थी।

११ सितम्बर १७५१ ई० को क्लाइव अरकाट में दाखिल हुआ। चन्दा साहब ने अपने पुत्र राजू साहब के आधीन भारी सेना अरकाट को मुक्त कराने के लिए भेजा। मराठों की सहायता से क्लाइव

ने इस सेना का डटकर मुकाबला किया। इस विपद काल से निकलने के पश्चात् क्लाइव प्रथम पंक्ति का सैनिक समझा जाने लगा।

क्लाइव ने फ्रांसीसियों की भाँति भारतीय सैनिकों को दीक्षा देनी आरम्भ की। जून १७५२ ई० में क्लाइव को पूर्णतः सफलता मिली। चन्दा साहब मारा गया। मुहम्मद अली करनाटक का नवाब बना।

क्लाइव इंग्लैंड वापिस चला गया। वापिस लौटा तो एक बेड़ा लेकर बम्बई पहुँचा। अंग्रेज़ निज़ाम को परास्त करना चाहते थे किन्तु बम्बई के अंग्रेज़ गवर्नर ने ऐसा करने की हामी न भरी। उस ने इस की अपेक्षा स्वर्ण दुर्ग पर आक्रमण किया और १२ अप्रैल १७५६ ई० में उसे पा लिया। २२ जून को क्लाइव मद्रास का गवर्नर नियुक्त हुआ। १४ जुलाई को उसे बङ्गाल की दुर्घटना की सूचना मिली।

मराठे अंग्रेज़ों का साथ दे रहे थे। बालाजी ने सहायता का आश्वासन दिलाया। यह सहायता स्वीकार नहीं हुई किन्तु बालाजी ने औरंगाबाद में स्थित डि बुसी को ऐसे उलझाये रखा कि वह बङ्गाल में अंग्रेज़ों की विपद का लाभ न उठा सका।

कलकत्ता की पुनः विजय

६ दिसम्बर को वाटसन और क्लाइव कलकत्ता की ओर बढ़े। २ जनवरी १७५७ ई० में उन्होंने कलकत्ता पुनः प्राप्त कर लिया और २३ मार्च को चन्द्रनगर। नवाब को उन्होंने आश्वासन दिलाया कि वह उस से मित्रता रखना चाहते हैं। दोनों में सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार नवाव ने अंग्रेज़ों को सिक्के ढालने की आज्ञा दे दी। उन के सब दुर्ग वापिस कर दिये और जो हानि उन्हें पहुँची थी उस की पूर्ति की।

क्लाइव ने चन्द्र नगर विजय करने के पश्चात् अमीचन्द नामक व्यक्ति को धोखे से अपने साथ मिला लिया। मीर जाफ़र भी, जो नवाब का सेनापति था, अंग्रेज़ों से जा मिला।

प्लासी का युद्ध

क्लाइव ने नवाब पर झूठा आरोप लगाया कि उस ने सन्धि भंग कर दी है। इसे बहाना बना वह मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ा। नवाब अपनी सेना ले कलकत्ते की ओर चला। प्लासी के स्थान पर दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ। मीर जाफर सेना सहित क्लाइव की सेना से जा मिला। नवाब जान बचा कर भागा। क्लाइव ने मीर जाफ़र को नवाब स्वीकार किया। कम्पनी को २४ पर्गनों की ज़मींदारी मिली, क्लाइव को २३४ सहस्र पौंड भेंट किया गया। उसे एक जागीर मिली जिसकी आय ३० सहस्र पौंड प्रति वर्ष थी। कम्पनी के अन्य अधिकारियों को भी बहुत सा धन मिला। बङ्गाल का कोष खाली हो गया।

मीर जाफ़र

क्लाइव ने बङ्गाल में लूट मार की प्रथा चलाई। मीर जाफ़र क्लाइव के हाथ में कठपुतली बना था। क्लाइव बङ्गाल का वास्तविक नवाब था।

१७५६ ई० में अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सहायता से राजकुमार अली गौहर ने जो तत्पश्चात् शाह आलम द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा, बङ्गाल पर चढ़ाई कर दी और पटना को घेर लिया। क्लाइव सेना लेकर उधर बढ़ा और राजकुमार को वापिस लौटना पड़ा। मीर जाफ़र ने इस के लिये क्लाइव का बहुत धन्यवाद किया।

१७६० ई० में क्लाइव इंग्लैंड चला गया। पाँच साल के पश्चात् वह फिर भारत आया। अब वह बङ्गाल का गवर्नर और अंग्रेज़ी सेना का सेनापति था। १७६५ ई० में क्लाइव ने बङ्गाल में पूर्ण रूप से अंग्रेज़ों का अधिकार स्थापित कर दिया। मुग़ल सम्राट् से उसका सीधा सम्बन्ध हो गया। इस के अतिरिक्त उस ने कम्पनी के शासन प्रबन्ध में भी कई सुधार किये। वह दो साल ही भारत में रह पाया था कि उसका स्वास्थ्य जवाब दे गया और उसे इंग्लैंड लौट जाना पड़ा।

जिस प्रकार क्लाइव ने प्लासी की लड़ाई जीती थी या अमी चन्द को धोखा दिया था उस के विषय में क्लाइव के विरोधियों ने लोक सभा में क्लाइव पर आरोप लगाया। क्लाइव ने भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना की थी। उसने सिद्ध कर दिया कि जो कुछ उस ने किया है अपने राष्ट्र के हित के लिये किया है। क्लाइव की प्रशंसा का प्रस्ताव स्वीकार किया गया किन्तु मानसिक वेदना और शारीरिक रुग्णता से ऊब कर क्लाइव ने १७७४ ई० में ५० साल की अवस्था में आत्म हत्या कर ली।

मीर कासिम

मीर जाफ़र बङ्गाल का नवाब था किन्तु वह इतना कुछ खो बैठा था कि उस की नवाबी नाम मात्र की थी। अंग्रेज़ों की माँगें बढ़ती जा रही थीं। कोष ख़ाली था। लोगों ने उस पर कई प्रकार के कटाक्ष किये। इन सब बातों से तंग आकर उसने अंग्रेज़ों को बङ्गाल से निर्वासित करने की योजना बनाई। फ्रांसीसियों को अंग्रेज़ों ने निकाल दिया था। डच अभी भी वहाँ स्थित थे। मीर जाफर ने उनसे मेल करने की चेष्टा की। डचों ने मीर जाफ़र को सहायता का वचन दिया। किन्तु पूर्व इसके कि उन के जहाज़ हुगली में प्रवेश करें अंग्रेज़ों ने उन्हें रोक लिया। जल और थल दोनों पर डचों की हार हुई। चिनसुरा, जहाँ वे स्थित थे, उन्हें छोड़ना पड़ा। क्लाइव के उत्तराधिकारी वन्सीटाट ने मीर जाफ़र को गद्दी से उतार कर उस के दामाद मीर कासिम को १७६० ई० में नवाब नियुक्त किया। इस प्रबन्ध से बर्दवान, मिदनापुर और चटगांव के ज़िले कम्पनी के हाथ आ गए। वन्सीटार्ट और उस के सहकारियों को दो लाख पौंड प्राप्त हुए।

मीर कासिम अंग्रेज़ों से संतुष्ट न था। उनसे बचने के लिए उसने अपनी राजधानी मुंगेर के स्थान पर बनाई जो कलकत्ता से दूर था। उसने अपना शासन प्रबन्ध और अपनी सेना को सुधारने का प्रयत्न किया।

इस के साथ साथ उसने बंगाल में व्यापार कर हटा दिया। कारण यह था कि कम्पनी के माल पर कर नहीं लगाया जाता था। कम्पनी के कर्मचारी भी इस सुविधा का लाभ उठाते थे। वे अपने चहेतों को करमुक्त आज्ञापत्र दे देते थे जिस से भारतीय व्यापार को बहुत हानि पहुँचती थी। इस के साथ ही मीर कासिम ने जर्मन सैनिक को अपनी सेना का सेनापति नियुक्त किया। अंग्रेज़ नवाब से रुष्ट हो गए।

अंग्रेज़ों ने पहल की। पटना में अंग्रेज़ों की कोठी थी जिसका मुखिया ऐलिस था। उसने पटना पर अधिकार कर लिया। नवाब ने युद्ध की घोषणा कर दी किन्तु बेचारा मीर कासिम अंग्रेज़ों की सुसज्जित सेना का मुकाबला न कर सका और उसकी हार हुई।

मीर कासिम अवध पहुँचा और उसने शुजाऊदौला से सहायता की याचना की। दोनों की संयुक्त सेना का अंग्रेज़ सेना से बक्सर के स्थान पर १७६४ ई० में युद्ध हुआ। इस युद्ध में मुग़ल सम्राट् शाह आलम भी सम्मिलित था। वह अंग्रेज़ों के हाथ आया। मीर कासिम और शुजाऊद्दौला ने भाग कर जान बचाई। इस के पश्चात् शाह आलम अंग्रेज़ों की शरण में इलाहाबाद के स्थान पर रहने लगा।

बक्सर की जीत से भारत में अंग्रेज़ों का सिक्का जम गया। इस से सिद्ध हो गया कि उनकी शक्ति मुग़ल सम्राट् के मुकाबले में कहीं अधिक है।

पुनः मीर जाफर

१७६४ ई० में अंग्रेज़ों ने पुनः मीर जाफर को नवाबी सौंप दी। इस के बदले में उसे कम्पनी के कर्मचारियों को बहुत सा धन और अनेक सुविधाएँ देनी पड़ीं। १७६५ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नजमुद्दौला गद्दी पर बैठा। उसे लग भग एक लाख पचास सहस्र पौंड कम्पनी के कर्मचारियों को भेंट करने पड़े। कम्पनी के

कर्मचारियों की इन करतूतों को इंग्लैंड में स्थित कम्पनी के अध्यक्षों ने पसन्द न किया और इन का निराकरण करने के लिये पुनः क्लाइव को भारत भेजा गया। क्लाइव को लार्ड की उपाधि प्रदान हो गई थी और वह भारत आकर लार्ड क्लाइव कहलाया।

क्लाइव ने आते ही अवध के नवाब शुजाऊद्दौला से सन्धि की जिसने कोड़ा और इलाहाबाद के ज़िले कम्पनी को सौंप दिए और पाँच लाख रुपया हरजाना दिया। अंग्रेज़ों की ओर से आश्वासन दिलाया गया कि वे नवाब की सहायता करेंगे।

क्लाइव ने सम्राट् शाह आलम द्वितीय के निर्वाह के लिये, जो बक्सर के युद्ध में अंग्रेज़ों के हाथ आया था, इलाहाबाद और कोडा के ज़िले और २६ लाख रुपया सालाना अर्पित किया। इस के बदले में सम्राट् ने अंग्रेज़ों को बंगाल, उड़ीसा और बिहार की दीवानी प्रदान की। अंग्रेज़ों ने उत्तरी सरकार पर भी अपना अधिकार स्वीकृत करवा लिया।

क्लाइव ने नवाब को अपने पद से पृथक कर दिया और उसे पेंशन दे दी।

दीवानी

कम्पनी के हाथ दीवानी आजाने से जनता का जिस प्रकार शोषण हुआ उसका वर्णन अंग्रेज़ इतिहासकार भी बड़े खेद और दुःख से करते हैं। कम्पनी के कर्मचारी अपना कोई दायित्व न समझते थे। रुपया प्राप्त करना ही उनका ध्येय था। उन्हों ने दिल खोल कर हाथ रंगे। ये कर्मचारी जब इङ्गलैंड वापिस जाते थे तो वहाँ नवाबों की भाँति रहते थे और नवाब कहलाते थे।

क्लाइव को भारत भेजने का एक उद्देश्य यह भी था कि वह कम्पनी के शासन में सुधार करे। क्लाइव ने कर्मचारियों का दूहरा भत्ता बन्द कर दिया जो उन्हें प्लासी के युद्ध के पश्चात् से

शाँति के दिनों में भी मिलने लगा था। इसके साथ साथ उसने कर्मचारियों के निजी व्यापार पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। उसने बड़े अफसरों की समिति बनाई जो कम्पनी के कर्मचारियों के हित के लिये व्यापार करती थी। क्लाइव की इस अन्तिम योजना को कम्पनी के प्रवर्तकों ने स्वीकार नहीं किया।

क्लाइव का चरित्र

कहा जाता है कि क्लाइव ने ही भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना की। वह सामरिक विद्या में प्रवीण न था किन्तु वह साहसी और दलेर था और कठिनाइयों से भयभीत न होता था। उसकी सफलता का कारण उसकी योग्यता की अपेक्षा उसकी चालाकी और छल थे। उसने अमींचन्द को दिये गये सन्धि के मसविदे पर अपने हाथ से वाटसन का नाम लिख कर जो धोका किया इस के लिये क्लाइव का पक्ष लेने वाले भी उसे क्षमा नहीं कर सकते। वह बहुत लालची था। उसने बंगाल में लुटेरा राज्य का सूत्रपात किया।

द्वैध राज्य प्रबन्ध

१७६७ से १७६९ ई० तक वर्ल्स्ट और १७६९ से १७७२ ई० तक कार्टियर जो साधारण व्यक्ति थे बङ्गाल के गवर्नर रहे। उनके शासन काल में बङ्गाल ने द्वैध (दोहरे) राज्य प्रबन्ध का अभिशाप अनुभव किया। १७७० ई० में वह दुर्भिक्ष पड़ा जिसका उदाहरण मिलना कठिन है। बङ्गाल की एक तिहाई आबादी नष्ट हो गई। खेती बाड़ी का काम बन्द हो गया। कर उगाहने में कम्पनी के कर्मचारियों ने निर्दयता का प्रमाण दिया। १७७१ ई० की उगाही की मात्रा १७६८ ई० की उगाही की मात्रा से भी बढ़ गई। बङ्गाल की जनता पर क्या गुजरी उसका विवरण पढ़ कर रोंगटे खड़े होते हैं।

१७७२ ई० में हेस्टिंग्ज़ बंगाल का गवर्नर बना। वह १८ वर्ष की आयु से कम्पनी में काम कर रहा था। योग्यता और समझदारी

वारेन हेस्टिंग्ज़

के कारण उसे यह पद प्रदान हुआ। द्वैत राज्य प्रबन्ध असफल रहा था, इस लिये नवाबी समाप्त कर दी गई। बंगाल और बिहार में दो उप-नवाब थे वे भी हटा दिये गए। कम्पनी ने राज्य प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लिया और दीवानी और फौजदारी अदालतें स्थापित हुईं। एक को सदर दीवानी अदालत और दूसरी को सदर निज़ामत अदालत कहते थे। भूमि का लगान उगाहने के लिये ज़मींदारों को पाँच साल के लिये ठेका दे दिया गया। नवाब का भत्ता कम कर दिया गया। शाह आलम द्वितीय मराठों की शरण में चला गया था। २२ लाख रुपया जो उसे दिया जाता था उस की भी बचत हो गई।

धन इकट्ठा करने के लिये हेस्टिंग्ज़ ने बहुत निःकृष्ट काम किये। उसने बनारस के राजा से धन प्राप्त करने के लिये उसे पद हीन कर दिया। अवध की बेगमों से बल पूर्वक धन प्राप्त किया। यह अंग्रेज़ गवर्नर के नाम पर बहुत बड़ा धब्बा है। इस हाथापाई का जिस समय उसके देश वासियों को बोध हुआ तो उन्हों ने हेस्टिंग्ज़ की कड़ी आलोचना की। जब वह १७८५ ई० में इङ्गलैंड लौटा तो उस पर अभियोग चलाया गया। अभियोग का यह भी विषय था कि हेस्टिंग्ज़ ने एक शिष्ट ब्राह्मण को जिसका नाम नन्दकुमार था, निर्दोष फाँसी दी थी। उस पर अभियोग चलाने वालों में बर्क नाम का एक प्रमुख वक्ता था। अन्ततः हेस्टिंग्ज़ को मुक्त कर दिया गया किन्तु इस अभियोग से उसे बहुत क्षति हुई।

मैक्फर्सन कुछ समय के लिये गवर्नर रहा। उसके पश्चात् १७८६ ई० में लार्ड कार्नवालिस गवर्नर नियुक्त हुआ। उसने कम्पनी के कर्मचारियों का वेतन बढ़ा दिया, जिस से भ्रष्टाचार कुछ सीमा तक कम हो गया।

कार्नवालिस ने ज़िलों में न्यायालय और थाने स्थापित किये। भूमि अधिकार बड़े बड़े ज़मींदारों को दे दिया। इसे बंगाल का पक्का

अथवा स्थायी बन्दोबस्त कहते हैं।

स्थायी बन्दोबस्त ने जहाँ कम्पनी को सुविधा प्रदान की वहाँ भारत में शोषण की प्रथा स्थापित कर दी।

पक्का बन्दोबस्त

अस्थायी बन्दोबस्त में ज़मींदार भूमि की देख रेख न करते थे जिस से भूमि का मूल्य कम होता जाता था। किसानों पर भी बहुत अत्याचार होते थे। कुछ लोग बढ़ चढ़ कर बोली देते थे किन्तु समय आने पर लगान न चुका सकते थे। इस से कम्पनी की आय अनिश्चित रहती थी।

स्थायी बन्दोबस्त से बड़े बड़े ज़मींदार धनी बन गए। कम्पनी की आय निश्चत हो गई। भूमि की उपज बढ़ने लगी। किसानों की दशा सुधारने के लिये सरकारी नियम बन गये जिनकी ज़मींदार अवहेलना न कर सकते थे। इस प्रबन्ध से बंगाल में समाज के मध्य-वर्ग की उत्पत्ति हुई जिसने आगे चल कर देश के स्वतन्त्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

इस बन्दोबस्त द्वारा सबसे बड़ी हानि यह हुई कि भूमि जोतने वालों का भूमि पर अधिकार न रहा। दूसरे जब शासन प्रबन्ध का व्यय बढ़ गया तो लगान के बढ़ने की सम्भावना न होने के कारण सरकार को अन्य कर लगाने पड़े जिनका भार समाज के उस वर्ग पर पड़ा जो साधारणतः कर देने के लिये बाध्य नहीं होता।

जिन लोगों ने पहले पहल भूमियाँ लीं थीं उनमें से सब के सब इन भूमियों पर स्थित नहीं रहे। उन में से बहुत से लगान न चुका सकने के कारण भूमि से अलग कर दिए गए और भूमियाँ अन्य लोगों को दे दी गईं। इस बन्दोबस्त को स्थाई बनने में भी पर्याप्त समय लगा जिसके अन्तर्गत कम्पनी और लोगों को अनेक कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ीं।

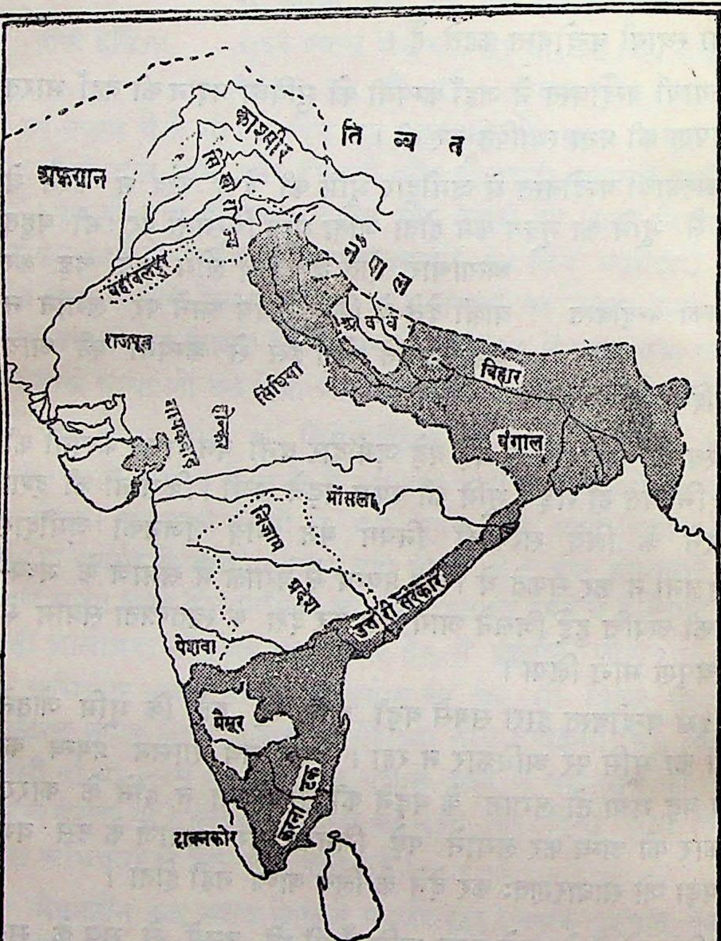
तिब्बत
अफ़गान
काश्मीर
नेपाल
बहावलपुर
राजपूत
सिंधिया
गायकवाड़
होल्कर
अवध
बिहार
बंगाल
भोंसला
निजाम
उत्तरी सरकार
पेशवा
मैसूर
ट्रावनकोर

लार्ड वेल्जली के समय में
अंगरेजी साम्राज्य
(१८०५ ई०)

सहायक मैत्री

१७९३ से १७९८ ई० तक सर जौन शोर गवर्नर रहा जिस के काल में निर्पैक्षता की नीति का पालन होता रहा। उसके पश्चात् लार्ड वेलेज़ली गवर्नर नियुक्त हुआ जो एक अनुभवी युवक शासक था। उसने भारत में सबसिडियरी अलायन्स (सहायक मैत्री) की प्रथा स्थापित की जिसके अनुसार कम्पनी ने भारतीय नरेशों के आपसी सम्बन्धों पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इस प्रबन्ध को स्वीकार करने वाला सब से पहला भारतीय शासक हैदराबाद का निज़ाम था जिसे मराठों से सदैव भय लगा रहता था। उस के पश्चात् राजस्थान के शासक मराठा सरदार और अन्य शासक इसे स्वीकार करने पर विवश हुए। टीपू और मराठा सरदारों को वेलेज़ली ने ही परास्त किया था।

अंग्रेज़ी राज्य विस्तार

१८०५ ई० में कम्पनी ने रुष्ट होकर वेलेज़ली को वापिस बुला लिया। लार्ड कार्नवालिस को दूसरी बार नियुक्त किया गया। तीन मास पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई और उसका स्थान जार्ज बार्लो ने लिया जो १८०५ से १८०७ ई० तक गवर्नर रहा। तत्पश्चात् लार्ड मिन्टो गवर्नर नियुक्त हुआ और वह १८१३ ई० तक भारत में रहा। उसने पंजाब के नरेश महाराजा रणजीत सिंह से मित्रता स्थापित की। लार्ड हैस्टिंग्ज़ (१८१३—२३ ई०) को गोरखों, पिंडारों और मराठों से युद्ध करने पड़े जिन में उसे सफलता प्राप्त हुई। सतलुज से ब्रह्मपुत्र तक और हिमालय से अन्तरीप कुमारी तक अंग्रेज़ों का सिक्का बैठ गया। दिल्ली का मुग़ल सम्राट् अब उनके आधीन था और उन से पेंशन पाता था।

अशांति की लहर

१८२३ से १८२८ ई० तक लार्ड ऐम्हर्स्ट गवर्नर रहा। बर्मा का युद्ध और भरतपुर का पतन उसके काल की प्रमुख घटनाएँ थीं। १८२४ ई० में बैरकपुर के स्थान पर सैनिक विप्लव हुआ जिसे दमन कर दिया गया। ऐम्हर्स्ट ने गर्मी के लिये शिमला को राजधानी,

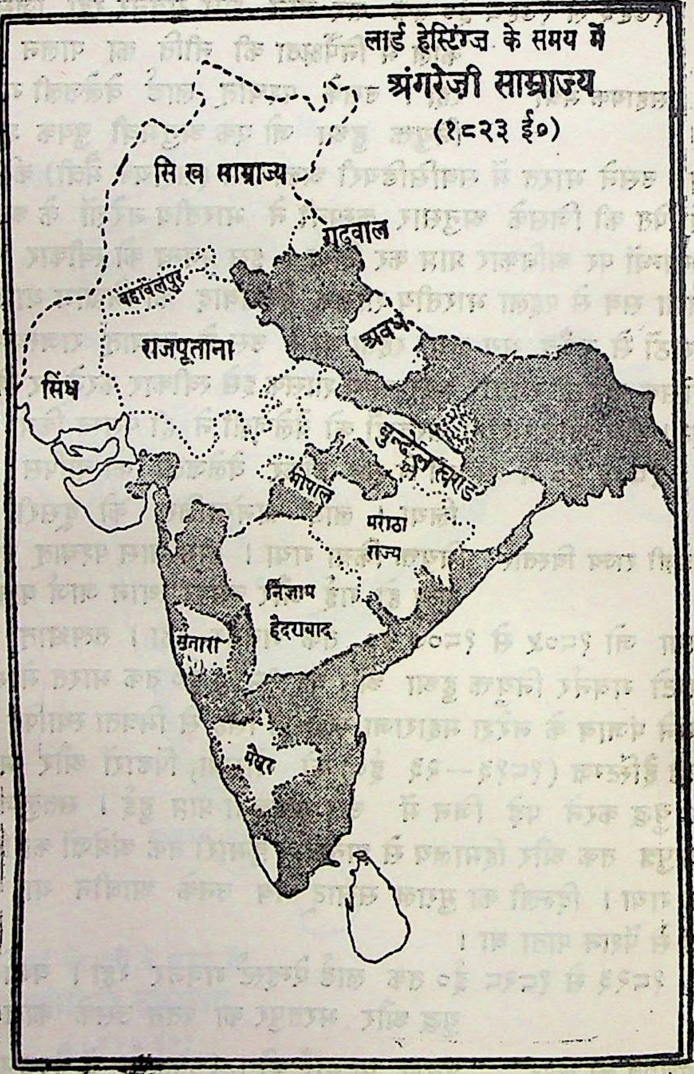

लार्ड हेस्टिंग्ज के समय में
अंगरेज़ी साम्राज्य
(१८२३ ई०)

सिख साम्राज्य
गढ़वाल
बहावलपुर
राजपूताना
अवध
सिंध
बुन्देलखण्ड
बराड
भोपाल
मराठा राज्य
निज़ाम हैदराबाद
सतारा
मैसूर

बनाया और इस प्रकार बङ्गाल और पश्चिमी भारत में संयोग स्थापित हुआ।

सुधार

लार्ड विल्यम बैन्टिंक जो १८२८ से १८३५ ई० तक गवनर रहा सुधारों के लिये प्रसिद्ध है। आर्थिक स्थिति संभालने, व्यापार को प्रोत्साहन देने न्यायालयों का सुधार करने और सामाजिक क्षेत्र में बैंटिंक का काम बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सिंध पर अधिकार

चार्ल्स मैटकाफ़ (१८३५—३६ ई०) जिसने बंगाल को मुद्रण की स्वतन्त्रता प्रदान की और लार्ड आक्लैंड (१८३६—४२ ई०) जिसके शासन काल में अफ़ग़ानों के साथ युद्ध हुआ योग्य गवर्नर थे। लार्ड अलन्बो (१८४२—४४ ई०) ने अफ़ग़ानिस्तान को युद्ध सफलता से समाप्त किया और सिन्ध पर अधिकार प्राप्त किया। उसने पुलीस में भी सुधार किये और दासता का उन्मूलन किया।

पंजाब पर अधिकार

१८४४ से १८४८ ई० तक लार्ड हार्डिंग्ज प्रथम गवर्नर रहा जिस के काल में सिक्खों से युद्ध हुआ। उसने कई सामाजिक सुधार किये जिन में सती की प्रथा, बच्चों का वध रोकना प्रमुख थे।

लैप्स की नीति

१८४८ ई० में लार्ड डल्हौज़ी ने भारत भूमि पर गवर्नर के रूप में पदार्पण किया और मानों रहा सहा भारत भी अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। उसने लैप्स की नीति द्वारा बहुत से भारतीय राज्य कम्पनी के राज्य में सम्मिलित कर लिये।

रेल, डाक और तार

डल्हौज़ी के काल में भारत में डाक और तार का प्रबन्ध हुआ। पहली रेल गाड़ी बनी। शिक्षा में एक नया युग आरम्भ हुआ।

डल्हौज़ी की नीति की उसके अपने देश में जितनी सराहना हुई

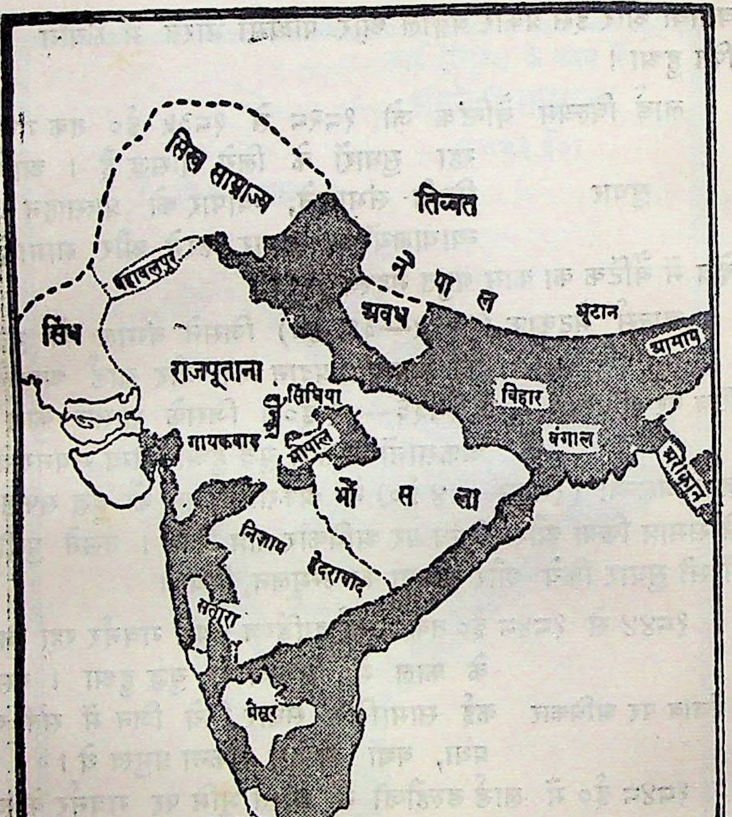
सिख साम्राज्य
तिब्बत
बहावलपुर
नैपाल
सिंध
अवध
भूटान
आसाम
राजपूताना
सिंधिया
विहार
बंगाल
गायकवाड़
भोपाल
भौंसला
अराकान
निजाम
हैदराबाद
सतारा
मैसूर
ट्रावनकोर
लङ्का

लार्ड विलियम बेंटिक के समय में
अंगरेज़ी साम्राज्य
(१८३५ ई०)

भारत में उससे उतनी ही अशाँति फैली। उसके उत्तराधिकारी लार्ड कैनिंग को भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से दो चार होना पड़ा। इस संग्राम के फल स्वरूप भारत से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार उठ गया और भारत के राज्य की बाग डोर ब्रिटेन की पार्लमेंट अर्थात लोक सभा के हाथ में आ गई।

१८५७ ई० के पश्चात कलकत्ता बङ्गाल का महत्त्व पूर्ण नगर होने के साथ साथ समस्त भारत की राजधानी बन गया और १६११ ई० तक भारत की राजधानी रहा।

जहाँ बङ्गाल ने अनेक अत्याचार सहन किये वहाँ बङ्गाल के लोगों को उन्नति के क्षेत्र में पहल प्राप्त हुई।

अंग्रेज़ गवर्नर

अंग्रेज़ गवर्नरों में क्लाइव, हेस्टिंग्ज़, कार्नवालिस, वेलेज़ली, मिण्टो, लार्ड हेस्टिंग्ज़, बैंटिक, हार्डिंज तथा डलहौज़ी प्रमुख गिने जाते हैं। क्लाइव से कार्नवालिस तक अंग्रेज़ी राज्य एक लुटेरा राज्य बना रहा। कार्नवालिस ने इस की व्यवस्था की और वेलेज़ली ने इसे विस्तृत तथा हेस्टिंग्ज़ ने सुदृढ़ बनाया। लार्ड हार्डिंज भी अंग्रेज़ी राज्य विस्तार के लिए प्रसिद्ध है, मिण्टो, बैंटिक और डलहौज़ी सुधारों के लिये। इन में बैंटिक और डलहोज़ी का प्रमुख स्थान है।

लार्ड विलियम बैंटिक

लार्ड विलियम बैंटिक की गणना, लाड रिपन, लार्ड इरवन तथा लार्ड माउंटबेटन के साथ होती है जो न केवल अपनी सज्जनता के लिये प्रसिद्ध हैं बल्कि उन्होंने भारत के हित के भी बहुत से काम किये।

लार्ड बैंटिक इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री ड्यूक आफ़ पोर्टलैंड का पुत्र था। वह १८०३ से १८०७ ई० तक मद्रास का गवर्नर रह चुका था और ज़मींदारी की अपेक्षा रय्यतवारी प्रथा के पक्ष में था। उस

ने मनरो को मद्रास में यह पद्धति स्थापित करने में पूरा पूरा सहयोग दिया।

बैंटिक उदार स्वभाव का व्यक्ति था। भारत के गवर्नर जनरल के रूप में उस का काल (१८२८—१८३५ ई०) इङ्गलैंड में सुधारों का काल था।

बैंटिक की यह नीति थी कि भारत के सुशासन का भार कम्पनी पर है, भारत की समृद्धि में ब्रिटेन की सत्ता है, बलहीनों की रक्षा करना कम्पनी का कर्तव्य है।

बैंटिक के आर्थिक सुधार प्रायः कम्पनी के हित में थे। शिक्षा संस्थाओं को जो भूमि अर्पित थी उसे हथिया कर बैंटिक ने भारत की शिक्षा पर एक बहुत बड़ा आघात किया, परन्तु अंग्रेज़ी अफ़सरों के भत्ते और वेतन में कमी तथा भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्ति उस के सराहनीय काम थे।

आगरा प्राँत में उस ने भूमि का बन्दोबस्त किया। भूमि के परिमाण और उस की उपज के आँकड़े एकत्रित किये और नक्शे तैयार कराये। लगान की मात्रा तीस साल के लिये निर्धारित की। यह केवल ज़मींदारी प्रथा पर आधारित न था। किसानों और पंचायतों का भी सरकार से सीधा सम्बन्ध था।

बैंटिक ने फ़ारसी के स्थान पर प्रान्तीय भाषाओं को न्यायालय की भाषा घोषित किया। न्याय संचालन में भी उस ने कई सुधार किये किन्तु उस के समाज सम्बन्धी सुधार विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। सती प्रथा का उन्मूलन इन में प्रमुख है। यह काम सुगम न था पर राजा राम मोहन राय जैसे महान् नेताओं का सहयोग उसे प्राप्त था इस लिए वह अपने प्रयास में सफल हुआ। १८२६ ई० में इस प्रथा को कानून विरोधी घोषित कर दिया गया। बाल हत्या और नर बलि का निषेध उस के अन्य प्रसिद्ध कार्य थे। उसी ने १८३५

ई० में यह स्वीकार किया कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी होगा। दिल्ली से कलकत्ता तक और आगरा से बम्बई तक सड़कें बनवाने का कार्य भी उसी ने आरम्भ किया। आगरा प्राँत में सिंचाई का प्रबन्ध भी किया गया। मध्यभारत में शाँति स्थापित करने के लिये उस ने ठगों का दमन किया। ये वे लोग थे जो किसी समय मराठा सेना में भरती होते थे और मराठों की हार के पश्चात् ठगी पर निर्वाह करने लगे थे। वे समझते थे कि ठगी द्वारा वे अपने इष्टदेव को प्रसन्न करते हैं।

बैंटिक ने समाचार पत्रों को स्वतंत्रता प्रदान की। समाचार पत्रों को सरकार की कड़ी आलोचना करने का भी अधिकार मिल गया। सरकारी कर्मचारियों को भी समाचारपत्रों में अपने विचार प्रकट करने की आज्ञा मिल गई।

लार्ड डलहौज़ी

लार्ड डलहौज़ी (१८४८—५६ ई०) इस बात के लिये बदनाम है कि उस ने बहुत से भारतीय राज्यों को समाप्त कर ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित किया। इस में संदेह नहीं कि वह ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार चाहता था परन्तु यह भी सच है कि इन राज्यों में कुप्रथायें प्रचलित हो गईं थीं और वेलेज़ली की सहायक मैत्री के कुफल प्रकट हो रहे थे।

संकुचित और परिमित होने के कारण उन की आर्थिक दशा भी सन्तोषजनक न थी।

यह ज़माना इंग्लैंड में रेल के इञ्जन के आविष्कार का ज़माना था। यह देख कर आश्चर्य होता है कि जहाँ इङ्गलैंड की सरकार को रेल की लाइनें बिछाने, तार लगवाने और सस्ती डाक का प्रबन्ध करने में अनेक कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ा, वहाँ डलहौज़ी ने भारत में यह काम सुगमता से कर दिया। डलहौज़ी ने भारत में लोक निर्माण विभाग की स्थापना की। गंगा की नहर सम्पूर्ण करने का

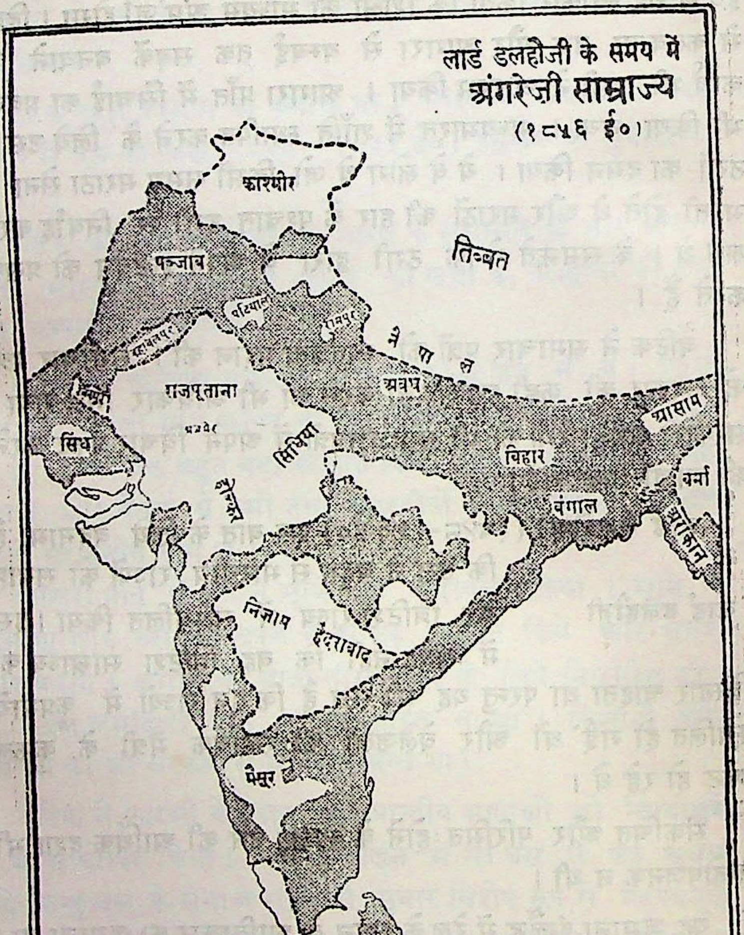

लार्ड डलहौजी के समय में

अंगरेज़ी साम्राज्य

(१८५६ ई०)

काश्मीर
पञ्जाब
तिब्बत
पटियाला
रामपुर
भावलपुर
नेपाल
खैरपुर
राजपूताना
अवध
आसाम
अजमेर
सिंध
सिन्धिया
बिहार
बर्मा
होल्कर
बंगाल
अराकान
निज़ाम
हैदराबाद
मैसूर

श्रेय उसी को है। उसी के काल में दिल्ली से पेशावर तक जरनैली सड़क अर्थात् ग्रैंड ट्रंक रोड पर काम आरम्भ हुआ। उसी के काल में (१८५४ ई०) वुड कमेटी ने कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित करने की सिफ़ारिश की। शिक्षा में और भी कई सुधार हुए। स्त्रियों का जो कालिज बेथून ने स्थापित किया था डलहौज़ी ने उसे अपने निजी खर्च पर चलाया। रुड़की के इंजीनियरिंग कालिज की स्थापना भी उसी ने की।

डलहौज़ी एक सुसंस्कृत व्यक्ति था। वह स्काटलैंड का रहने वाला था। उस की नीति की समालोचना करते समय हमें यह धारणा मन में नहीं रखनी चाहिये कि १८५७ ई० का स्वतन्त्रता संग्राम तथा व्यापार की अवनति उस की नीति के प्रत्यक्ष प्रमाण थे।

शासन व्यवस्था

अंग्रेज़ों ने भारत में कुशल शासन व्यवस्था स्थापित की जिसका उदाहरण मिलना कठिन है। इसका आधार उन प्रथाओं पर है जो मौर्य काल से चली आ रही थीं।

ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापारिक काल

व्यापारिक संस्था के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों की पाँच श्रेणियाँ होती थीं। भारतीय व्यापारियों और कारीगरों के साथ प्रायः गुमाश्तों का वासता पड़ता था जिन्हें फैक्टर्स कहते थे। सब कर्मचारी एक स्थान पर रहते थे जिसे कोठी या फैक्ट्री कहते थे। इस का अध्यक्ष कर्मचारियों के आचार का भी ज़िम्मेदार होता था। सब एक साथ मिलकर भोजन करते थे। बड़े अफ़सरों को छोड़ कर शेष को विवाह करने की आज्ञा न थी और अफ़सर भी अपने परिवार को साथ न रख सकते थे।

१६७१ ई० के लगभग बम्बई और मद्रास ने उपनिवेशों का

उपनिवेशिक जीवन

रूप धारण कर लिया। वहाँ विभिन्न जातियों के लोग रहने लगे। भारतीय कारीगरों और व्यापारियों की संख्या भी पर्याप्त थी। इन बस्तियों के प्रबन्ध का भार फैक्ट्री के अध्यक्ष पर होता था, जिसे "प्रेज़ीडैंट" कहते थे। १६८७ ई० में कम्पनी ने उसकी सहायता के लिए एक ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जो लातीनी और यूनानी भाषओं का ज्ञाता था। बम्बई का प्रधान सर जौन चाईल्ड (१६८२—९०ई०), मद्रास का येल (१६८७—९२ ई०) और बंगाल का प्रधान विलियम हैजज (१९८१—८४ ई०) 'ईस्ट इण्डिया' कम्पनी के प्रारम्भिक महान् शासकों में से थे। १६८७ ई० में ही मद्रास में एक नगरपालिका की स्थापना हुई जिसके ग्यारह सदस्य थे जिन में ७ भारतीय थे। १७२६ ई० में अन्य स्थानों पर भी नगर पालिकाएँ बनाई गईं। इन के अध्यक्ष को दीवानी अभियोग सुनने और उनका निर्णय करने का भी अधिकार प्राप्त हुआ।

कम्पनी शासक के रूप में

१७५७ ई० में बंगाल और १७६१ ई० में करनाटक कम्पनी के हाथ आ गये। वहाँ कम्पनी ने राजस्व इकट्ठा करने का काम अपने ऊपर लिया। शासन का भार नवाब के ऊपर होता था जिसको नियत धन राशि शासन प्रबन्ध के खर्च के लिये दी जाती थी। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने इस दो अमली (दोहरे प्रबन्ध) का खातमा किया और शासन का काम भी कम्पनी के आधीन हो गया। ज़िले का प्रबन्ध करने के लिये अब एक अंग्रेज़ कलक्टर होता था जो न्यायाधीश भी था और शासन करता भी था। उसके आधीन भारतीय अफ़सर होते थे। वह सभी काम अंग्रेज़ों के सुपुर्द करना चाहता था किन्तु यह काम लार्ड कार्नवालिस ने किया। उसकी नीति यह थी कि ऊँचे पद भारतीयों को न दिये जायें। इस प्रथा का अंत लार्ड विलियम बैंटिक ने किया। बैंटिक ने यह भी

निर्धारित किया कि दफ्तरों की जबान अंग्रेजी हो और न्यायालयों की प्रान्तीय भाषाएँ।

१७७३ ई० में रैगूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार बंगाल के गवर्नर को गवर्नर जनरल और अन्य गवर्नरों का सर्वोपरि बना दिया गया किन्तु आन्तरिक नीति वे स्वयं निर्धारित कर सकते थे। उसे अनुमति देने के लिये चार सदस्यों की कार्यपालिका बनाई गई। इन सदस्यों के बहुमत को गवर्नर रद्द न कर सकता था। इस नियम के फलस्वरूप हेस्टिंग्ज़ को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। १७८४ ई० के पिट्स इंडिया ऐक्ट के अनुसार कार्यपालिका के सदस्यों की संख्या घटा कर तीन कर दी गई और गवर्नर जनरल के अधिकार बढ़ा दिये गये। वह चाहता तो उन के मत की उपेक्षा कर सकता था। कम्पनी के काम की निगरानी ब्रिटेन की लोक सभा करने लगी। गवर्नर की नियुक्ति भी अब उसी की अनुमति से हो सकती थी। इस काम के लिए एक बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल बनाया गया। कम्पनी के हाथ में केवल व्यापार रह गया।

१८३३ ई० में आगरा प्रान्त की स्थापना हुई और मद्रास, बम्बई और नए उपप्रान्त को कानून बनाने का अधिकार न रहा। केन्द्रीय समिति में एक कानूनी सदस्य नियुक्त किया गया। पहले पहल यह पद लार्ड मकाले को दिया गया जो अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध लेखक और भारत में पश्चिमी शिक्षा का प्रवर्तक था।

शासन व्यवस्था को सुधारने के लिये सब से महत्त्वपूर्ण क़दम १८५३ ई० में उठाया गया। बंगाल के गवर्नर को भारत के गवर्नर जनरल का ओहदा मिला। कार्यपालिका के अतिरिक्त एक विधान सभा का निर्माण हुआ जिस के सदस्य सरकारी अफ़सर होते थे। १८६१ ई० में कार्य पालिका के सदस्यों को अलग अलग विभाग सौंप दिये गये।

न्याय प्रबन्ध

इंग्लैंड में जार्ज तृतीय (१७६०—१८२० ई०) के काल में २६० ऐसे अपराध थे जिन के लिये मृत्यु दण्ड दिया जाता था। ब्रिटेन का न्याय प्रबन्ध बहुत दोषपूर्ण है। वहाँ न्याय प्राप्त करना मंहगा पड़ता है और इस में बहुत समय व्यय होता है। वहां 'कामन ला' और "ला आफ़ इक्विटि" दो प्रकार के कानून चलते हैं जो उन निर्णयों पर आधारित हैं जो न्यायाधीशों ने दिये हैं। यह न्याय शैली भारत के अनुकूल न थी। भारत के लोग अंग्रेजों के शासन से इतने भयभीत न थे जितने उन की न्याय शैली से।

भारत में न्याय प्रथाओं पर आधारित था जो समय और स्थान के अनुसार बदलती रहती थीं। न न्याय खर्चीला था और न ही उसे प्राप्त करने में अधिक समय लगता था। इस का तरीका बहुत सरल था। अधिकतर झगड़े पंचायतों में ही निपट जाते थे। लोग कचहरी में जाना पसंद न करते थे। अंग्रेज़ी ढंग की न्यायपालिका स्थापित हो जाने से अभियोगों की संख्या बहुत बढ़ गई। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि अंग्रेज़ी सरकार ने न्याय के कार्य को व्यवस्थित किया। इस ओर पहला कदम वारेन हेस्टिंग्ज़ ने उठाया।

वारेन हेस्टिंग्ज़ ने दीवानी और फौजदारी अदालतें कायम कीं। फौजदारी अदालत का अध्यक्ष प्रायः भारतीय होता था और दीवानी का अंग्रेज़। कलकत्ते में इन अदालतों के निर्णय की अपील सुनने के लिये दो अदालतें स्थापित की गईं। एक को सदर निज़ामत और दूसरी को सदर दीवानी अदालत कहते थे। पहली में फौजदारी और दूसरी में दीवानी मामले पेश होते थे। जजों को अनुमति देने के लिये पण्डित और मौलवी होते थे।

वारेन हेस्टिंग्ज़ ने औरंगज़ेब के काल में निर्माणित मुसलमानी न्याय दर्शन का जिसे फतवा-ए-आलमगीरी कहते हैं अंग्रेज़ी में अनुवाद कराया। हिन्दुओं पर लागू होने वाले कानूनों को संग्रहीत कर उनका अनुवाद भी अंग्रेज़ी में करवाया।

१७७३ ई० में कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना हुई जिसमें सर्वोच्च न्यायाधीश और उसकी सहायता के लिये चार जज होते थे।

लार्ड कार्नवालिस ने (१७८६-१७९३ ई०) राजस्व सम्बन्धी और न्याय सम्बन्धी अदालतें अलग अलग कर दीं। छोटे छोटे स्थानों पर अदालतें बनाई जिनके अध्यक्ष भारतीय कमिश्नर होते थे। जिलों में ज़िला कचहरी होती थी जिसके जज अंग्रेज़ होते थे। मौलवी और पंडित उनको अनुमति देने के लिये नियुक्त किये जाते थे। प्रत्येक प्रांत में एक एक न्यायालय था जिस में तीन यूरोपीय जज होते थे। कार्नवालिस ने एक कोड तैयार करवाया जिसके अनुसार नाक हाथ आदि काटने के दंड बन्द कर दिये गये।

लार्ड बैंटिक (१८२६-३५ ई०) ने कलकत्ता की अदालत का काम हलका करने के लिये इलाहाबाद के स्थान पर एक सदर अदालत कायम की। उस समय तक अदालत का काम फारसी भाषा में होता था। उसके पश्चात स्थानीय भाषा में होने लगा।

१८६१ ई० के ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में एक एक उच्च न्यायालय अर्थात् हाईकोर्ट स्थापित हुआ। लार्ड मकाले ने जो कोड तैयार किया था वह भी लागू किया गया। १९०८ ई० में दीवानी कोड तैयार हुआ, जिसे सिविल प्रोसीजर कोड कहते हैं। १९३५ ई० तक न्याय की यही व्यवस्था रही। १९३५ ई० के ऐक्ट के अनुसार दिल्ली में फेड्रल कोर्ट स्थापित हुआ। १९४७ ई० तक भारतीय अदालतों के फैसले की अपील लंदन के प्रीवी कौंसिल में हो सकती थी। अब भारत का सर्वोच्च न्यायालय अपील का अन्तिम न्यायालय है।

१८४० ई० में मौन्टगोमरी मार्टिन ने अपने एक वक्तव्य में कहा था, "भारत अपने उद्योग के लिये इतना ही प्रसिद्ध है जितना अपनी कृषि के लिये। जो व्यक्ति उसे कृषि प्रधान उद्योग और व्यापार देश बनाना चाहता है वह सभ्य जातियों में उसका स्तर गिराने का प्रयास कर रहा है।"

परन्तु वास्तव में अंग्रेज़ों ने ऐसा ही किया उस समय जब मार्टिन महोदय यह साक्षी दे रहे थे भारत की आधी जनसंख्या का व्यवसाय उद्योग था। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक कृषि पर निर्भर रहने वालों की संख्या सत्तर प्रतिशत के ऊपर हो गई। इसका कारण थी अंग्रेज़ों की आर्थिक नीति। उन्होंने भारत के उद्योग को इस सीमा तक नष्ट कर दिया था कि १८३४ ई० में बैंटिक ने कहा था, "भारत की भूमि जुलाहों की हड्डियों से रंगहीन हुई जा रही है।"

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत के विषय में आँकड़े प्राप्त होते हैं जिन से प्रतीत होता है कि इसके आरम्भ में बंगाल के अतिरिक्त जो सूती और रेशमी कपड़े, खाँड, पटसन और धात के बर्तनों के लिये प्रसिद्ध था, लखनऊ, अहमदाबाद, नागपुर और मदुराई कपड़ा बुनने के प्रसिद्ध क्षेत्र थे। पंजाब और काश्मीर में पश्मीने की उच्च कोटि की शालें बनती थीं। लकड़ी का काम लग भग सारे भारत में होता था।

धात का सामान बनाने के कारखाने अनेक स्थानों पर थे। मुर्शिदाबाद, बनारस, तंजौर, पूना, नासिक और अहमदाबाद में न केवल धात का सामान बनता था बल्कि उस पर कमाल की मीनाकारी भी होती थी। प्रियदर्शिनी आभूषण भी बनते थे।

इस में सन्देह नहीं कि अठारहवीं शताब्दी की अराजकता के कारण थल मार्ग सुरक्षित न रहे थे और सड़कों की दशा बिगड़ गई थी परन्तु जल के मार्ग न केवल सुरक्षित और सस्ते थे बल्कि देश के बड़े बड़े नगरों को मिलाते थे। बंगाल का व्यापार तो प्रायः जल के मार्ग से ही होता था। गंगा और उसकी सहायक नदियों तथा सिन्धु और उसकी सहायक नदियों में सैकड़ों मील तक नावें चल सकती थीं। रेन्नल नाम के पर्यटक ने लिखा है कि, "भारत के किसी भी नगर से ऐसी नदी २५ मील से अधिक दूर नहीं जिसके द्वारा जल यात्रा की जा सके।" नाव बनाने की कला भी अति उन्नत थी। 'युक्तिकल्पतरु'

नाम के एक प्राचीन ग्रन्थ में नाव बनाने की कला विस्तार पूवक वर्णित है, इसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि इसके रचयिता के सम्मुख अच्छे से अच्छे अर्वाचीन जहाज़ थे। सत्रहवीं शताब्दी में भी मराठा जलयान अति उत्तम समझे जाते थे और मराठों की जलीय शक्ति का यूरोप के नाविक भी मुकाबला न कर सकते थे। आरम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारतीय जलयानों का ही प्रयोग करती थी क्योंकि वे उच्च कोटि के होते थे और उनमें माल ले जाना सस्ता पड़ता था।

कम्पनी ने १८२३ ई० में मशीन से चलने वाली नाव का प्रयोग पहली बार हुगली नदी में किया। १८३४ ई० तक इलाहाबाद से कलकत्ता तक मशीन द्वारा चलने वाली नावें जाने लगीं थीं। रेलों और सड़कों के बनने से नावों का रिवाज कुछ कम हो गया फिर भी दिल्ली से कलकत्ता, आसाम और नेपाल की सीमा तक नावें चलती थीं। १८८० ई० में अंग्रेजों ने जलीय यातायात के लिये बंगाल से उड़ीसा तक तथा पूर्वी और पश्चिमी घाट के साथ साथ कई नहरें खुदवाईं।

व्यापार की दृष्टि से भी भारत एक अति उन्नत देश था। यूरोपीय जातियों के अतिरिक्त भारतीय, अरब और आर्मिनियन भारत का माल बाहर ले जाते थे। इन का अधिकतर व्यापार टर्की, अरब, ईरान, तिब्बत आदि देशों से होता था। कच्चा रेशम, सूती और रेशमी वस्त्र, खांड, नमक, पटसन, अफीम, गरम मसाला, कीमती लकड़ी, और शोरा भारत से जाता था। सूती कपड़े में ढाके की मलमल का विशेष स्थान था। इस के बदले सोना और चाँदी ही भारत आता था। १७०६-७८ ई० के आकड़ों के अनुसार आयात का ७५% द्रव्य ही होता था। कीमती लकड़ी, चाय आदि अन्य वस्तुएँ थीं जो भारत से विदेश जाती थीं। अलीवर्दी खाँ के काल के एक साल के आंकड़े दर्शाते हैं कि एक साल में ७० लाख रुपये का केवल कच्चा रेशम बंगाल से बाहर गया था। खांड और पटसन के निर्यात की मात्रा भी बहुत थी।

प्लासी की लड़ाई ने भारतीय व्यापार और उद्योग का पांसा

पलट दिया। इस के पश्चात् इस विषय में भारत अधोगति को प्राप्त होता गया। इस के कई कारण थे।

१. कम्पनी की जीत के पश्चात नवाब ने करोड़ों रुपये इस के कर्मचारियों को भेंट किये जिस से बंगाल की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। १७५७ से १७८० ई० तक लगभग साठ करोड़ रुपये उन के हाथ लगे।

२. १६५६ ई० में बंगाल के सूबेदार शुजा ने अंग्रेजों को ३,००० रुपये प्रति वर्ष के बदले कर मुक्त व्यापार करने की आज्ञा दी थी। मुर्शिद कुली खाँ ने इस पर प्रतिबन्ध लगाया किन्तु १७११ ई० में कम्पनी में फरुखसियर से पुनः यह अधिकार प्राप्त कर लिया। कम्पनी के कर्मचारियों को आज्ञापत्र दिये जाते थे जिन्हें "दस्तक" कहते थे। उन्हों ने "दस्तकों" का दुरुपयोग किया। वे निजी रूप से भी इन से लाभ उठाते थे और इन्हें भारी कीमत पर भारतीय व्यापारियों को भी बेच देते थे।

नवाब ने इस कुप्रथा को रोकना चाहा किन्तु वह असफल रहा। मीर कासिम ने तंग आकर सभी व्यापारों पर से कर हटा दिया जिस के फलस्वरूप उसे नवाबी से हाथ धोना पड़ा।

३. कम्पनी के कर्मचारियों की उद्दंडता ने भी व्यापार को बहुत हानि चहुँचाई थी। १७७२ ई० में मीर कासिम ने कम्पनी के गवर्नर को लिखा था:—"ये लोग बलपूर्वक माल ले जाते हैं और उसके चौथाई दाम भी कारीगर को नहीं देते। अपना माल वे चौगुने दामों बलपूर्वक लोगों पर थोपते हैं।"

कम्पनी के अपने प्रलेखों से विदित है कि जो लोग माल देने में आना कानी करते थे उन्हें कोड़े लगाये जाते थे और बन्दी बना लिया जाता था।

कम्पनी के नौकर कारीगरों से मुआहिदों पर बलपूर्वक हस्ताक्षर करा लेते थे कि वे निश्चित अवधि के बीच माल की निर्धारित मात्रा उन्हें

दें और किसी अन्य को माल न बेचें। इस संविदा का उलंघन होने पर भी कारीगरों की दुर्गति बनाई जाती थी। यह कहानी सच ही प्रतीत होती है कि उन्हों ने तंग आकर अपने अंगूठे काट दिये थे।

४ इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति ने भी भारतीय व्यापार और उद्योग को क्षति पहुँचाई। इंग्लड की सरकार ने १७०० और १७२० ई० में कानून पास किया कि भारत का माल बेचना और उसका प्रयोग करना अपराध है।

५. अंग्रेज़ों का यूरोपीय जातियों से और अमेरिका से सम्बन्ध बिगड़ गया इस लिये भी भारत के माल की निर्यात गिर गई।

भारत से यहाँ का बना हुआ माल बाहर जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यह स्थिति पलट गई। यहाँ से कच्चा माल बाहर जाने लगा और बना हुआ माल आने लगा। भारत आने वाले माल की सूची इस प्रकार थी: भोग विलास की सामग्री, कांच का सामान; घड़ियाँ, चीनी के बर्तन, सजावट का सामान, काग़ज़, गत्ता, लिखने पढ़ने का सामान, बाईसिकल, मोटरकार, कपड़ा आदि। १७८६-६० ई० में १८० लाख रुपये का कपड़ा इंग्लैंड से भारत आया। १८०६ ई० में यह मात्रा ड्योढ़ी हो गई। निर्यात में रूई, पटसन, तेल निकालने वाले बीज, नील और चाय तथा गेहूँ का प्रमुख स्थान था।

भारतीय व्यापार और उद्योग की इस स्थिति से जहाँ साधारण जनता निर्धन हो गई वहाँ समाज के एक वर्ग ने इसे सुधारने का प्रयास किया। राजस्थान, पंजाब, सिन्ध, गुजरात और दक्षिण के प्राचीन व्यापारी वंशों ने परिवर्तित स्थिति को समझते हुये अंग्रेज़ों को सहयोग दिया और उन्हों ने कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में व्यापारिक गृह स्थापित किये। उद्योग के क्षेत्र में भी स्फूर्ति दिखाई देने लगी। कपड़ा बुनने का पहला कारखाना कलकत्ता में स्थापित हुआ था किन्तु इस उद्योग में बम्बई और गुजरात कहीं आगे बढ़ गया बम्बई में पहला कारखाना १८५४ ई० में स्थापित हुआ था।

१८७७ ई० में नागपुर, अहमदाबाद और शोलापुर कपड़े के उद्योग के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये। बंगाल में पटसन का पहला कारखाना १८५५ ई० में स्थापित हुआ और इस उद्योग ने भी बहुत उन्नति की।

अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश उद्योग की रक्षा के लिये भारतीय माल की निर्यात पर कर लगाया जिसके कारण कपड़े का उद्योग पनप न पाया। डलहौज़ी द्वारा प्रवर्तित स्वतन्त्र व्यापार की नीति भी भारतीय उद्योग के लिये हानिकारक सिद्ध हुई।

१८२६ ई० में अन्तर्प्रान्तीय कर घटा दिया गया और १८४४ ई० में इस का उन्मूलन कर दिया गया। इस से भी आन्तरिक व्यापार में वृद्धि हुई थी।

आन्तरिक व्यापार की वृद्धि में रेल, तार और डाक ने जिनका संस्थापन लार्ड डलहौज़ी ने किया था बहुत सहायता दी। १८७६ ई० तक भारत के प्रसिद्ध नगरों को रेल द्वारा मिला दिया गया था। सड़कें भी बनाई गई थीं।

१८६१ ई० में भारत के व्यापार में अकस्मात स्फूर्ति आने का कारण अमेरिका का घरेलू युद्ध था जिसकी समाप्ति पर भारतीय व्यापारियों को मन्दा हो जाने से बहुत घाटा रहा। १८६९ ई० में स्वेज़ नहर के खुलने से भारतीय व्यापार की विशेष रूप से उन्नति हुई थी।

१८७७ ई० में कुल निर्यात में बने हुये माल की निर्यात ८ प्रतिशत थी। १८९२ ई० में यह बढ़ कर १६ प्रतिशत हो गई और १९०७ ई० में २२ प्रतिशत। बने हुये माल का आयात घटती गई। इन वर्षों में यह क्रमशः ६५,५७ और ५३ प्रतिशत थी। कुल व्यापार ५२ लाख से दो अरब तक और १९२८ में छः अरब तक पहुँच गया।

आधुनिक युग

परिच्छेद ३२

उन्नीसवीं शताब्दी का अवतरण

आधुनिक युग क्या है ?

उन्नीसवीं शताब्दी आरम्भ होते ही भारत पूर्ण रूप से अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा। इस देश की उन्नति अकस्मात रुक गई। कई पहलुओं में यह पीछे की ओर चल पड़ा। दरिद्रता, निरक्षरता और रूढ़ीवाद देश में विद्यमान हुए। पराधीनता भारत के पोर पोर को रुग्ण किये जा रही थी।

पश्चिमी देशों के साथ भारत का सम्बन्ध नया न था किन्तु कई पश्चिमी जातियों की भारत में बस्तियाँ बन जाने से और अंग्रेजी राज्य स्थापित हो जाने से यह सम्बन्ध निकटतर हो गया। पश्चिमी देशों से भारत के लोगों ने बहुत कुछ सीखा परन्तु कई पाश्चात्य इतिहासकार भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस सम्पर्क से भारत को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई। जिस रूप में आधुनिक आविष्कारों का लाभ यूरोप या अमेरिका ने उठाया उस रूप में भारत ने नहीं उठाया।

यूरोप

सोलहवीं शती में यूरोप में जागृति का युग आया। यूरोप ने कई पहलुओं में उन्नति की किन्तु साधारण जनता की दशा कुछ अधिक सराहनीय न बन सकी। साधारण व्यक्ति किसी न किसी प्रकार जागीरदार या पुरोहित का दास बना रहा। किसानों के आन्दोलन हुए, फ्रांस में १७८९ ई० में बड़ी क्रान्ति आई। किसानों और मजदूरों ने अपनी शक्ति का अनुभव किया।

फ्रांस की क्रान्ति से जागीरदारों और पुरोहितों का महत्त्व बहुत घट गया। संसार का इतिहास विजेताओं की अपेक्षा वैज्ञानिकों और साहित्यकारों की कहानी बन गया।

उन्नीसवीं शताब्दी की धाराएँ

विज्ञान के आविष्कारों से जो नई शक्ति यूरोप ने प्राप्त की उस की सहायता से वहाँ की कई जातियों ने संसार के पिछड़े हुए देशों में साम्राज्य स्थापित किये और उन देशों के शोषण द्वारा अपने देश की शक्ति को बढ़ाया। साम्राज्यवाद की लहर उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की विशेषता कही जा सकती है।

साम्राज्यवाद की तह में यह विचार भी काम कर रहा था कि अधिक से अधिक मनुष्यों को एक सूत्र में बांधा जाए। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के मन में यह विचार प्रकट रूप से दिखाई देता था।

विज्ञान के आविष्कारों में सबसे महत्त्व पूर्ण भाप के इंजन का आविष्कार था! भाप का इंजन अठारहवीं शताब्दी में बनाया गया था किन्तु इस का प्रयोग प्रायः पानी निकालने के लिए ही किया जाता था। जेम्ज़ वाट ने इस में सुधार किये। १७८५ ई० में रुई के कारखाने में और १८०४ ई० में गाड़ियाँ खींचने के लिये इसका प्रयोग होने लगा। १८२५ ई० में इंग्लैंड में संसार की पहली रेलवे लाईन बनी।

दूसरा महत्त्व पूर्ण कदम १८३५ ई० में उठाया गया जब बिजली द्वारा संवाद पहुँचाने का प्रबन्ध हुआ। १८५१ ई० में फ्रांस और इंग्लैंड के बीच पहली केबल बिछाई गई और इस प्रकार समुद्रपार के देशों को भी क्षणों में समाचार पहुँचने लगे।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विज्ञान की कई महत्त्वपूर्ण खोजें हुईं। फोटोग्राफ़ी का आविष्कार १८३६ ई०, रबर का १८४४ ई०, बाईसिकल का १८५५ ई०, मोटरकार इंजन का १८३४ ई०, कृत्रिम रंग बनाने का १८५६ ई० में हुआ। स्पात (१८५६ ई०), बिजली (१८७८)

ई०) और टेलीफोन (१८७६ ई०)—उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आविष्कार थे।

चिकित्सा क्षेत्र में जैन्तर तथा पाश्चर सरीखे कई विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण काम किया।

मशीन की प्रगति से बड़े बड़े कारखाने स्थापित हो गये जिन के कारण पूँजीवाद का प्रादुर्भाव हुआ। मालथ्यूस, ऐडम्ज आदि विद्वानों ने नई आर्थिक समस्याओं पर पुस्तकें लिखीं।

कार्ल मार्क्स (१८१८ से १८८८ ई०) ने इस ओर मार्के का काम किया। उसने यह बतलाया कि पूँजीपति एक नई प्रकार के समाज का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें मज़दूरों का दर्जा बहुत हेठा रहेगा। उसने वर्ग रहित समाज का नक्शा पेश किया। मार्क्स जर्मनी का रहने वाला था किन्तु उसके विचारों ने रूस में प्रभाव दिखाया। कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त साम्यवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रसंग में राबर्ट ओवन (१७७१ से १८५८ ई०) का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। उस की चेष्टा से १८१६ ई० में इंग्लैंड में फैक्ट्री ऐक्ट पास हुआ जिसके अनुसार फैक्ट्री में काम करने वाले बच्चों का बहुत भला हुआ। ओवन को यूरोप में समाजवाद का जन्मदाता कहा जाता है।

यूरोप में इस युग में औद्योगिक क्रान्ति उत्पन्न हुई। जहाँ पूँजीपति धन की वृद्धि चाहते थे वहाँ मज़दूर भी अपने अधिकारों की मांग करते थे। ब्रिटेन की स्थिति अन्य देशों की अपेक्षा बहुत अच्छी थी क्योंकि भारत की अथाह निधि उसके हाथ में थी। यही कारण था कि इंग्लैंड ने विज्ञान की दृष्टि से भी बहुत उन्नति की किन्तु शीघ्र ही जर्मनी ने उस से पहल छीन ली।

आध्यात्मिक क्षेत्र में भी बहुत परिवर्तन हुआ। रूसो के विचारों ने मनुष्य का ध्यान मानव की मौलिक प्रवृत्तियों की ओर दिलाया। एक नई प्रकार का साहित्य उत्पन्न हुआ जो ब्रिटेन के रोमान्टिक कवियों की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। बाएरन, शैली, कीट्स, वर्ड्ज़वर्थ, कोलरिज आदि कवि और उनके

पश्चात आने वाले गद्य लेखक रसकिन और कार्लाइल, उधर जर्मनी में गेटे, फ्रांस में विक्टर ह्यूगो (१८०२-१८८५ ई०) रूस में टाल्सटाए (१८२८-१९०० ई०) आदि अनेक विद्वानों ने इन विचारों को सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया। कलाओं की भी उन्नति हुई।

चार्ल्स डार्विन (१८०९ से १८८२ ई०) उन्नीसवीं शताब्दी का पैग़म्बर कहा जाता है। मानव विचारों को बदलने में जितना उस का भाग है किसी अन्य लेखक का नहीं। उस के मूल्यवान कार्य ने पृथ्वी का प्राचीनतम इतिहास प्रत्यक्ष कर दिया। डार्विन के मत को विकासवाद का नाम दिया जाता है। विकासवाद ने रूढ़ीवाद को ज़बरदस्त धक्का पहुँचाया।

इसी श्रेणी में सिगमंड फ्रायड का नाम भी आता है जिस ने मनोवैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा क्रान्ति उत्पन्न कर दी किन्तु उसके विचारों का प्रभाव बीसवीं शताब्दी में दिखाई देता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यूरोप में वास्तविक उन्नति उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तार्द्ध में हुई। उस समय भारत पूर्ण रूप से अंग्रेज़ों के आधीन हो चुका था।

इंग्लैंड और भारत

इंग्लैंड में जिस के आँचल से भारत लग भग दो सौ साल तक बन्धा रहा आधुनिक युग के आरम्भ की तिथि १८३२ ई० समझी जाती है। इस वर्ष इंग्लैंड में एक विशेष कानून पास हुआ था।

इंग्लैंड को विलियम ने १०६६ ई० में विजय किया था और वहाँ सामान्त शाही की प्रथा स्थापित की थी। १२१५ ई० में इंग्लैंड के सामन्तों ने नरेश जौन को मैग्ना कार्टा पर हस्ताक्षर करने के लिये मजबूर किया जिस के अनुसार नरेश की शक्ति सीमित हो गई। १६४९ ई० में इंग्लैंड ने इस चार्टर के आधार पर अपने नरेश को फाँसी दी। लोगों की धारणा थी कि जनता को अधिकार है कि वह अयोग्य नरेश को गद्दी से उतार दे। १६८८ ई० में इंग्लैंड फिर अपने नरेश से तंग आ गया। १६४९ ई० में

राजनैतिक अधिकारों का प्रश्न था, १६८८ ई० में धार्मिक अधिकारों का। इंग्लैंड के लोग नहीं चाहते थे कि कैथौलिक सम्प्रदाय का नरेश उन लोगों पर शासन करे जिन का सम्प्रदाय प्रोटैस्टैण्ट है। नरेश को सिंहासन छोड़ना पड़ा और इंग्लैंड में क्राँति हुई जिसे स्वर्ण क्राँति कहते हैं।

इंग्लैंड में औद्योगिक उन्नति हुई थी जिस के कारण कई नये नगर बस गये थे। पुराने नगर जिन की समृद्धि का आधार कृषि पर था उजड़ गये थे परन्तु उन्हें लोक सभा के लिए सदस्य चुनने के पहले जितने अधिकार थे, नये नगरों को इस प्रकार के अधिकार न थे। १८३२ ई० के कानून ने नये नगरों को ये अधिकार प्रदान किये और ब्रिटेन की लोक सभा ने आधुनिक रूप धारण किया।

संसार के इतिहास में आधुनिक युग के सूत्रपात की तिथि १८४८ ई० कही जाती हैं। इस साल पोप रोम को छोड़ कर भाग गया था। यूरोप में और भी कई राजनैतिक परिवर्तन हुए थे।

भारत के इतिहास में इस युग की गणना हम १८५७ ई० से कर सकते हैं। इस वर्ष भारत के लोगों ने सामूहिक रूप से अंग्रेज़ों का विरोध किया और उन्हें भारत से निकालने का प्रयास किया।

भारत की स्थिति

अकबर के भारत में ऐक्य स्थापित करने के सुनहले स्वप्न की पूर्ति न हो पाई। शाहजहाँ के काल में ही मराठों ने यह सिद्ध कर दिया था कि मुग़ल बादशाहों की अपेक्षा वे भारत में ऐक्य स्थापित करने के अधिक योग्य हैं। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही उन्होंने आधे से ज्यादा देश पर अपना सिक्का जमा लिया था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारत मराठों के प्रभावाधीन रहा।

मराठा शासन विधि उच्च नियमों पर आधारित थी। इसका उदाहरण अहल्याबाई (१७६५ से १७६५ ई०) ने विशेष रूप से प्रस्तुत किया। यद्यपि मराठा सरदार प्रायः जंग में व्यस्त रहते थे तथापि

राज्य प्रबन्ध की ओर से भी वे उदासीन नहीं हुए। माधवजी सिंधया (१७६१ से १७९४ ई०) और नाना फड़नवीस (१७६३ से १८००ई०) अति योग्य शासक थे। इन से पूर्व बालाजी विश्वनाथ और पेशवा बाजी राव ने उत्तम शासन विधि की प्रथाएँ स्थापित कीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत का चित्रण करने से पूर्व उस काल की शासन विधि पर एक दृष्टि डालते हैं। उस समय यहाँ पाँच प्रकार की शासन विधि प्रचलित थी।

१. मुग़लिया ढांचे की शासन व्यवस्था।
२. सिक्ख शासन व्यवस्था।
३. राजपूत शासन व्यवस्था।
४. मराठा शासन व्यवस्था।
५. अंग्रेज़ों की शासन व्यवस्था।

१. मुग़लिया ढांचे की शासन व्यवस्था

इस शासन व्यवस्था की स्थापना शेर शाह सूरी ने की थी। अकबर ने इसे अपनाया था। इसका आधार सरकारी कर्मचारियों पर था जिनका केन्द्रीय सरकार से सीधा सम्बन्ध था। प्रान्त का शिरोमणि जो प्रायः राजकुमार या प्रसिद्ध और सशक्त सेनापति होता था स्वतन्त्र रूप से राज्य करता था। उसकी नियुक्ति सम्राट् करता था इसलिये साधारण लोग उसके प्रति श्रद्धा न रखते थे। सरकारी कर्मचारी भी उससे विद्रोह करने में कोई बुराई न समझते थे। केन्द्रीय सूत्र ढीले होते ही स्थानीय कर्मचारी भ्रष्ट हो जाते थे और राज्य व्यवस्था बिगड़ जाती थी।

दूसरे अकबर महान ने, यद्यपि उसका अपना जीवन सरल था, भोग विलास की प्रथा स्थापित की थी। भोग विलास की चाह में सरकारी कर्मचारी और शासक जनता का हित भूल जाते थे।

फिर भी बङ्गाल में १७५७ ई० तक सुव्यवस्था रही और लोगों का जीवन सुखमय रहा। किन्तु अवध और हैदराबाद में इस शासन

व्यवस्था की कुरूपता स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी।

हैदर अली और टीपू सुल्तान का मुग़ल दरबार से सम्बन्ध न रहा था। उन्होंने मूलतः उसी शासन व्यवस्था को कायम रखा जो मैसूर में उन से पहले प्रचलित थी। इनकी योग्यता के कारण उस काल में मैसूर की शासन व्यवस्था सराहनीय थी।

२. सिक्ख शासन व्यवस्था

गुरु गोबिन्द सिंह ने सिक्खों का एक प्रजातन्त्रीय दल बनाया जिसमें सब अधिकार खालसा को दिये गये। खालसा एक प्रकार की निर्वाचित संस्था थी। इस ने आगे चल कर गुरुमता का रूप धारण कर लिया जिसकी बैठक अमृतसर के स्थान पर होती थी। बन्दा बहादुर के बलिदान के पश्चात सिक्खों का विपद् काल आया। गुरुमता की महत्ता बहुत बढ़ गई। अहमद शाह अबदाली के आक्रमणों के पश्चात सिक्खों को अपनी शक्ति मज़बूत करने का अवसर मिला। राजा रणजीत सिंह ने पंजाब में एक विशाल और सुदृढ़ राज्य की स्थापना की। उसने गुरुमता की संस्था को समाप्त कर दिया।

रणजीत सिंह के राज्य में दो प्रकार के इलाके थे। एक वे जिन पर उस का सीधा अधिकार था दूसरे वे जो उसके सरदारों के आधीन थे। पहली प्रकार के इलाकों का प्रबन्ध सरकारी कर्मचारियों के सुपुर्द था। दूसरी प्रकार के इलाकों का प्रबन्ध छोटे-छोटे सरदारों के आधीन होता था जिन को सर्वाधिकार प्राप्त थे। शक्ति की इकाई इन इलाकों में सैनिक होता था।

३. राजपूत शासन व्यवस्था

राजपूत शासन व्यवस्था कुछ निराले ढंग की थी। इसे सामन्त शाही शासन व्यवस्था का नाम दिया जाता है। राजस्थान की शासन व्यवस्था का स्तम्भ छोटे-छोटे किसान थे जिन का सम्बन्ध राजा के कुटुम्ब से होता था। किसी भी महत्त्वपूर्ण

कार्य के लिए उन की अनुमति लेना आवश्यक था। सरकारी कर्मचारियों को अनुमति देने का अधिकार न था।

व्यापारी वर्ग का राजस्थान में बहुत मान होता था। समुद्री मार्ग खुल जाने से राजस्थान का महत्त्व कम हो गया था किन्तु वहाँ के व्यापारी सूरत, बम्बई और कलकत्ता में व्यापार करते थे और खूब धन कमाते थे।

राजस्थानी समाज का एक वर्ग ऐसा था जो किसानों की दया पर निर्भर था। यह मज़दूरों का वर्ग था जिन्हें ज़मीनों पर काम करना पड़ता था। इन की अपनी ज़मीन नहीं होती थी।

अठारहवीं शताब्दी में राजस्थान में ब्राह्मणों का महत्त्व बढ़ने लगा और उसके साथ साथ ब्राह्मण लोग भी सामन्त बन गये।

४. मराठा शासन व्यवस्था

शिवाजी ने जागीरदारी पद्धति का उन्मूलन किया था किन्तु परिस्थिति बदल जाने के कारण बाजीराव पेशवा ने यह पद्धति अपनाई। जनता के लिए यह अहितकर सिद्ध नहीं हुई। मराठा जागीरदार स्वयं राजाओं के समान थे और उनके कर्मचारी राज्य का प्रबन्ध करते थे।

५. अंग्रेज़ों की शासन व्यवस्था

इंग्लैंड में सत्रहवीं शताब्दी में लोक तन्त्रीय शासन विधि स्थापित हो चुकी थी किन्तु अंग्रेज़ भारत को अपनी जागीर समझते थे। वे भारत से धन प्राप्त करना चाहते थे। लार्ड क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज़ का व्यवहार तो बिल्कुल लुटेरों ही जैसा था। लार्ड कार्नवालिस ने पहली बार अनुशासन स्थापित करने की चेष्टा की किन्तु वह जागीरदारी पद्धति का पक्षपाती था इस लिए उसने बंगाल में यही पद्धति जारी की।

इस पद्धति के दोषों को देखते हुए बंगाल के पश्चात् जो प्रदेश अंग्रेज़ों के आधीन आए उन सब में यह पद्धति जारी नहीं

की गई। उदाहरणतः मद्रास में रय्यतवारी पद्धति चलाई गई।

आन्तरिक प्रबन्ध और न्याय के लिये अंग्रेज़ों ने उसी शैली को अपनाया जो भारत में पहले से प्रचलित थी। अन्तर केवल इतना था कि अब बड़े सरकारी अफसर यूरोपीय होते थे और पंचायतों को कोई अधिकार न थे। धीरे धीरे भारतीय अफ़सर लिये जाने लगे किन्तु उन्हें भी अंग्रेज़ों की नीति का पालन करना पड़ता था। अंग्रेज़ों ने केन्द्रीयकरण की उस प्रक्रिया को सम्पूर्ण किया जो अकबर के काल में आरम्भ हुई थी।

देसी रियासतों के राज्य प्रबन्ध में अंग्रेज़ों ने हस्तक्षेप नहीं किया किन्तु अंग्रेज़ों की शोषण की नीति से रियासतों का शासन प्रबन्ध बिगड़ता ही गया।

भारत की आर्थिक स्थिति

उन इलाकों को छोड़ कर जिन पर अंग्रेज़ का अधिकार था या जहाँ के शासक उन्हें सर्वोपरि मानते थे शेष भारत की आर्थिक दशा बहुत अच्छी थी। व्यापार, उद्योग और कृषि की रक्षा और उन्नति के लिए भारत के स्वतन्त्र शासक पूरा पूरा प्रयत्न करते थे।

राजनैतिक स्थिति बिगड़ जाने से मार्ग सुरक्षित न रहे थे फिर भी व्यापार में कमी न आई थी। भारतीय व्यापारियों की हुँडियाँ दूर दूर तक चलती थीं। उनके संवाद दाता बहुत चतुर थे। युद्धों के समाचार भी शासकों की अपेक्षा उन्हें पहले पहुँचते थे।

मैसूर, मराठा राज्य और पञ्जाब अपनी समृद्धि के लिए प्रसिद्ध थे जिसे देख कर कई अंग्रेज़ों ने भी कम्पनी की आर्थिक नीति की कड़ी आलोचना की है। फिर यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वे इलाके जो अंग्रेज़ों के हाथ पहले आए उन इलाकों की अपेक्षा जो तत्पश्चात् आए अधिक निर्धन रहे।

धार्मिक और नैतिक जीवन

भारत का धन, यहाँ का सुशासन और यहाँ के लोगों की ईमानदारी और नेक नीयती ने अंग्रेज़ों को भारत में स्थित होने का प्रलोभन दिया। अंग्रेज इतिहासकारों ने स्वयं कहा है कि नैतिक रूप से भारत के लोग बहुत ऊँचे थे।

भक्ति आन्दोलन जो ग्यारहवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। श्री राम और श्री कृष्ण को लोग पूजने लगे। मन्दिरों का महत्त्व बढ़ गया।

दूसरी मज़हबी धारा शक्ति की पूजा थी। काली के मन्दिरों में लोग पशुओं और मनुष्यों की बलि देते थे। भवानी भी तलवार की देवी समझी जाती थी।

साधारण जनता जादू टोने में विश्वास रखती थी। मज़ारों और समाधियों पर जाकर लोग मिन्नतें मानते थे और समझते थे कि इस प्रकार उन की आकाँक्षा पूर्ण हो सकती है।

ईसाई मत के प्रचारकों ने इस अन्धविश्वास का लाभ उठाया। बंगाल और मद्रास में ईसाई मत का काफ़ी विस्तार हुआ।

ईसाई मत

ईसाई मत भारत में सीरिया से पहली शताब्दी ई० के लगभग आया था किन्तु इसका प्रभाव मालाबार तक सीमित था और इस पर हिन्दू धर्म का बहुत प्रभाव पड़ा था। पुर्तगालियों ने कैथौलिक मत का प्रचार किया। १५६६ ई० में उद्यामपुर के स्थान पर एक महत्त्वपूर्ण सम्मेलन हुआ जो भारत में ईसाइयों का पहला सम्मेलन था। किन्तु पुर्तगालियों का प्रभाव भी सीमित था। पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ईसाई मत का प्रचार करने का अधिकार न था किन्तु इंग्लैंड के पादरियों ने ज़ोर देकर १८१३ ई० में ईसाई मत का प्रचार

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति में दाखिल करवा दिया। कम्पनी के अफ़सर भी ईसाई प्रचारकों की सहायता करते थे। १८५७ के विप्लव का एक कारण यह भी बताया जाता है कि कम्पनी के कर्मचारी भारतीयों को ईसाई बनने पर विवश करते थे।

ईसाई मत एक तो सरकारी अफ़सरों का मत था दूसरे इसमें आधुनिकता का रंग दिखाई देता था। साधारण शिक्षित भारतीय यही समझने लगे कि ईसाई मत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का प्रतीक है। ईसाई मत में प्रवेश करने से जीवन-शैली में परिवर्तन उत्पन्न हो जाता था और वह व्यक्ति यूरोपियन ढंग से रहने लगता था जिस में वह गर्व अनुभव करता था। इस प्रकार के लोगों का एक वर्ग विशेष बन गया। यह एक विडम्बना है कि उधर यूरोप में ईसाई मत अप्रिय हुआ जा रहा था।

पश्चिम के प्रभाव के अन्तर्गत कई भारतीय सुधारकों ने ईसाई मत के सिद्धान्तों को अपनाया जिनमें राजा राम मोहन राय (१७८२—१८३३ ई०) का नाम प्रमुख है। वे फ़ारसी, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी, लातीनी, यूनानी आदि कई भाषाओं के विद्वान थे। राजनैतिक और सामाजिक मामलों में उनके विचार बहुत सुलझे हुए थे किन्तु उनका नाम धार्मिक नेता के रूप में अधिक प्रसिद्ध है। उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य था कि प्राच्य और पाश्चात्य दोनों सभ्यताओं के गुण ग्रहण किए जाएँ।

साहित्य और कला : हिन्दी

हिम्दी साहित्य की दृष्टि से १६४८ से १८५३ ई० तक के काल को रीतिकाल कहा गया है। इस युग के प्रसिद्ध हिन्दी कवि भूषण और बिहारी थे। हिन्दी साहित्य में तीन धाराएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। भक्त कवि जिनमें वे लोग भी हैं जिन्होंने काली देवी के प्रति श्रद्धा प्रकट की, दूसरे सूफ़ी कवि जिन्होंने प्रेम गाथाओं से लाभ उठा कर उच्च विचार प्रकट किये और तीसरे

शुद्ध शृंगार कवि। ब्रज भाषा और राजस्थानी में इस युग का लिखा हुआ गद्य भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। कविता और भाषा के नियम सम्बन्धी कई ग्रन्थों की रचना हुई ।

जयपुर नरेश राजा सवाई जय सिंह जिसने बिहारी कवि को प्रत्येक दोहे के लिये सोने की एक मोहर प्रदान की थी और पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह अपने कला प्रेम के लिये प्रसिद्ध थे। जयपुर का नगर, वहाँ का महल, दिल्ली, उज्जैन, मथुरा और बनारस के जन्तर मन्तर सवाई जय सिंह की मधुर स्मृति हैं। महाराजा रणजीत सिंह की कला अमृतसर के सुनहरी मन्दिर में दिखाई देती है। मराठों ने भी कला के कई नमूने छोड़े हैं। उज्जैन का महाकालेश्वर का वर्तमान मन्दिर उनकी स्मृति है। विभिन्न शासक यथा शक्ति कलाकारों और कवियों को प्रोत्साहन देते थे।

उर्दू

उर्दू भाषा का जन्म तुर्कों के काल में हो चुका था। यह सब की मिली जुली भाषा है जिसमें फ़ारसी, तुर्की, अरबी, हिन्दी और कई अन्य भाषाओं के शब्द हैं। मुग़लों के काल में भी यह बोल चाल की भाषा रही। उर्दू साहित्य की रचना में दक्षिण के सुल्तानों ने प्रोत्साहन दिया। औरंगाबाद का वली जिसका जन्म १६६८ ई० में हुआ पहला ग़ज़लगो कहा जा सकता है। उसकी देखा देखी हातिम (१६९९—१७९२ ई०), 'खान आजू (१६८९—१७५६ ई०) आदि ने जो मुग़ल दरबार के कवि थे उर्दू में ग़ज़लें लिखीं। उनके पश्चात मीर दर्द, सौदा, मीर तकी, मीर इन्शा, आतिश, ग़ालिब, मोमिन और ज़ौक प्रसिद्ध कवि हुये। ग़ालिब के खतूत उर्दू गद्य की अमूल्य कृति हैं। उसका काव्य भी उच्च कोटि का है। अन्तिम मुग़लों के काल में उर्दू साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। बहादुर शाह स्वयं एक कवि था। हैदराबाद और लखनऊ उर्दू साहित्य के केन्द्र थे।

मराठी, गुजराती, बङ्गाली, पंजाबी और दक्षिण की भाषाओं ने

अन्य साहित्य

भी प्रसिद्ध कवि और साहित्यकार उत्पन्न किये। खड़ी बोली भी जिस ने वर्तमान हिन्दी का रूप धारण किया इसी युग में उत्पन्न हुई।

साहित्य की वृद्धि में पुर्तगालियों का भी काफी हाथ है। पहला छापा खाना भारत में उन्होंने ही लगाया था। भवन निर्माण कला में भी उनका काम महत्वपूर्ण है। अंग्रेज़ों ने भी भारतीय साहित्य को बहुत प्रोत्साहन दिया। यद्यपि कम्पनी सरकारी तौर पर इस के लिये बाध्य न थी तथापि बहुत से अंग्रेज़ महानुभावों ने भारतीय साहित्य का अध्ययन किया और संस्कृत साहित्य की महत्ता दर्शाई। इन महा पुरुषों में विल्यम जोन्ज़ का नाम विशेष रूप से आदरणीय है।

१८२६ ई० में हिन्दी की पहली पत्रिका "उदत्त मार्तंड" प्रकाशित हुई और भारतीय साहित्य का नया युग आरम्भ हुआ। राजा राम मोहन राय का 'बंग दूत' जो १८२६ ई० में पहली बार प्रकाशित हुआ दूसरा महान प्रयास था। यह पत्रिका हिन्दी, बंगाली, फारसी और अंग्रेज़ी में छपती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साहित्य पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। पश्चिमी संसार भी भारतीय साहित्य से प्रभावित हुआ।

१८३४ ई० में जेम्ज़ प्रिंसैप ने अशोक के प्राचीन लेखों को पढ़ने की कुंजी खोज निकाली। फरगोसन ने भारतीय कला पर एक मार्मिक ग्रन्थ की रचना की। प्राचीन भारतीय इतिहास को अंग्रेज़ों ने ही हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया। इस से भारतीयों के मन में अपने अतीत के प्रति गर्व के भाव उत्पन्न हुए।

भारत में अनेक बार साम्राज्य स्थापित हुए किन्तु किसी समय

राजनैतिक स्थिति : भी यह विस्तृत देश एक सूत्र में नहीं बांधा जा सका। सम्राटों का अधिकार सीमित होता था। स्थानीय शासक पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होते थे। केन्द्रीय शासन जीर्ण हो जाने पर छोटे छोटे राजा प्रकट रूप से स्वतन्त्र हो जाते थे। ग्राम पंचायतों को बहुत अधिकार प्राप्त थे और गांव का लगान देने के अतिरिक्त उनका केन्द्रीय सरकार से कोई सीधा सम्बन्ध न होता था। मुग़ल काल तक यही स्थिति रही।

मुग़ल साम्राज्य के क्षीण होते ही वियोजन की क्रिया आरम्भ हो गई थी। बंगाल, अवध, रुहेलखंड, पंजाब, राजस्थान, हैदराबाद और महाराष्ट्र में स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये थे जो नाम मात्र को मुग़ल सम्राट के आधीन थे। इन शक्तियों में से मराठों ने विशेष रूप से अपना सिक्का जमाया। बालाजी विश्वनाथ और पेशवा बाजी राव ने समस्त भारत में मराठा शक्ति की धाक बिठा दी। उनकी राजनीति सराहनीय थी। आपसी झगड़ों में फंसे होने पर भी पेशवाओं ने मराठा साम्राज्य को व्यवस्थित और सुदृढ़ किया।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में मैसूर में हैदर अली ने सिर उठाया जो अति योग्य शासक और निपुण राजनीतिज्ञ था। किन्तु इस समय अंग्रेज़ों का पलड़ा भारी हो चुका था। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक मैसूर की शक्ति समाप्त हो गई। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में दो ही शक्तियाँ दिखाई देती थीं। एक अंग्रेज़ और दूसरे मराठे। शीघ्र ही मराठे भी परास्त हुए और अंग्रेज़ों को चुनौती देने वाली भारत में कोई शक्ति शेष न रह गई। उत्तर पश्चिम में सिक्ख और उत्तर में गोरखे किसी प्रकार अंग्रेज़ों के प्रतिद्वन्द्वी न बन सकते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक सिक्खों और गोरखों को भी अंग्रेज़ों ने पराजय दी।

१८५७ ई० में भारत के लोगों ने और उन शासकों ने जिन के राज्य छिन गए थे मिल कर अंग्रेज़ों का विरोध किया किन्तु अंग्रेज़ों के पास बहुत अधिक साधन थे। वे उन हथियारों से सुसज्जित थे जिन का निर्माण आधुनिक विज्ञान ने किया था। भारत के लोगों की हार हुई और अंग्रेज़ पूर्ण रूप से भारत के स्वामी बन गये।

भारत के लोगों ने अंग्रेज़ों की आधीनता स्वीकार न की। राजा राम मोहन राय ने ही जो अंग्रेज़ों के पक्षपाती थे स्वतन्त्रता का नाद लगाया था। भक्ति के आन्दोलन ने देश भक्ति का रूप धारण कर लिया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से भारत स्पष्ट रूप से दासता के विरुद्ध संग्राम करता हुआ दीख पड़ता है।

पश्चिमी सभ्यता और भारत

पश्चिमी सभ्यता भारत में उस अवस्था में आई जब वह दासता की जंजीरों में जकड़ा जा रहा था। इस सभ्यता के प्रवर्तक भारत के विदेशी शासक थे। इस कारण जहाँ भारतीय जनता के एक वर्ग ने इस का स्वागत किया वहाँ एक अन्य वर्ग इस से घृणा करने लगा। इस प्रकार भारतीय समाज के दो वर्ग बन गये जो एक दूसरे के लिये अपरिचित से थे। भारत को पश्चिमी सम्पर्क से अनेक लाभ हुए। यदि उस समय भारत स्वतन्त्र देश होता तो इस सम्पर्क का और भी अधिक लाभ होता।

परिच्छेद ३४

भारत में विदेशी राज्य

विदेशी राज्य की स्थापना

१८५७ ई० के पश्चात् भारत में विधिवत विदेशी राज्य स्थापित हो गया। शासन कार्य ऐसी संस्था के आधीन हो गया जिस की नीति निर्धारित करने में भारतीयों का हाथ न था। इस संस्था का केवल यही विचार था कि भारत इंग्लैंड के लिये किस सीमा तक उपयोगी हो सकता है। भारत का हित उसके सम्मुख न था। इस लिये इस संस्था के शासन को हम विदेशी राज्य कहते हैं।

१८४६ ई० में पञ्जाब पर अधिकार हो ज़ाने से लग भग समस्त भारत अंग्रेज़ों के आधीन हो गया था किन्तु १८५७ ई० तक शासन कार्य एक व्यापारिक संस्था ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों के हाथ में रहा जब कि गवर्नर जनरल अपनी इच्छा से जो चाहता कर सकता था। उसके काम की आलोचना हो सकती थी परन्तु उस के काम में कोई हस्तक्षेप न करता था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी १६०० ई०

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना, जैसा हम पहले कह आये हैं, ३१ दिसम्बर, १६०० ई० में हुई थी। इसकी स्थापना की स्वीकृति रानी ऐल्ज़बैथ ने दी थी। उस का शासन काल इंग्लैंड के इतिहास में स्वर्णयुग समझा जाता है। सर वाल्टर रैले और सर फ्राँसिस ड्रेक जैसे महान् नाविक और शैक्सपीयर जैसा सुविख्यात नाटककार उसी के काल में हुए। उसी के काल में (१५८८ ई०) अंग्रेज़ों ने स्पेन के बेड़े को मात दी। इस से पूर्व

इंग्लैंड साम्प्रदायिकता का शिकार हो रहा था। महारानी की सहिष्णुता की नीति ने इंग्लैंड को नया जीवन प्रदान किया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी
भारत में—१६१२ ई०

ईस्ट इण्डिया कम्पनी पूर्वी देशों से व्यापार करने लगी। इस के इक्के दुक्के जहाज़ इधर आते थे। १६०६ ई० में जब इंग्लैंड में जेम्ज़ प्रथम शासन करता था हाँकिन्ज़ नाम का अंग्रेज़ जहाँगीर के दरबार में आया और उस ने मुग़ल सम्राट से सूरत के स्थान पर कोठी, जिसे वे फैक्ट्री कहते थे, स्थापित करने की आज्ञा प्राप्त कर ली जो वापिस ले ली गई। तत्पश्चात् टौमस-ऐल्डवर्थ ने १६१२ ई० में पुनः आज्ञा प्राप्त की। उस के पश्चात् अहमदाबाद, बरहानपुर, अजमेर, भड़ौंच और आगरा में उपकेन्द्र स्थापित किये गये। १६६८ ई० तक सूरत का बहुत महत्त्व रहा जिस के पश्चात् इस का स्थान बम्बई ने ले लिया।

कम्पनी का ध्येय

सर टामस रो जो कम्पनी के खर्च पर १६१५ से १६१६ ई० तक जेम्ज़ के राजदूत के रूप में जहाँगीर के दरबार में रहा कम्पनी के लिये विशेष सुविधायें प्राप्त न कर सका किन्तु उस ने कम्पनी को एक मूल्यवान् अनुमति दी। उस ने कहा कि डच और पुर्तगाली जो उपनिवेश स्थापित करने की चेष्टा करते हैं व्यापार में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। इन नये देशों में उन के शत्रु खड़े हो जाते हैं और रक्षा के लिये जो सेना रखनी पड़ती है उस का व्यय सहन करना कठिन हो जाता है। इस लिये ईस्ट-इण्डिया कम्पनी को व्यापार को ही अपना ध्येय बनाना चाहिये। कम्पनी ने ७० साल तक इसी नीति का पालन किया।

जेम्ज़ प्रथम और उस का पुत्र चार्ल्स प्रथम अपने आप को भगवान् के प्रतिनिधि समझते थे। चार्ल्स विशेष रूप से घमण्डी

कम्पनी के विधान में सुधार १६५६ ई० से १६८० ई० तक

था। उस के शासन काल में कम्पनी को यह कठिनाई अनुभव हुई कि वह किस का पक्ष ले, लोकमत का या नरेश का। नरेश ने व्यक्तिगत व्यापारियों को पूर्वी देशों से व्यापार का अधिकार देकर कम्पनी को बहुत क्षति पहुँचाई। १६४९ ई० में क्रौमवैल के आधीन नई सरकार स्थापित हुई जिस ने कम्पनी को नया चार्टर (१६५७ ई०) प्रदान किया और जिस की चेष्टा से व्यक्तिगत व्यापारी कम्पनी में सम्मिलित हो गये। कम्पनी को ज्वाएंट स्टाक कम्पनी घोषित किया गया जिस के अब २४ डाएरैक्टर थे। इस प्रकार यह एक आधुनिक संस्था बन गई।

१६८० ई० में उसे पुनः चार्टर प्राप्त हुआ। इस के अनुसार कम्पनी को सिक्के घड़ने; विदेशी नरेशों से संधि अथवा युद्ध करने, पूर्व में स्थित ब्रिटिश प्रजा के अभियोगों का निर्णय करने आदि का अधिकार प्राप्त हो गया।

भारत में अधिष्ठान १६६८ ई०

घर में कठिनाइयाँ होते हुए भी कम्पनी ने भारत में कई स्थान प्राप्त कर लिये। १६११ ई० में गोलकुण्डा के नवाब से मछलीपट्टम (मसुलीपट्टम) १६४० ई० में चन्द्रगिरि के राजा से मद्रास और १६६८ ई० में इंग्लैंड नरेश से बम्बई कम्पनी को प्राप्त हुए। बम्बई का टापू चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगाल से जहेज़ के रूप में मिला था जो उस ने कम्पनी को १० पौंड साल पर दे दिया था। इस नरेश के काल में और जेम्ज़ द्वितीय के काल में कम्पनी को बहुत नफ़ा रहा। उस के स्टाक का मूल्य १३० से बढ़ कर ३६० हो गया।

बिना कर व्यापार १६५१ ई०

इस समृद्धि का कारण बहुत सीमा तक वे सुविधायें थीं जो कम्पनी को भारत में प्राप्त हुईं। डाक्टर ब्राउटन ने शाहजहाँ की पुत्री का इलाज

करके उस से भारत में बिना कर व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त की किन्तु कम्पनी इसका लाभ न उठा सकी।

अंग्रेज़ों ने अपनी भूल से औरंगज़ेब से झगड़ा कर लिया और मक्का जाने वाले यात्रियों को रोक लिया जिस के फलस्वरूप बङ्गाल के सूबेदार शाइस्ता खाँ (१६६४–८९ ई०) ने उन्हें बङ्गाल से निकाल दिया। १६९० ई० में उन्हें औरङ्गज़ेब ने क्षमा कर दिया। जो शर्तें उन्हें माननी पड़ीं उन से अंग्रेज़ों की साख को बहुत धक्का पहुँचा किन्तु जौब चारनौक ने हुगली के किनारे एक स्थान प्राप्त करके इस हानि की पूर्ति कर दी। इस स्थान को कलकत्ता का नाम दिया गया जो १९११ ई० तक भारत की राजधानी रहा।

औरंगज़ेब की मृत्यु (१७०७ ई०) के पश्चात् जो अफला तफली मची उस में अंग्रेज़ों ने कलकत्ता की स्थिति को बहुत मज़बूत कर लिया और वहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग बना लिया। यहाँ के अधिकारी ने १७१५ ई० में जौन समन और ऐडवर्ड स्टीफनसन को मुग़ल सम्राट् के पास दिल्ली भेजा जिन्होंने सम्राट से कई सुविधायें प्राप्त कीं। फिर हैमिल्टन नाम के जर्राह ने फरुखसियर का इलाज कर कलकत्ता और मद्रास के निकट गाँव प्राप्त किये। सम्राट के फर्मान का बड़ी धूम धाम से जलूस निकाला गया किन्तु इन ग्रामों पर अधिकार जमाने के लिये अंग्रेज़ों को बल का प्रयोग करना पड़ा जिस से प्रतीत होता है कि मुग़ल सम्राट की वास्तविक सत्ता समाप्त हो चुकी थी।

कम्पनी की आश्चर्यजनक सफलता को देख कर इंग्लैंड के अन्य व्यापारियों के मुँह में पानी भर आया। गिलबर्ट हीथकाक और टौमस पिट ने लोक सभा में कम्पनी के एकाधिकार का विरोध किया और १६९४ ई० में लोक सभा ने यह निर्धारित किया कि ब्रिटेन की समस्त प्रजा का अबाध्य

कम्पनी की नई उलझन

रूप से व्यापार करने का अधिकार है। इसका परिणाम यह हुआ कि १६६८ ई० में जनरल सोसाइटी नाम की एक नई कम्पनी स्थापित हुई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों की वफ़ादारी और नई कम्पनी के कर्मचारियों के अनाड़ी होने से यह कम्पनी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार को हानि न पहुँचा सकी। १७०१ ई० में ये दोनों कम्पनियाँ आपस में मिल गईं। नई कम्पनी का नाम था 'यूनाइटेड कम्पनी आफ़ मर्चैंटस आफ़ इंग्लैंड ट्रेडिंग टु दी ईस्ट इंडीज़।'

इंग्लैंड में १६८८ ई० में स्वर्ण क्राँति हो चुकी थी। नये नरेश विल्यम ने कम्पनी को खूब प्रोत्साहन दिया। रानी ऐन (१७०२–१४ ई०) के काल में इंगलैंड की लोक सभा में दो राजनैतिक दल बन गये जिन्हें ह्विग और टोरी और तत्पश्चात् लिबरल और कञ्जरवेटिव कहने लगे। लोक सभा की सत्ता बढ़ती जा रही थी। १७१४ ई० में इंग्लैंड को जमनी से नरेश मिला जिसे अंग्रेज़ी भाषा न आती थी और उसे रौबर्ट वालपोल पर निर्भर रहना पड़ता था। वालपोल ने धीरे धीरे बहुत सत्ता प्राप्त कर ली और वह इक्कीस साल प्रधान मन्त्री रहा। इसके पश्चात् नरेशों का महत्त्व समाप्त हो गया। १७१४ ई० से १८२० ई० तक चार जौर्जों ने और १८३७ ई० तक विल्यम त्रितीय ने शासन किया जिस के पश्चात् रानी विक्टोरिया सिंहासन पर बैठी। उसने १९०१ ई० तक राज्य किया।

१७९३ ई० में कम्पनी को पुनः २० साल के लिये चार्टर द्वारा व्यापार का अधिकार दिया गया था।

१८१३ ई० के चार्टर ऐक्ट के अनुसार कम्पनी का व्यापार का एकाधिकार छीन लिया गया। १८३३ ई० के चार्टर ऐक्ट के अनुसार उसे नया व्यापार करने की आज्ञा न रही और १८५३ ई० के ऐक्ट के अनुसार उसके लिये व्यापार का निषेध हो गया। किन्तु इस समय कम्पनी ने लगभग समस्त भारत विजय कर लिया था।

अंग्रेज़ों के फ्रांसीसियों से (१७४६–४६, १७४८–५४, तथा १७५६–६३ ई०) तीन युद्ध हुए जिन्हें करनाटक के युद्ध कहते हैं। इन में अंग्रेज़ कम्पनी की विजय हुई।

कम्पनी की पहली विजय १७५६ ई०

भारतीयों के विरुद्ध उस की पहली विजय १७५६ ई० में हुई जब क्लाइव ने स्वर्ण दुर्ग पर अधिकार स्थापित किया। १७५७ ई० में प्लासी के स्थान पर कम्पनी की दूसरी और १७६४ ई० में बक्सर के स्थान पर तीसरी महत्त्वपूर्ण विजय हुई। करनाटक और हैदराबाद के मामलों में कम्पनी खुल्लम-खुल्ला रणक्षेत्र में न आई थी यद्यपि उस की कूट चालों से उसे करनाटक में प्रभुत्व प्राप्त हो गया था। कम्पनी की विजय का काल वास्तव में मैसूर की अन्तिम लड़ाई (१७६६ ई०) से आरम्भ होता है।

मैसूर : पहली लड़ाई

करनाटक के युद्धों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि अंग्रेज़ भारत में युद्ध के लिये तैयार नहीं। कम्पनी के कर्मचारी धन कमाने में लगे थे। अंग्रेज़ों के किलों में भ्रष्टाचार का दौर दौरा था। मद्रास की स्थिति विशेष रूप से बिगड़ी हुई थी। वहाँ का कमाँडर बेली और बक्सर युद्ध का नायक मनरो १७६७ ई० में हैदर अली के अकस्मात आक्रमण से चकित रह गये। मद्रास को इस आक्रमण से बहुत क्षति पहुँची। इसे मैसूर की पहली लड़ाई कहते हैं।

१७८१ ई० में हेस्टिंग्ज़ ने कूट चालों द्वारा सिंधिया और भोंसले से संधि कर ली। अगले साल फड़नवीस से भी संधि हो गई। इस प्रकार अपने पक्ष को मज़बूत बना कर उस ने आयर कूट को मद्रास की रक्षा के लिये भेजा।

आयरकूट ने १७८१ ई० में हैदरअली को पोर्ट नोवों के स्थान पर पराजय दी। अंग्रेज़ बढ़े आ रहे थे कि हैदरअली के पुत्र टीपू

दूसरी लड़ाई
१८८०–८४ ई०

हैदर अली की मृत्यु
१७८३ ई०

मंगलोर की संधि
१७८४ ई०

ने फ्रांसीसियों की सहायता से आयरकूट को पराजय दी और उसे भाग कर जान बचानी पड़ी। उस की सेना भी क्षतविक्षत हुई। १७८२ ई० में हैदरअली की मृत्यु हो गई और टीपू को मैसूर लौटना पड़ा। वह मंगलोर की ओर बढ़ा किन्तु अंग्रेज़ कमांडर ने उसी साल नवम्बर में पालघाट और कोयम्बटूर पर अधिकार प्राप्त कर लिया। अंग्रेज़ी सेना बढ़ी जा रही थी कि मद्रास सरकार ने टीपू के साथ संधि की घोषणा कर दी। यह संधि मंगलोर के स्थान पर १७८४ ई० में हुई। यह अंग्रेज़ों के लिए बहुत अपमानजनक थी।

तीसरी लड़ाई
१७९०–९२

टीपू ने १७८९ ई० में ट्रावनकोर पर आक्रमण कर दिया। लार्ड कार्नवालिस ने १७९० ई० में निज़ाम और मराठों की सहायता से मैसूर पर चढ़ाई की। १७९२ ई० तक यह युद्ध चलता रहा। आख़िर टीपू ने हार स्वीकार की और अपना आधा इलाका अंग्रेज़ों और उन के सहायकों की भेंट किया। भारी रक़म हर्जाने के रूप में दी।

चौथी लड़ाई
टीपू की हार और मृत्यु
१७९९ ई०

इस संधि ने टीपू के आत्म सम्मान को बहुत ठेस पहुँचाई। उस ने देशी तथा विदेशी शक्तियों से सहायता की याचना की। अंग्रेज़ों को भय था कि कहीं वह फ्रांसीसियों से मिल कर उन पर आक्रमण न कर दे इसलिए वेलेजली ने उसे सबसीडीयरी सिस्टम स्वीकार करने को कहा। उस के इन्कार करने पर अंग्रेज़ गवर्नर जनरल वेलेज़ली ने १७९९ ई० में टीपू

पर आक्रमण कर दिया। घोर युद्ध के पश्चात् टीपू की हार हुई और वह लड़ाई में मारा गया।

मैसूर का बटवारा

पश्चिम में कन्नड, दक्षिण में कोयम्बटूर और पूर्व में कई ज़िले ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित कर लिये गये। इस प्रकार ब्रिटिश इलाका कारोमंडल तट से मालाबार तक आपस में मिल गया। उत्तर को छोड़ कर शेष मैसूर अब अंग्रेज़ी इलाके से घिर गया। उत्तर पूर्व के कुछ भाग निज़ाम को मिले और मैसूर की गद्दी पर उस हिन्दू वंश के एक बालक को बिठाया गया जिसे हैदर अली ने पद हीन किया था।

१८३१ ई० में मैसूर में राजा के कुशासन के विरुद्ध जनता ने आवाज़ उठाई और लार्ड बैंटिक ने राजा को पद से हटा दिया। लार्ड रिपन ने १८८२ ई० में राजा को पुनः गद्दी प्रदान की।

महाराष्ट्र पर अधिकार

पहली लड़ाई १७७५ ई०

अंग्रेज़ों ने मराठों से पहले पहल समुद्र में टक्कर ली थी। १७५६ ई० में क्लाइव ने स्वर्णदुर्ग को विजय किया। उस के पश्चात् १७७५ ई० तक अंग्रेज़ों और मराठों में मैत्री बनी रही। इस वर्ष रघुनाथ राव ने जो मराठों का पेशवा बनना चाहता था अंग्रेज़ों के साथ सूरत की संधि की और उन की सहायता से पूना की ओर बढ़ा। संयुक्त सेना की हार हुई। अंग्रेज़ों ने मराठों से पुरन्दर के स्थान पर संधि की जिस के अनुसार सालसट का इलाका जिसे मराठों ने पुर्तगालियों से प्राप्त किया था अंग्रेज़ों को मिला। रघुनाथ राव को मराठों ने तीन लाख सालाना पैंशन देना स्वीकार किया और अंग्रेज़ों को मराठा क्षेत्र में व्यापार करने की अनुमति मिल गई।

कम्पनी के डायरैक्टर मराठों के साथ युद्ध करने के पक्ष में

न थे । भारत में भी कम्पनी के अधिकारियों में इस के विषय में एक मत न था। इधर वारेन हेस्टिंग्ज़ और उस की कौंसिल का उधर बम्बई की अंग्रेज़ सरकार और बंगाल की सरकार का दृष्टिकोण भिन्न भिन्न था ।

१७७८ ई० में इस संधि को भंग कर अंग्रेज़ों ने पुनः मराठों पर चढ़ाई की और मात खा कर बड़गांव के स्थान पर उन्हें अपमानजनक संधि करनी पड़ी। किन्तु अंग्रेज़ों ने चालाकी से काम लिया और सिंधिया को अपने पक्ष में कर लिया । वे अन्य मराठा सरदारों को भी पेशवा से विमुख करने में सफल हुए । विवश हो कर नाना फड़नवीस को जिस के हाथ में उस समय पूना के शासन की बाग डोर थी १७८२ ई० में सालबाई की संधि करनी पड़ी। इस संधि से सिंधिया को बहुत से अधिकार प्राप्त हुए। उस के पश्चात् २० वर्ष तक अंग्रेज़ों और मराठों के बीच शाँति रही।

सालबाई की संधि—
१७८२ ई०

मराठे हैदराबाद को हड़पना चाहते थे किन्तु अंग्रेज़ों ने १८०० ई० में उस से संधि कर ली । उसी साल नाना फड़नवीस का देहाँत हो गया। सिंधिया और होल्कर दोनों पूना में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे । कुछ समय के लिये सिंधिया सफल रहा। अन्ततः १८०२ ई० में होल्कर ने पूना पर अधिकार जमा लिया और पेशवा बाजी राव द्वितीय भाग कर अंग्रेज़ों की शरण में चला गया ।

हैदराबाद में प्रभुत्त्व
१८०० ई०

बसीन की संधि
१८०२ ई०

उस ने बेसीन की संधि द्वारा अंग्रेज़ों का प्रभुत्व और सबसीडीयरी अलांएस स्वीकार किया । उसे पूना में एक विशेष परिमाण में अंग्रेज़ी सेना रखने, उस के व्यय के लिये इलाका नियत करने और विदेशी नीति अंग्रेज़ों के सुपुर्द

करने की शर्तें माननी पड़ीं।

अंग्रेज़ पूना में—
१८०३ ई०

१८०३ ई० में अंग्रेज़ों की सहायता से पेशवा ने पूना में प्रवेश किया। पेशवा का अंग्रेज़ों के आधीन होना मराठों के लिये लज्जा की बात थी। इस लिये सिंधिया और भोंसला ने मिल कर अंग्रेज़ों को चुनौती दी।

मराठों की दूसरी
लड़ाई—१८०३ ई०

अंग्रेज़ों ने युद्ध की घोषणा कर दी। अंग्रेज़ों का अपना मत है कि भारत में उन्होंने इस से पूर्व ऐसा भीषण युद्ध नहीं किया था। मराठा सेना में ढाई लाख पैदल और बहुत से घुड़सवार थे। इन के अतिरिक्त चालीस सहस्र ऐसे सैनिक थे जिन का शिक्षण फ्राँसीसियों ने किया था। इस के विपरीत अंग्रेज़ों की कुल सेना ५५ सहस्र थी।

गुजरात और उड़ीसा में साथ साथ युद्ध हुआ।

इस युद्ध की सब से बड़ी मुठभेड़ २३ सितम्बर १८०३ ई० को असाई के स्थान पर हुई। अंग्रेज़ों को बहुत क्षति पहुँची किन्तु मराठों की हार हुई।

दिल्ली और आगरे पर
अंग्रेज़ों का अधिकार—
भरतपुर से संधि—
गुज़रात और उड़ीसा

उत्तर में मराठा सेना का अध्यक्ष एक फ्रांसीसी था। अंग्रेज़ सेनापति लेक उसे कानपुर से खदेड़ कर दिल्ली तक ले आया। अगस्त में आगरा और अक्तूबर में दिल्ली पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। उसी समय भरतपुर के राजा के साथ संधि हुई जिस के द्वारा जाट शासक ने अंग्रेज़ों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। गुजरात में भड़ोच पर और उड़ीसा में कटक पर अधिकार प्राप्त कर लिया गया। आख़िर

देवगाँव और सुर्जी अर्जन गाँव की संधि— दक्षिण, गुजरात, द्वाब आदि पर अंग्रेज़ों का अधिकार

भोंसले ने देवगाँव और सिंधिया ने सुर्जी के स्थान पर सन्धि कर ली। अंग्रेज़ों का यमुना और गंगा के बीच के द्वाबे पर अधिकार हो गया। दिल्ली, आगरा, कटक, बालासोर और भड़ोच उन के हाथ आए। इस प्रकार बंगाल और मद्रास के प्रान्त आपस में मिल गये। गुजरात और बुँदेलखण्ड में सिंधिया ने कई ज़िले अंग्रेज़ों के हवाले किये। दक्षिण में समस्त इलाका उस से छिन गया।

मराठों की तीसरी लड़ाई—होल्कर दिल्ली में—१८०४ ई०— सिंधिया और होल्कर से संधि

इस बीच होल्कर ने जो सिंधिया और भोंसले से पृथक रहा था जयपुर के राज्य में लूट मार आरम्भ कर दी। वेलेज़ली ने इस के विरुद्ध भारी सेना भेजी। सिंधिया ने होल्कर का साथ दिया और राजस्थान में अंग्रेज़ों को बहुत हानि उठानी पड़ी। होल्कर दिल्ली तक बढ़ आया किन्तु दिल्ली को प्राप्त न कर सका और परास्त हो कर उसे पञ्जाब की ओर भागना पड़ा जहाँ उस ने राजा रणजीत सिंह से सहायता पाने की असफल चेष्टा की। कम्पनी का नया गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। उसे आदेश था कि वह मराठों से संधि करे।

वेलेज़ली की नीति की आलोचना

अंग्रेज़ गवर्नर जनरल वेलेज़ली ने मराठा शक्ति को चकनाचूर कर दिया किन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरैक्टर इससे ख़ुश नहीं हुए। इन युद्धों से कम्पनी पर ऋण चढ़ गया और उस का दायित्व बढ़ गया। उन्हें भय था कि मराठे आहत सिंह की भाँति अंग्रेज़ों पर लपकेंगे। जो इलाके अंग्रेज़ों ने प्राप्त किये हैं वहाँ शाँति स्थापित करना सुगम न होगा। वारेन हैस्टिंग्ज़ की भाँति उस पर भी अभियोग चलाने का प्रस्ताव रखा

गया किन्तु जहाँ हेस्टिंग्ज़ का विरोध लोक सभा की ओर से हुआ था और कम्पनी ने उस का पक्ष लिया था वहाँ लोक सभा ने वेलेज़ली का पक्ष लिया और कम्पनी ने उस की नीति की आलोचना की।

सिंधिया से १८०५ ई० में नई संधि हुई जिस के अनुसार उस का बहुत सा इलाका उसे वापिस दे दिया गया और उसे अंग्रेज़ों के संरक्षण में आए हुए राज्यों को छोड़ कर अन्य राज्यों से युद्ध या संधि करने की स्वतन्त्रता प्रदान हुई। इसी प्रकार की सन्धि होल्कर से हुई। उन्हें राजस्थान में हस्तक्षेप करने का अधिकार भी मिल गया।

शाँति की नीति—

बुंदेलखण्ड में दमन—

पिण्डारों से युद्ध— १८०९ ई०

इसके पश्चात् लार्ड कार्नवालिस, लार्ड वार्लो और लार्ड मिण्टो जो क्रमशः कम्पनी के गवर्नर जनरल रहे शाँति की नीति पर अमल करते रहे। लार्ड मिण्टो को बुंदेल खण्ड में शाँति स्थापित करने के लिये बुंदेलों से युद्ध करना पड़ा। अमीर खाँ पिण्डारी जो सिंधिया की सेना में नायक था और लूट मार पर उतर आया था परास्त हुआ।

मराठों की चौथी लड़ाई—१८१७ ई०—सिंधिया से नई संधि—१८१७ ई०

इस समय मारकिस आफ़ हेस्टिंग्ज़ कम्पनी का गवर्नर जनरल था। देश में अशाँति फैल रही थी। नेपाल में अंग्रेज़ों की क्षति से भारतीय शासकों को प्रोत्साहन मिला था। एक साथ मिलकर अंग्रेज़ों का विरोध करने की योजना बन रही थी। हेस्टिंग्ज़ ने नवम्बर १८१७ ई० में सिंधिया को नई संधि करने पर विवश किया जिस के अनुसार सिंधिया का राजस्थान और मालवा के शासकों पर से प्रभुत्व समाप्त हो गया।

अंग्रेज़ों को राजस्थान के शासकों के साथ संधि करने का अधिकार प्राप्त हुआ और १६ राजाओं से संधियाँ हुईं। इन में जयपुर, उदयपुर, जोधपुर और बूँदी राज्य प्रसिद्ध हैं। जिस दिन सिंधिया के साथ यह संधि हुई पेशवा ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध शस्त्र संभाल लिये। रेज़िडैन्सी को जला दिया गया। अंग्रेज़ रेज़िडैंट कठिनाई से जान बचा कर भागा किन्तु उस ने सेना एकत्रित की और पेशवा को किर्की के स्थान पर पराजय दी।

पेशवा की हार

इन्दौर के स्थान पर होल्कर और नागपुर में अप्पासाहिब ने अंग्रेज़ों के खिलाफ़ हथियार उठाए किन्तु उन की भी हार हुई और उन्हें बहुत सा इलाका अंग्रेज़ों को देकर उन से संधि करनी पड़ी। अप्पा साहिब ने पुनः संधि तोड़ दी। उस की सेना की असीरगढ़ के स्थान पर हार हुई और नागपुर और उस का अन्य बहुत सा इलाका ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

होल्कर और गायकवाड़ से सन्धि

इस के पश्चात् अन्य छोटे छोटे मराठा राज्यों पर प्रभुत्व स्थापित करना सुगम ही था। मराठों को पराजित करने का जो काम वारेन-हेस्टिंग्ज़ ने आरम्भ किया था उसे मारकिस आफ़ हेस्टिंग्ज़ ने पूरा कर दिया। मराठों की पराजय के पश्चात् भारत का दक्षिणी और पूर्वी भाग पूर्ण रूप से अंग्रेज़ों के आधीन हो गया।

मराठा शक्ति पर अंतिम प्रहार—१८१९ ई०—

मराठा युद्ध का परिणाम

१७८२ ई० की संधि के अनुसार सिंधिया को राजस्थान में

राजस्थान में प्रभुत्व १८१२ ई०

हस्तक्षेप का अधिकार प्राप्त हो गया था। उस के अत्याचारों से तंग आ कर राजस्थान के राजाओं ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सहायता की प्रार्थना की किन्तु कम्पनी की नीति बदल चुकी थी और वह भारतीय शासकों के आपसी झगड़ों में हाथ डालना न चाहती थी।

१८१२ ई० में पिन्डारियों के हौसले बहुत बढ़ गये और उन्हों ने मराठा सरदारों के संरक्षण में लूट मार करनी आरम्भ की। मारक्विस आफ़ हेस्टिंग्ज़ को उन्हें दमन करना पड़ा। उस ने राजस्थान के १६ राज्यों से संधि की। टाड नाम का अंग्रेज़ अफ़सर इन राज्यों के लिए रेज़िडैंट नियुक्त हुआ जिस ने राजस्थान का विस्तृत इतिहास लिखा।

सिक्खों से सम्बन्ध

१८०० ई० में अंग्रेज़ों को शंका हुई कि अफ़गानिस्तान का अमीर शाह ज़मान भारत पर आक्रमण की योजना बना रहा है। उन्होंने रणजीत सिंह से मैत्री स्थापित की जिसे रणजीत सिंह ने अन्तिम समय तक निभाया।

सिक्खों की पहली और दूसरी लड़ाई— १८४५, १८४८ ई०

१८३६ ई० में रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात सिक्ख खुल्लम खुल्ला अंग्रेज़ों का विरोध करने लगे। अंग्रेज़ चिर काल से पंजाब को प्राप्त करना चाहते थे। १८४५ ई० में सिक्खों और अंग्रेज़ों में युद्ध छिड़ गया। सिक्खों की हार हुई और लाहौर की सन्धि द्वारा पंजाब पर अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया गया। १८४६ ई० में दूसरे युद्ध के पश्चात् पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

फुटकर राज्यों से सम्बन्ध—करनाटक (तंजौर और अरकाट)

करनाटक के मामले में अंग्रेज़ों ने सबसे पहले हस्तक्षेप किया था। १७९९ ई० में तञ्जौर के राजा ने समस्त शासन कार्य अंग्रेज़ों को सौंप दिया। १८०१ ई० में मुहम्मद अली के पुत्र की मृत्यु के पश्चात् यह इलाका ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

हैदराबाद

१७९९ ई० में निज़ाम ने सबसीडीयरी अलाएंस स्वीकार कर अंग्रेज़ों को सत्ता सौंप दी थी। १८०० ई० में उसने अंग्रेज़ सेना के व्यय के लिये वह सब इलाका कम्पनी को दे दिया जो मैसूर की हार से उसे प्राप्त हुआ था। इस से कृष्णा नदी के तट तक अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया।

अवध—१८५६ ई०

वेलेज़ली ने अवध के नवाब पर दबाव डालना आरम्भ किया और अंग्रेज़ सेना के व्यय के लिये रुहेलखंड और गंगा यमुना के बीच के उत्तरी जिले प्राप्त कर लिये। अवध का राज्य ब्रिटिश इलाके से घिर गया। इसे डलहौज़ी ने पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया।

सिन्ध—१८४३ ई०

सिन्ध के अमीरों ने १८३९ ई० में सबसीडीयरी अलाएंस स्वीकार किया था। १८४२ ई० में उन से नई सन्धि की गई जिसके अनुसार अमीरों के लगभग सभी अधिकार छीन लिये गये। सिन्ध के लोगों को इस से रोष आ गया और उन्होंने अंग्रेज़ रेज़ीडेंट पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज़ों को युद्ध करने का बहाना मिल गया। अंग्रेज़ों की जीत हुई और सिन्ध को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

सतारा, झांसी आदि

भारत के सभी शासकों ने अंग्रेज़ों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था किन्तु लार्ड डलहौज़ी इस से संतुष्ट न हुआ। उसने लैप्स की नीति का प्रयोग कर सतारा को १८४८ ई० में, जैतपुर और सम्बलपुर को १८४९ ई० में, बघात को १८५० ई० में, उदयपुर को १८५२ ई० में, झांसी को १८५३ ई० में और नागपुर को १८५४ ई० में इस बहाने से ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित कर लिया कि उनके शासकों की पुत्रहीन मृत्यु हुई थी। उदयपुर और बघात को लार्ड कैनिंग ने बहाल कर दिया। अवध और बरार को कुशासन का आरोप लगा कर हड़प लिया गया।

इन तथ्यों से प्रकट होता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत को संगठित करने का अति उत्तम काम किया। वाह्य अक्रमणों से संरक्षण भी प्रदान किया।

परिच्छेद ३५

अंग्रेज़ों का विरोध

विरोध का कारण

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक भी किसी को यह आशा न थी कि अंग्रेज़ इस प्रकार भारत पर छा जायेंगे। मराठे और अन्य शक्तियाँ उन्हें व्यापारी समझती थीं। हैदर अली पहला भारतीय शासक था जिसने यह अनुभव किया कि अंग्रेज़ भारत को हड़प रहे हैं। उस के पुत्र टीपू सुल्तान ने नियमित रूप से उन्हें परास्त करने का प्रयत्न किया किन्तु उस समय तक उन की शक्ति बहुत बढ़ चुकी थी।

मराठे अपने आपको भारत के अविरुद्ध शासक समझते थे। ज्यों ही उन्हें यह आभास हुआ कि अंग्रेज़ भारत पर छाये जा रहे हैं उन्होंने अंग्रेज़ों का डट कर मुकाबला किया। उनकी हार हुई परन्तु स्वतन्त्रता की भावना भारतीयों के मन में बनी रही। भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की प्रेरक, जिसे अंग्रेज इतिहासकार विप्लव का नाम देते हैं, यही भावना थी।

१८५७ ई० में भारत की स्थिति

१८५६ ई० में जब लार्ड कैनिंग ने भारत भूमि पर पदार्पण किया भारत की दशा उस अथाह नदी के समान थी जिसमें ऊपर का तल शान्त प्रतीत होता है परन्तु नीचे के तल में भीषण भंवर उठते हैं, या गीले पत्तों के उस बिछौने के समान थी जिसके नीचे प्रचंड अग्नि दहकती है। कैनिंग अपनी विद्वत्ता और योग्यता के लिए प्रसिद्ध था। वह फूँक-फूँक कर कदम रखता था परन्तु उसे भी भारत की स्थिति अपने अनुकूल प्रतीत हुई। उसे अंग्रेज़ों की भूल कहो या भारतीयों की चतुराई, अन्तिम समय तक

विदेशियों को उस तूफ़ान का बोध नहीं हुआ जो भारत में उमड़ रहा था।

भारत की क्रान्ति १८५७ ई०

लार्ड डलहौज़ी भारत में बहुत अशान्त वातावरण छोड़ गया था। उसने कई रियासतों को समाप्त कर दिया था। भारत की जनता पराधीनता की पीड़ा का आभास करने लगी थी।

विद्रोह का अधिकार

भारत में यह प्रथा चली आई है कि यदि कोई शासक जनता पर अत्याचार करे तो जनता उसके खिलाफ़ बग़ावत कर सकती है। बुरे शासक से विद्रोह करना धर्म या नीति के विरुद्ध नहीं समझा जाता।

एक तो देसी रियासतों की जनता के हित की ख़ातिर और दूसरे अंग्रेज़ी साम्राज्य का विस्तार करने के हेतु डलहौज़ी ने लैप्स की नीति चलाई, अर्थात् यदि किसी रियासत का शासक पुत्रहीन हो तो उसकी मृत्यु पर वह रियासत अंग्रेज़ी साम्राज्य का भाग बना ली जाये। किसी शासक को दत्तक पुत्र बनाने की आज्ञा न हो। यह नियम विशेष रूप से उन रियासतों पर लागू हो जो अंग्रेज़ों के भारत में आने से पूर्व स्वतन्त्र न थीं। झाँसी, सतारा, नागपुर आदि कई रियासतों को इस प्रकार डलहौजी ने अंग्रेज़ी साम्राज्य में सम्मिलित किया।

अवध की रियासत को हथियाने के लिये यह बहाना बनाया गया कि वहाँ का शासक अयोग्य और विलासी है।

क्रान्ति के राजनैतिक कारण

डलहौज़ी की इस नीति से न केवल वे शासक अंग्रेजों के विरुद्ध थे जिनके राज्य इस प्रकार छीने जा रहे थे बल्कि कई अन्य शासकों को भी भय उत्पन्न हुआ कि कहीं उनके राज्यों को भी अंग्रेज़ न हड़प लें। जागीरदारों और तालुकदारों को भी यह

आशंका हुई। डलहौज़ी की यह नीति १८५७ की क्रान्ति का एक कारण थी।

आर्थिक कारण

अंग्रेजों ने भारत को अपनी जागीर समझा हुआ था और वे उसे दिल खोल कर लूटते थे। बंगाल जिसके विषय में कहा गया था कि उस में धन की आयात के लिये सैंकड़ों द्वार हैं, किन्तु निर्यात के लिये एक भी नहीं अंग्रेजों के अधिकार में आते ही खौफ़नाक दुर्भिक्ष का शिकार हुआ। अंग्रेज़ी व्यापारियों ने भारत का व्यापार संभाल लिया था। भारत में अंग्रेज़ी माल ज़बरदस्ती बेचा जाता था। भारत के कारीगर बेकार हो गये थे। अनुचित भूमि कर के कारण किसानों की हालत भी अच्छी न थी। भारत की जनता ने अनुभव किया कि अंग्रेज़ उसे दरिद्र बना रहें हैं और उन से छुटकारा पाने में ही नजात है।

सामाजिक कारण

रेल और तार के आविष्कारों ने सभी देशों में लोगों को आशंकित किया था। ब्रिटेन की लोकसभा तक शुरू शुरू में इन के पक्ष में न थी। वहाँ रेल चलाने के विरुद्ध जो भाषण हुये उनका विवरण पढ़ कर हँसी आती है। यद्यपि भारत में इन आविष्कारों का विरोध उस सीमा तक नहीं हुआ जिस सीमा तक पश्चिमी देशों में तथापि भारत के लोगों के मन में यह शंका अवश्य उत्पन्न हुई कि रेल और तार के द्वारा अंग्रेज़ भारत में अपनी ताकत मज़बूत कर रहे हैं। यह बात बहुत हद तक ठीक भी थी।

लार्ड वैंटिक के सामाजिक सुधार भी अशान्ति का कारण थे।

धार्मिक कारण

ईसाई मत के प्रचार ने भी जनता के मन को बहुत पीड़ित किया था। अंग्रेज़ अफ़सर भी पादरियों को सहयोग देते थे। ऐसी घटनाओं की कमी न थी जहाँ लोगों को जबरदस्ती ईसाई बनाया

गया था। भारत के महापुरुषों के नाम को लांच्छित करने का प्रयत्न तो खुल्लम-खुल्ला होता था।

सैनिक कारण

भारतीय जवान जो अंग्रेज़ों की सेना में भरती होते थे, अंग्रेज़ों के वफादार ज़रूर थे किन्तु वे अंग्रेज़ अफ़सरों के व्यवहार से खुश न थे। अंग्रेज़ों के अनुचित राष्ट्रीय घमंड के कारण भारतीय उन से विमुख हो गये थे। सेना में १८५७ ई० से पूर्व भी वैलोर और बैरकपुर में सैनिक विद्रोह हो चुके थे।

क्रान्ति की तैयारी

१८४६ ई० में समस्त भारत में अंग्रेज़ों के खिलाफ़ एक आग सुलग रही थी। इसे ज्वाला का रूप देने के लिये भारतीय नेताओं ने बहुत समझदारी से काम लिया। जनता में प्रचार के लिये साधुओं और फकीरों की सहायता ली। कथावाचक और हरबोले जिनका भारत की जनता बहुत मान करती आई है क्रान्ति का प्रचार करते थे। तीर्थ स्थानों पर भी क्रान्ति की ही बात चीत होती थी। ये जनता को जागृत करने के प्राचीन तरीके थे। नाना साहिब ने जो क्रान्तिकारियों का प्रमुख नेता था कुछ नये और विचित्र उपाय निकाले। उसने रोटियों को और कमल के फूलों को दूत बनाया। ग्राम ग्राम में रोटियाँ बाँटी गई और प्रत्येक भारतीय सैनिक तक कमल का फूल पहुँचाया गया। फूल और रोटियाँ क्रान्ति के सन्देश लिये हुये थे।

नाना साहिब का मन्त्री अज़ीमुल्ला कुछ काल इङ्गलैंड रह कर आया था। उस ने अंग्रेज़ों की स्थिति का खूब अध्ययन किया। लौटते समय वह कई देशों से होकर गुज़रा और उसने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का अध्ययन किया। कुछ देशों से उसे सहायता का आश्वासन भी मिला। उसे यह बात स्पष्ट हो गई कि इस समय भारत में अंग्रेज़ों की स्थिति दुर्बल है।

क्रान्तिकारियों ने सब कार्यवाही गुप्त रखी। उन्होंने निश्चय किया था कि क्रान्ति ३१ मई १८५७ को आरम्भ हो। इसी तिथि को सौ साल पहले प्लासी के स्थान पर अंग्रेज़ों ने बङ्गाल के नवाब को हराया था। दूसरे इस समय भारत के मैदानों में गर्मी बहुत पड़ती है। गर्मी में अंग्रेज़ों के लिये युद्ध करना बहुत कठिन था। इस तिथि का बोध केवल प्रमुख नेताओं को ही था।

क्रान्ति का विस्फोट

१८५७ ई० की क्रान्ति के विभिन्न कारणों का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। एक कारण ऐसा था जिसने बारूद में चिंगारी का काम किया। अंग्रेज़ों ने भारतीय सैनिकों को एक नया कारतूस प्रयुक्त करने का हुक्म दिया। कहा जाता है कि इस कारतूस में गाय और सूअर की चर्बी लगी होती थी और उसे बन्दूक में चढ़ाने के लिये दाँतों से खोलना पड़ता था। यह अफ़वाह फैल गई कि इस कारतूस के प्रयोग से अंग्रेज़ हिन्दुओं और मुसलमानों का धर्म भ्रष्ट करना चाहते हैं।

नये कारतूसों के प्रयोग की आज्ञा सब से पहले बैरकपुर में स्थित भारतीय सैनिकों को मार्च १८५७ ई० में दी गई। अभी विप्लव का समय न था किंतु मङ्गल पांडे नाम के ब्राह्मण ने यह आज्ञा मिलते ही तलवार खींच ली और एक अंग्रेज़ अफ़सर का वध कर दिया। और भी कई अंग्रेज़ मारे गये किंतु पांडे को भी फाँसी पर लटका दिया गया। इस घटना से अंग्रेज़ सचेत हो गए और उन्होंने बर्मा से अंग्रेज़ी फ़ौज बुला ली।

मेरठ में क्रान्ति

मई की नौ तारीख को मेरठ में ऐसी ही घटना हुई। वहाँ सभी भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। अंग्रेज़ अफ़सरों को कत्ल कर वे दिल्ली की ओर बढ़े। क्रान्ति नियत तिथि से पूर्व ही आरम्भ हो गई। चीन को जाने वाली

सेना को भी भारत में रोक लिया गया।

क्रान्ति का प्रसार

दिल्ली, कानपुर, बरेली, झाँसी, और लखनऊ क्रान्तिकारियों के गढ़ थे। सभी स्थानों पर योग्य नेता नियुक्त थे जो बाह्य रूप से अंग्रेज़ों के विश्वास पात्र बने हुये थे। नाना साहिब और उसका सेनापति ताँतिया टोपे कानपुर में स्थित थे। कानपुर में स्थित अंग्रेज़ कमांडर व्हीलर ने मेरठ और दिल्ली का समाचार पाकर कोष उन के सुपुर्द कर दिया। अन्य स्थानों पर भी अन्तिम दिन तक अंग्रेज़ यह न समझ सके कि उनका वास्तविक विरोधी कौन है। यह क्रान्तिकारियों के कौशल का प्रमाण है।

१८५७ ई० की क्रान्ति का इतिहास पढ़कर रोंगटे खड़े होते हैं। भारत के नर नारी, बच्चे और बूढ़े सभी वीरता के रंग में रंगे गए। उनकी बहादुरी के कारनामे स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि भारत के लोग न तो नीति में किसी से पीछे हैं और न वीरता में।

भारतीयों की वीरता

लगभग समस्त उत्तरी भारत अंग्रेज़ों से खाली करा लिया गया। किन्तु ईरान में युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाने के कारण और आपसी फूट और शस्त्रों की कमी के कारण यह क्रान्ति सफल न हो पाई। १७ जुलाई १८५७ ई० में कानपुर पर, सितम्बर के मध्य में दिल्ली पर और मार्च १८५८ ई० में लखनऊ पर अंग्रेज़ों का पुनः अधिकार स्थापित हो गया।

सभी स्थानों पर उन्हें भारतीयों ने नाकों चने चबाए और कई अंग्रेज़ जनरल खेत रहे।

फिर अंग्रेज़ों की समस्त सेना झाँसी की ओर बढ़ी। झाँसी की

रानी लक्ष्मी बाई ने जिस ने अपने थोड़े से शासन काल में अपनी योग्यता का सिक्का बिठा दिया था अंग्रेज़ों का डट कर मुकाबला किया। तांतिया टोपे उसकी सहायता के लिए बढ़ा किन्तु वह किले तक न पहुँच सका। झाँसी परास्त होने से पहले वीरांगणा अंग्रेजी सेनाओं को चीरती हुई निकल गई और कालपी से नई सेना ले ग्वालियर जा पहुँची। इसकी सूचना अंग्रेज़ों को मिल गई और पूर्व इसके कि क्रान्तिकारी अपनी स्थिति मज़बूत करें अंग्रेज़ों ने ग्वालियर को आघेरा। लक्ष्मी बाई को ग्वालियर भी छोड़ना पड़ा किन्तु अंग्रेज़ों ने उसका पीछा किया। जून १८५८ ई० में रानी ने लड़ते-लड़ते प्राण दे दिये। लक्ष्मी बाई के विषय में अंग्रेज़ सेना नायकों ने भी कहा है कि उस जैसी वीरता का अनुभव उन्हों ने पहले कभी न किया था।

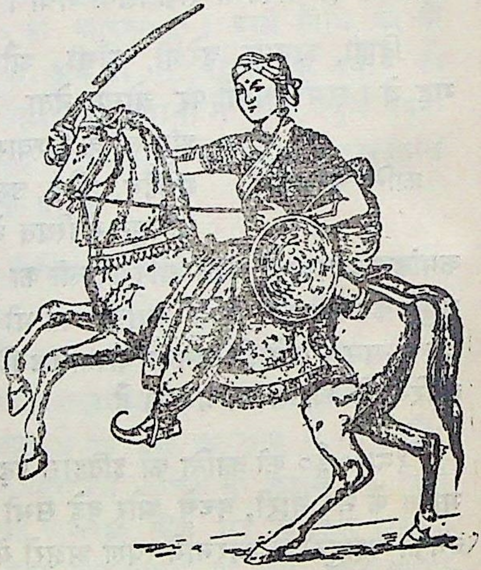

झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई

तांतिया ग्वालियर के युद्ध में सम्मिलित था। वह बचकर निकल गया। उसे आशा थी कि नर्मदा नदी पार कर लेने पर वह मराठों से सहायता प्राप्त कर सकेगा। अंग्रेज़ों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। कई बार उसकी अंग्रेज़ सेना से टक्कर हुई किन्तु वह नर्मदा पार पहुँच ही गया। पर अफ़सोस! उसके पहुँचने का समय बीत चुका था। दक्षिण भारत में अंग्रेज़ अपनी स्थिति मज़बूत कर चुके थे। ताँतिया ने पुनः नर्मदा नदी पार की। वह

उत्तर की ओर जाना चाहता था परन्तु उसके एक साथी ने उस से दग़ा की और उसे गिरफ़्तार करवा दिया।

अप्रैल १८५६ ई० में ताँतिया को फाँसी दे दी गई।

बहुत से क्रान्तिकारी नेता लड़ाई में काम आचुके थे। कुछ अंग्रेज़ों के हाथ आये और कुछ देश छोड़कर विदेश चले गये। अन्तिम मुग़ल बादशाह बहादुर शाह द्वितीय ने १८६३ ई० में अंग्रेज़ों की क़ैद में प्राण छोड़े।

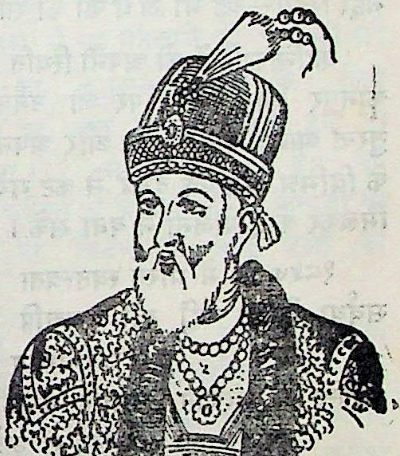

बहादुरशाह द्वितीय

शाँति

भारत के विभिन्न भागों में चिरकाल तक अंग्रेज़ों का विरोध होता रहा किन्तु ७ जुलाई १८५८ ई० को कैंनिग ने शान्ति की घोषणा कर दी।

विप्लव को दमन करने का श्रेय निश्चय ही अंग्रेज कमांडरों को है। सर जौन लारैंस का इन में प्रमुख स्थान है जिसने न केवल उत्तर पश्चिम में शान्ति स्थापित किये रखी बल्कि पंजाब से भारत के अन्य भागों में सेना भी भेजी।

विफलता के कारण

क्रान्ति का समय से पूर्व आरम्भ हो जाना भी उसकी विफलता का कारण बना। यदि यह अनायास ३१ मई को समस्त भारत में आरम्भ होती, जैसा कि निश्चय किया था, तो अंग्रेजों के लिये अपनी जान बचाना कठिन हो जाता।

कई भारतीय शासक विशेष रूप से निज़ाम, नैपाल का राजा

अंग्रेज़ों की कूट चालें

और सिंधिया अंग्रेज़ों के मित्र बने रहे। ग्वालियर के सर दिनकर राव, हैदराबाद के सर सालार जंग ने अंग्रेज़ों की बहुत सहायता की। पंजाबी और गोरखा फौजों ने विद्रोह नहीं किया—यह भी अंग्रेज़ों का सौभाग्य था।

क्रान्तिकारियों को अपनी स्थिति संभालने का अवसर नहीं मिला। कानपुर और दिल्ली पर जो उनके प्रमुख गढ़ थे, अंग्रेज़ों ने तुरन्त आक्रमण कर दिया और अपनी समस्त शक्ति लगा दी। क्राँति के विभिन्न केन्द्र एक दूसरे से कट गये और भविष्य के लिए क्रान्तिकारी मिलकर कोई योजना न बना सके।

क्रान्ति का परिणाम

१८५७ ई० में भारत स्वतन्त्रता प्राप्त न कर सका किन्तु क्रान्ति सर्वथा विफल नहीं रही। यद्यपि १८५७ ई० के पश्चात् अंग्रेज़ों ने व्यवस्थित रूप से भारत का शोषण किया तथापि उनकी धींगामुश्ती न चल सकी। विप्लव से अंग्रेज़ों को भारत की शक्ति का अनुभव हो गया। यहाँ की जनता की भावनाओं को कुचलने का उन में साहस न रहा। भारत के सम्मुख वैधानिक आन्दोलन का द्वार खुल गया।

कैनिंग की नीति

विजय के पश्चात् देश में शांति स्थापित करना बहुत कठिन था। कैनिंग हर प्रकार सफल रहा। अंग्रेज़ों के मन में साधारणतया प्रतिकार की अग्नि दहक रही थी किन्तु कैनिंग ने घोषित कर दिया कि केवल उन्हीं व्यक्तियों को दण्ड दिया जायेगा जो अपराधी सिद्ध होंगे। उसने बहुत समझदारी और धैर्य से काम लिया। विप्लव के दिनों में जो अत्याचार अंग्रेज़ों ने किये थे कैनिंग की नीति के कारण वे भी लोगों ने भुला दिये।

ब्रिटेन की लोक सभा ने इस अवसर को उचित समझकर

भारत में कंपनी का
कार्य

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार समाप्त करने की योजना बनाई। कम्पनी ने इसका विरोध किया। कम्पनी की ओर से एक प्रार्थनापत्र ब्रिटिश सरकार को भेजा गया। इस पत्र का निरूपण प्रसिद्ध अर्थ शास्त्री जौन स्टुअर्ट मिल ने किया था। इस में यह बतलाने की चेष्टा की गई थी कि भारत में कम्पनी का शासन जनता के लिये हितकर रहा है। लोक सभा ने यह बात स्वीकार करते हुए भी शासन अपने हाथ में ले लिया। १ नवम्बर १८५८ ई० को इलाहाबाद के स्थान पर लार्ड कैनिंग ने घोषणा की कि कम्पनी का अन्त हो गया है और भारत पर ब्रिटेन की लोक सभा का सीधा अधिकार है।

महारानी विक्टोरिया
की घोषणा—
१८५८ ई०

इसी अवसर पर महारानी विक्टोरिया की मार्मिक घोषणा पढ़ कर सुनाई गई। इस में बताया गया था कि ब्रिटेन की सरकार भारत में अपने राज्य का अधिक विस्तार करना नहीं चाहती, वह भारतीय जनता के धार्मिक अनुभावों को ठेस पहुँचाने का विरोध करती है और चाहती है कि सरकारी पदों के वितरण में जातीय भेदभाव न रखा जाय, न ही किसी विशेष समुदाय के लोगों को पदों से वंचित किया जाये। जो जिस पद के योग्य हो उसे वह पद दिया जाय। यह भी स्पष्ट रूप से बताया गया कि भारत की समृद्धि ही ब्रिटेन की सत्ता है।

इस घोषणा के अनुसार उन सब क्रान्तिकारियों को प्राण दान दे दिया गया जिन्हों ने हथियार डाल दिये थे।

परिच्छेद ३७

आगे बढ़ने की नीति

नई शक्तियों का उत्थान

सत्रहवीं शताब्दी में जातीयता का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में इसने विकराल रूप धारण कर लिया। संसार की प्रत्येक जाति यह चाहती थी कि संसार भर में उसका शासन हो। इस धारणा ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ज़ोर पकड़ा। इस की तह में बहुत सीमा तक ब्रिटेन की बढ़ती हुई शक्ति के प्रति ईर्षा के भाव थे।

ग्रेट ब्रिटेन

ब्रिटेन में इस समय एक सम्राज्ञी का शासन था और उसका पति अति सद्भावी व्यक्ति था जिसने १८५१ ई० में एक औद्योगिक प्रदर्शनी नियोजित की जिसका अभिप्राय विभिन्न जातियों का ध्यान उद्योगों की उन्नति की ओर दिलाना था। विश्व-शान्ति की धूमिल आशा दिखाई दी किन्तु यह केवल मृगतृष्णा सिद्ध हुई।

फ्रांस

फ्रांस में लोकतन्त्रीय राज्य था परन्तु वहाँ का राष्ट्रपति नैपोलियन बोनापार्ट का भतीजा था जो यूरोप के लिये अपने चाचा से भी बड़ा अभिशाप सिद्ध होना चाहता था। १८५२ ई० में उसने अपने आप को सम्राट घोषित कर दिया।

रूस

रूस में निकोलस प्रथम दनदना रहा था। मंगोलों के आधीन रह चुकने के पश्चात् रूस ने १४८० ई० में इवान तृतीय के आधीन स्वतन्त्रता घोषित की। वह यूरोप का ग्रैंड ड्यूक कहलाया और उसने रूस को उन्नत करने के बहुत उपाय किये। १५४७ ई० में अत्याचारी इवान चतुर्थ ने अपने आप को ज़ार घोषित किया। १६८६ से १७२५ ई० तक पीटर महान का शासन रहा जिसने देश-देश घूमकर ज्ञान प्राप्त किया

और रूस को एक आधुनिक देश बनाने का प्रयत्न किया।

निकोलस के सामने पीटर का उदाहरण न था बल्कि वह नैपोलियन के समान विजेता बनना चाहता था। उसने १८५३ ई० में टर्की पर जिसे वह 'यूरोप का रोगी' कहता था आक्रमण कर दिया।

जर्मनी

जर्मनी जिसे उस समय प्रशिया कहते थे, बिखरा हुआ था। इस ने बिस्मार्क को जन्म दिया। बिस्मार्क ने असीम रक्त बहाकर बिखरे हुए छोटे छोटे राज्यों को संगठित कर जर्मन साम्राज्य की स्थापना की। फ्रांस के नैपोलियन की अपेक्षा बिस्मार्क यूरोप के लिये बड़ा अभिशाप सिद्ध हुआ और जर्मनी जिसे उसने जन्म दिया था संसार भर के लिये। पहले और दूसरे महायुद्ध का कारण जर्मनी की महत्वाकांक्षा थी।

आगे बढ़ने की नीति

यूरोप में अभी शान्ति स्थापित न हुई थी कि १८७७ ई० में रूस ने टर्की पर आक्रमण कर दिया और उसे संधि करने पर मजबूर किया। इस से अंग्रेज़ों के मन में भय उत्पन्न हुआ जो चिरस्थायी रहा। अंग्रेज़ों की आगे बढ़ने की नीति के निर्धारण में यह भय साफ दिखाई देता है।

ईरान

रूस बहुत फैला हुआ देश है। यह समस्त उत्तरी यूरोप और एशिया पर छाया हुआ है। पश्चिम में नार्वे, स्वेडन, पोलैंड आदि इसे छूते हैं। पूर्व में चीन इस के दक्षिण की ओर है। दक्षिण में यह मध्य एशिया और पूर्वी यूरोप के सभी देशों के ऊपर घटा के समान आच्छादित है। एक ओर ईरान और अफ़गानिस्तान और दूसरी ओर तिब्बत इसे भारत से पृथक् करते हैं। भारत को सुरक्षित रखने के लिये अंग्रेज़ों के विचारानुसार ईरान और अफ़गानिस्तान को रूस के प्रभाव से पृथक् रखना ज़रूरी था।

ईरान के प्रचीन गौरव का वर्णन हम कर आये हैं। १५२० ई० से

१५६६ ई० तक इस पर सुलेमान ने शासन किया जिसका साम्राज्य बग़दाद से हंगरी तक फैला हुआ था। मुग़ल साम्राज्य के साथ ईरान के सम्राटों का भी पतन हो गया।

ईरान का उत्तरी भाग पथरीला और बंजर है। दक्षिणी भाग कुछ उपजाऊ है। यह समुद्र तट के साथ साथ है। उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैंड को अपनी जल सेना का घमंड था इसलिये ईरान के दक्षिणी भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना उसके लिये सुगम था। उत्तरी भाग रूस के प्रभावाधीन था। इन दो शक्तियों के पंजे में होने से ईरान पराधीन तो नहीं हुआ परन्तु उसकी उन्नति रुक गई और अभी तक भी यह महान् देश विषम समस्याओं में फँसा हुआ है जिन्हें उलझाने में अब भी महान शक्तियों का हाथ है।

रूस ने भारत पर आक्रमण करने की योजना पहले पहल १८०१ ई० में फ्रांस के साथ मिल कर बनाई थी। अभिप्राय यह था कि ईरान के मार्ग से कूच किया जाय। यह योजना सफल न हुई। १८०५ ई० में ईरान ने फ्रांस के साथ सन्धि कर ली और यह भय यथार्थ था कि कहीं रूस, फ्रांस और ईरान मिलकर भारत पर आक्रमण न कर दें। इसकी पेशबन्दी करने के लिये लार्ड मिण्टो ने १८०७ ई० में पंजाब, सिंध, अफगानिस्तान और ईरान में दूत भेजे और वह रणजीत सिंह, सिंध के अमीरों और अफ़गानिस्तान के शासक शाह शुजा के साथ सन्धि करने में सफल हुआ। ईरान के शाह ने भी मैत्री का प्रस्ताव स्वीकार किया।

रूस का प्रभाव बढ़ रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में (१८५५ ई०) अंग्रेज़ी राजदूत को ईरान की राजधानी तेहरान से दुत्कार कर निकाल दिया गया। ईरान को पाठ पढ़ाने के हेतु लार्ड कैनिंग ने सेना भेजी जिसे आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त हुई और कई स्थानों पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। ईरान ने अंग्रेज़ों की शर्तें स्वीकार कीं।

अफ़गानिस्तान

भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर २५०० वर्ग मील का ऐसा इलाका था जिस पर अफ़गानिस्तान के अमीर का नाम मात्र का अधिकार था। इस इलाके पर अंग्रेज़ी सरकार अपना अधिकार स्थापित करना चाहती थी। समय समय पर इस इलाके तक सड़कें और रेल की लाइन बनाने की चेष्टा की गई।

परन्तु इस के साथ साथ अंग्रेज़ यह भी चाहते थे कि अफ़गानिस्तान उनका साथ दे।

हम देख आये हैं कि १८०६ ई० में अफ़गानिस्तान के अमीर शाह शुजा ने भाग कर महाराजा रणजीत सिंह की शरण ली थी जिसने अमीर से बहुत सा धन प्राप्त किया था। कोहेनूर हीरा भी महाराजा ने अमीर से ही पाया था। अन्ततः शाह शुजा ने अंग्रेज़ों की शरण ली।

१८२६ ई० में अफ़गानिस्तान पर दोस्त मुहम्मद का अधिकार हो गया। महाराजा रणजीत सिंह ने अफ़गानिस्तान पर आक्रमण किया और पेशावर का इलाका प्राप्त कर लिया। १८३७ ई० में ईरान के शाह ने हरात पर आक्रमण कर दिया। दोस्त मुहम्मद ने अंग्रेज़ों से सहायता की याचना की।

अफ़गानिस्तान की पहली लड़ाई—१८३८–४१ ई०

लार्ड आकलैंड ने जो उस समय भारत का गवर्नर जनरल था, शाहशुजा को अफ़गानितान का सिंहासन दिलाने का वचन दिया और अफ़गानिस्तान पर आक्रमण कर दिया। यह आकलैंड की भूल थी। इस समय रूस ने अफ़गानिस्तान से अपना दूत वापिस बुला लिया था। ईरान ने हरात से सेना हटा ली थी। अंग्रेज़ों को किसी प्रकार का भय न होना चाहिये था।

साथ ही दोस्त मुहम्मद अफ़ग़ानिस्तान का सर्वप्रिय शासक था। शाहशुजा का साथ देने वाला वहाँ कोई न था।

इस युद्ध में सिक्खों ने अंग्रेज़ों का साथ दिया। संयुक्त सेना खैबर और बोलन के रास्ते अफ़गानिस्तान में घुस गई और काबुल, कन्धार और गज़नी पर उसका अधिकार हो गया। शाहशुजा को अफ़गानिस्तान का अमीर बना दिया गया।

१८४१ ई० में दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबर खाँ ने सेना इकट्ठी की और अंग्रेज़ दूतों को जो शाहशुजा के दरबार में थे क़त्ल कर दिया। अंग्रेज़ी लश्कर के १५००० व्यक्तियों में से केवल एक बच कर भारत आया। अंग्रेज़ों ने इसे चुपचाप सहन कर लिया।

अफ़ग़ानिस्तान की दूसरी लड़ाई—१८७८ ई०

१८६३ ई० में शेर अली अफ़गानिस्तान का अमीर बना। लार्ड मेयो (१८६६—७२ ई०) ने अमीर के साथ अम्बाला के स्थान पर भेंट की। किन्तु शेर अली के मन में अंग्रेज़ों के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया। उधर अंग्रेज़ों के रूस के साथ सम्बन्ध अच्छे न थे। इस लिये अंग्रेज़ भी अपनी स्थिति को मज़बूत करना चाहते थे। उन्हों ने १८७६ ई० में क्वेटा पर अधिकार स्थापित कर लिया। इस से शेर अली बहुत भिन्नाया।

अफ़गानिस्तान पर आक्रमण

अफ़गानिस्तान का अमीर शेर अली चाहता था कि सरकार उसे प्रति वर्ष सहायता के रूप में कुछ रुपया दे। दूसरे उसके पुत्र अब्दुल्ला जान को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार करे और तीसरे विदेशी आक्रमण से बचने के लिये अफ़गानिस्तान की सहायता करे। १८७३ ई० में ये शर्तें ठुकरा दी गई थीं। किन्तु अब रूस तीव्रता से दक्षिण पूर्व की ओर बढ़ रहा था। अंग्रेज़ी सरकार अफ़गानिस्तान को अपने प्रभावाधीन रखना चाहती थी। लिटन को अफ़ग़ानिस्तान के साथ सुलझने के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता

मिली थी किन्तु उसने अफ़गानिस्तान के अमीर पर अनुचित दबाव डाला। उदाहरणतया अमीर यह न चाहता था था कि अंग्रेज़ राजदूत हरात में रहे क्यों कि अंग्रेज़ राजदूत को हरात में आने की आज्ञा देने का अर्थ यह था कि रूस के दूत के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जाय। दूसरे शेर अली अपनी प्रजा के स्वभाव को जानता था। सम्भव था कि प्रजा रुष्ट होकर अंग्रेज़ दूत की हत्या कर दे। इन युक्तियों से लार्ड लिटन की तसल्ली न सुई।

अंग्रेज़ों से निराश होकर शेर अली ने अपना रुख रूस की ओर किया। स्थिति कुछ ऐसी थी कि उसे रूस के राजदूत को अफ़गानिस्तान आने की आज्ञा देनी पड़ी। इस पर लिटन की सरकार ने शेर अली पर ज़ोर डाला कि वह अंग्रेज़ी राजदूत को भी अफ़गानिस्तान आने की आज्ञा दे। उस के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही पेशावर से अंग्रेज़ी दूत ने प्रस्थान कर दिया किन्तु उसे अफ़गानिस्तान की सीमा पर रोक दिया गया। लिटन ने इसे युद्ध का बहाना बना लिया।

उसने २ नवम्बर १८७८ ई० को चुनौती दी कि यदि २० नवम्बर तक शेर अली क्षमा याचना नहीं करेगा और अंग्रेज़ी दूत को अफ़गानिस्तान जाने की आज्ञा नहीं देगा तो उस पर चढ़ाई कर दी जाएगी। शेर अली का १९ नवम्बर का लिखा हुआ पत्र ३० नवम्बर को पहुँचा जिस में उस ने स्वीकार किया था कि वह अंग्रेज़ी राजदूत को अफ़गानिस्तान में आने की आज्ञा देने को तैयार है। किन्तु लिटन इस से पूर्व ही सेना भेज चुका था। यह उत्तर भी उसके लिये संतोषजनक न था।

इस युद्ध के कारण ब्रिटेन में लिटन का बहुत विरोध हुआ।

खैबर, पेशावर और बोलन तीनों दर्रों के मार्ग से अफ़गानिस्तान पर आक्रमण किया गया। अंग्रेज़ों का विशेष विरोध नहीं हुआ। शेर अली सिंहासन छोड़ कर भाग गया।

खैबर द्वारा चढ़ाई

लिटन चाहता था कि अफ़ग़ानिस्तान राज्य समाप्त कर दिया जाय। किन्तु अंग्रेज़ी सरकार ने याकूब खाँ को शेर अली का उत्तराधिकारी स्वीकार किया। नये अमीर के साथ सन्धि हुई और अमीर ने अंग्रेज़ों की सभी शर्तें मान लीं।

लिटन का विचार था कि उसे पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त हुई है किन्तु ३ सितम्बर १८७८ ई० में अंग्रेज़ी दूतावास पर आक्रमण हो गया और जितने भी लोग वहाँ थे, सब मारे गये।

अंग्रेज़ों ने पुनः अफ़गानिस्तान पर आक्रमण किया और अपराधियों को भारी दण्ड दिया। याकूब खाँ को बन्दी बना भारत भेज दिया गया किन्तु अफ़गानिस्तान में अराजकता फैली हुई थी और युद्ध जारी था।

लिटन की सरकार असमञ्जस में थी कि क्या किया जाय। इतने में शेर अली का भतीजा अब्दुल रहमान जो रूस के संरक्षण में रहता रहा था अफ़ग़ानिस्तान आ गया। लिटन की सरकार ने उसे काबुल का अमीर स्वीकार किया।

अफ़गानिस्तान उस समय तीन भागों में बटा हुआ था। हरात, कन्धार और काबुल। १८८० ई० के जून मास में अयूब खाँ ने जो हरात का अमीर था कन्धार पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेंज़ सेना ने कन्धार के अमीर की सहायता की किन्तु समस्त अंग्रेज़ सेना तहस नहस हो गई। उसके पश्चात् काबुल से भारी अंग्रेज़ सेना आ गई और अयूब खाँ की हार हुई।

क़न्धार के अमीर ने जिसे अंग्रेज़ों ने नियुक्त किया था अंग्रेज़ों के कहने पर सिंहासन त्याग दिया।

अंग्रेज़ सेना अफ़गानिस्तान से निकल आई। इस के पश्चात अयूब खाँ ने पुनः कन्धार पर आक्रमण किया किन्तु अब्दुल रहमान ने बिना किसी की सहायता के अयूब खाँ को परास्त किया। समस्त

अफ़ग़ानिस्तान पर अब अब्दुल रहमान का अधिकार हो गया।

शान्ति की नीति

अफ़गानिस्तान का मामला उलझा ही पड़ा था कि इंग्लैंड में टोरी पार्टी की हार हो गई। लिटन ने त्यागपत्र दे दिया। उसके उत्तराधिकारी लार्ड रिपन (१८८०—८४ ई०) ने लिटन की नीति को बदल डाला और अफ़ग़ानिस्तान के साथ वैसे ही सम्बन्ध स्थापित किये जैसे लार्ड लारेंस और मेयो ने किये थे। अंग्रेज़ों को बलोचिस्तान पर अधिकार प्राप्त हो गया और अब्दुल रहमान ने जो बहुत योग्य शासक सिद्ध हुआ अन्तर्देशीय मामलों में अंग्रेज़ों की आधीनता स्वीकार की।

रूस और अफ़ग़ानिस्तान की सीमा।

रूस ने १८७६ ई० में खोखंद के राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया था और १८८१ ई० में तुर्कमानों को परास्त किया था। १८८४ ई० में रूस ने मर्व पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इस प्रकार रूस की सीमा अफ़ग़ानिस्तान की सीमा को छूने लगी। अफ़ग़ानिस्तान के सीमान्त नगर पंजदेह पर रूस का अधिकार हो जाने से इंग्लैंड में सनसनी फैल गई। भय था कि कहीं रूस और ब्रिटेन में युद्ध न छिड़ जाय किन्तु अब्दुल रहमान की दूरदर्शिता ने इस विपत्ति को रोक लिया। उस ने १८८५ ई० में लार्ड डफरिन से रावलपिण्डी के स्थान पर भेंट की और कहा कि पञ्जदेह के चले जाने से अफ़ग़ानिस्तान को विशेष हानि नहीं पहुँची। रूस में अंग्रेज़ी दूत ने स्थिति सम्भाल ली और १८८७ ई० में सर वैस्ट रिजवे ने रूस और अफ़ग़ानिस्तान के बीच सीमा निर्धारित की।

लार्ड डफरिन के साथ भी अफ़ग़ानिस्तान के अमीर के सम्बन्ध अच्छे थे किन्तु लार्ड लैंज़डाउन के स्वभाव में विषमता थी। वह अब्दुल रहमान का दिल न जीत सका।

१८८६ ई० में मौर्टिमर डुरैंड की अध्यक्षता में एक शिष्ट मण्डल अफ़ग़ानिस्तान भेजने की योजना बनाई गई किन्तु यह बात सिरे न चढ़ी।

१८८६ ई० में गिलगित में प्रभाव स्थापित करने के लिये एक अंग्रेज़ अफ़सर भेजा गया। इस के पश्चात् चितराल में सिंहासन आरोहण के विषय में आपसी विवाद हो गया जिसे बहाना बना कर अंग्रेज़ अफ़सर को वहाँ भेज दिया गया। बोलन दर्रे तक रेल की लाइन बना दी गई। इन बातों से अब्दुल रहमान के मन में अंग्रेज़ों के प्रति शंका उत्पन्न होना स्वाभाविक था। युद्धाग्नि सुलगने लगी।

१८६२ ई० में अफ़ग़ानिस्तान को शिष्ट मण्डल भेजने की पुनः तैयारियाँ होने लगीं। इस का अध्यक्ष लार्ड राबर्ट्स को नियुक्त किया गया जो अफ़ग़ानिस्तान की दूसरी लड़ाई में भाग ले चुका था। अब्दुल रहमान ने बीमारी का बहाना किया और शिष्ट मण्डल अफ़ग़ानिस्तान न जा सका।

लार्ड राबर्ट्स इंग्लैंड वापिस चला गया। उस के जाने के पश्चात् मौर्टीमर डुरैंड को पुनः शिष्ट मण्डल का अध्यक्ष चुना गया और अमीर ने उसे स्वीकृति दी। डुरैंड ने समझदारी से काम लिया और अमीर से पुनः मैत्री स्थापित कर ली। अफ़ग़ानिस्तान और भारत के बीच सीमा निर्धारित हुई जिसे डुरैंड लाइन कहते हैं। संधि हो जाने पर अब्दुल रहमान ने कहा था कि अंग्रेज़ों ने मित्रता द्वारा जो कुछ उस से प्राप्त किया है वह रूसी सरकार शक्ति द्वारा प्राप्त नहीं कर सकी।

ऐल्गिन के शासन काल में उत्तर पश्चिमी सीमा पर फिर अशाँति फैल गई। इस का कारण यह था कि चितराल के मेहतर को कत्ल

अफ़ग़निस्तान की तीसरी लड़ाई

कर दिया गया था। गिलगित में स्थित अंग्रेज़ राजदूत ने चितराल की ओर प्रस्थान किया। इस पर लड़ाई छिड़ गई जिस में अंग्रेज़ों की जीत हुई। उन्होंने चितराल तक पक्की सड़क बना दी। १८९७ ई० में समस्त सीमान्त पर अशाँति फैल गई जिस का कारण अंग्रेज़ों का चितराल पर अधिकार स्थापित करना बताया जाता है। टोची की घाटी में स्थित अंग्रेज़ अफ़सर पर कबाइली लोगों ने आक्रमण कर दिया और युद्ध आरम्भ हो गया। अंग्रेज़ों का विरोध करने वाले विशेष रूप से दो कबीले थे—एक मोहमण्द और दूसरे अफ़रीदी। मोहमण्द कबीले ने जनवरी १८९८ ई० में हथियार डाल दिये और अफ़रीदियों ने मार्च में। किन्तु इस युद्ध में अंग्रेज़ों को बहुत हानि उठानी पड़ी।

लार्ड ऐल्गिन का उत्तराधिकारी लार्ड कर्ज़न (१८९९ से १९०४ ई०) नियुक्त हुआ जो चिरकाल से भारत का वाईसराय बनने के स्वप्न देख रहा था। वह लंका, अफ़ग़ानिस्तान, चीन ईरान, तुर्किस्तान, जापान और कोरिया हो आया था और पूर्वी देशों की समस्याओं को खूब समझता था।

सीमाँत नीति

लार्ड कर्ज़न अपने पूर्वाधिकारी की सीमान्त नीति के साथ सहमत था। उस ने खैबर के इलाके से अंग्रेज़ी सेना वापिस बुलाने का निश्चय किया। उस के स्थान पर कबाइली लोगों की सेना भरती की। दारगई, जमरूद और थाल तक रेल की लाईन बनाई गई। कर्ज़न की इस नीति के कारण सीमान्त पर अगले दस वर्ष में शाँति रही।

उत्तर पश्चिम में ब्रिटिश साम्राज्य का बहुत विस्तार हो गया था। लार्ड कर्ज़न ने उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त की स्थापना की जो चीफ़ कमिश्नरों के आधीन कर दिया गया। पंजाब का अब इसके साथ कोई सम्बन्ध न रह गया। आगरा और अवध

के प्रान्तों को अब तक यह नाम दिया जाता था। अब उनका नाम बदल कर संयुक्त प्रान्त कर दिया गया।

१९०१ ई० में अफ़ग़ानिस्तान के अमीर अब्दुल रहमान की मृत्यु हो गई और उस का पुत्र हबीबुल्लाह सिंहासन पर बैठा। कुछ साल तक नये शासक के साथ अंग्रेज़ों के सम्बन्ध बिगड़े रहे किन्तु १९०५ ई० में उस के साथ संधि हो गई जिस के अनुसार हबीबुल्ला की शर्तें मान ली गईं। उसे अमीर के स्थान पर बादशाह की पद्वी धारण करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

फारस की खाड़ी में प्रभुत्व

लार्ड कर्ज़न के सम्मुख फारस की खाड़ी की रक्षा का प्रश्न था। इस खाड़ी पर अंग्रेज़ों का अधिकार था और १८५३ ई० में यहाँ से होकर जाने वाले सभी देशों के जहाज़ों की उन्होंने रक्षा की थी। अंग्रेज़ों ने इस के तट के साथ साथ किसी नगर या किसी इलाके पर अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की। इस पर भी यूरोप की सक्तियों ने यह आपत्ति उठाई कि फारस की खाड़ी में ब्रिटेन का एकाधिकार यूरोप की नीति के विरुद्ध है। १८९२ से १८९३ ई० तक टर्की, जर्मनी, फ्राँस और रूस ने फारस की खाड़ी के तट के देशों में अड्डा जमाने का प्रयत्न किया किन्तु कर्ज़न की कूट नीति के सामने किसी की एक न चल पाई।

उपरोक्त देशों में से रूस का प्रभाव सब से अधिक बढ़ रहा था। जहाँ दक्षिणी ईरान पूर्ण रूप से अंग्रेज़ों के प्रभावाधीन था वहाँ उत्तरी ईरान रूस के प्रभाव में था। यह प्रभाव इस सीमा तक बढ़ गया था कि यदि वहाँ अंग्रेज़ न होते तो समस्त ईरान पर रूस का अधिकार हो जाता। १९०९ ई० में लार्ड कर्ज़न स्वयं फ़ारस की खाड़ी के दौरे पर गया और उस ने उस इलाके में अंग्रेज़ों की शक्ति को सुदृढ़ बना दिया।

नेपाल के साथ संबन्ध

१४ वीं शताब्दी में राजपूत वंशों ने भारत के उत्तर के पहाड़ी इलाके पर अधिकार प्राप्त कर कई स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की। १७६८ ई० में इन में से गोरखा वंश ने इन समस्त राज्यों को अपने आधीन कर एक शक्तिशाली राज्य की नींव डाली जो सतलुज नदी से भूटान तक फैला हुआ था। १८०१ ई० में अवध के नवाब ने गोरखपुर का ज़िला कम्पनी को दे दिया। अंग्रेज़ी राज्य की सीमा अब गोरखा राज्य की सीमा को छूने लगी।

नेपाल की लड़ाई
१८१४ से १८१६ ई०

१८१३ ई० में गोरखों ने कई अंग्रेज़ी इलाके हथिया लिए और उन्हें लौटा देने से इन्कार कर दिया। इस पर युद्ध छिड़ गया, जिस में गोरखों की हार हुई। यह युद्ध १८१६ ई० में सन्धि द्वारा समाप्त हुआ। गढ़वाल, कुमाऊँ, देहरादून और शिमला पर जो गोरखों के आधीन थे अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया।

भूटान से संबन्ध

भूटान के साथ अंग्रज़ों की मुठभेड़ पहले पहल १७७२ ई० में हुई थी जब उन्होंने कूच बिहार की रियासत पर आक्रमण किया और अंग्रज़ों ने कूच बिहार की सहायता की। १८२८ ई० में आसाम अंग्रेज़ों के हाथ आ गया जिस से भूटान के साथ अंग्रेज़ी राज्य की सीमा छूने लगी। भूटान के लोगों ने उस पहाड़ी इलाके पर अधिकार ज़मा लिया जिसे "द्वार" कहते हैं। इस इलाके में कई दर्रें हैं जिन के द्वारा भूटान और आसाम का व्यापार होता है।

इन "द्वारों" को प्राप्त करने के लिये अंग्रेज़ों और भूटानियों में कई बार ले दे हुई। १८६३ ई० में भूटानियों ने अंग्रेज़ी दूत को एक अपमान जनक संधि पर हस्ताक्षर करने पर मजबूर किया। अंग्रेज़

इस पर झुँझला उठे। अंग्रेजी सरकार ने भूटान की ओर एक सेना भेजी जिस की हार हुई। इस पर विधिवत युद्ध छिड़ गया। शीघ्र ही भूटानियों को हथियार डालने पड़े। उन्होंने १८६५ ई० में सन्धि कर ली जिस के अनुसार 'द्वारों' पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। भारत सरकार ने प्रति वर्ष नियत राशि भूटान सरकार को देने का वचन दिया। कई अंग्रेजों ने इस विषय में लारेंस की नीति की कड़ी आलोचना की किन्तु अनुभव से मालूम हुआ कि लारेंस ने समझदारी से काम लिया था। इस से भूटान के लोग सदैव के लिये अंग्रेज़ों के मित्र बन गए। जो इलाका अंग्रेज़ों ने भूटानियों से प्राप्त किया उस में चाय की खेती होने लगी। किन्तु उस समय इस से इतनी आय न थी जितनी अब है।

तिब्बत से संबन्ध

तिब्बत की यात्रा करने वाला पहला यूरोपीय पर्यटक वान डी पूट था जो नादिर शाह के आक्रमण के समय दिल्ली में था। किन्तु उस ने अपनी यात्रा का वर्णन आग की भेंट कर दिया।

तिब्बत एक अति ऊँचा पठार है। इस की राजधानी समुद्रतल से १२,००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। अधिकतर भाग बर्फ से ढका रहता है। किन्तु वहाँ कुछ हरी भरी घाटियाँ भी हैं। खनिज पदार्थ भी मिलते हैं।

तिब्बत का शासक दलाई लामा अपने आप को महात्मा बुद्ध का अवतार समझता है। उसे परामर्श देने के लिये एक समिति थी। किन्तु १७२० ई० के पश्चात् चीन का राजदूत वहाँ रहने लगा। शासन कार्य में उस का बहुत हाथ हो गया।

तिब्बत में चीनियों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। उन्होंने १७६० ई० में ईसाई पादरियों को तिब्बत से निकाल दिया जो बङ्गाल में आकर रहने लगे। १७७२ ई० में वारन हेस्टिंग्ज़ को दक्षिणी तिब्बत के तेशू लामा ने पत्र लिखा और इच्छा प्रकट की कि वह

तिब्बत के लोगों की अंग्रेज़ों से मित्रता चाहता है। हेस्टिंग्ज़ ने जार्ज बोगल और हैमिल्टन सहित एक शिष्टमण्डल तिब्बत भेजा। बोगल को हेस्टिंग्ज़ ने आलू का बीज दिया जो वह चाहता था कि तिब्बत में उगाया जाय। बोगल को आदेश दिया गया कि वह तिब्बत की उपज, वहाँ के जीव जन्तुओं और वहाँ की जाति का अध्ययन भी करे। बोगल ने तिब्बत और भूटान के विषय में मूल्यवान् तथ्य एकत्रित किये। उस ने तिब्बत के लोहे के पुलों की विशेष रूप से प्रशंसा की है। उन में से एक १४७ फीट लम्बा था, और ६ फीट चौड़ा। वहाँ अनेक मठ थे जिन में भिक्षु और भिक्षुणियाँ रहती थीं। उन का जीवन सादा और सुखमय था। किसी प्रकार के प्रतिबन्ध उन पर न थे। एक एक मठ के निवासियों की संख्या ५ और ६ सहस्र के बीच में थी। दलाई लामा के विषय में बोगल ने लिखा है कि वह इतना अच्छा है कि उस में कोई दोष निकालना असम्भव है।

१७८० ई० में तेशू लामा की और १७८१ में बोगल की मृत्यु हो गई। इस के कारण अंग्रेज़ों और तिब्बतियों में मित्रता की सन्धि होते होते रह गई।

१७९० ई० में नेपाल में गोरखों ने शक्ति प्राप्त कर ली और उन्होंने दक्षिणी तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। तिब्बत के दलाई लामा ने अंग्रेज़ों से सहायता माँगी किन्तु उन्होंने सहायता देना स्वीकार न किया। उस ने चीन की सहायता से गोरखों को परास्त किया। अब गोरखों ने अंग्रेज़ों से सहायता मांगी किन्तु इस से निराश होकर उन्हें चीन की शरण लेनी पड़ी।

इसके पश्चात् टौमस मैनिंग और मूर क्रौफ ने तिब्बत की यात्रा की किन्तु तिब्बत पर प्रकाश डालने वाला ब्रियान हाउटन था जो नैपाल का रैज़ीडेंट भी रहा था।

१८८७ ई० में तिब्बती लोगों ने सिकिम पर आक्रमण किया

किन्तु उन्हें पीछे खदेड़ दिया गया। फिर तिब्बत में व्यापार केन्द्र स्थापित करने की चीन के साथ बात चीत आरम्भ हुई जिसके परिणाम स्वरूप १८९३ ई० में तिब्बत में एक स्थान पर मंडी खोली गई। परन्तु तिब्बत के लोग भारत के साथ व्यापार करने को तैयार न थे।

लार्ड कर्ज़न के समय तिब्बत के दलाई लामा को रूसी विचारों ने बहुत प्रभावित किया और उस का एक दूत रूस आने जाने लगा। इस पर अंग्रेज़ों को शंका हुई कि कहीं रूस तिब्बत में अपना प्रभाव स्थापित न कर ले। इसे बहाना बना कर कर्ज़न ने तिब्बत में मुहिम भेजने का प्रबन्ध किया जिस की आज्ञा उस ने गृह सरकार से ज्यों त्यों करके प्राप्त करली। मुहिम बहुत सफल हुई और ल्हासा तक जा पहुँची। दलाई लामा को अंग्रेजों की कड़ी शर्तें माननी पड़ीं जो तत्पश्चात् नरम कर दी गई।

तिब्बत के मामले में (१९०७ ई०) रूस और इंग्लैंड में समझौता हो गया। दोनों ने उस पर चीन का अधिकार स्वीकार किया और यह निर्णय किया कि कोई भी विदेशी ताकत तिब्बत में अपना अधिकार जमाने की चेष्ठा न करे। इस निर्णय से चीन को तिब्बत में खुली छुट्टी मिल गई। चीन के अत्याचारों से तङ्ग आकर दलाई लामा ने १९०८ ई० में अंग्रेज़ों की शरण ली किन्तु अंग्रेज़ी सरकार उस की सहायता करने को तैयार न हुई। दो साल पश्चात् चीन में क्रान्ति उत्पन्न हो गई और राजनैतिक स्थिति से विवश होकर चीनी सरकार ने दलाई लामा को पुनः तिब्बत का शासक स्वीकार किया। अब फिर तिब्बत को चीन का प्रान्त समझा जाने लगा है।

बर्मा एक पहाड़ी और जंगली देश है। यहाँ के रहने वाले बौद्ध मत के अनुयायी हैं। बर्मा का प्राचीन इतिहास कहानियों के रूप में

बर्मा से सम्बन्ध

उपलब्ध होता है। बर्मा का पहला ऐतिहासिक शासक अनव्रहता कहा जा सकता है जो १०१० ई० में पागन का राजा बना। उस समय पेगू में मौन लोग रहते थे जो द्रविड़ नसल के थे। बर्मी लोग मंगोल नसल से हैं। मौन व्यापारी थे। बर्मी राजाओं के साथ उन के चिरकाल तक युद्ध होते रहे। आखिर बर्मी लोग उन पर छा गए।

बर्मियों को अपने बल का गर्व था वे शूरवीर भी थे। उन्होंने समस्त बर्मा पर अधिकार कर लिया। आसाम भी इनके आधीन हो गया।

बर्मा की पहली लड़ाई—१८२२ ई०

१८१८ ई० में बर्मा के राजा ने अंग्रेजों से ढाका, मुर्शिदाबाद और चटागाँग की माँग की जो ठुकरा दी गई। १८२२ ई० में बर्मिबों ने शाहपुरी के टापू पर जो कम्पनी के आधीन था अधिकार प्राप्त कर लिया। इस पर अंग्रेजों ने बर्मा के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा कर दी। दो साल तक युद्ध होता रहा। अंग्रेजों की बहुत क्षति हुई किन्तु अन्ततः बर्मा के राजा को उन के साथ सन्धि करनी पड़ी जिस के अनुसार अराकान, तनासरिम और कछार का इलाका अंग्रेजों के हाथ आया। आसाम पर भी उनका अधिकार हो गया। बर्मा में बहुत से अंग्रेज व्यापारी जा कर रहने लगे।

बर्मा की दूसरी लड़ाई—१८५२ ई०

बर्मा में स्थित अंग्रेज़ व्यापारियों ने १८५१ ई० में भारत के गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी से शिकायत की कि उन के साथ बर्मा के राजा का व्यवहार अच्छा नहीं। लार्ड डलहौज़ी ने एक बेड़ा इस अभिप्राय से भेजा कि बर्मा के राजा को पाठ पढ़ाया जाय। बर्मियों ने बेड़े पर गोला बारी की जिस के कारण बर्मा की दूसरी लड़ाई आरम्भ हुई। अंग्रेज़ों की विजय हुई

और समस्त दक्षिणी बर्मा पर उन का अधिकार स्थापित हो गया।

१८७८ ई० में उत्तरी बर्मा के सिंहासन पर थीबा नाम का राजा आसीन हुआ। वह और उसकी रानी सुपायलता अति क्रूर थे। उन्होंने शाही कुटुम्ब के सैंकड़ों व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा।

थीबा फ्राँसीसियों से मैत्री स्थापित करना चाहता था जो हिन्द चीनी पर अपना अधिकार जमा बैठे थे। अंग्रेज़ों की वह अवहेलना करता था। अंग्रेज़ों ने अनुभव किया कि समस्त बर्मा को अंग्रेज़ी साम्राज्य में सम्मिलित कर लेने से ही वहाँ शान्ति स्थापित हो सकती है। थीबा ने फ्राँस, जर्मनी और इटली के साथ मैत्री स्थापित करने की चेष्टा की। १८८५ ई० में फ्राँसीसियों ने मांडले में बैंक खोल दिया। इस से अंग्रेज़ों को रोष आया। थीबा की सरकार ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध कई कदम उठाए। भारत के वाइसराय ने थीबा को युद्ध के लिए ललकारा और सन्धि की ऐसी शर्तें पेश कीं जो थीबा को स्वीकार न हो सकती थीं। अंग्रेज़ों ने उत्तरी बर्मा पर इरावदी नदी के मार्ग से आक्रमण कर दिया। बर्मियों ने लड़ाई किये बिना ही हार स्वीकार की और नए साल के दिन समस्त बर्मा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इस के पश्चात् बर्मी लोग दो साल तक गुरेला युद्ध करते रहे किन्तु आधुनिक साधनों की सहायता से अंग्रेजों ने बर्मा में शान्ति स्थापित की। बर्मा भारत का एक प्रान्त बना दिया गया। आसाम भी जिस पर बर्मियों का अधिकार था अंग्रेजों के आधीन हुआ। फिर १९३५ के इण्डिया ऐक्ट के अनुसार बर्मा को भारत से पृथक कर दिया गया।

चीन की सम्राज्ञी बर्मा पर अपना अधिकार समझती थी। उसने अंग्रेज़ों से खिराज की माँग की। इसी समय अंग्रेज़ों ने तिब्बत में व्यापारी शिष्ट मंडल भेजने की योजना बनाई जिसका तिब्बत के दलाई लामा ने बहुत विरोध किया। तिब्बत पर भी चीन का अधिकार था। चीनियों ने इस शर्त पर बर्मा पर से अपना

अधिकार छोड़ दिया कि अंग्रेज़ व्यापारी शिष्ट मंडल तिब्बत न जाय। इस बात पर समझौता हो गया।

चीन

१३६८ ई० में चीन के युआन वंश का स्थान मिंग वंश ने ले लिया था जो बहुत कुशलता से १६६४ ई० तक अध्यासीन रहा। इस वर्ष मांचू वंश ने मिंग वंश का स्थान ले लिया।

चीन में सामन्त शाही प्रथा थी जिसे कई बार समाप्त करने का प्रयत्न किया गया किन्तु यह पद्धति चीन की रगों में रम गई थी और इस का उन्मूलन न हो सका। सामंत अति शक्तिशाली होते थे। सम्राट् उनका धार्मिक नेता होता था जो उन पात्रों का संरक्षक समझा जाता था जो पूजा पाठ के लिए प्रयुक्त होते थे। इन पात्रों पर जो भी अधिकार स्थापित कर लेता चीन का सम्राट् कहलाता।

चीन का सम्राट् शक्तिशाली न होता था परन्तु भिन्न-भिन्न सामन्तों ने उसके नाम पर साम्राज्य का विस्तार किया। हिन्द चीनी, मलाया, बर्मा, थाईलैंड, तिब्बत, तुर्किस्तान, मङ्गोलिया, मंचूरिया आदि पर चीन का सम्राट् अपना अधिकार समझता था।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में चीन की शक्ति क्षीण हो गई। अंग्रेज़ चीन के साथ अफ़ीम का व्यापार करते थे जो उन्हें राजस्थान से प्राप्त होती थी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में चीनियों में और अंग्रेजों में युद्ध हुए जिनके फलस्वरूप हांग-कांग का सुन्दर टापु अंग्रेजों के हाथ आया और उन्हें चीन के साथ व्यापार करने की सुविधा मिल गई।

१८९८ ई० में पोर्ट आर्थर की बन्दरगाह चीनियों ने रूस को सौंप दी। जर्मनी और ब्रिटेन ने चीन की प्रमुख भूमि पर स्थान प्राप्त कर लिये। यूरोपियन धींगा-मुश्ती से काम लेते थे। शीघ्र ही चीनियों के मन में उनके प्रति घृणा के भाव उत्पन्न होगए और वहाँ एक समिति बन गई जिसके सदस्यों को "बौक्सर" अर्थात "मुक्के बाज़"

कहते थे। १६०० ई० में इन लोगों ने २५० यूरोपियनों और ३०,००० ईसाइयों का हनन कर दिया। साम्राज्ञी ने जो मूर्ख अपितु वीरांगणा थी, मुक्के बाज़ों का साथ दिया। जर्मनी के राजदूत को पीकिंग में गोली से उड़ा दिया गया और यूरोपियनों के दूतावासों का घेरा डाल लिया गया। यूरोपियनों की संयुक्त सेना जिस में २०,००० सैनिक थे पीकिंग की ओर बढ़ी और उसने दूतावासों को त्राण प्रदान किया। सम्राज्ञी पीकिंग छोड़ कर भाग गई। यूरोपियनों ने चीनियों पर घोर अत्याचार किये। उधर रूस ने मंचूरिया पर अधिकार स्थापित कर लिया।

मुक्के बाज़ों का ज़ोर कम हो गया। किन्तु चीन में जागृति उत्पन्न हो चुकी थी। १६०६ ई० में नये चीन का विधान बना। यह विधान जापानी ढंग पर था। १६११ ई० में चीन में क्रान्ति हुई और वहाँ १६१२ ई० में लोक तन्त्रीय राज्य स्थापित हुआ। इस क्रान्ति का नेता सनयातसेन था। चीन में सभी यूरोपियनों का प्रभाव कम हो गया। चीन एक आधुनिक देश बन गया।

फिर भी चीन में शान्ति स्थापित न हो पाई। जापान ने लगातार चीन से युद्ध किये और कहीं जाकर १६४५ ई० में जापान की हार हुई। इसके पश्चात चीन में गृह युद्ध छिड़ गये जिनका अन्त १६५२ ई० में हुआ और चीन ने साम्यवाद स्वीकार किया।

जापान

जापान की स्थिति प्रशांत महासागर में ऐसी ही है जैसी एटलांटिक महासागर में ब्रिटेन की। यहाँ की सभ्यता पर पीरू (दक्षिण अमेरिका) की सभ्यता का प्रभाव दीख पड़ता है परन्तु जापानी मंगोल हैं और वे मुख्यतः चीन से प्रभावित हुए हैं। उनकी एक रानी जिंगो ने ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दी में कोरिया पर अधिकार स्थापित किया था। यहाँ भी सामन्त शाही की प्रथा थी।

इतिहास के चित्र पट पर यह देश पहली बार सोलहवीं शताब्दी

में आया । पुर्तगाली पहले यूरोपियन थे जो यहाँ पहुँचे। उन्हों ने जापानियों में, जो बौद्ध मत के अनुयायी थे, ईसाई मत का प्रचार किया ।

इसके पश्चात बहुत सी यूरोपियन जातियाँ वहाँ पहुँची और उन में आपस में झगड़े होने लगे। जापानियों ने १९३८ ई० में अपने द्वार यूरोपियनों के लिये बन्द कर दिये। १८५३ ई० में जापान के तट पर अमेरिका के जहाज़ पहुँचे। अगले साल अमेरिकनों ने जापान की भूमि पर कदम रखा और उनके पीछे अन्य यूरोपियनों ने। उनके आगमन से जापान की पुरानी प्रथाएँ समाप्त हो गईं और यह एक आधुनिक देश बन गया। १८९९ ई० में वह किसी भी यूरोपीय शक्ति का मुकाबला कर सकता था। चीन में हुए १८९४ से १८९५ ई० तक के युद्धों में उसने भाग लिया था और उस ने सिद्ध कर दिया था कि वह यूरोप से किसी प्रकार पीछे नहीं।

इसके पश्चात १९०५ ई० में जापान की रूस से लड़ाई हुई जिसमें रूस को मुँह की खानी पड़ी। जापान के हौसले बढ़ गये और उस ने एशिया के सम्मुख एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया। महत्वाकांक्षा के कारण जापान को १९४५ ई० में भारी पराजय का मुँह देखना पड़ा।

परिच्छेद ३७

भारत का आर्थिक संकट

लार्ड क्लाइव ने मुर्शिदाबाद के विषय में लिखा था, "इतना ही विस्तृत, गुंजान और समृद्ध नगर है जितना लंदन। पर एक अन्तर है। मुर्शिदाबाद में बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास लंदन निवासियों से कहीं अधिक धन है।"

विपद का आपात

मुर्शिदाबाद जैसे अनेक नगर भारत में थे। बड़े बड़े उद्योग थे, व्यापार खूब बढ़ा हुआ था, यातायात की सुविधायें थीं। बी० ऐंस्टले नाम के एक यूरोपियन इतिहासकार ने लिखा है, "अठारहवीं शताब्दी तक भारत में उत्पादन और उद्योग तथा व्यापार के तरीकों की तुलना संसार के किसी भी देश से हो सकती थी।" अंग्रेज़ों के जब नैपोलियन के साथ युद्ध हो रहे थे तो भारत में एक अंग्रेज़ ऐडमिरल ने भारत के कारख़ाने में भारतीय कारीगरों द्वारा एक अति उत्तम जहाज़ बनवाया था।

महीन और सुन्दर वस्त्रों के लिए यूरोप भारत पर निर्भर था। १७६० ई० में यूरोप ने कपड़ा बुनने का नया ढंग खोज निकाला और उसके पश्चात् कपड़ा बुनने की मशीनें भाप की शक्ति से चलने लगीं। फिर भी यूरोप में भारत के माल की बहुत खपत थी। अंग्रेज़ों ने भारत के उद्योग को समाप्त करने का भरसक प्रयत्न किया। इस से पूर्व उन्होंने भारत को लूट कर अपने घर भर लिये थे और इङ्गलैंड इस स्थिति में था कि बड़े बड़े उद्योग स्थापित कर सके।

ऐडवर्ड टौमसन तथा गैरेट ने लिखा है, "स्वर्ण प्राप्त करने का जो जनून कोर्टीज और पिज़ारो के सिर पर सवार हुआ था उसका

उदाहरण भारत में भी मिलता है। जब तक अंग्रेजों ने बंगाल को चूस नहीं लिया उन्हों ने इसे चैन की साँस नहीं लेने दी।"

बंगाल, जो अपनी समृद्धि के लिये विख्यात था, १७७० ई० में अकाल का आखेट बना। इस दुर्भिक्ष का कारण क्या था? इसका उत्तर बंगाल के १७५७ से १७७० ई० तक के इतिहास से मिल सकता है।

परन्तु अकाल से भी अधिक भयानक अंग्रेज़ों की आर्थिक नीति थी। लार्ड बैण्टिक ने १८३४ ई० में लिखा था, "बंगाल में जो आपत्ति आई है व्यापार के इतिहास में उसका उदाहरण मिलना कठिन है। भारत के मैदानों को जुलाहों की हड्डियाँ रंग हीन किये जा रही है।".

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ५५ प्रतिशत लोग भूमि पर निर्भर थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में ७४ प्रतिशत। भूमि की दशा पहिले से बुरी थी। भूमि पर इतनी जनसंख्या का निर्वाह न हो सकता था। दरिद्रता स्वाभाविक थी।

भूमि का बन्दोबस्त भी दोषपूर्ण था। बंगाल का पक्का बन्दोबस्त उसके दुर्भाग्य का कारण बना।

लार्ड कार्नवालिस जिस ने स्थायी बन्दोबस्त को पोषण दिया एक ज़मींदार कुटुम्ब से था और वह ज़मींदारी को हितकर समझता था। किन्तु बंगाल में यह प्रथा स्थापित करने से न केवल देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई बल्कि कम्पनी की सरकार को भी बहुत घाटा रहा। जब भारत पर ब्रिटेन की लोक सभा का सीधा अधिकार हो गया तो इस प्रश्न पर बहुत बहस हुई कि स्थायी बन्दोबस्त का उन्मूलन कर दिया जाय या उसे कायम रखा

जाये। १८६१ ई० से १८८३ ई० तक विशेष रूप से वाद विवाद रहा। अन्त में १८८३ ई० में यह निर्णय हुआ कि जिन इलाकों में यह प्रथा चल रही है उन में कोई परिवर्तन न किया जाय। नए इलाकों में रय्यतवारी प्रथा चलाई जाय।

यह निर्णय हो जाने पर भी भारत की आर्थिक स्थिति न सुलझी। अंग्रेज़ों के शासन की सन्ध्या में भी बंगाल ने भीषण अकाल का अनुभव किया। अंग्रेज़ों के भारत छोड़ने के समय भी इस देश की आर्थिक दशा शोचनीय थी। इस परिच्छेद में हम उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के भारत पर एक दृष्टि डालते हैं।

आर्थिक समस्या

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम ने सिद्ध कर दिया था कि भारत के लोग अंग्रेज़ी राज्य से सन्तुष्ट नहीं। पार्लीमेंटें भी यह अनुभव करती थी कि कम्पनी की शासन विधि दोष पूर्ण है। इसी लिए उसे समाप्त कर दिया गया। लार्ड कैनिंग (१८५८-६२ ई०) भारत का पहला अंग्रेज़ वाइसराय बना। वह समझता था कि भारत के लोगों को सन्तुष्ट करने से ही सरकार की समस्याओं का हल निकल सकता है। वायसराय के रूप में उसका शासन काल सुधारों का काल है।

शासन में परिवर्तन

कम्पनी के शासन से पार्लीमेंट के आधीन हो जाने से भारत की शासन विधि में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। १८५३ ई० के चार्टर ऐक्ट के अनुसार सिविल सर्विस के लिये प्रतियोगिता होने लगी थी। कम्पनी के डाइरैक्टरों की संख्या २४ से १८ रह गई थी जिन में से ६ सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते थे। इस ऐक्ट में यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि कम्पनी भारत में महारानी विक्टोरिया की प्रतिनिधि के रूप में शासन करेगी। १८६१ ई० के ऐक्ट ने उस परिवर्तन को जो पहले ही आरम्भ हो चुका था, पूरा कर दिया।

बोर्ड आफ़ कण्ट्रोल के प्रधान का स्थान सैक्रेटरी आफ़ स्टेट फार इण्डिया (भारत सचिव) को दिया गया। उसे अनुमति देने के लिये १५ सदस्यों की एक समिति नियुक्त की गई। ८ सदस्य सरकार द्वारा नियुक्त किये गए, ७ की नियुक्ति कोर्ट आफ़ डाइरैक्टर्स ने की। भविष्य में रिक्तस्थान को पूरा करने का अधिकार इस समिति को ही दिया गया।

इस परिवर्तन का प्रभाव सेना पर स्पष्ट रूप से पड़ा। उस समय तक सेना के दो भाग होते थे, एक कम्पनी की सेना और दूसरी महारानी की सेना। ऐसे ही जल सेना भी भारतीय और रायल सेना में बंटी हुई थी। यह प्रथा अब समाप्त हो गई। अंग्रेज़ी सेना की मात्रा बढ़ा दी गई और तोपख़ाना गोरों के आधीन कर दिया गया।

१८५३ ई० के ऐक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ा कर १२ कर दी गई थी, जिस का मुख्य कार्य वैधानिक क्षेत्र तक सीमित था। शासन प्रबन्ध के लिये ४ सदस्य नियुक्त थे जो इस विस्तृत समिति के भी सदस्य थे। विस्तृत समिति में इनके अतिरिक्त गवर्नर जनरल, सेनापति, दो न्यायाधीश और चार बंगाल, मद्रास, बम्बई और उत्तर पश्चिमी प्रान्तीय सरकारों के प्रतिनिधि होते थे।

१८६१ ई० के ऐक्ट के आधार पर प्रबन्ध समिति के ५ सदस्य कर दिये गये। विधान सभा के सदस्यों में ६ से लेकर १२ तक की वृद्धि हो सकती थी जिन में से कम से कम आधे सदस्यों का गैर सरकारी होना ज़रूरी था। इन की नियुक्ति गवर्नर जनरल करता था।

बम्बई और मद्रास में विधान सभाएँ बना दी गई।

लार्ड कैनिंग ने जहाँ जनता को प्रसन्न करने की चेष्टा की वहाँ उन भारतीय शासकों को पदक प्रदान किये जिन्होंने अंग्रेज़ों का साथ

लार्ड कैनिंग का कार्य

दिया था। निज़ाम को सब से भारी इनाम मिला। वह इलाका जो उस ने १८५३ ई० में कम्पनी को दिया था उसे वापिस लौटा दिया गया और ५ लाख पौंड का ऋण जो उस के जिम्मे था, माफ़ कर दिया गया। अवध के उत्तर का कुछ जंगली इलाका नेपाल को भेंट हुआ। बड़ौदा के गाएकवाड़, सिन्धिया और भोपाल की बेगम तथा अन्य बहुत से सरदारों और नवाबों को भी इलाके भेंट किये गये या उन के राज्यकर की मात्रा में कमी कर दी गई। कइयों को 'सर' की उपाधि प्रदान की गई।

क्रान्ति के कारण भारत की आर्थिक समस्या ने विषम रूप धारण कर लिया था। इसे सुलझाने के लिये ब्रिटेन से विशेषज्ञ बुलाए गए जिन्होंने आय कर, आयात कर और नमक कर लगाकर बजट की कमी को पूरा किया। लार्ड कैनिंग के काल की अन्य प्रसिद्ध घटनाएँ ये थीं।

(१) १८५७ ई० में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में लंदन विश्वविद्यालय के साँचे के विश्वविद्यालय स्थापित किये गये।

(२) बर्मा में तनासरिम, पेगू और अराकान को मिलाकर एक प्रान्त बना दिया गया जिस के प्रबन्ध के लिये चीफ़ कमिश्नर नियुक्त किया गया।

(३) प्रान्तों में हाईकोर्ट स्थापित हुईं। सुप्रीम कोर्ट और सदर अदालत तोड़ दी गई। १८६० ई० में पीनल कोड जिसका निरूपण मैकोले ने १८३७ ई० में किया था, लागू कर दिया गया।

(४) १८५९ ई० में बङ्गाल रैण्ट ऐक्ट बंगाल, आगरा और मध्य प्रान्त पर लागू किया गया जिस के अनुसार उन कृषकों को भूमि अधिकार दे दिया गया जो विशेष खेतों पर १२ साल से अधिक समय से काम करते रहे थे। यह भी निर्धारित कर दिया गया कि

स्थायी बन्दोबस्त के आधीन जो कृषक १७९३ ई० से खेतों पर काम कर रहे हैं और बटाई दे रहे हैं उन की बटाई की मात्रा में कभी भी वृद्धि न हो सकेगी।

(५) शासन कार्य विभागों में बाँट दिया गया, अर्थात् गवर्नर जनरल की ऐक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के सदस्यों को स्वतन्त्रता से काम करने का अवसर प्रदान किया गया। वे उन्हीं मामलों पर गवर्नर जनरल से या अपने सहकारियों से अनुमति लेते थे जो विशेष महत्त्व रखते थे।

(६) सेना के परिमाण में कमी कर दी गई और तोप खाना ब्रिटिश सेना के आधीन किया गया।

लार्ड कैनिंग पर बहुत से आक्षेप किये जाते हैं और उस की नीति की त्रुटियाँ इंगित की जाती हैं किन्तु सामान्य रूप से हम कह सकते हैं कि उस ने ऐसे संकट काल में अपने देश की सेवा की जब भारतीय साम्राज्य अंग्रेज़ों के हाथ से निकला जा रहा था।

उत्तर पश्चिमी सीमा

दूसरा वाइसराय ऐल्गिन (१८६२-६३ ई०) बहुत विद्वान् था और कैनेडा और जमैका का गवर्नर रह चुका था। वह चीन में राजदूत भी नियुक्त हुआ था। उस की मृत्यु के पश्चात् सर जौन लारैंस (१८६६ ई० तक) जो पंजाब का चीफ़ कमिश्नर रह चुका था वाइसराय नियुक्त हुआ। पञ्जाब की उत्तर पश्चिमी सीमा पर अशान्ति फैली हुई थी। लारैंस भारत के इस भाग से खूब परिचित था। वाइसराय के रूप में उस की नियुक्ति का यह बहुत बड़ा कारण था।

जौन लारैंस कम्पनी में एक साधारण क्लर्क भरती हुआ था। उस ने अपनी योग्यता से यह उच्च पद प्राप्त किया था। उस का स्वभाव ज़िद्दी था। अपने मातहतों से सख्ती का बर्ताव करता था किन्तु काम में बहुत चतुर था। उस की नियुक्ति के विषय में कई

आपत्तियाँ उठाई गई थीं जो उचित सिद्ध हुईं। वह वाइसराय के रूप में इतना सफल नहीं हुआ जितनी उस से आशा की गई थी।

उत्तर पश्चिमी सीमा पर उस के आने से पहले ही शान्ति स्थापित हो चुकी थी। उधर वाहिबी नाम का एक कबीला रहता था जिस की धाक पटना तक बैठी हुई थी। वाहिबी अंग्रेज़ों के अपराधियों को आश्रय देते थे और अवसर पाने पर पञ्जाब में छापे मारते थे। १८५३ ई० और १८५८ ई० में उन्हें दण्ड देने और पाठ पढ़ाने के लिये सेना भेजी गई। उन का गढ़ ख़ाली करवा लिया गया किन्तु १८६३ ई० में उन्होंने पञ्जाब पर पुनः छापे मारने आरम्भ किये। उन के दमन के हेतु एक भारी अंग्रेज़ सेना भेजी गई। वाहिबियों ने डट कर मुकाबला किया। स्थिति ऐसी हो गई कि भारत सरकार सेना को वापिस बुलाने की योजना बनाने लगी किन्तु सर ह्यू रोज़ ने, जो भारत का सेनापति था और जिस ने क्रान्तिकारियों पर विजय प्राप्त की थी, इस योजना का विरोध किया। दिसम्बर १८६३ ई० में वाहिबियों की शक्ति कुचल दी गई।

भूटान से युद्ध
१८३५ ई०

विक्टोरिया की घोषणा के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने आश्वासन दिलाया था कि भारत में अंग्रेज़ अपने राज्य का विस्तार न करेंगे किन्तु लारैंस ने भूटान का कुछ इलाका अंग्रेज़ी साम्राज्य में शामिल कर लिया।

कृषि सुधार

जौन लारैंस की सहानुभूति किसानों के साथ थी। उसी के काल में (१८६८ ई०) पञ्जाब और अवध के लिये कृषि सम्बन्धी कानून पास हुये। इस विषय में उसे जौन स्टूअर्ट मिल जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त था। ये कानून कृषि विभाग के मार्मिक कानून समझे जाते हैं।

लारैंस की असफलता का बड़ा कारण उड़ीसा का दुर्भिक्ष था।

उड़ीसा का दुर्भिक्ष —१८६६ ई०

आयात निर्यात के मार्ग कठिन थे इस लिये उड़ीसा के लोगों की सहायता न हो सकी। दस लाख से भी अधिक व्यक्ति भूख का शिकार हुए। जो बचे उन में से बहुतों को महा नदी की बाढ़ ने आ डुबाया।

१८६८ —६९ ई० के दुर्भिक्ष का प्रभाव बुन्देल खण्ड और राजस्थान पर अधिक पड़ा। इस दुर्भिक्ष के पश्चात् सरकार ने यह घोषणा की कि भूखों को मौत के मुँह से बचाना सरकारी अफ़सरों की जिम्मेदारी है।

अमेरिका का घरेलू युद्ध और उसका भारत पर प्रभाव

लारैंस के वाइसरायो हते हुये भारत सरकार को एक भारी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। इस का एक बहुत बड़ा कारण अमेरिका का घरेलू युद्ध था। १७७६ ई० में अमेरिका के तेरह राज्यां ने मिलकर संयुक्त राज्यों की स्थापना की थी। ये राज्य दो भागों में बँट गए। एक दक्षिणी और एक उत्तरी। दक्षिणी राज्यों में दास प्रथा प्रचलित थी।

इसी विषय पर मत भेद होने के कारण दक्षिणी राज्य संघ से पृथक् हो गये। उत्तरी राज्यों के लोग सब राज्यों को मिलाकर रखना चाहते थे। १८६१ ई० में दोनों पक्षों में घमासान का युद्ध हुआ। इस डर से कि कहीं अंग्रेज़ दक्षिण वासियों की सहायता न करें, अमेरिका की बन्दरगाहें अंग्रेज़ों के लिये बन्द कर दी गईं। इङ्गलैंड के कपड़े के कारखानों को अमेरिका की रुई मिलनी बन्द हो गई। वहाँ भारत से रुई जाने लगी और रुई का भाव बहुत चढ़ गया। इन्हीं दिनों भूमि कर निर्धारित किया जा रहा था। उसकी मात्रा अधिक नियत की गई किन्तु शीघ्र ही अमेरिका की बन्दरगाहें खुल गईं। भारत की रुई की माँग कम हो गई और उसका भाव गिर गया। भारत में व्यापार करने वाली

कई अंग्रेज़ कम्पनियों के दिवाले निकल गये । उधर यह आपत्ति आई हुई थी इधर सरकारी भवनों के निर्माण में धन व्यय हो रहा था । नहरों और जनता की भलाई के कामों पर भी बहुत रुपया खर्च हुआ जिनका लाभ आगे जाकर हुआ ।

लारैंस के पाँच साला शासन काल में सरकारी बजट में २५ लाख रुपये का खसारा रहा । इस के विषय में लारैंस पर कटाक्ष होना स्वाभाविक था ।

लारैंस पर की गई आलोचना का प्रमुख विषय उसकी अफ़गानिस्तान के प्रति नीति थी । वह चाहता था कि अफ़गानिस्तान के घरेलू मामले में हस्तक्षेप न किया जाय और सीमान्त पर रहने वाले कबीलों के साथ मित्रता स्थापित की जाय । १८७८ ई० तक इसी नीति के अनुसार कार्य होता रहा और जब इस नीति का परित्याग किया गया तो अंग्रेज़ों को पछताना पड़ा ।

संकट टालने के अधूरे उपाय

लार्ड मेयो (१८६९-१८७२ ई०) की नियुक्ति ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री डिज़रेली ने की थी जो वहाँ की टोरी पार्टी का नेता था । मेयो अभी पद ग्रहण करने न पाया था कि टोरी पार्टी की हार हो गई और लियरल पार्टी ने बहुमत प्राप्त कर लिया । इसका नेता ग्लैडस्टन था जो आयरलैंड को स्वराज्य दिलाने के लिये प्रसिद्ध है । मेयो की योग्यता देखते हुए ग्लैडस्टन ने उसकी नियुक्ति को बरकरार रखा ।

मेयो के सम्मुख भारत की विषम आर्थिक समस्या थी । उसने उन प्रान्तों में नमक कर की मात्रा बढ़ा दी जिन में यह मात्रा कम थी । आय कर की मात्रा भी बढ़ा दी गई । सरकारी व्यय को भी कम किया गया ।

इस से पूर्व यह प्रथा थी कि प्रान्तीय सरकारों को जो धन दिया जाता था वह उसी मद्द में व्यय करना होता था जिसके लिये वह नियत होता था । प्रान्तीय सरकारें यदि इस में से कुछ बचा लेती थीं तो अवशेष केन्द्रीय सरकार को लौटाना पड़ता था । इस नीति का परिणाम यह होता था कि प्रान्तीय सरकारें दिल खोल कर धन की माँग करती थीं और दिल खोल कर उसे ख़र्च करती थीं । लार्ड मेयो ने यह नीति निर्धारित की कि प्रान्तीय सरकारें जिस मद में चाहें उस धन को जो उन्हें केन्द्रीय सरकार से प्राप्त होता है ख़र्च कर सकती हैं । यदि एक मद में बचत हो तो उसका लाभ दूसरे मद में उठाया जा सकता है । इस प्रकार वहुत सी फ़ज़ूल ख़र्ची बच गई । बजट में ख़सारे के स्थान पर बचत दिखाई देने लगी ।

लार्ड मेयो ने कृषि और व्यापार विभाग का निर्माण किया । उसके काल में भारत में पहली जन-गणना हुई ।

शक्ति की नीति

अफ़गानिस्तान के विषय में लार्ड मेयो ने लारैंस की नीति पर अमल किया । १८६३ ई० में जब दोस्त मुहम्मद की मृत्यु हुई अफ़ग़ानिस्तान में गृह युद्ध छिड़ गया । १८६८ ई० में काबुल के सिंहासन पर शेर अली आसीन हुआ । वह अंग्रेज़ों के साथ मैत्री स्थापित करना चाहता था । लारैंस ने शेर अली को भारत आने की आज्ञा दी किन्तु यह भेंट होने से पूर्व ही लारैंस भारत छोड़ कर चला गया । अतएव यह भेंट लार्ड मेयो और शेर अली के बीच हुई । लार्ड मेयो लारैंस की नीति से सहमत था इस लिये उस ने शेर अली को सहायता करने की हामी न भरी । किन्तु शेर अली गवर्नर जनरल के व्यवहार से इतना प्रसन्न हुआ कि कुछ प्राप्त किये बिना भी वह अंग्रेज़ों का मित्र बना रहा । शेर अली पर अंग्रेज़ी

सभ्यता का इस सीमा तक प्रभाव पड़ा कि उस ने अफ़ग़ानिस्तान के मोचियों को हुक्म दिया कि भविष्य में वे केवल अंग्रेज़ी ढंग के जूते बनाएँ।

लार्ड मेयो अण्डेमान टापू का दौरा कर रहा था कि एक पठान ने उसे क़त्ल कर दिया। ग्लैडस्टन ने लार्ड नौर्थ ब्रुक (१८७२-७६ ई०) को जो उसके मन्त्रि-मण्डल का सदस्य था भारत का वाइसराय नियुक्त किया।

नहर स्वेज़ का उद्घाटन
१८६९ ई०

नौर्थ ब्रुक सुलझा हुआ स्वतन्त्र विचार व्यकित था। उस ने कहा था कि उसका ध्येय कर हटाना और निरर्थक कानूनों का उन्मूलन करना है। वह सोये शेरों को जगाने के पक्ष में न था और देश में शान्ति चाहता था। आर्थिक समस्या को वह खूब समझता था। १८७३-७४ ई० के दुर्भिक्ष को छोड़ कर उसके काल में भारत में शान्ति और समृद्धि रही।

इस समृद्धि का एक कारण यह था कि १८६९ ई० में नहर स्वेज़ खोल दी गई थी। इससे भारत और यूरोप में व्यापार बढ़ गया।

लार्ड नौर्थब्रुक ने आय कर हटा दिया। आयात कर १० प्रतिशत से घटा कर ५ प्रतिशत कर दिया और लाख, तेल, नील और चावल को छोड़ कर अन्य समस्त निर्यात पर से कर हटा दिया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उस ने नमक का कर कम नहीं किया। इस से यह स्पष्ट होता है कि वह किसानों और निर्धन जनता का हितैषी न था बल्कि यूरोपियन व्यापारियों, जागीरदारों और अन्य धनाढ्य लोगों को लाभ पहुँचाना चाहता था।

करों में कमी

दुर्भिक्ष

जनता को १८७३ ई० के दुर्भिक्ष के संताप से बचाने के लिये उस ने भारी प्रवन्ध किया । यही कारण था कि इस ने विषम रूप धारण नहीं किया । किन्तु अगले वाइसराय लार्ड लिटन (१८७६-८० ई०) के काल में फिर भारी अकाल पड़ा

अफ़ग़ानिस्तान के मामले में नौर्थब्रुक निष्पक्ष था । ग्लैडस्टन की सरकार उस से सहमत थी किन्तु १६७४ ई० में टोरी पार्टी ने पुनः शक्ति प्राप्त कर ली और डिज़रैली प्रधान मन्त्री बना । डिज़रैली की सरकार और नौर्थब्रुक में अफ़ग़ानिस्तान के विषय में बहुत मत भेद रहा ।

लार्ड लिटन साहित्य का प्रेमी था। वह यूरोप के कई देशों में राजदूत रह चुका था । उसे अपनी योग्यता का घमण्ड था।

लिटन के भारत आते ही अकाल पड़ा, जो दो साल तक जारी रहा । इस का प्रभाव मद्रास, बम्बई, हैदराबाद और मैसूर पर अधिक पड़ा । दूसरे साल मध्य भारत और पञ्जाब पीड़ित हुए । उस के पश्चात् हैज़ा और ज्वर के अभिशाप ने लोगों को आ घेरा । सरकार की ओर से यह संकट दूर करने के जो उपाय किये गये उन में सदैव यह विचार रखा गया कि कहीं अधिक धन व्यय न हो जाय । पचास लाख व्यक्ति दुर्भिक्ष का शिकार हुये । लाखों एकड़ भूमि बंजर हो गई । राजस्व में करोड़ों रुपये की कमी पड़ गई ।

दुर्भिक्ष रोकने के उपाय

सरकार ने निश्चय किया कि इस के पश्चात् दुर्भिक्ष को रोकने का प्रबन्ध भी किया जाय और वार्षिक बजट में आपत्ति काल के लिये धन व्यय करने का आयोजन किया जाय । दुर्भिक्ष से पीड़ित व्यक्तियों में से जो काम करने के योग्य

हों उन्हें काम पर लगाया जाय। रेलें जारी करने और नहरें खोदने का भी प्रबन्ध किया गया, विशेषतया उन इलाकों में जहाँ दुर्भिक्ष ने विषम रूप धारण कर लिया था।

लिटन के काल की दूसरी प्रमुख घटना थी नमक के कानून में परिवर्तन। इस से पूर्व प्रत्येक रियासत और प्रान्त में नमक कर की मात्रा पृथक् पृथक् होती थी। एक स्थान से दूसरे स्थान पर चोरी से नमक आया जाया करता था। इस चोरी को रोकने के लिये सरकार को बहुत धन व्यय करना पड़ता था। लिटन की सरकार ने रियासतों से समझौते कर समस्त देश में नमक कर की मात्रा लगभग एक सी निर्धारित की।

१८७८ ई० में २९ चीज़ों पर से आयात कर हटा दिया गया। रुई के वस्त्रों पर लगाया गया आयात कर हटाने के लिये गृह सरकार ने लार्ड लिटन की सरकार पर बहुत दबाव डाला। इस कर के हटाने के विरुद्ध यह युक्ति थी कि लंकाशायर के पूजीपतियों के अधिकारों की रक्षा के लिये अंग्रेज़ी सरकार को दरिद्र नहीं बनाया जा सकता। किन्तु लार्ड लिटन ने १८७९ ई० में रुई के वस्त्रों पर से भी आयात कर हटा दिया। अब भारत पर स्वतन्त्र व्यापार का नियम पूर्ण रूप से लागू हो गया।

उसी साल दक्षिणी भारत की कृषि को प्रोत्साहन देने के लिये एक कानून पास हुआ।

१८७७ ई० में प्रान्तीय सरकारों को धन की सहायता देने की अपेक्षा राजस्व में से भाग दे दिया गया।

लार्ड लिटन का अर्थ मन्त्री सर जौन स्ट्रैची था जिस ने ये सब सुधार किये। किन्तु स्ट्रैची से सेना के बजट के विषय में बहुत बड़ी भूल हुई। इस भूल से केन्द्रीय सरकार को एक करोड़ से भी अधिक का नुक्सान उठाना पड़ा। इस में से पचास लाख रुपया गृह सरकार ने दिया

भारतीयों की उपेक्षा

१८७६ ई० में एक विशेष प्रकार की सेवा स्थापित की गई जिसे स्टैटुटैरी सिविल सरविस कहते थे। भारत में इस से पहिले आम तौर पर दो प्रकार की सरकारी नौकरियाँ होती थीं—एक साधारण और दूसरी कवेनैंटेड। दूसरी प्रकार की नौकरियों पर प्रायः यूरोपियन ही नियुक्त किये जाते थे। १८३३ ई० के चार्टर ऐक्ट और विक्टोरिया की घोषणा के अनुसार ये पद भारतीयों को भी दिये जाने चाहिये थे किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इण्डियन सिविल सरविस के लिये इङ्गलैंड में प्रतियोगिता होने लगी जिस में भारतीय भी बैठ सकते थे किन्तु उन के लिये इङ्गलैंड जाना कठिन था, इस लिये गिने चुने व्यक्ति ही इस सुविधा का लाभ उठा सकते थे। नई सेवा स्थापित हो जाने से भारतीयों को वे उच्च ओहदे मिलने लगे जिनका दर्जा पहली दो सेवाओं के बीच होता था। कुछ वर्ष पश्चात् यह सेवा तोड़ दी गई।

१८७८ ई० में लिटन ने हिन्दुस्तानी भाषाओं में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं के विषय में एक कानून पास किया जिसे वरनैक्यूलर प्रैस ऐक्ट कहते हैं। पत्रिकाओं को यह लिख कर देने के लिये बाध्य किया गया कि वे कोई अनुचित सामग्री प्रकाशित न करेंगी या छापने से पहिले सामग्री जाँच पड़ताल के लिये सरकार को भेजेंगी। इस कानून को अगले वाइसराय लार्ड रिपन ने वापिस ले लिया।

पहली जनवरी १८७७ ई० को जब भारत दुर्भिक्ष से पीड़ित था लार्ड लिटन ने दिल्ली में एक बहुत बड़ा दरबार लगाया और उस में घोषणा की कि विक्टोरिया को क़ैसरे हिन्द (भारत की सम्राज्ञी) कहा जायगा।

दुर्भिक्ष, सेना के व्यय में भूल और वरनैक्यूलर प्रैस ऐक्ट के कारण लार्ड लिटन की कड़ी आलोचना हुई। किन्तु उसने

सब से बड़ी गलती अफ़गानिस्तान के मामले में की जिसका वर्णन हम पहले कर आये हैं।

अफ़ग़ानिस्तान का मामला

लार्ड लिटन ने अफ़ग़ानिस्तान से टक्कर लेकर भूल की थी। इसका परिणाम अंग्रेज़ों के लिये अच्छा न हुआ। लार्ड रिपन ने (१८८०-१८८४ ई०) आते ही अफ़ग़ानिस्तान की समस्या को सुलझाया और वहाँ के अमीर से मित्रता स्थापित की।

सुधार

लार्ड रिपन के काल में भारत की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। बजट में ख़सारे की अपेक्षा बचत दिखाई देने लगी। १८८२ ई० में लार्ड रिपन ने आयात कर बिलकुल हटा दिये और भारत के साथ इङ्गलैंड का स्वतन्त्र व्यापार होने लगा। नमक, मदिरा, और शस्त्रों के अतिरिक्त अन्य सभी चीज़ों पर से कर हटा दिया गया। नमक का कर कम कर दिया गया। १८८३ ई० में ब्रिटिश सरकार ने यह निर्णय कर लिया था कि स्थायी बन्दोबस्त का नियम बंगाल तक ही सीमित रहेगा। रिपन ने सुझाव दिया कि सरकार अपनी यह नीति बनाये कि जहाँ तक सम्भव हो भूमि कर की मात्रा बढ़ाई न जाय किन्तु उसका यह सुझाव स्वीकार न हुआ।

१८७२ ई० से बम्बई के कार्पोरेशन के सदस्यों का चुनाव होने लगा था। उसके पश्चात् मद्रास, कलकत्ता और अन्य बड़े नगरों में भी चुनाव की प्रथा स्थापित हो गई। लार्ड रिपन ने उन स्थानों पर जहाँ यह प्रथा न थी म्यूनिसिपल कमेटियाँ और लोकल बोर्ड स्थापित किये। इन के सदस्यों को वे लोग चुनते थे जो कर देते थे। इन संस्थाओं को धन व्यय करने का अधिकार था किन्तु उन की कार्यवाही की डिप्टी कमिश्नर या कलैक्टर निगरानी करता था। शिक्षा और जनता की भलाई के काम इन संस्थाओं के सुपुर्द हुये।

लार्ड लिटन ने वर्नैक्यूलर प्रैस ऐक्ट द्वारा देशीय भाषाओं में छपने वाली पत्रिकाओं पर प्रतिबन्ध लगाये थे। लार्ड रिपन ने इस ऐक्ट को मन्सूख़ कर दिया।

१८५४ ई० में अंग्रेज़ी सरकार ने भारत में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध किया था। लार्ड रिपन ने शिक्षा की जाँच पड़ताल के लिए एक समिति नियुक्त की और प्रारम्भिक शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत किया।

लार्ड रिपन ने एक कानून पास किया जिस के अनुसार यूरोपीय और भारतीय लोगों का जातीय भेद भाव मिटा दिया गया। प्रथा यह थी कि एशियाई मैजिस्ट्रेट किसी यूरोपियन के विरुद्ध अभियोग नहीं सुन सकते थे। भारतीय मैजिस्ट्रेटों के लिये यह मान हानि का प्रश्न था। रिपन के इस कानून द्वारा यह भेद भाव हटा दिया गया। इस कानून को ऐल्बर्ट ऐक्ट कहते थे। यूरोपीय लोगों ने इसका विरोध किया जिसके कारण एल्बर्ट ऐक्ट में सुधार करना पड़ा। यूरोपियनों को यह सुविधा दी गई कि यदि वे चाहें तो ज्यूरी की माँग कर सकते हैं जिस के आधे सदस्य अमरीकी या योरोपियन होंगे।

१८८१ ई० में लार्ड रिपन ने फैक्ट्री ऐक्ट पास किया जिसके अनुसार ७ से १२ साल तक के बच्चों के लिये फैक्ट्रियों में काम करने का समय नियत कर दिया गया। फैक्ट्री के मालिक को आदेश दिया गया कि ख़तरनाक मशीनों के इर्द गिर्द जंगला लगाया जाय जिस से दुर्घटना की सम्भावना न रहे।

लार्ड रिपन के मन में जनता की स्वातंत्र्य भावना के प्रति सहानुभूति थी। रिपन की सद्भावना और शिष्टाचार ने भारतीयों के मन में घर कर लिया। वह पहला वाइसराय था जो भारत में सर्वप्रिय बना। उसके पश्चात् लार्ड माउँटबेटन को यह श्रेय प्राप्त हुआ।

इंडियन नैशनल काँग्रेस की स्थापना— १८८५ ई०

लार्ड डफरिन (१८८४ से १८८८ ई०) २० वर्ष तक इङ्गलैंड में भारतीय उपसचिव रह चुका था। वह टर्की, रूस और मिश्र में राजदूत भी रहा था। वह उच्च कोटि का व्यक्ति था। उसके शासन काल की सब से महत्त्वपूर्ण घटना एक ऐसी संस्था की स्थापना थी जिसने आगे चल कर अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर किया।

लार्ड रिपन चाहता था कि भारत में ऐसी संस्था की स्थापना की जाय जो जनता के विचारों को सरकार तक पहुँचा सके। ह्यूम नाम के अंग्रेज़ ने इस सुझाव को वास्तविक रूप दिया और १८८५ ई० में इंडियन नैशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। इस का पहला अधिवेशन बम्बई में हुआ। पहले-पहले सरकार ने इस संस्था को बहुत प्रोत्साहन दिया किन्तु तीसरे अधिवेशन में यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस सरकार विरोधी संस्था है।

अफ़ग़ानिस्तान से युद्ध और बर्मा का अंग्रेज़ी राज्य में सम्मिलित होना उस के काल की महत्त्व पूर्ण घटनाएँ थीं।

१८८५ ई० में बंगाल टैनेसी ऐक्ट पास हुआ। इस के अनुसार बङ्गाल के किसानों को उस से भी अधिक सुविधाएँ प्राप्त हुईं जो उन्हें १८५९ ई० के बङ्गाल रैंट ऐक्ट में दी गई थीं।

दूसरा ऐक्ट अवध के किसानों की सहायता के लिये पास किया गया। तीसरा कानून १८८७ में पञ्जाब के किसानों के अधिकारों की रक्षा के हेतु पास हुआ।

नई उलझन

लार्ड लैन्ज़डाउन (१८८८ से १८९४ ई०) के भारत आते ही एक विचित्र समस्या उत्पन्न हो गई। अमेरिकन देशों में चाँदी की खानें निकल आने से चाँदी का भाव गिर गया। कई देशों में चाँदी का सिक्का चलता था। भारत भी इन में से एक था। इस के

विपरीत इंग्लैंड में सोने का सिक्का जारी था। उसका मूल्य कम नहीं हुआ।

१८७३ ई० से पहले एक रुपया दो शिलिंग ३ पैंस में बदला जा सकता था किन्तु अब रुपये का मूल्य गिरने लगा और १८६० ई० में रुपये का मूल्य १ शिलिंग ४ पैंस हो गया जो १८६२ में केवल १ शिलिंग १ पैंस रह गया।

भारत इंग्लैंड का ऋणी था। प्रति वर्ष बहुत सा धन भारत से इंग्लैंड जाता था। अकस्मात् इस ऋण की मात्रा बढ़ गई अर्थात् अब भारत को एक के दो देने पड़े।

भारतीय सरकार की आर्थिक अवस्था बिगड़ गई। साधारण लोगों को भी संकट का सामना करना पड़ा। कुछ ऐसे लोग भी थे जिन को इस स्थिति से लाभ हुआ। वे ऐसे पदार्थ उत्पन्न करते थे जिन की इंग्लैंड में खपत थी।

सरकार को आय कर लगाना पड़ा। किन्तु इस से भी कोई विशेष लाभ न हुआ। आखिर १८६३ ई० में चाँदी के सिक्के ढालने कम कर दिये गए और एक पौंड का मूल्य पन्द्रह रुपये निर्धारित किया गया। इसके पश्चात् भी रुपये की कीमत गिरती गई। १८६५ ई० में कहीं जाकर स्थिति संभली।

१८६० ई० में मनीपुर राज्य में बग़ावत हो गई जिसे दमन करने के लिये आसाम का चीफ़ कमिश्नर ४०० सैनिकों का दस्ता लेकर मनीपुर पहुँचा। मनीपुर के सेनापति ने धोखे से चीफ़ कमिश्नर और तीन अंग्रेज़ अफसरों को मार डाला। शेष अफसर और सैनिक वहाँ से भाग आये।

अंग्रेज़ों की एक भारी सेना मनीपुर की ओर बढ़ी। इस की राजधानी पर अधिकार प्राप्त कर लिया गया। किन्तु इस राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया।

१८९२ ई० में कलात के खान ने बहुत से व्यक्तियों को फाँसी पर लटका दिया। भारतीय सरकार ने उसे क्वेटा में बुलाया जहाँ कलात के सरदारों ने उसे गद्दी से उतारने का निर्णय किया।

लार्ड लैंज़डाउन के काल में फैक्ट्री ऐक्ट पास हुआ जिस के अनुसार स्त्रियों के लिये काम करने के ११ घण्टे प्रतिदिन नियत हुए। फैक्ट्रियों में काम करने वाले बालकों के लिये कम से कम आयु सात की अपेक्षा नौ और अधिक से अधिक आयु ११ की अपेक्षा १४ कर दी गई। उन से केवल सात घण्टे काम लिया जा सकता था और वह भी केवल दिन के समय। सप्ताह में सब के लिये एक दिन की छुट्टी का नियम लागू किया गया।

एज आफ़ कंसेंट में कन्याओं के विवाह के लिये उनकी आयु की शर्त लगा दी। दस साल तक की कन्या का विवाह न हो सकता था। अब यह आयु बढ़ा कर १२ साल कर दी गई।

१८८६ ई० में उत्तर प्रदेश में जिसे उस समय उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त कहते थे अन्य प्रान्तों की भाँति विधान सभा स्थापित कर दी गई थी। १८९२ ई० में एक नया ऐक्ट पास हुआ जिसके अनुसार इस सभा का विस्तार किया गया।

वाइसराय की विधान सभा में १० से १६ तक नये सदस्य लिये जाने लगे। इन में से अधिक से अधिक ६ सदस्य ऐसे हो सकते थे जो सरकारी अफ़सर रह चुके हों। शेष विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि होते थे जिनका चुनाव प्रान्तीय विधान सभाएँ या व्यापार मण्डल करते थे।

मद्रास और बम्बई की विधान सभाओं का भी विस्तार किया गया। प्रत्येक में ६ सरकारी और ११ गैर सरकारी सदस्य और बढ़ा दिये गये। गैर सरकारी सदस्यों का चुनाव स्थानीय सरकारें, विश्वविद्यालय और व्यापार मण्डल करते थे।

वाइसराय की विधान सभा में बजट पेश होने लगा और सदस्यों को उस पर बहस करने का अधिकार दिया गया।

सिविल सर्विस में सुधार

१८९२ ई० में सिविल सर्विस में भी सुधार किया गया। स्टैंटुटैरी सिविल सर्विस तोड़ दी गई। सिविल सर्विस के तीन भाग कर दिये गये। एक इम्पीरियल इण्डियन सिविल सर्विस, दूसरे प्रान्तीय और तीसरे सबौर्डीनेट सर्विस। पहली श्रेणी के लिये इङ्गलैंड में प्रतियोगिता होती थी, अन्य दो श्रेणियों के लिये भारत में ही भरती की जाती थी।

लार्ड लैंजडाउन को रुपये की कीमत गिर जाने से आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा किन्तु उस के उत्तराधिकारी लार्ड ऐल्गिन को विशेष रूप से कठिनाईयां पेश आईं।

लार्ड ऐल्गिन द्वितीय (१८९४ से १८९९ ई०) लार्ड ऐल्गिन प्रथम का जो १८६२-६३ ई० में वाइसराय रहा, पुत्र था। उस का सम्बन्ध स्काटलैंड के एक स्वतन्त्र-विचारों वाले कुटुम्ब से था। उस के विषय में प्रसिद्ध था कि वह गम्भीर और सावधान राजनीतिज्ञ है। भारत में रहते हुए वह प्रायः सरकारी अफ़सरों की राय पर चलता रहा। किन्तु उस के काल में भारत की दशा एक झंझामय सागर की भाँति थी जिसे संभालना सुगम न था। यह ऐल्गिन की योग्यता का प्रमाण है कि यह काल शान्तिपूर्वक व्यतीत हो गया।

आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिये ऐल्गिन ने रुई के वस्त्रों को छोड़ कर अन्य सभी आयात पर ५ प्रतिशत कर लगा दिया। अगले साल रुई के वस्त्रों पर भी कर लगा दिया गया। भारत के बने हुए कपड़े पर भी कर लगाया गया। १८९६ ई० में कर की मात्रा घटा कर ३½ प्रतिशत कर दी गई।

१८९५ ई० के पश्चात् रुपये का मूल्य बढ़ने लगा और १ शिलिंग ४ पैंस तक पहुँच गया। सरकार इस मूल्य को स्थायी रखना चाहती थी। भारत में सोने का सिक्का जारी किया गया जिसका मूल्य १५ रुपये निर्धारित हुआ।

१८९५ ई० में बम्बई, मद्रास, बंगाल और पञ्जाब की सेना को मिला कर एक संयुक्त सेना बना दी गई जो अब चार की अपेक्षा एक सेनापति के आधीन हो गई। इन चारों इलाकों की सेना के प्रबन्ध के लिये चार लैफ्टिनैण्ट जनरल सेनापति के आधीन नियुक्त हुए।

१८९५ ई० में उस समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई जो अफ़ीम के विषय में पड़ताल करने के लिये १८९३ ई० में नियुक्त हुई थी।

चीन के साथ अफ़ीम का व्यापार

अफ़ीम बनाने का काम भारत सरकार के अधीन था। बहुत सी अफ़ीम चीन में भेजी जाती थी, कुछ की खपत भारत में थी। ब्रिटेन की जनता की माँग थी कि सरकार अफ़ीम बनाना बंद कर दे। किन्तु आय का प्रश्न था। यह निर्णय हुआ कि भारत सरकार अफ़ीम बनाए किन्तु चीन को अफ़ीम भेजना धीरे-धीरे बन्द कर दे।

दुर्भिक्ष और प्लेग

१८९६ ई० में भारत में भारी अकाल पड़ा। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बरार, बंगाल का कुछ भाग, मद्रास, बम्बई, राजस्थान, और उत्तरी बर्मा पर इस का प्रभाव पड़ा। दुर्भिक्ष से कहीं अधिक हानि प्लेग ने पहुँचाई जो अगस्त १८९६ ई० में फैलने लगी। संभवतः यह चीन से भारत आयी थी। इसे रोकने की बहुत चेष्टा की गई किन्तु इस का विस्तार बढ़ता ही गया और धीरे धीरे समस्त देश इस से पीड़ित हुआ।

कहा जाता है कि प्लेग पहले पहल ४३१ ई०पू० में यूनान के ऐथन्ज़ नगर में फैली थी। चौदहवीं शताब्दी ई० के मध्य में समस्त यूरोप में इस व्याधि ने तहलका मचा दिया। १६६५ ई० में लंदन को इस व्याधि ने नष्ट ही कर दिया। १८७१ ई० में यह पूर्वी यूरोप में दृष्टिगोचर हुई। वहाँ से चीन पहुँची और चीन से भारत।

प्लेग से अभी छुटकारा न मिला था कि भारत को पुनः दुर्भिक्ष ने आ घेरा। जिस समय लार्ड कर्ज़न (१८९९-१९०५ ई०)

भारत आया पश्चिमी भारत विशेष रूप से गुजरात—काठियावाड़ अकाल से पीड़ित था। लाखों रूपये व्यय करने पर भी लोगों को त्राण न मिला और लाखों आदमी तड़प-तड़प कर मर गए। उत्तर पश्चिम सीमा का प्रश्न भी गम्भीर था। इसका कर्ज़न ने स्थायी हल निकाला और उत्तर पश्चिमी प्रान्त का निरूपण किया।

१९०० ई० के दुर्भिक्ष को छोड़ कर कर्ज़न के शासन काल में भारत ने समृद्धि का अनुभव किया। यही कारण था कि लार्ड कर्ज़न को कई सुधार करने का अवसर प्राप्त हुआ।

शासन प्रबन्ध आदि

कर्ज़न ने शासन विधि को सुव्यस्थित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। पुलिस का प्रबन्ध उन दिनों में बहुत ही बुरा था। पुलिस में विशेष रूप से सुधार किये गये।

कर्ज़न का सब से अधिक महत्वपूर्ण सुधार कृषि के विषय में था। पंजाब का लैंड एलीनियेशन ऐक्ट इसी की देन था जिसके अनुसार यह निर्धारित किया गया कि किसानों की भूमि को केवल किसान ही खरीद सकते हैं और वह कुर्क नहीं हो सकती। उस ने सामान्य रूप से समस्त भारत में कर की मात्रा घटा दी और यह नियम स्वीकार किया कि भूमि कर बढ़ाने या घटाने का प्रश्न प्रति तीस वर्ष पश्चात उठाया जायगा, उस से पहले नहीं।

किसानों की सहायता के लिये कोआपरेटिव क्रैडिट सोसाइटियों की स्थापना हुई। एक इन्सपैक्टर जनरल आफ़ ऐग्रीकल्चर नियुक्त हुआ और कृषि विभाग खोला गया। कृषि अन्वेषण के लिये एक रिसर्च इन्स्टीट्यूट स्थापित की गई।

लार्ड कर्ज़न ने व्यापार और उद्योग का विभाग भी खोला। भारत के प्राचीन स्मारकों की रक्षा का भी प्रबन्ध किया गया।

उसने शिक्षा की स्थिति की पड़ताल की और विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध में सुधार किये। पुरातत्वविभाग स्थापित करने का श्रेय भी उसी को है।

१९०३ ई० में लार्ड कर्ज़न ने दिल्ली में वैभवशाली दरबार लगाया जिसमें ऐडवर्ड सप्तम को भारत का सम्राट् घोषित किया गया।

१९०४ ई० में कर्ज़न की शासन अवधि समाप्त हो गई किन्तु उसे पुनः वाइसराय नियुक्त किया गया।

बङ्गाल का बटवारा

बङ्गाल का बटवारा कर्ज़न के शासन काल की सब से महत्वपूर्ण घटना है जिस ने समस्त देश में आग लगा दी।

लार्ड कर्ज़न ने सेना में भी कई सुधार किये। उसे नई प्रकार के हथियारों से सुसज्जित किया। उसने १९०१ ई० में इम्पीरियल कैडेट कोर की स्थापना की जिस में केवल राजाओं और नवाबों के पुत्र ही भरती हो सकते थे। उस के काल में भारतीय सैनिकों ने ईरान, चीन, सोमालीलैंड और दक्षिणी अफ्रीका में अपनी वीरता के जौहर दिखाये।

सेना के प्रबन्ध के विषय में उसका लार्ड किचनर से, जो उस समय सेनापति था, मतभेद हो गया। किचनर चाहता था

लार्ड कर्ज़न और लार्ड किचनर में विवाद

कि सेनापति का वाइसराय के साथ सीधा सम्बन्ध हो किन्तु कर्ज़न चाहता था कि उसकी कौंसिल में एक ऐसा सदस्य हो जो सेना के काम से परिचित हो और सेनापति की रिपोर्ट पर टिप्पणी कर सके। उस समय वैसा ही प्रबन्ध था जैसा कर्ज़न चाहता था। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने लार्ड किचनर का साथ दिया। इस भय से कि कहीं लार्ड कर्ज़न रुष्ट न हो जाय सेना को दो भागों में बाँट दिया।

एक भाग का अध्यक्ष सेनापति था और दूसरे का वाइसराय की कौंसिल का एक अन्य सदस्य । सेनापति इस कौंसिल का अब साधारण सदस्य बन गया । लार्ड कर्ज़न फिर भी रुष्ट हो गया और उस ने त्याग पत्र दे दिया ।

लार्ड कर्ज़न के काल में ही भारत में राजनैतिक अशान्ति दिखाई देने लगी थी । उस के चले जाने पर यह प्रत्यक्ष हो गई ।

गान्धी युग

परिच्छेद ३८

भारत में जागृति

नये युग का अवतरण

१८६९ ई० में जिस साल महात्मा गान्धी का जन्म हुआ, स्वेज़ नहर खोली गई। उसी साल कार्ल मार्क्स का मार्मिक ग्रन्थ "कैपिटल" प्रकाशित हुआ और तौमस ऐल्वा ऐडिसन ने अपना पहला आविष्कार पेटैंट कराया।

विज्ञान और उद्योग की उन्नति से कई समस्यायें उत्पन्न हो गईं। एक ओर मज़दूरों और पूँजीपतियों का द्वन्द्व था, दूसरी ओर साम्राज्यवादियों की महत्वाकांक्षा और आधीनस्थ देशों की स्वतन्त्र होने की अभिलाषा। प्राचीन नैतिक और धार्मिक सिद्धान्त विज्ञान के सम्मुख पीले और अमान्य प्रतीत हाने लगे थे परन्तु विज्ञान कोई ऐसा आधार प्रदान न कर सका था जिस पर किसी नई नैतिक शैली का भवन खड़ा किया जा सके। व्यक्तिवाद ने सामाजिक बन्धन तोड़ दिये थे परन्तु ऐसा कोई नया सूत्र न था जिस में व्यक्तियों को बाँधा जा सके। व्यक्ति की मृदुल भावनाओं की तृप्ति का विज्ञान के पास कोई साधन न था। उस के मन में अनेक शंकाओं के कारण ऐसा संघर्ष मचा था जिस का कोई उपचार दिखाई न देता था। पीड़ित मानवता कराहती हुई दीख पड़ती थी परन्तु ऐसा कोई साधन न था जो उसका दुःख निवारण करे।

संसार के विचारक असमंजस में थे कि महात्मा गाँधी आधुनिकता के क्षितिज पर उदित हुए। उन्हों ने अपने अनुभव से संसर

को दिखाया कि सत्य और प्रेम ही संस्कृति के सुदृढ़ और स्थायी आधार हैं और अहिंसा ही सब से बड़ा और बलिष्ठ हथियार है। मानव के सुख और शांति के लिए विज्ञान को उस का दास बनकर रहना होगा, स्वामी नहीं। विज्ञान मानव की सेवा के लिए है, उसके विनाश के लिये नहीं। शक्ति और निधि का प्रयोग मानव सुख के लिए है, उसके शोषण के हेतु नहीं।

महात्मा गाँधी ने यह भी सिद्ध किया कि मानव में बहुत बल है। एक व्यक्ति जिस की आत्मा में प्रेम और सत्य निवास करते हैं उन शक्तियों से कहीं अधिक बलवान् है जो हमें विज्ञान ने प्रदान की हैं। इतना महान् बल रखते हुए उसे किसी से डरने की जरूरत नहीं। "अभय" यही एक शब्द महात्मा गाँधी का विजय घोष था।

भारत में गाँधी युग

राजनीतिक क्षेत्र में गाँधी युग १६१६ ई० में आरम्भ हुआ। महात्मा गाँधी भारत के गगन में सूर्य के समान उदय हुए। श्री जवाहर लाल के शब्दों में वे ताज़ा हवा के एक झोंके के समान थे। उनके आगमन से हमें हाथ-पाँव फैलाने की प्रेरणा मिली। हम ने चैन की साँस ली। वे प्रकाश की एक किरण के समान अन्धकार को चीरते हुए आये। हमारी आँखों पर जो झिल्ली छा गई थी वह हट गई। महात्मा गाँधी एक तूफ़ान के सदृश थे। उनके आने से भारत में उथल पुथल मच गई। लोगों के दिलों ने पलटा खाया। उनके "अभय" के मूल मन्त्र ने जादू का असर दिखाया और भारत जागृत हो उठा।

अपने विदेशी शासकों के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल गया। वे आधुनिक शस्त्रों से सुसज्जित थे। उनके हाथ में शासन सत्ता थी। हम निर्धन और शस्त्रहीन थे किन्तु अब हमें अपने शासकों से भय न लगता था।

महात्मा गाँधी की अंग्रेज़ों पर श्रद्धा थी। वे ब्रिटेन के झंडे को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उसके राष्ट्रगान को गर्व से गाते थे। इसके कई कारण थे। ब्रिटेन की लोक तंत्रीय राज्यविधि, अंग्रेज़ों का आत्म सम्मान, उनका स्वतन्त्रता से प्रेम उनके सामने था। उनके सम्मुख ब्रिटेन के वे लोग थे जो सच्चे दिल से भारत का हित सोचते थे। इन लोगों का भारतकी जागृति में बहुत हाथ था।

लूट का अन्त

हम देख आये हैं कि वारेन हैस्टिंग्ज़ की लूट की नीति की ऐडमंड बर्क ने कड़ी आलोचना की थी। बर्क को मानवता के उच्चतम भावों ने प्रेरित किया था। बर्क और उस जैसे सदभावी अंग्रेज़ों के प्रयास से ही भारत में "लुटेरा" राज्य का अन्त हुआ। इसके पश्चात् येल, बैनफील्ड और मैकफर्सन जैसे लुटेरे भारत में दिखाई नहीं दिये।

संस्कृत साहित्य की खोज

हमारे सम्मुख विलियम जोन्ज़ जैसे अंग्रेज़ अफ़सरों के भी उदाहरण हैं। सर विल्यम जोन्ज़ बंगाल के सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होकर आया था। उसे भाषायें सीखने का बहुत शौक था और वह संस्कृत सीखने का बहुत इच्छुक था। किसी भी ब्राह्मण ने उसे संस्कृत सिखाना स्वीकार न किया। उसने एक वैद्य से यह भाषा सीखी और वह संस्कृत साहित्य से बहुत प्रभावित हुआ। उसने कालीदास के शकुन्तला नाटक का अंग्रेज़ी में अनुवाद कर भारत की मूल्यवान् सेवा की। इस से भी कहीं बढ़ कर उसने १७८३ ई० में बंगाल ऐशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की। इस संस्था के प्रयास से यूरोप में संस्कृत साहित्य की ख्याति फैल गई। जर्मनी का प्रसिद्ध दार्शनिक शोपनहार, (१७८८–१८३० ई०) और साहित्यकार गेटे (१७५६–१८३२ ई०), इस साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित हुए। मैक्समूलर (१८२३—१६०० ई०) और मोनियर विलियम्ज़

ने संस्कृत साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया। मैक्समूलर के प्रयास से संस्कृत के मूल्यवान ग्रन्थों का यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुआ। चार्ल्स विल्किंज़ ने भगवद्गीता का अनुवाद कर यूरोप को भारत की महानता का दर्शन कराया।

स्टूअर्ट जिसके विषय में प्रसिद्ध था कि वह मन्दिरों से मूर्तियाँ चुराता फिरता है, भारत की मूति कला का उपासक था।

इतिहास की खोज

भारतीय अपनी प्राचीन कला को लगभग भूल चुके थे। अजंता और अलोरा की कन्द्राओं, अनेक सुन्दर मूर्तियों और मन्दिरों तथा चित्रों का भारतीयों के लिये कोई मूल्य न था। स्टुअर्ट और फरगुसन ने न केवल भारत का बल्कि समस्त संसार का ध्यान भारतीय कला के गुणों की ओर दिलाया।

भारत के प्राचीन इतिहास की खोज का श्रेय भी बहुत सीमा तक अंग्रेज़ों को दिया जाता है। १८३४ ई० में जेम्ज़ प्रिंसेप ने अशोक के लेखों की कुञ्जी खोज निकाली। इस खोज ने भारतीय इतिहास की काया पलट दी। इस से पूर्व भारत का इतिहास प्रायः महमूद ग़ज़नी के आक्रमण से आरम्भ किया जाता था। इस खोज से इसके आरम्भ की तिथि चौथी शताब्दी ई० पू० तक तक जा पहुँची। राइस डेविड (१८४३-१९२२ ई०) ने बौद्ध साहित्य की खोज की और संसार को ज्ञात हुआ कि उस प्राचीन काल में जब इंग्लैंड में बर्बर जातियाँ इधर उधर घूमती थीं भारत ने महात्मा बुद्ध जैसा विश्वगुरु उत्पन्न किया।

१८६० ई० में पुरातत्व विभाग की स्थापना हुई। उसके प्रथम अध्यक्ष अलग्ज़ैंडर कनिंघम ने भारत के प्राचीन स्मारकों की खोज की। इसी काल में फरगुसन ने भारतीय कला पर एक मार्मिक ग्रन्थ की रचना की। कनिंघम का पंजाब का इतिहास एक

प्रामाणिक ग्रन्थ है। ग्रांट डफ़ का मराठों का इतिहास, टाड द्वारा रचित राजस्थान का इतिहास और वाक्स का मैसूर का इतिहास भी उच्च कोटि के ग्रन्थ गिने जाते हैं।

पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष मार्शल के होते हुए १९२२ ई० में मोहन जो दड़ो और हड़प्पा की खोज हुई और भारत के इतिहास की तिथि सहस्रों वर्ष पीछे चली गई।

इतिहास की इन खोजों ने तथा भारतीय साहित्य के प्रकाशन ने भारतीयों को एक गहरी निद्रा से जगा दिया। उन्हें अपने गौरव का आभास हुआ और देश में नई स्फूर्ति दिखाई देने लगी।

अंग्रेज़ी राज्य का विकराल रूप

ब्रिटिश सरकार सामान्य रूप से इसी नीति की घोषणा करती थी कि वह भारतीयों को शासन कार्य स्वयं संभालने के योग्य बनाना चाहती है। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि गाँधी जी अंग्रेज़ों को भारत के हितैषी समझते थे।

इङ्गलैंड का दूसरा रूप कार्ल मार्क्स के निम्नलिखित कथन से विदित होता है। उस ने १८५३ ई० में लिखा था, "अंग्रेज़ों ने भारतीय समाज को तहस-नहस कर दिया है और उसके पुनर्निर्माण के कोई चिन्ह अभी तक दिखाई नहीं देते। भारत को उस के अतीत से पृथक् कर अंग्रेज़ों ने एक बड़ा अत्याचार किया है। यह देखकर दुःख होता है कि भारत अपना प्राचीन गौरव खो बैठा है और भविष्य उसे अन्धकारमय दिखाई देता है।"

मैटकाफ़ की जीवनी में 'कई' नाम, के अंग्रेज़ ने लिखा है, "हमारी यह नीति थी कि भारत के लोगों को अनभिज्ञ और अशिक्षित रखा जाये। हम उन्हें घोर अन्धकार में रखना चाहते थे

और हमारी यह इच्छा थी कि उनका स्तर बर्बर जातियों के समान रहे। यदि देशीय लोगों में ज्ञान का प्रकाश फैलाने का कोई प्रयत्न करता था तो हमें इस से चिढ़ आती थी।"

१८१७ ई० में सर टौमस मनरो ने गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज़ को ब्रिटश राज्य की बरकतों का वर्णन करते हुए लिखा था, "भारत के लोगों ने अंग्रेज़ों से जो कुछ पाया है उसके लिए उन्हें भारी मूल्य चुकाना पड़ा है। उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता की, अपने राष्ट्रीय गुणों की और उन सब चीज़ों की बलि दी है जिनके होने से कोई राष्ट्र सम्मान पाता है। इसलिए भारत में ब्रिटिश राज्य लोगों का स्तर ऊँचा करने की अपेक्षा उनकी गिरावट का हेतु सिद्ध होगा।" लार्ड क्लाइव से सर विंस्टन चर्चिल तक अनेक अंग्रेज़ ऐसे हुए जो भारत को सदैव के लिये दासता की जंजीरों में जकड़े रखना चाहते थे।

इस समय जब भारत पर से अंग्रेज़ों का अधिकार हट गया है अंग्रेज़ी राज्य की बुराइयों का वर्णन करना यदि असंगत नहीं तो अप्रिय अवश्य है। हम यहाँ उस जागृति का वर्णन करते हैं जो गाँधी युग के प्रसव में सहायक हुई।

ब्रह्म समाज

राजा राममोहन राय (१७७२ से १८३३ ई०) ने भारतीय धार्मिक विचारों को पश्चिमी रंग में पेश किया। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा फारसी में हुई थी। उन्होंने संस्कृत, अरबी, अंग्रेज़ी, यूनानी, लातीनी और हिब्रू भाषाओं का भी अध्ययन किया। कम्पनी के आधीन पद ग्रहण कर वे १७६२ ई० में कलकत्ता आ गये। उनका संपर्क अंग्रेज़ विद्वानों से हुआ जो भारत के प्रति सहानुभूति रखते थे। राजा राममोहन राय को लिखने का शौक था। उन्होंने छोटी ही आयु में वेदान्त और उपनिषदों पर अपने विचार ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किये। वे एक ओर सती जैसी कुप्रथाओं के कट्टर विरोधी थे तो

दूसरी ओर भारतीय दर्शन के पक्षपाती। एक ओर रूढ़िवादी पंडितों का विरोध करते थे दूसरी ओर ईसाई पादरियों का। वे ईश्वर के भक्त थे और विज्ञान के भी। पश्चिमी सभ्यता ने उन्हें बहुत प्रभावित किया था। वे चाहते थे कि भारत में अंग्रेज़ी के माध्यम से पश्चिमी ढंग की शिक्षा दी जाय। उन्होंने इस अभिप्राय से कलकत्ता में १८१६ ई० में एक स्कूल स्थापित किया।

समाज सुधार उनका मुख्य ध्येय था। इसी की पूर्ति के लिये २० अगस्त १८२८ को राजा राममोहनराय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की। सामाजिक त्रुटियों को दूर करना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य था। राजा राममोहन राय का आदेश था कि किसी अन्य मत की अवहेलना न की जाय और प्रयत्न किया जाय कि सभी समुदायों के लोगों में आपस में प्रेम बढ़े। राजा राममोहन राय का देहान्त ब्रिस्टल के स्थान पर २७ सितम्बर १८३३ ई० को हुआ। उनके पश्चात् ब्रह्म समाज की बागडोर देवेन्द्र नाथ ठाकुर और केशव चन्द्र सेन ने संभाली। इनके नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने समाज सुधार का मूल्यवान काम किया। नारी शिक्षा पर विशेष रूप से जोर दिया गया। बहु विवाह, सती आदि का विरोध, विधवाओं को पुनः विवाह करने की आज्ञा, ये ब्रह्म समाज के मुख्य काय थे। राज नारायण बोस और ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने बहुत उपयोगी कार्य किया। ब्रह्म समाज के नियमों का आधार उपनिषदों पर है।

आर्य समाज

आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द (१८२४ से १८८३ ई०) वेदों को प्रमाण मानते थे और समझते थे कि वे ही समस्त ज्ञान का भंडार हैं। बाल विवाह और अन्य सामाजिक त्रुटियों का वे घोर विरोध करते थे। अछूत उद्धार के पक्ष में थे। स्वामी दयानन्द की यह धारणा थी कि अन्य धर्मों के लोग हिन्दू धर्म में प्रवेश कर सकते हैं। उनके इस सिद्धान्त ने एक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया जिसका बहुत विरोध हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द जिन्होंने स्वामी दया-

नन्द के पश्चात् इस आन्दोलन का नेतृत्व किया इस आन्दोलन के विरोधियों के आरोप का शिकार बने।

स्वामी दयानन्द ने एक मार्मिक ग्रन्थ लिखा जिसे 'सत्यार्थ प्रकाश' कहते हैं। इस पुस्तक में एक आदर्श जीवन का चित्रण किया गया है। इसके साथ ही विभिन्न मत मतांतरों पर समीक्षा भी की गई है।

१८७५ ई० में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। ब्रह्म समाज और आर्य समाज को सुधार की तहरीकें कहा जा सकता है। इन के संस्थापकों का अभिप्राय भारतीय समाज की त्रुटियों को दूर करना था। किंतु श्रीरामकृष्ण परमहंस (१८३६ से १८८६ ई०) के शिष्य स्वामी विवेकानन्द (१८६३ से १९०२ ई०) मुख्यतः उन आदर्श विचारों का प्रचार करना चाहते थे जो हिंदू धर्म की विशेषता है। रामकृष्ण परमहंस ने अति उच्च व्यावहारिक जीवन का उदाहरण प्रस्तुत किया था। महात्मा गाँधी के शब्दों में श्री राम कृष्ण के दर्शन करते ही यह स्पष्ट हो जाता था कि केवल ईश्वर ही सत्य है, शेष सब भ्रम है।

अद्वैतवाद

स्वामी विवेकानन्द धुरन्धर विद्वान थे। राम कृष्ण परमहंस से उनकी भेंट १८८२ ई० में हुई। विवेकानन्द पश्चिमी सभ्यता के अनुयायी थे किन्तु इस भेंट ने उन्हें भारतीय सभ्यता का उपासक बना दिया। १८८६ ई० में विवेकानन्द ने राम कृष्ण मिशन की स्थापना की और भ्रमण आरम्भ किया।

१८९३ ई० में वे शिकागो गये जहाँ एक धर्म सम्मेलन हो रहा था। उनके विचारों ने अमेरिका के विद्वानों को बहुत प्रभावित किया। इङ्गलैंड में उनकी भेंट मारग्रेट नोबल से हुई जो उनकी शिष्या बन गई और बहिन निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हुई। स्वामी विवेकानन्द युवावस्था में ही चल बसे किंतु उन्होंने सारे संसार में तहलका मचा दिया था। मानव जाति को उनका सन्देश था :—

"ब्रह्म को पाने की चेष्टा, भौतिक जीवन से पृथक् होने का प्रयत्न, इन्हीं में मानवों की शान है। सच्चा आनन्द प्राप्त करने का यही मार्ग है।"

स्वामी विवेकानन्द के मन में देश भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी थी। उनका कथन था: "भारत अवश्य जागृत होगा। उसकी प्रगति को अब कोई भी नहीं रोक सकता। यह भीषण दानव अपने विशाल पगों पर खड़ा हो गया है।"

राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द भी पक्के देश भक्त थे। वे भी समझते थे कि स्वराज्य मानव का जन्म-सिद्ध अधिकार है।

थियोसौफीकल सोसाईटी

भारत के धार्मिक जीवन में थियोसौफीकल सोसाइटी का भी काफ़ी हिस्सा है। इस समुदाय की नेत्री श्रीमती ऐनी बेसैन्ट थीं। उनके मन में भारत के प्रति भक्ति के भाव थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ईश्वर-भक्ति या राम और कृष्ण की भक्ति ने देश भक्ति का रूप धारण कर लिया था।

सामाजिक सुधार

भारतीय समाज का यह गुण विशेष रहा है कि वह अपने आप को समय और परिस्थितियों के अनुकूल ढाल सकता है। भारत में सामाजिक नियम बदलते रहे हैं। यहाँ तक कि इस के भिन्न-भिन्न भागों में समाज के नियम अलग-अलग रहे हैं। अंग्रेज़ी सरकार ने उस समय के प्रचलित नियमों को कानून का रूप देकर उनमें जड़ता उत्पन्न कर दी और भारतीय समाज की उन्नति रुक गई।

इतना होने पर भी ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज और अन्य संस्थाओं ने समाज सुधार का मूल्यवान् काम किया।

आरम्भ में अंग्रेज़ी सरकार की यह नीति थी कि वह भारतीयों के सामाजिक और धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करे। १८२३ ई० तक

यह प्रथा थी कि यदि कम्पनी का कोई हिन्दू या मुसलमान कर्मचारी ईसाई मत स्वीकार कर लेता था तो उसे अपना पद छोड़ना पड़ता था। ईसाई बनने पर वह पैतृक सम्पत्ति से भी वञ्चित रहता था। लार्ड बैंटिंक ने पहली बार यह कानून बनाया कि ईसाई बनकर भी व्यक्ति का अपनी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार माना जाय।

अंग्रेज़ी सरकार हिन्दू त्योहारों का मान करती थी और कर्मचारियों को आदेश था कि इन अवसरों को वे सरकारी तौर पर मनायें। इन अवसरों पर तोपों की सलामी भी दी जाती थी परन्तु १८४० ई० में लार्ड आकलैंड ने यह प्रथा हटा दी।

यूरोपियनों और भारतीयों में अंग्रेज़ी सरकार भेद-भाव रखती थी। मैकाले ने सुझाव दिया था कि कानून की दृष्टि से सब जातियाँ एक समान समझी जानी चाहिये। लार्ड रिपन ने इस सुझाव को एल्बर्ट ऐक्ट द्वारा कार्यान्वित किया परन्तु इस का बहुत विरोध हुआ और लार्ड डफरिन को इस में संशोधन करना पड़ा।

समाज सुधार में सब से महत्त्वपूर्ण काम सती की प्रथा का उन्मूलन था जो १८२६ ई० में हुआ। लार्ड बैंटिंक ने बाल-हत्या और नर-बलि का भी निषेध किया।

लार्ड हार्डिंग (१८४४-४८ ई०) ने भारतीय राजन्यों को बाल-हत्या और सती की प्रथा का उन्मूलन करने का आदेश दिया। गोंड जाति से उसने नर-बलि की प्रथा हटाई।

लार्ड डफरिन ने बाल विवाह की कुप्रथा को दूर करने के लिये स्वीकृति अवस्था सम्बन्धी कानून पास किया। इस के अनुसार बारह साल से कम की कन्या का विवाह न हो सकता था। इस ओर दूसरा महत्वपूर्ण कदम लार्ड इरविन के काल में उठाया गया। १९२६ ई० में बाल विवाह निषेध कानून पास हुआ। इस के अनुसार १४

वर्ष की आयु से पूर्व कन्या का और १८ वर्ष की आयु से पूर्व लड़के का विवाह करना अपराध गिना जाता था। पहले किसी के शिकायत करने पर ही सरकार हस्तक्षेप कर सकती थी। तत्पश्चात इस में संशोधन कर दिया गया और पुलिस को अधिकार दिया गया कि वह स्वयं इस विषय में कार्यवाई करे।

विधान सभायें स्थापित होजाने पर भारतीयों ने कई समाज सुधार करने का प्रयत्न किया परन्तु सरकार ने इसकी आज्ञा न दी। अस्पृश्यता की घृणित प्रथा कहीं जाकर स्वतन्त्रता प्राप्त कर ने के पश्चात समाप्त हुई। स्त्रियों को समान अधिकार भी स्वतन्त्र भारत में ही मिले। इन सुधारों के लिये महात्मा गान्धी ने बहुत प्रयास किया था।

शिक्षा

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भी भारतीय शिक्षा की दशा यूरोप के मुकाबले में बहुत सराहनीय थी। इस के विषय में जो आँकड़े उपलब्ध हुये हैं उन से प्रतीत होता है कि उन्नसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत के प्रत्येक गाँव में पाठशाला होती थी। मनरो ने लिखा है कि मद्रास प्रांत में ६७ बच्चों में से एक अवश्य पाठशाला जाता है। माउँट स्टुअर्ट ऐलिफन्स्टन की रिपोर्ट के अनुसार बम्बई में १३३ में से एक। बंगाल में स्कूलों की संख्या एक लाख के लगभग थी। बहुत से अध्यापक निजी रूप से पढ़ाते थे। घर में माता पिता भी बच्चों को शिक्षा देते थे और ऐसे बच्चे प्रायः पाठशाला न जाते थे। बहुत सी पाठशालाओं में बच्चों के रहन सहन और खान पान का प्रबन्ध संस्था की ओर से होता था। मुआफ़ी वाली भूमियों के अपहरण के पश्चात् भारत की शिक्षा जर्जर हो गई।

शिक्षा की दृष्टि से ये पाठशालायें दो प्रकार की होती थीं। एक वे जिन में संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी, दूसरी वे जिन में अरबी और फ़ारसी की। पढ़ना, लिखना, गणित आदि मुख्य विषय थे

कुछ उच्च विद्यालय भी थे जहाँ धर्म शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, नक्षत्र शास्त्र आदि पढ़ाये जाते थे।

सरकार का प्रयास

पश्चिमी ढंग की पहली पाठशालाएँ पुर्तगालियों ने स्थापित की थीं। इस प्रकार की एक पाठशाला पंजाब में सोलहवीं शताब्दी में खोली गई। ईसाई पादरियों ने बम्बई में १७१८ ई० में एक पाठशाला खोली। इसी समय कलकत्ता में फ्री स्कूल सोसाइटी की स्थापना हुई। सरकार की ओर से पहला स्कूल वारेन हेस्टिंग्ज़ के शासन काल में १७८१ ई० में कलकत्ता मदरसा के नाम से स्थापित हुआ। १७९१ ई० में बनारस में संस्कृत कालिज की स्थापना हुई। १८१३ ई० के चार्टर के अनुसार कम्पनी को आदेश दिया गया कि वह भारत में प्रतिवर्ष एक लाख रुपया शिक्षा पर खर्च करे। १८२३ ई० में यह देखने के लिये कि क्या इस धन का सदुपयोग हुआ है एक समिति नियुक्त की गई जिसे पब्लिक इंसट्रक्शन कमेटी कहते थे। इसी समिति ने भारत की शिक्षा के सम्बन्ध में पहली बार आँकड़े इकट्ठे किये। १८३३ ई० में शिक्षा पर १० लाख रुपया प्रति वर्ष व्यय करने की योजना बनाई गई।

लार्ड वेलेज़ली ने राज्यकर्मचारियों के शिक्षण के लिये कलकत्ते में एक संस्था स्थापित की। इसी समय इंग्लैंड में भी इस प्रकार की संस्था स्थापित की गई।

अब प्रश्न यह था कि क्या शिक्षा स्थानीय भाषाओं के माध्यम से दी जाय या अंग्रेज़ी के माध्यम से। कम्पनी के कर्मचारी यह न चाहते थे कि ज्ञान का जो प्रकाश यूरोप की प्रगति का हेतु बना है वह आधीनस्थ लोगों तक पहुँचे। इसी विचार से वे इस पक्ष में न थे कि अंग्रेज़ी के माध्यम से शिक्षा दी जाय। परन्तु राजा राममोहन राय अंग्रेज़ी के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि भारतीयों को विज्ञान की शिक्षा भी दी जाय। लार्ड मैकौले ने जो इंगलैंड का प्रसिद्ध लेखक

और इतिहासकार था इस प्रश्न को उठाया और उसने निश्चय किया कि अंग्रेज़ी को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। १८३५ ई० में लार्ड बैंटिंक ने इस नीति की घोषणा कर दी।

लार्ड हेस्टिंग्ज़ (१८१३-२३ ई०) और उस की पत्नी ने निजी तौर पर शिक्षा को प्रोत्साहन दिया और अपने धन से कई पाठशालाएँ खोलीं।

ईसाई पादरियों ने श्रीरामपुर में छापाख़ाना स्थापित किया था और वे बाइबल का अनेक भाषाओं में अनुवाद कर रहे थे। इस से भी शिक्षा की उन्नति हुई। सरकार ने मुद्रणालय १७७८ ई० में स्थापित किया। पहला समाचार पत्र बंगाल गज़ट और दूसरा कलकत्ता गज़ट था।

कम्पनी, ईसाई पादरियों और अंग्रेज़ कर्मचारियों के अतिरिक्त भारतीयों ने भी कई संस्थायें स्थापित कीं। राजा राम मोहने राय द्वारा स्थापित किया हुआ हिन्दू कालिज (१८१६ ई०) उन्नति कर प्रेज़ीडैंसी कालिज बन गया। केशव चन्द्र, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर और ब्रह्म समाज के अन्य नेताओं ने भी शिक्षा सम्बन्धी उपयोगी कार्य किये। तत्पश्चात् आर्य समाज और अन्य धार्मिक संस्थाओं ने शिक्षालय स्थापित किये। देशीय राज्यों जैसे बड़ौदा, मैसूर, ट्रावनकोर कोचीन आदि में भी शिक्षा का बहुत प्रचार हुआ।

ग़ैर सरकारी शिक्षा संस्थाओं की प्रगति का कारण वुड कमेटी की रिपोर्ट थी जिस में इस प्रकार की संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने की सिफ़ारिश की गई थी। इस कमेटी की नियुक्ति १८५४ ई० में लार्ड डलहौज़ी के काल में हुई। इसके अनुसारः—

१. कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित हुए जिनका काम परीक्षाओं का प्रबन्ध करना था।

२. ज़िलों में हाई स्कूल स्थापित किये गये।

३. ग़ैर सरकारी शिक्षा संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की गई।

४. निम्न श्रेणी के स्कूलों के लिये प्रान्तीय भाषाओं में शिक्षा देने की व्यवस्था की गई।

५. शिक्षा के प्रबन्ध के लिये डाइरैक्टर जनरल ऑफ़ ऐजूकेशन नियुक्त हुआ।

उसके आधीन प्रान्तों में शिक्षा विभाग स्थापित किये गये। यह भी स्वीकार किया गया कि जनता को शिक्षा देना सरकार का कर्त्तव्य है।

इस समिति की सिफ़ारिशें को १८५७ ई० में ऐक्ट द्वारा स्वीकार किया गया।

लार्ड मेयो (१८६९-७२ ई०) की शिक्षा की ओर बहुत रुचि थी। उस ने प्रारम्भिक शिक्षा पर ज़ोर दिया और बंगाल तथा उत्तर प्रदेश में बहुत से प्रारम्भिक स्कूल स्थापित हुए। उत्तर प्रदेश में इन के खर्च के लिये तालुकेदारों से धन इकट्ठा किया गया।

लार्ड मेयो ने राजन्यों की शिक्षा के लिये अजमेर में एक कालिज स्थापित करने की योजना बनाई। यह कालिज उसकी मृत्यु के बाद स्थापित हुआ।

शिक्षा के क्षेत्र में दूसरा महत्व-पूर्ण कदम रिपन के काल में उठाया गया। लार्ड रिपन ने विलियम हंटर की अध्यक्षता में १८८२ ई० में हंटर कमीशन नाम का आयोग नियुक्त किया। हंटर कमीशन ने यह आलोचना की कि सरकार प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा का ध्यान न करके विश्वविद्यालय की शिक्षा पर ही धन व्यय कर रही है। उस ने सरकार का ध्यान प्रारम्भिक शिक्षा की ओर दिलाया। कमीशन ने यह भी सिफ़ारिश की कि उच्च शिक्षा का प्रबन्ध जहाँ तक हो सके देशज संस्थाओं पर छोड़ा जाय। इस कमी-

शन की रिपोर्ट में यह सुझाव भी था कि प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओं के निरीक्षण का प्रबन्ध हो। इसी सिफ़ारिश के आधार पर स्कूलों के निरीक्षण के लिये इन्स्पैक्टर नियुक्त हुए। प्राथमिक शिक्षा का काम नगर-पालिकाओं तथा लोकल बोर्डों के सुपुर्द हुआ।

शिक्षा सुधार में अगला कदम लार्ड कर्ज़न ने उठाया। उस के इस सुधार की सराहना नहीं हुई क्योंकि यह सुधार करने से पूर्व उस ने जो सम्मेलन किया उस में कोई भी भारतीय न था। ग़ैर सरकारी सदस्य केवल एक अंग्रेज़ था। विश्वविद्यालय कमीशन में दो भारतीय थे जिन में से एक ने कमीशन की सिफ़ारिशों का विरोध किया।

शिक्षा सम्बन्धी जो कानून १९०६ ई० में बना उस की मुख्य धारायें ये थीं :—

१, विश्वविद्यालयों को परीक्षा संस्थाओं के साथ-साथ शिक्षा संस्थायें बनाना।

२. कालिजों का विश्वविद्यालय द्वारा निरीक्षण और उन पर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण।

३. विश्वविद्यालय के सेनेट में सरकारी सदस्यों का बाहुल्य।

४. छात्रावासों की स्थापना।

५. प्राथमिक पाठशालाओं में शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषा।

६. अध्यापकों के शिक्षण का प्रबन्ध।

प्राथमिक पाठशालाओं को भारी आर्थिक सहायता देने के साथ साथ लार्ड कर्ज़न ने अध्यापकों के वेतन में भी वृद्धि की। उस ने कृषि, उद्योग और नारी शिक्षा का भी प्रबन्ध किया।

केन्द्रीय शिक्षा विभाग १९१० ई० में वाइसराय की कौंसिल के एक सदस्य के सुपुर्द हुआ। पहला सदस्य हारकोर्ट बटलर था। उसी के प्रयास से विश्वविद्यालयों ने शिक्षा का काम भी अपने ऊपर लिया।

लार्ड चेम्सफोर्ड के शासन काल में सर माइकेल सैडलर की अध्यक्षता में १९१७ ई० में एक कमीशन नियुक्त हुआ जिस ने सिफ़ारिश की कि विश्वविद्यालयों पर सरकार का कम से कम नियन्त्रण हो और वे शिक्षा देने का काम अधिक से अधिक करें। इस कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय का जिस की स्थापना १८८७ ई० में हुई थी पुनः संगठन हुआ और वह एक शिक्षा संस्था बन गया।

१९१६ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की और १९२० ई० में अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय की स्थापना हुई। एक एक साल के अन्तर से ढाका, और नागपुर में विश्वविद्यालय स्थापित हुए।

१९२५ ई० में इन्टर यूनिवर्सटी बोर्ड बना। अगले साल आन्ध्र, १९२७ ई० में आगरा, १९२९ ई० में अनामलाई में विश्वविद्यालय बने। १९२८ ई० में शिक्षा के निरीक्षण के लिये औग्ज़ैलरी एडूकेशन कमेटी नियुक्त हुई जिसके पश्चात् सैन्ट्रल ऐडवाईज़री बोर्ड आफ़ ऐडूकेशन स्थापित किया गया जिसने शिक्षा सुधार के मूल्यवान् सुझाव दिये।

सरकार शिक्षा देने में अनमनी थी। शिक्षा का अधिकतर काम ईसाइयों, अन्य धार्मिक संस्थाओं और कुछ व्यक्तिगत संस्थाओं के सुपुर्द था। कुछ ऐसी संस्थायें भी थीं जो प्राचीन ढङ्ग से शिक्षा देती थीं और वे सरकार से किसी क़िसम की सहायता न लेती थीं। गुरुकुल काँगड़ी, दारुलइस्लाम, बदायूँ, जामिया मिलिया, दिल्ली और विश्वभारती, शान्तिनिकेतन, इस प्रकार की प्रसिद्ध संस्थायें थीं।

शिक्षा प्रेमियों में प्रोफ़ैसर कार्वे का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने पूना में महिला विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में यूरपीय शिक्षा क्षेत्र में जर्मनी और फ्राँस के शिक्षकों की कृतियों का प्रभाव दिखाई देने लगा था। पैस्टैलौज़ी और फ्रोबल जर्मनी के प्रसिद्ध शिक्षक थे। फ्रोबल ने प्रयोग

से सिद्ध किया कि हाथ का काम बच्चों की शिक्षा में बहुत उपयोगी है। खेल खेल में ही बच्चे बहुत कुछ सीख जाते हैं। फ्रोबल की किंडर गार्टन अर्थात् बाल उद्यान पद्धति समस्त संसार में फैल रही थी। रूसो के विचारों ने भी अध्यापकों को बहुत प्रभावित किया था। इटली निवासी मैडम माण्टसोरी ने भी शिक्षा क्षेत्र में मार्मिक काम किया था परन्तु इक्के-दुक्के स्कूलों को छोड़ कर भारत में नई शैली के स्कूल कहीं दिखाई न देते थे। भारत की शिक्षा अति दोषपूर्ण थी। वह उद्देश्यहीन और खोखली प्रतीत होती थी। इस दोष को दूर करने के लिये महात्मा गाँधी ने भारत को एक नई शिक्षा पद्धति प्रदान की जिसे मौलिक शिक्षा पद्धति अथवा नई तालीम का नाम दिया जाता है। महात्मा गाँधी ने दस्तकारी को शिक्षा का आधार माना है। इस शिक्षा शली की तह में यह धारणा है कि इस प्रकार शिक्षा देने से एक ऐसी संस्कृति का निर्माण होगा जिस के 'प्रेम', 'सत्य' और 'अहिंसा' आवश्यक अंग होंगे।

कला और साहित्य

विज्ञान की प्रगति ने कला और साहित्य को भी प्रभावित किया था। किन्तु यूरोपीय कला और साहित्य में वह सन्तुलन ने आया जिस से ये अमर होते हैं। महात्मा गाँधी के अनुसार "सच्चा सौन्दर्य पवित्र हृदय से उत्पन्न होता है।" भारतीय और यूरोपीय कला के विषय में उन्होंने अपना मत यों प्रकट किया, "यूरोपीय कला प्रकृति का अनुसरण करती है इस लिये इसे समझना सुगम है किन्तु यह हमारा ध्यान इस लोक की ओर आकर्षित करती है। इस के विपरीत भारतीय कला हमारा ध्यान परलोक की ओर ले जाती है।"

आधुनिक युग में भारतीय कला और साहित्य पर यूरोप का काफ़ी प्रभाव पड़ा। टिल्ली कैटल जो अवध दरबार में १७६६ से १७७६ ई० तक रहा, पहला प्रमुख पश्चिमी कलाकार था जिसने भारतीय कला को प्रभावित किया। पश्चिमी शैली को अपनाने वाला

पहला प्रसिद्ध भारतीय कलाकार रवि वर्मा था किन्तु उस की कला बहुत नीचे दर्जे की समझी जाती है। उस ने रामायण और महाभारत के पात्रों को आधुनिक रूप दिया परन्तु उस की कृतियों को प्रशंसा प्राप्त न हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हेवल ने जो कलकत्ता के आर्ट्स स्कूल का प्रिंसिपल था, भारतीय कला को नया जीवन दिया। अविन्द्र नाथ ठाकुर जिसका जन्म १८७१ ई० में हुआ आधुनिक काल का पहला महान कलाकार है। उस के शिष्यों में सुरेन्द्र गंगोली, नन्द लाल बोस और असित कुमार हल्दर बहुत प्रसिद्ध हैं। अबिन्द्र नाथ एक नई कला शैली का निर्माता है जिस पर पश्चिमी कला शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अबिन्द्रनाथ ने इंडियन सोसाइटी ऑफ़ ओरियण्टल आर्ट्स नाम की संस्था की स्थापना की जिस का भारतीय कला की उन्नति में बहुत हाथ है।

कुमार स्वामी दूसरा महान् भारतीय कलाकार हुआ है। उस ने विदेशों में भारतीय कला के विषय में भाषण दिये। कला सम्बन्धी कई ग्रन्थों की रचना की। राजपूत कला कुमार स्वामी की विशेष रूप से आभारी है।

आधुनिक काल में राजस्थानी और कांगड़ा कला पुनः जीवित हो उठीं। इन पर भी पश्चिमी कला शैली की छाप लगी है परन्तु इन में बहुत कुछ अपनापन भी है।

भारतीय कला को चार चाँद लगाने वालों में चुग़ताई और अमृता शेरगिल के नाम भी उल्लेखनीय है। २० वीं शताब्दी में कार्टून बनाने की कला ने बहुत उन्नति की है। शंकर ने इस दिशा में मार्मिक काम किया है।

नृत्य और गायन कला में भी पर्याप्त प्रगति का अनुभव होता है। गायन कला में विष्णु नारायण भतखण्डे का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। परन्तु गायन विद्या को शिखर पर पहुँचाने में डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर का हाथ है। कवि रवीन्द्र नाथ ने नाटक और नृत्य को

भी प्रसिद्धि प्रदान की। गायनाचार्यों में विष्णु दिगम्बर का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। नृत्य कला में उदयशंकर का नाम प्रमुख है। राम गोपाल ने भी बहुत नाम पाया है। भारत नाट्यम्, कथाकाली, कत्थक और मैनपुरी नृत्य इन्हीं के कारण इस सीमा तक प्रचलित हुए हैं।

वास्तु कला

अंग्रेजों की कृतियों में गेटवे आफ़ इंडिया, बम्बई, विक्टोरिया मैमोरियल, कलकत्ता और नई दिल्ली के भवन वास्तुकला के प्रसिद्ध नमूने हैं। भारतीय राजन्यों ने भी आधुनिक ढंग के भवन बनवाए। किन्तु अंग्रेजी राज्य में बनी हुई इमारतों को कला की दृष्टि से ऊँचा दर्जा नहीं दिया जा सकता।

साहित्य

साहित्य में नवीन युग का सूत्रपात हिन्दी की पत्रिका 'उदन्त-मार्तण्ड' से हुआ जो पहली बार ३० मई १८२६ ई० को प्रकाशित हुई। दूसरा पत्र "बंग दूत" ९ मई १८२९ ई० को प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी के अतिरिक्त बंगाली अंग्रेज़ी, और फ़ारसी भाषाओं में प्रकाशित होता था। १८४४ में बनारस से "बनारस" नाम का पत्र प्रकाशित हुआ। इसके साथ साथ साहित्य का नया युग आरम्भ हुआ।

बंगाली

बंगाली में राजा राममोहन राय प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों में गिने जाते हैं। उन के अनुगामियों में अभय कुमार दत्त, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षी देवेन्द्र नाथ ठाकुर, और राज नारायण बोस के नाम प्रसिद्ध हैं। राजेन्द्र लाल मित्र ने भी बहुत नाम पाया है।

बंगाली काव्य में मधुसूदन और गद्य में शरत् चन्द्र तथा बंकिमचन्द्र (१८६४-९४ ई०) ने मार्मिक काम किया। बंगाली साहित्य के गगन में रवीन्द्र नाथ ठाकुर (१८६१-१९४१ ई०) सूर्य की भाँति चमके हैं। रवींद्र एक अति शिष्ट कुटुम्ब में पैदा हुये थे। सौन्दर्य प्रेम

उन्हें विरसे में मिला था। उन के पिता देवेन्द्र नाथ ने साहित्य में बहुत नाम पाया था। पुत्र पिता से भी बढ़ गया। रवीन्द्र नाथ को १६१३ ई० में गीतांजली नाम की पुस्तक पर नोबल प्राइज़ मिला। यह पुरस्कार प्राप्त करने वाले वे पहले भारतीय थे। उन के काव्य में भारत की आध्यात्मिकता का दर्शन मिलता है। भारत की सभी भाषाओं पर रवीन्द्र नाथ का प्रभाव पड़ा। यूरोप के साहित्यकारों ने भी उन्हें मान्यता दी।

श्रीमती सरोजनी नायडू का काव्य भी उच्च कोटि का गिना जाता है। उनका अधिकतर साहित्य अंग्रेज़ी में है।

बंगाली साहित्य का प्रभाव सब से अधिक हिन्दी साहित्य पर पड़ा। कई बंगाली साहित्यकारों ने हिन्दी में भी रचनाएँ कीं। ब्रह्म समाज ने हिन्दी को बहुत प्रोत्साहन दिया।

हिन्दी

आधुनिक हिन्दी का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। इसे खड़ी बोली कहते हैं। प्राचीन भाषा ब्रज भाषा के नाम से प्रसिद्ध है। १७६१ ई० में कलकत्ता मदरसा की स्थापना हुई। यहीं से खड़ी बोली का उत्थान आरम्भ हुआ। प्रथम हिन्दी लेखकों में सुखलाल, इन्शा अल्ला और राजा शिवप्रसाद के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वामी दयानन्द भी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक माने जाते हैं। आधुनिक हिन्दी के निर्माता होने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है (मृत्यु १८८५ ई०)।

हिन्दी उपन्यास प्रेम चन्द की देन है। जयशंकर प्रसाद, यशपाल, डा० रामकुमार बर्मा, जैनेन्द्र कुमार जैन निराला, भगवतीचरणवर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, मैथली शरण गुप्त और इलाचन्द्रजोशी तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में प्रसिद्ध हैं।

इस युग में उर्दू ने अनेक महत्वपूर्ण लेखक उत्पन्न किये हैं। सर सय्यद अहमद खाँ, हाली, अकबर इलाहाबादी शिबली, रतन नाथ सरशार आदि उच्च कोटि के साहित्यकार हुये। बीसवीं

शताब्दी में सर मुहम्मद इक़बाल ने विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त की। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद की उर्दू के उच्च कोटि के लेखकों में गणना होती है।

आधुनिक मराठी साहित्यकारों में विष्णु शास्त्री का नाम प्रमुख है। कृष्ण जी प्रभाकर तथा वासुदेव शास्त्री उन के अनुयायी थे। मराठी और गुजराती साहित्य ने भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही उन्नति की। इन भाषाओं की उन्नति में भी ईसाई पादरियों का हाथ है। ईसाई पादरियों ने भारत की ऐसी ऐसी भाषाओं में बाइबल का अनुवाद किया जिन की लिपि भी कोई न थी। साहित्य की दृष्टि से भारत इन पादरियों का आभारी है।

मराठी और गुजराती

मराठी में बाल गंगाधर तिलक, काका कालेलकर, तैलंग, रानाडे, हरि नारायण आप्टे, चन्द्र शेखर और सावरकर के नाम प्रमुख हैं। गुजराती साहित्य में बलराम और श्री कन्हैयालाल मुन्शी के नाम शिखर पर हैं। बसन्त लाल देसाई, चुन्नी लाल आदि अन्य मशहूर गुजराती लेखक हैं।

दक्षिणी भाषाओं में तामिल सब से प्राचीन भाषा कही जाती है। ईसाई पादरियों ने तामिल में पहली पुस्तक १६७७ ई० में प्रकाशित की थी। तामिल की पहली पत्रिका १८३१ ई० में प्रकाशित हुई। इस भाषा के साहित्यकारों में राजम आयर, सुन्द्रम पिल्ले और भारती के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। राज गोपालाचार्य भी प्रसिद्ध लेखक हैं।

तामिल तेलगु आदि

तेलगु दक्षिण की अन्य प्रसिद्ध भाषा है। इस पर संस्कृत का बहुत प्रभाव पड़ा है। तेलगु में रामायण, महाभारत और पुराणों के अनुवाद मिलते हैं। इस भाषा का आधुनिक युग अठारहवीं शताब्दी के अंत में आरम्भ हुआ। १८२४ ई० में सी० पी० ब्राउन ने तेलगु भाषा के कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थों की टीका लिख कर इस भाषा को बहुत महत्त्व

प्रदान किया। इस भाषा का पिता पण्टलू को कहा जाता है जो उन्नीसवीं शताब्दी का महानतम् साहित्यकार और सुधारक था।

पंजाबी, राजस्थानी और भारत की अन्य भाषाओं ने भी बहुत उन्नति की। आधुनिक युग में नाटक, काव्य और गद्य की उच्च कोटि की रचनाएँ मिलती हैं। भाई वीरसिंह आधुनिक पंजाबी के पिता कहे जाते हैं।

यह गर्व की बात है कि भारतीय लेखकों ने अंग्रेज़ी में भी मार्मिक ग्रन्थों की रचना की। तौरुदत्त, माईकेल मधुसूदन, रवीन्द्र नाथ ठाकुर और सरोजनी नायडू की कृतियों ने अंग्रेज़ी साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त किया है। श्री अर्विन्दु घोष, महात्मा गाँधी, सर राधा कृष्णन ने दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की। श्री जवाहरलाल की आप बीती और 'भारत की कहानी' की गणना भी ऊँचे दर्जे के अंग्रेज़ी साहित्य में होती है।

भारतीय इतिहास पर प्रमाणिक ग्रन्थ प्रायः अंग्रेज़ों ने लिखे हैं। भारतीय दृष्टिकोण से लिखने वाले इतिहासकारों में रानाडे, यदूनाथ सरकार, भंडारकार तथा मेजर बसु के नाम प्रसिद्ध हैं।

वैज्ञानिक उन्नति के लिये भारत में पर्याप्त साधन उप्लब्ध न थे। फिर भी रामानुजम् (गणित), जगदीश चन्द्र बोस (वनस्पति विज्ञान) प्रफुल्ल चन्द्र राय (रसायन) और सी० वी० रमन (भौतिकी) ने संसार भर में ख्याति पाई। श्री रमन ने नोबल प्राइज़ प्राप्त किया।

चल चित्र तथा रेडियो

आधुनिक युग में चल चित्रों और रेडियो ने साहित्य और गायन कला को बहुत प्रोत्साहन दिया है। फोटोग्राफी की भी बहुत उन्नति हुई है।

भारत में पहला समाचार पत्र १७८० ई० में प्रकाशित हुआ, जिसका नाम 'बंगाल गज़ट' था। इस पत्र में लार्ड हेस्टिंग्ज़ की नीति

समाचार पत्र

की कड़ी आलोचना की गई और गवर्नर जनरल के कोप के कारण १७८२ ई० में यह पत्र बन्द हो गया। दूसरा समाचार पत्र 'इण्डियन वर्ल्ड' लार्ड कार्नवालिस को कुपित करने के कारण बन्द हो गया। "टैलीग्राफ़" और "कलकत्ता गज़ट" का भी समान कारणों से ही ऐसा परिणाम हुआ। इन पत्रों के सम्पादक यूरोपीय थे। १७९९ ई० में सरकार ने समाचारपत्रों की छान-बीन करनी आरम्भ की और आदेश दिया कि सम्पादक और प्रकाशक का नाम स्पष्ट रूप से पत्र पर दिया जाय। १८१८ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने यह प्रथा बन्द कर दी। परन्तु समाचार पत्रों को स्वतन्त्रता न थी। विशेष प्रकार की सामग्री प्रकाशित करना उनके लिये वर्जित था।

उसी वर्ष सर टामस मनरो को समाचार पत्रों की समस्या का समीक्षण करने के लिये नियुक्त किया गया। उस ने यह परामर्श दिया कि यूरोपीय समाचार पत्र सरकार को हानि नहीं पहुँचा सकते परन्तु देशी समाचार पत्र विदेशी सरकार के लिये घातक सिद्ध हो सकते हैं। मनरो के परामर्श से प्रभावित होकर सरकार ने १८२३ ई० में यह घोषित किया कि कोई भी पुस्तक और समाचार पत्र सरकार की आज्ञा के बिना प्रकाशित नहीं हो सकता। प्रकाशन के लिये लाइसैंस लेना अनिवार्य है। यदि किसी पुस्तक को या समाचार पत्र को सरकार अनुचित समझेगी तो अपने गज़ट में इस का संकेत कर देगी। इस के पश्चात वह पुस्तक या समाचार पत्र प्रकाशित नहीं हो सकता। ये नियम १८३५ ई० तक लागू रहे। जनता ने इन का भारी विरोध किया, इस लिये सरकार ने इन्हें हटा दिया।

१८३५ से १८५७ ई० तक समाचार पत्रों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था। १८५७ ई० में सामयिक तौर पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये जो शीघ्र ही हटा दिये गये। १८६० ई० के पश्चात् बंगाल से "बंगाली" और "अमृत बाज़ार पत्रिका" और पंजाब से "अखबारे आम" निकलने लगे।

१८६७ ई० में सरकार ने १८३५ ई० का कानून रद कर दिया। १८७८ ई० में लार्ड लिटन ने वरनैक्यूलर प्रैस ऐक्ट पास किया जिसे १८८२ ई० में लार्ड रिपन ने रद किया। १९०८ ई० में स्वदेशी आन्दोलन को दमन करने के लिये समाचार पत्रों पर पुनः प्रतिबन्ध लगाये गये। १९१० ई० में इंडियन प्रेस ऐक्ट पास हुआ जिस के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दिया गया कि वे किसी भी पत्र के प्रकाशक से ५०० रु० से लेकर २,००० रु० तक की ज़मानत ले सकती हैं। यह जमानत ज़ब्त भी हो सकती थी। १९३१ ई० में इस कानून में परिवर्तन हुए और इस की शर्तें और भी कड़ी हो गईं। १९३२, १९३३ और १९३४ ई० में इस कानून का क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया गया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में प्रैस ट्रस्ट आफ़ इण्डिया की स्थापना हुई और समाचार पत्रों को बहुत से अधिकार प्राप्त हो गये। भारत के विधान में प्रैस को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान हुई। अनुभव से सिद्ध हुआ कि सभी समाचार पत्र स्वतन्त्रता का उचित लाभ नहीं उठा रहे। १९५१ ई० में स्वतन्त्रता की परिभाषा की गई और इस कानून में सुधार कर दिया गया। उसी वर्ष समाचार पत्रों से सम्बन्धित एक कानून पास किया गया और उन पर यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि वे आपत्ति जनक सामग्री प्रकाशित न करें। इस कानून की अवहेलना करने वाले को दंड दिये जाने से पूर्व उस के अपराध की जाँच पड़ताल की परिकल्पना है और उसे अपनी रक्षा करने का कानूनी अधिकार दिया गया है।

राजनैतिक संगठन, पश्चिमी देशों से सम्बन्ध, यान्त्रिक उन्नति तथा यातायात के साधनों की उपलब्धी ने भारतीयों को अपनी स्थिति का बोध कराया। १८६१ ई० का अमेरिका का गृह युद्ध, १८६९ ई० में नहर स्वेज़ का खुलना, रेल (१८५३ ई०), तार और सस्ती

उद्योग

डाक, फिर विमान द्वारा डाक का प्रबन्ध (१६११ ई०) ये ऐसे तथ्य थे जिन के कारण भारतीयों ने सरकार को मजबूर कर दिया कि वह भारतीय व्यापार और उद्योग की उन्नति की ओर ध्यान दे।

१८६० ई० में सरकार ने कलों पर से आयात कर हटा दिया। किन्तु इस सुविधा का पहले अंग्रेज़ों ने लाभ उठाया। बंगाल में उन्होंने पटसन के कारखाने स्थापित किये। उन की देखादेखी भारतीय पूँजीपतियों ने अहमदाबाद और बम्बई में कपड़े के कारखाने खोले। खानों में भी काम होने लगा।

अंग्रेज़ी सरकार को कपड़े के कारखाने एक आँख न भाते थे। भारतीय कपड़े पर कर लगा दिया गया जिस से वह भारत में ही विलायती कपड़े की अपेक्षा मंहगा बिकता था। यह इन कारखानों का गला घोटने वाली बात थी। १६२४, २५ ई० में कहीं जाकर रुई पर से कर हटाया गया।

खाँड के उद्योग को भी प्रोत्साहन मिला जिस के कारण भारत इस विषय में स्वावलम्बी हो गया।

१६११ ई० में टाटा ने जमशेदपुर के स्थान पर लोहे का कारखाना स्थापित किया। किन्तु यदि महायुद्ध आरम्भ न होता तो यह कारखाना भी अंग्रेजों के हाथ में चला जाता। महायुद्ध के कारण और भी कई उद्योग भारत में जारी हो गये। सीमेंट का उद्योग इन में सब से प्रसिद्ध है। कपड़े के उद्योग को भी युद्ध के दिनों में बहुत प्रोत्साहन मिला और कारखानादारों ने बहुत धन कमाया।

इन में से ऐलूमीनियम और सीमेंट का उद्योग प्रमुख थे। दूसरे महायुद्ध के कारण उद्योग की दृष्टि से भारत का संसार में छठा दर्जा हो गया। टाटा का इस्पात का कारखाना संसार भर में प्रसिद्ध है।

व्यापार

गुजरात के व्यापारी प्राचीन काल से संसार भर में प्रसिद्ध रहे थे। भारत में बहुत से परिवर्तन आये किन्तु वे समय के अनुसार बदलते रहे और उन्होंने अपना अस्तित्व कायम रखा। गुजरात के व्यापारियों में पारसी भी थे और मुसलमान भी। ये लोग न केवल समस्त भारत में फैल गये बल्कि विदेशों में भी गये।

राजस्थान में मारवाड़ी भी प्रसिद्ध व्यापारी थे। उन के हाथ में भारत का आन्तरिक व्यापार था। मारवाड़ी साहूकार की हुंडी न केवल भारत में चलती थी बल्कि बाहर के देशों में भी उस का मान होता था। बम्बई की वृद्धि के साथ गुजराती लोग वहाँ जाकर आबाद हुये। मारवाड़ियों ने कलकत्ता को अपना केन्द्र बनाया।

सिंधियों का व्यापार मध्य एशिया के देशों के साथ था। अठारहवीं शताब्दी की अनिश्चित स्थिति के पश्चात् उन्होंने पुनः अपने पुराने सम्बन्ध जीवित किये।

मद्रास के चेटी जो किसी समय श्रेष्ठि कहलाते थे पूर्वी देशों से व्यापार किया करते थे। उन्होंने भी अंग्रेज़ी राज्य में अपनी स्थिति नहीं बिगड़ने दी।

पंजाब ने अनेक कारीगर उत्पन्न किये जो समस्त भारत में फैल गये। बंगाल के लोग अधिकतर सरकारी नौकरियों को पसंद करते थे अथवा वकील, डाक्टर और अध्यापक बनते थे। इस लिये व्यापार की दृष्टि से वे लोग पिछड़े रहे।

इस प्रकार भारतीयों का छोटा सा तबका अंग्रेज़ी राज्य के अभिशापों से बच गया। इन लोगों में जागृति उत्पन्न हुई और उन्होंने राजनैतिक अधिकारों की माँग की। १९२१ ई० से पूर्व कांग्रेस में इसी प्रकार के लोग होते थे। इस में सन्देह नहीं कि इन लोगों को काँग्रेस द्वारा चलाए गए राष्ट्रीय आन्दोलन से लाभ भी बहुत पहुँचा। व्यापार और उद्योग ने तो विशेष रूप से लाभ उठाया।

परिच्छेद ३९

बंग भंग और उसके पश्चात्

बङ्गाल की समस्या

बंगाल एक विस्तृत प्रदेश था। पूर्वी और पश्चिमी बंगाल के अतिरिक्त बिहार और उड़ीसा के प्रदेश भी इस में सम्मिलित थे। आसाम विजय कर लेने पर अंग्रेज़ों को प्रलोभन हुआ कि बंगाल का कुछ भाग आसाम में मिला दिया जाये, जिस से बंगाल का प्रबन्ध सुगम हो जाय। किन्तु इस सुझाव का सदैव ही विरोध हुआ।

बंगाल का विभाजन

इस समस्या को हल करने के लिए लार्ड कर्ज़न ने यह योजना बनाई कि बंगाल के दो भाग कर दिये जायं और आसाम को पूर्वी बंगाल में सम्मिलित कर दिया जाय। उस ने चुप चाप ही लंदन से इस की स्वीकृति प्राप्त कर ली और १९०५ ई० में इसे कार्यान्वित भी कर दिया।

बंग भंग की प्रतिक्रिया

इस का घोर विरोध हुआ। बंगाल में तूफ़ान उठ खड़ा हुआ जिसे दमन करना सरकार के लिए सुगम न था। स्वदेशी आन्दोलन इस राष्ट्रीय संग्राम की मुख्य कड़ी था। इस से ब्रिटेन के कपड़े के व्यापार को बहुत हानि पहुँची।

इस आन्दोलन में बंगाल के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, ज़मींदार तथा किसान, अनपढ़ और सुशिक्षित व्यक्ति सभी सम्मिलित थे। छोटे, बड़े, नर नारी सभी उन्मत्त से हुए सरकार का विरोध कर रहे थे। श्री अर्विन्दू घोष इस आन्दोलन के मुख्य नेताओं में से थे। इसी आन्दोलन में "बन्दे मातरम्" का प्रसिद्ध गान प्रचलित हुआ।

वास्तव में लार्ड कर्ज़न की नीति से समस्त देश में अशाँति फैली हुई थी। ब्रिटेन का उदार दल कर्ज़न की नीति का विरोधी था। भारत में स्थित बहुत से अंग्रेज़ भी उस से सहमत न थे। इस लिए बंगाल के आन्दोलन को शुरू शुरू में अंग्रेज़ों की सहानुभूति प्राप्त थी परन्तु जैसे जैसे यह आन्दोलन उग्र रूप धारण करता गया सरकार ने और अंग्रेज़ों ने विरोधी पक्ष लिया और सरकार का दमन चक्र चला।

अपनी नीति बदलने की अपेक्षा सरकार ने लोक मान्य तिलक, लाला लाजपत राय और अजीत सिंह को देश निकाला दे दिया। इस से आन्दोलन की अग्नि और भड़क उठी।

अन्ततः ब्रिटेन के नरेश ऐडवर्ड सप्तम ने घोषणा की और उन प्रतिज्ञाओं को दोहराया जो विक्टोरिया की १८५८ ई० की घोषणा में की गई थीं। लार्ड मिण्टो द्वितीय ने जो लार्ड कर्ज़न के पश्चात् वाइसराय बना और उस के उत्तराधिकारी लार्ड हार्डिंग द्वितीय के प्रयास से नर्मी द्वारा यह आन्दोलन शाँत हुआ। १९११ ई० में दिल्ली में जो दरबार हुआ उस में वंग भंग का कानून वापिस ले लिया गया।

साम्प्रदायिकता का सूत्रपात

बंगाल दो भागों में बाँटने में अंग्रेज़ों की कूट नीति का हाथ था। पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की संख्या अधिक थी। वे लोग अधिकतर किसान थे। ज़मींदार प्रायः हिन्दू होते थे। हिन्दुओं ने अंग्रेज़ी शिक्षा का स्वागत किया था। इस लिए मुसलमानों की अपेक्षा जो इस शिक्षा से विमुख रहे थे सरकारी पदों पर वे अधिक संख्या में आसीन थे। सरकार मुसलमानों को खुश करना चाहती थी और लार्ड कर्ज़न ने स्वयं यह संकेत दिया था कि बंगाल का बटवारा मुसलमानों को खुश करने के लिए किया जा रहा है।

स्वदेशी आन्दोलन में साम्प्रदायिकता के भीषण दानव ने अपनी दुष्टता का प्रदर्शन नहीं किया परन्तु इस आन्दोलन की समाप्ति तक साम्प्रदायिकता का सूत्रपात हो चुका था।

मुसलमान और अंग्रेज़

हम देख आये हैं कि आठवीं शताब्दी में अरब लोग इस्लाम की पताका लिये स्पेन तक जा पहुँचे थे। धार्मिक युद्धों में भी मुसलमानों ने यूरोप के ईसाइयों को नाकों चने चबाए थे।

अंग्रेज़ हिन्दुओं के आचार-व्यवहार, उन की व्यापारिक नीति और ईमानदारी से बहुत प्रभावित हुए थे। हिन्दू संस्कृति के प्रति भी उन के मन में श्रद्धा के भाव थे।

जिस समय अंग्रेज़ बंगाल की विजय में व्यस्त थे, मराठों ने फ़्राँसीसियों को हैदराबाद में उलझाये रखा। एक बार हार जाने के पश्चात् मराठों ने अंग्रेज़ों को पूर्ण सहयोग दिया। ये सब ऐसे तथ्य थे जिन से अंग्रेज़ विमुख न हो सकते थे।

इस के विपरीत मुसलमानों के प्रति उन के मन में शंका थी। बंगाल उन्होंने मुसलमानों से प्राप्त किया था। उन्हें भय था कि कहीं मुसलमान मिलकर षड्यन्त्र न कर दें। १८५७ ई० की क्राँति का आरोप भी मुसलमानों पर ही लगाया गया था। मुसलमान १८६४ ई० तक अंग्रेज़ों की अनुग्रह के पात्र न बन सके।

सामान्य रूप से मुसलमान न तो व्यापारी थे, न कारीगर और न कृषक। उन्होंने अंग्रेज़ी शिक्षा का बहिष्कार किया। दफ़्तरों में अंग्रेज़ी भाषा प्रयुक्त होती थी। इस लिए सरकारी नौकरियों का दरवाज़ा भी मुसलमानों के लिए बन्द था।

मुसलमानों की दुर्दशा

शरीयत का कानून रद्द कर दिया गया। मुसलमान काज़ियों का स्थान अंग्रेज़ जजों ने ले लिया। कचहरियों में अब फ़ारसी का प्रयोग न होता था। ये ऐसे तथ्य थे जिन्होंने भारत के मुसलमानों को

हताश कर दिया था। उन की आर्थिक स्थिति बिगड़ रही थी और उनकी प्रथाओं को नष्ट किया जा रहा था।

इस जातीय अवहेलना के प्रतिकार रूप मुहम्मद शाह वलीउल्लाह के नेतृत्व में मुसलमानों ने एक आन्दोलन किया, परन्तु यह आन्दोलन सफल न हुआ।

मुसलमानों को अपना जीवन सूना सूना प्रतीत होता था। मुग़ल सम्राट् छाया मात्र रह गये थे। मध्य एशियाई देश यूरोपीय शक्तियों द्वारा कुचले जा रहे थे। खलीफा को गुलामवंशीय सुल्तानों ने सर्वोपरि स्वीकार किया था। मस्जिदों में उसी का ख़तबा पढ़ा जाता था। मुग़लों के पतन के बाद भारत के मुसलमानों ने कौंस्टैन्टीनोपल के ख़लीफा को सर्वोपरि स्वीकार किया, और १८५७ ई० के पश्चात् सभी भारतीय मस्जिदों में फिर उसके नाम का खतबा पढ़ा जाने लगा। परन्तु ख़लीफ़ा भी सुरक्षित न था। यूरोपीय शक्तियाँ और विशेषकर अंग्रेज उसके विरोधी थे।

अंग्रेज़ खुल्लमखुल्ला इस नीति पर चल रहे थे कि मुसलमान अंग्रेज़ी राज्य के शत्रु हैं। वे प्रत्येक मुसलमान को शंका की दृष्टि से देखते थे।

सर सैयद अहमद खां

सर सैयद अहमद खां ने मुसलमानों की दुखद स्थिति का आभास किया। उसके पिता मुग़ल दरबार में उच्च पद पर नियुक्त रहे थे। अन्तिम मुगल सम्राट ने सैयद अहमद को भी यह पद पेश किया था परन्तु सैयद अहमद ने अंग्रेजी सरकार की नौकरी पसंद की और १८५७ई० की क्राँति के दिनों में अंग्रेजों को बहुत सहायता दी। सरकारी हलाकों में सैयद अहमद का बहुत मान था। उसे सरकार की ओर से सर की उपाधि प्रदान हुई थी।

सर सैयद अहमद ने अनुभव किया कि मुसलमानों के कल्याण का मार्ग यही है कि वे अंग्रेज़ों की सहानुभूति प्राप्त करें। हिन्दुओं के

मन में राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न हो रहे थे। संभव था कि वे अंग्रेजों के विरुद्ध कोई उपद्रव खड़ा कर दें।

सर सैयद अहमद खां के ये सिद्धान्त थे :—

१. मुसलमानों को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये।

२. मुसलमानों को अंग्रेजों का विरोध नहीं करना चाहिये।

३. हिन्दू और मुसलमान, यद्यपि एक ही देश में रहते हैं और इस नाते एक राष्ट्र के सदस्य हैं, फिर भी उनकी संस्कृति विभिन्न हैं। मुसलमानों को पृथक् रह कर अपनी भलाई का विचार करना चाहिये।

आगे चलकर सर सैयद अहमद ख़ाँ ने इण्डियन नैशनल कॉंग्रेस का भी विरोध किया, इस विचार से नहीं कि वह हिन्दुओं की संस्था है, बल्कि इस लिये कि वह अंग्रेजी सरकार के काम की आलोचना करती है।

उर्दू का प्रसिद्ध कवि हाली सर सैयद अहमद खां से सहमत था। और भी कई मुस्लिम विद्वानों ने सर सैयद अहमद का साथ दिया। इन लोगों की सहायता से और सरकारी अफसरों के सहयोग से सर सैयद ने १८७५ ई० में अलीगढ़ के स्थान पर एम० ए० ओ० नाम के कालिज की स्थापना की जिसने १९२० ई० में विश्वविद्यालय का रूप धारण किया।

अलीगढ़ आन्दोलन

अलीगढ़ नये विचारों का केन्द्र बन गया। जो लोग यहाँ शिक्षा प्राप्त करते थे उन पर सरकार की दया दृष्टि थी। नवाब लोग भी अफसरों की भरती इन्हीं में से करते थे। ये लोग अंग्रेजी सरकार के भक्त थे। सर सैयद अहमद खां ने १८६४ ई० में यह बात बड़े गर्व से कही थी कि उसने मुसलमानों को अंग्रेजों का मित्र बना दिया है।

सर सैयद अहमद खां इसके पक्ष में न था कि टर्की के खलीफा को सर्वोपरि स्वीकार किया जाय। वह पर्दे की प्रथा के भी ख़िलाफ़ था। वह इस्लाम को आधुनिक रंग देना चाहता था, परन्तु उसका प्रभाव केवल शिक्षित वर्ग तक सीमित था।

२० वीं शताब्दी के आरम्भ में मुसलमान युवकों में राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न होने लगे। इससे अलीगढ़ के विद्यार्थी दो श्रेणियों में बट गये। एक वे थे जो अंग्रेजी राज्य को वरदान समझते थे। दूसरे वे जो इसे अभिशाप खयाल करते थे।

मुस्लिम लीग

सर आगा ख़ाँ ने इन्हें मिलाने का प्रयत्न किया और १६०६ ई० में मुस्लिम लीग की स्थापना की जिसका उद्देश्य यह था कि मुसलमानों में राजनैतिक जागृति उत्पन्न की जाय।

१६११ ई० में मुसलमानों के लिये एक कोमल स्थिति उत्पन्न हो गई। इटली ने टर्की पर आक्रमण कर दिया। १६१२ ई० और १६१३ ई० में बलकान की लड़ाइयों में भी टर्की को भाग लेना पड़ा। १६१४ ई० के युद्ध में यह देश अंग्रेजों के विपक्ष में लड़ रहा था। इस दशा में अंग्रेजों के भक्त मुसलमान टर्की के साथ सहानुभूति प्रकट न कर सकते थे। युवक दल अंग्रेजों का विरोध करने लगा। युद्ध समाप्त होने पर जब अंग्रेजों ने ख़लीफ़ा के अधिकार छीनने चाहे तो भारत में उनके खिलाफ एक तूफान उठ खड़ा हुआ। यह खलाफत की तहरीक थी।

उन्हीं दिनों काँग्रेस ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया। यह पहला और अन्तिम आन्दोलन था जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों एक साथ शामिल हुये।

१६०७ ई० में राजनैतिक सुधार करने का प्रश्न उठा तो स्वदेशी

पृथक् निर्वाचन

आन्दोलन बड़े वेग से चल रहा था। वाइसराय ने अनुभव किया कि नये सुधारों में यह आयोजित किया जाय कि मुसलमानों और ग़ैर मुसलमानों को धारा सभाओं में अलग अलग प्रतिनिधित्व मिले। मौर्ले जो उस समय भारत-सचिव था इस सुझाव के पक्ष में न था। उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि इस प्रथा से भारत को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और वह राजनीतिक रूप से एक न बन सकेगा। किन्तु लार्ड मिण्टो भारत की राष्ट्रीयता पर आघात करना चाहता था। वह इस में सफल हुआ। १९१८ ई० के सुधारों में इस नियम को और भी सुदृढ़ कर दिया गया। १९२१ के पश्चात जब मुस्लिम लीग और कांग्रेस ने धारा सभाओं में प्रवेश किया साम्प्रदायिकता का विष पूर्ण रूप से फैल चुका था।

मुसलमानों में राष्ट्रीयता

१९१२ ई० में भारत के इस्लामी गगन में एक नया सितारा उदित हुआ। यह था 'अलहिलाल'। अलहिलाल के सम्पादक मौलाना अबुल कलाम आज़ाद थे जो आरम्भ से ही देश भक्ति की प्रतिमा थे। शीघ्र ही उन का वास्ता मुहम्मद अली जिनाह से पड़ा।

पाकिस्तान

मुहम्मद अली जिनाह कांग्रेस के सदस्य रहे थे। महात्मा गांधी ने जब कांग्रेस को भारतीय जनता की संस्था बना दिया तो जिनाह साहिब इस से पृथक् हो गये और इंग्लैंड जाकर रहने लगे। इंग्लैंड में रहकर उन के विचारों में परिवर्तन उत्पन्न हुआ और वे एक साम्प्रदायिक नेता होकर भारत लौटे।

इस बीच में डा० मुहम्मद इकबाल ने भारत के मुसलमानों के सामने एक नया आदर्श रखा। इकबाल उच्च कोटि का कवि था और उसे रूसी साम्यवाद ने बहुत प्रभावित किया था। डाक्टर इकबाल का जीवन देशभक्ति की कविताओं से आरम्भ हुआ था। किन्तु उस ने

पलटा खाया और वह मुसलमानों का नेता बन गया। उसी ने पाकिस्तान का विचार मुसलमानों के सन्मुख रखा। श्री मुहम्मद अली जिनाह ने जिसे मुसलमान क़ाइदे-आज़म कहते थे पाकिस्तान का नारा लगाया। उसका कथन था कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग जातियाँ हैं और उन्हें अलग अलग स्वतंत्रता मिलनी चाहिये।

भारत में स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था कि इंग्लैंड में लिबरल पार्टी ताकत में आ गई। यह नई सरकार भारत में उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थापित करना चाहती थी।

ब्रिटेन की नीति में परिवर्तन

इस पार्टी ने लार्ड मिण्टो को वायसराय और जौन मौर्ले को भारत सचिव नियुक्त किया। ये दोनों व्यक्ति स्वतन्त्र-विचार के थे और सरकारी अफ़सरों की अनुमति की परवाह न करते थे।

सेनापति और वाइसराय के विवाद के विषय में मौर्ले वाइसराय के पक्ष में था किन्तु पद ग्रहण करने के पश्चात् उसे वह निर्णय मानना पड़ा जो उस के पूर्वाधिकारी ने दिया था, अर्थात सेनापति वाइसराय की कौंसिल का साधारण सदस्य बने और सेना को रसद पहुँचाने का अलग विभाग खोला जाय। यह प्रबन्ध प्रथम महायुद्ध में बहुत दोषपूर्ण सिद्ध हुआ।

मौर्ले बंगाल के बटवारे के पक्ष में न था किन्तु उस ने इस विषय में भी अपने पूर्वाधिकारी की नीति का समर्थन किया।

मिण्टो और मौर्ले की यह नीति थी कि सख्ती से काम लेते हुए लोगों को खुश करने की कोशिश की जाय।

लार्ड मिण्टो द्वितीय जो १९०५ से १९१० ई० तक भारत का वाइसराय रहा लार्ड मिण्टो प्रथम का प्रपौत्र था। वह कैनेडा का गवर्नर जनरल रह चुका था। वह सेना में भी रह चुका था और एक अनुभवी व्यक्ति था। परन्तु भारत में उसे असाधारण परिस्थितियों

लार्ड मिण्टो द्वितीय

का सामना करना पड़ा। स्वदेशी आन्दोलन की समस्या सब से जटिल थी। मिण्टो ने इसे सुलझाने का पूरा-पूरा प्रयास किया किन्तु आन्दोलन को शान्त करने का श्रेय उस के उत्तराधिकारी को प्राप्त हुआ।

हम कह आये हैं कि ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और तिब्बत के मामले में रूस और ब्रिटेन दोनों की दिलचस्पी थी। ये दोनों देश आपस में लड़ना भी न चाहते थे। १९०७ ई० में इन्होंने निर्णय किया कि तिब्बत में कोई भी हस्तक्षेप न करेगा और तिब्बत के विषय में सब बातचीत चीन द्वारा होगी। अफ़ग़ानिस्तान में रूस ने अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्वीकार किया और ईरान के विषय में यह तय पाया कि उत्तरी ईरान में रूस का और दक्षिण-पूर्वी ईरान में अंग्रेज़ों का प्रभुत्व रहेगा।

रूस के साथ समझौता

तिब्बत के विषय में चीन से बातचीत की गई। लार्ड कर्ज़न के समय तिब्बत के साथ जो सन्धि हुई थी उस के अनुसार तिब्बत पर ७५ लाख रुपया तावान लगाया गया था। इसे घटा दिया गया और यह चीन के ज़िम्मे लगाया गया। अंग्रेज़ों ने तिब्बत की एक घाटी पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। शर्त यह थी कि तावान चुका दिये जाने पर यह घाटी वापिस लौटा दी जायेगी। तावान चुकाया जा चुका था। १९०८ ई० में चीन ने मांग की कि यह घाटी खाली कर दी जाय। भारत सरकार इस के पक्ष में न थी किन्तु भारत सचिव ने आज्ञा दी कि घाटी खाली कर दी जाय।

इस के पश्चात् चीन को तिब्बत के विषय में पूरी आज़ादी मिल गई। चीनियों की धींगामुश्ती से तंग आ कर दलाई लामा को तिब्बत छोड़ना पड़ा। चीनियों ने उस के स्थान पर नया दलाई लामा नियुक्त किया।

१९११ ई० में चीन में क्रांति हुई। असली दलाई लामा को तिब्बत

लौटने का अवसर प्राप्त हुआ और चीन ने उसे स्वीकार किया।

भारत में राजनीतिक अशांति की रौ चल रही थी। स्वदेशी आन्दोलन इस का एक रूप था। भारत सचिव ने स्वयं कहा था :

मिण्टो मौर्ले रिफ़ार्म
—१९०८

भारत में राजनीतिक अशांति ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है जिस के कई कारण हैं। लोगों की उत्तरदायी शासन की मांग प्रत्यक्ष रूप से सुनाई देती है। भारत के इतिहास में यह आन्दोलन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पूर्व में अंग्रेज़ों की स्थिति पर इस का बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

समस्त एशिया में जागृति उत्पन्न हो रही थी और यह महाद्वीप यूरोपीय शक्तियों की दासता का जुआ उतार फेंकना चाहता था। कर्ज़न के शब्दों में जापान द्वारा रूस की हार का धमाका समस्त पूर्वी देशों में गूँज उठा था। विचित्र बात यह थी कि पश्चिमी हथियार पश्चिमी राष्ट्रों के विरुद्ध प्रयुक्त किये जा रहे थे।

इंग्लैंड में लिबरल पार्टी का शक्ति पकड़ना, इंडियन नैश्नल कांग्रेस का प्रभाव और हिन्दू मुसलमानों की एकता ने यह ज़ाहिर कर दिया था कि भारत को राजनीतिक अधिकार मिले बिना यहाँ शांति स्थापित न होगी।

आर० सी० दत्त, गोखले और सर सत्येन्द्र नाथ सिन्हा (जो तत्पश्चात् भारत उपमन्त्री रहे और पार्लीमेंट में जिन्होंने मौंटेगू चेम्सफोर्ड रिफ़ार्म पास करवाई) मध्यमार्ग पर चलने वाले नेता थे किन्तु ऐसे भी नेता थे जिन की नीति तीव्र थी। लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, दूसरे दल से सम्बन्ध रखते थे। इन दो दलों में १९०७ ई० में मतभेद हो गया।

१९०८ ई० में हिंसक आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ लिया। यूरोपीय अफ़सरों पर आक्रमण होने लगे। इसे रोकने के लिये खास कानून पास किये गये। इन कानूनों से विरोध की अग्नि और भी भड़क उठी।

भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की ५० वीं वर्षगाँठ थी, सरकार को भय हुआ कि कहीं १८५७ फिर न दोहराया जाय।

फरवरी १९०९ ई० में इंग्लैंड की लोक सभा ने भारत के राजनीतिक सुधारों की घोषणा की। नये कानून के अनुसार वैधानिक कौंसिलों के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। जिन प्रान्तों में कौंसिलें न थीं उन में वैधानिक कौंसिलें स्थापित की गईं।

इस सुधार का भारत की राजनीतिक स्थिति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हिंसक आन्दोलन वैसे ही चलता रहा। इंग्लैंड में मदन लाल धींगड़ा नाम के एक युवक ने एक अंग्रेज़ अफ़सर को मार डाला। भारत में विशेष रूप से बंगाल और पञ्जाब में कई वारदातें हुईं। नये वाइसराय लार्ड हार्डिंग पर वार किया गया। स्वदेशी आन्दोलन ने अखिल भारतीय आन्दोलन का रूप धारण कर लिया।

लार्ड मिण्टो ने यह अनुभव किया था कि आन्दोलन को शाँत करने का एकमात्र उपाय वैधानिक सुधार हैं। तीन साल के प्रयत्न के पश्चात् वह इन सुधारों की घोषणा करने में सफल हुआ।

१९०९ ई० का ऐक्ट अति जटिल और अप्रिय था। इस की मुख्य धाराएं ये थीं :

१. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या में वृद्धि।

२. प्रान्तीय विधान सभाओं में सरकारी सदस्यों का अल्प मत और केन्द्रीय विधान सभा में उन का बहुमत।

३. गैरछकु सरकारी सदस्यों की गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्ति।

४. पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था अर्थात् ज़मींदारों, अंग्रेज़ व्यापारियों, मुसलमानों तथा कई अन्य दलों को अपने प्रतिनिधि पृथक पृथक् चुनने की आज्ञा।

५. विधान सभाओं के अधिकारों में वृद्धि।

६. बम्बई, मद्रास तथा बंगाल की कार्यकारिणी की संख्या में वृद्धि और उप राज्यपालों को कार्यकारिणी स्थापित करने का अधिकार। यह विधान न केवल असन्तोष-जनक था बल्कि भारत के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ।

लार्ड हार्डिंग द्वितीय का प्रयास

भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने में लार्ड हार्डिंग ने मूल्यवान् काम किया। वह १६१० से १६१६ ई० तक भारत का वाइसराय रहा और अपने आप को भारत का हितैशी सिद्ध करने का प्रयत्न करता रहा।

बंगाल का संयोजन

१६१० ई० में जार्ज पञ्चम इंग्लैंड के सिंहासन पर बैठा। इस अवसर का लाभ उठाने के लिए लार्ड हार्डिंग ने सम्राट् को भारत में बुलाने और दरबार लगाने की योजना बनाई। १२ दिसम्बर १६११ ई० को दिल्ली में एक भव्य सम्मेलन हुआ जिस में भारत के राजाओं और नवाबों ने अपनी वफ़ादारी और अपनी सम्पत्ति का प्रदर्शन किया। राज्य भक्तों को जागीरें भेंट हुईं और उन का गुणगान किया गया। फिर घोषणा की गई किः—

१. कलकत्ता के स्थान में दिल्ली भारत की राजधानी होगी।

२. बंगाल को मिला कर एक कर दिया जायगा। बिहार और उड़ीसा में उपराज्यपाल होंगे और आसाम में चीफ़ कमिश्नर।

३. सार्वजनिक शिक्षा के लिए ५० लाख रुपया दिया जायगा।

४. विक्टोरिया क्रास पाने का भारतीयों को भी अधिकार होगा।

१६११ ई० में चीन में क्रांति हुई और वहाँ का मांचू वंश समाप्त हो गया। अंग्रेज़ों को भय हुआ कि चीनी सरकार तिब्बत

चीन की क्रांति

को चीन का एक प्रान्त बना लेगी किन्तु हार्डिंग ने बड़ी समझदारी से काम लिया और चीन और तिब्बत के प्रतिनिधियों के साथ शिमला में वार्ता की। यह सम्मेलन बहुत सफल रहा और चीन और तिब्बत युद्ध के दिनों में अंग्रेज़ों के मित्र बने रहे।

दक्षिणी अफ्रीका में भारतवासी

दक्षिणी अफ्रीका में सोने की खानें निकल आने से बहुत से अंग्रेज़ वहाँ जा कर आबाद हो गये थे। उन्होंने अनुभव किया कि वहाँ की भूमि भी बहुत उपजाऊ है और उस पर खेती हो सकती है। अंग्रेज़ों को भूमि पर काम करने वाले मज़दूरों की आवश्यकता थी। दक्षिणी अफ्रीका की सरकार ने भारत सरकार से मज़दूरों की माँग की। इन मज़दूरों को एक विशेष मुआहिदे पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे। उन्हें कुछ साल अवश्य काम करने का वचन देना पड़ता था। उस के पश्चात् वे चाहते तो भारत लौट आ सकते थे और चाहते तो वहीं आबाद हो सकते थे। बहुत से भारतीय वहीं रहने लगे और अपनी समझदारी से उन्होंने बहुत धन कमाया। अंग्रेज़ों को यह बात अखरने लगी और उन्होंने भारतीयों की अवज्ञा और उपेक्षा करनी आरम्भ की। वे भारतीयों को कुली कह कर बुलाते और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे।

१८९३ ई० में महात्मा गांधी दक्षिणी अफ्रीका गये। उन्होंने भारतीयों की दुर्दशा का स्वयं अनुभव किया और इस के विरुद्ध आन्दोलन करने का संकल्प लिया। महात्मा गांधी को घोर संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में महात्मा गांधी को लार्ड हार्डिंग की सहानुभूति प्राप्त थी। अन्ततः महात्मा गांधी ने दक्षिणी अफ्रीका की सरकार को समझौता करने पर विवश किया। जून १९१४ ई० में गांधी स्मट्स समझौता हुआ जिस का संसार के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कैनेडा और अन्य बस्तियों में भी भारतीयों पर प्रतिवन्ध लगाये गये।

कैनेडा में भारतवासी

कैनेडा ने तो कानून द्वारा भारतीयों का वहाँ आना बंद कर दिया। इस कानून का विरोध करनेके लिये भारत से कामा गाटा मारो नाम के जापानी जहाज़ में बैठ कर बहुत से भारतीय कैनेडा गये किन्तु वे कैनेडा में उतर न पाये। उन्हें वापिस लौटना पड़ा। भारत आ कर उन की पुलिस से मुठभेड़ हो गई और उन में से बहुत से मारे गये।

सुधार की योजना

हार्डिंग ने अनुभव किया कि भारतीय मिण्टो मौर्ले सुधारों से संतुष्ट नहीं। उस ने नये सुधारों की योजना बनाई। एक रायल कमीशन नियुक्त हुआ। गोपाल कृष्ण गोखले, अब्दुर्रहीम और ऐम० बी० चौबल इस के तीन भारतीय सदस्य थे। इस कमीशन की रिपोर्ट तैयार होने में तीन साल लगे। जब यह १९१५ ई० में तैयार हुई तो महायुद्ध चल रहा था। यह रिपोर्ट १९१७ ई० में प्रकाशित हुई।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भारत के लोग सरकार द्वारा संचालित शिक्षा से संतुष्ट न थे। कई भारतीय नेताओं ने स्वतन्त्र रूप से शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने का प्रयास किया। इन में पंडित मदन मोहन मालवीय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे सच्चे देशभक्त थे और प्राचीन संस्कृति में रंगे थे। उन्होंने १९१६ ई० में काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित किया। लार्ड हार्डिंग ने इस का उद्घाटन किया।

परिच्छेद ४०

प्रथम महायुद्ध और भारत

साम्राज्यवाद की लहर

जिस समय लार्ड चेम्स फोर्ड (१९१६—२१ ई०) भारत में वाइसराय बन कर आया, प्रथम महायुद्ध की प्रचंड अग्नि दहक रही थी और अंग्रेजों को घोर विपत्ति का सामना करना पड़ रहा था।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक ब्रिटिश साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया था कि इस पर कभी सूर्य अस्त न होता था। ब्रिटिश सरकार को इस पर गर्व होना स्वाभाविक ही था। पर इस तथ्य ने यूरोप की अन्य कई जातियों के मन में डाह-अग्नि प्रज्वलित कर दी। जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, रूस, फ्रांस, यूनान, बल्गारिया आदि राज्य विश्व-विजय के स्वप्न लेने लगे। जर्मन लोग विशेष रूप से साम्राज्यवादी भावना से प्रेरित हुये थे। उन्हें यह घमण्ड था कि वे संसार की सबसे उत्तम जाति हैं और संसार पर शासन करने का उन्हें दैवी अधिकार है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में अग्रघर्षण का भय एक दानव के समान यूरोप के समस्त सौन्दर्य को हड़प कर गया और उसकी समस्त वैज्ञानिक और साहित्यिक प्रगति का कुरूपण हो गया। यूरोप में शान्ति रखने के दुर्बल से प्रयास हुये। हालैंड में हेग के स्थान पर १८९९ ई० में और १९०७ ई० में सम्मेलन हुए जिन में संसार के सभी प्रभु राज्य शामिल हुए। इनका प्रवर्तक रूस का जार निकोलस द्वितीय था। ये सम्मेलन न केवल असफल रहे बल्कि इन्होंने आतति को और भी बढ़ा दिया।

यूरोपीय जातियों में टर्कों का स्थान बहुत हेय था। रूस का ज़ार टर्की के सुल्तान को 'यूरोप का रोगी' कहा करता था। इटली ने १९११ ई० में इस 'बीमार' का अन्त करने का प्रयास किया। १९१२ ई० में

सर्बिया, बल्गारिया और यूनान टर्की पर टूट पड़े और तत्पश्चात् लूट के बटवारे के समय उन में आपस में फूट पड़ गई। संसार की महान् शक्तियाँ चुप चाप बैठीं इस दुःखांत को देखती रहीं।

२८ जून, १९१४ ई० को आस्ट्रिया के युवराज की "बोसनिया" में हत्या कर दी गई। आस्ट्रिया ने इस हत्या का दोष सर्बिया पर लगाया और २८ जुलाई को युद्ध की घोषणा कर दी। ३० जुलाई को रूस ने अपनी सेना मैदान में उतार दी और पहली अगस्त को जर्मनी ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करते ही अगले दिन फ्रांस पर हल्ला बोल दिया। बैल्जियम भी कुचला गया। ४ अगस्त को इंग्लैंड ने जर्मनी के विपक्ष में युद्ध की घोषणा कर दी।

प्रथम महायुद्ध
१९१४—१८ ई०

लगभग दो साल तक जर्मनी और उसके सहायकों का पांसा भारी रहा। पश्चिम की ओर उनको इतनी सफलता न मिली जितनी पूर्व की ओर। इधर उनका मुकाबला रूस से था।

रूस ने १९०५ ई० में जापान से मात खाई थी। इस की प्रतिक्रिया के रूप में रूसियों के मन में आत्महीनता के भाव उत्पन्न हो गये थे। सामन्तशाही, धर्मान्धता और राज्य कर्मचारियों के भ्रष्टाचार से भी लोग तंग आ गये थे। युद्ध के लिये लोगों ने ज़ार को दोषी ठहराया। रूस में अबतरी फैली हुई थी और वहाँ के किसान नेता जिन में लेनिन का प्रमुख स्थान था ज़ार और सामन्तों के विरुद्ध कई बार विद्रोह कर चुके थे। ज़ार ने इन्हें शान्त करने का प्रयास किया किन्तु वह सफल न हुआ और आखिर १९१७ ई० में वहाँ भारी क्रान्ति हुई और रूस की नई सरकार ने अपनी सेनाओं को युद्धक्षेत्र से हटा लिया।

जर्मनी ने ब्रिटेन के विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति लगा रखी थी। उसने ज़ैपलिन द्वारा और विमानों द्वारा इंग्लैंड पर बम्ब बरसाने आरम्भ

किये जिसका उस समय ब्रिटेन के पास कोई उपचार न था। १६१६ ई० के अन्त में कहीं जाकर विमान गिराने वाली तोपें तैय्यार की गई और इङ्गलैंड का इस अभिशाप से बचाव हुआ। साथ ही इङ्गलेंड ने "टैंक" जिनका आविष्कार युद्ध से पहले हो चुका था, युद्धक्षेत्र में भेजे।

वैज्ञानिक यन्त्रों के प्रयोग में मित्र राष्ट्रों की अपेक्षा जर्मनी अधिक उन्नत था। विषैली गैसों ने मित्र सेना के लिये बहुत कठिनाई उत्पन्न कर दी थी।

उधर जर्मनी की डुबकनी नावों ने समुद्र में आफत मचा दी थी और अंग्रेज़ों के जलयानों को बहुत हानि पहुँचाई थी। अंग्रेज़ों के कई जंगी जहाज़ उन्हों ने डुबा दिये थे। यह काल अंग्रेज़ों के लिये बहुत विपदा का काल था और यदि भारतीयों ने इस आड़े वक्त उनकी सहायता न की होती तो न जाने युद्ध का क्या परिणाम होता।

१६१७ ई० के आरम्भ में (६ अप्रैल) संयुक्त राज्य अमरीका ने रणक्षेत्र में प्रवेश किया और इस का पांसा पलट गया। किन्तु १६१८ ई० के हेमन्त में जर्मन सेना प्राणपण से बढ़ी और फ्रांस में उसने मित्र-सेना के छक्के छुड़ा दिये। इस घोर आक्रमण को पुष्टि देने वाली आन्तरिक शक्ति जर्मनी में शेष न रह गई थी। व्यापारी और धनी लोग-जो प्रायः यहूदी थे-सरकार के साथ न थे। ८ अगस्त को यह सिद्ध हो गया कि जर्मनी की हार निश्चित है। सितम्बर में बल्गारिया में क्रान्ति हुई। अक्तूबर के अन्त में टर्की ने हथियार डाल दिये, ३ नवम्बर को आस्ट्रिया हंगरी ने पराजय स्वीकार की। जर्मनी का कैसर हालैंड भाग गया और ११ नवम्बर, १६१८ ई० को विराम सन्धि हो गई और यह भीषण युद्ध समाप्त हुआ।

युद्ध के अन्तर्गत ब्रिटेन में एक महत्वपूर्ण घटना हुई थी जिसने भारतीय जनता को बहुत प्रभावित किया था। यह थी आयरलैंड की स्वतन्त्रता। आयरलैंड एक कृषि प्रधान देश है जिसने इङ्गलैंड के अधीन

होने के पश्चात् अनेक संताप सहन किये थे। आयरलैंड के लोगों की दरिद्रता एक कहावत बन गई थी। आयरलैंड को "होम रूल" अर्थात् स्वतन्त्रता दिलाने में इङ्गलैंड के प्रधान मन्त्री ग्लैडस्टन का हाथ था।

महायुद्ध भारत के लिये एक दूरस्थ घटना थी किन्तु इसने भारतीय जीवन को बहुत सीमा तक प्रभावित किया। हम देख आये आये हैं कि महायुद्ध के भय से ही ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को खुश करने की चेष्टा की थी और बङ्गाल का पुनः संयोजन कर यह सिद्ध कर दिया था कि वह भारतीयों के सामूहिक बल के आगे अशक्त है।

भारत पर प्रभाव
व्यापार और उद्योग

यह आभास ब्रिटिश सरकार को युद्ध के कारण ही हुआ था कि आपत्तिकाल में भारत उनकी बहुत सहायता कर सकता है, और उसे एक औद्योगिक देश बनाना आवश्यक है। युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही १९११ ई० में टाटा आयरन स्टील वर्क्स की स्थापना हो चुकी थी किन्तु उसे सरकार का सहयोग युद्ध के अन्तर्गत ही प्राप्त हुआ। १९१४ ई० में "इण्डियन इण्डस्ट्रियल कमीशन" की नियुक्ति हुई।

महासमर ने भारतीय उद्योगों को और व्यापार को निश्चय ही बहुत प्रोत्साहन दिया (महा युद्ध की अपेक्षा राष्ट्रीयआन्दोलन ने भारतीय उद्योग को अधिक प्रोत्साहन दिया)। राजनीतिक दबाव के कारण ही ब्रिटिश सरकार ने भारतीय व्यापार और उद्योग की रक्षा के लिये कदम उठाये। १९०५ ई० में व्यापार और उद्योग विभाग की स्थापना हुई। १९२२ ई० में व्यापार के विषय में आंकड़े एकत्रित करने के लिये एक विशेष विभाग की स्थापना हुई जिसे "कमर्शियिल इन्टैलिजैन्स ऐंड स्टैटिस्टिक्स" का विभाग कहते थे।

कर नीति निर्धारित करने के लिये १६२१ ई० में फिस्कल कमीशन और १६२३ ई० में टैरिफ़ बोर्ड की स्थापना हुई। लोहे और इस्पात के उद्योग, सूती कपड़ा, कागज़, खांड, दियासलाई आदि उद्योगों को संरक्षण प्राप्त हुआ। १६२३ ई० में ही ओटावा का समझौता हुआ जिस में भारत का प्रतिनिधि सम्मिलित हुआ।

उद्योगों की स्थापना से मज़दूरों की स्थिति का प्रश्न उठना जरूरी था। उनकी दशा शोचनीय थी। इस दशा को सुधारने के लिये १८८१ ई० में पहला फैक्ट्री ऐक्ट पास हुआ था जिसके अनुसार कारखानों के मालिकों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये। १८६१ ई० के ऐक्ट के अनुसार काम की अवधि बारह घंटे नियत की गई। उन बच्चों की आयु भी निर्धारित की गई जो कारखानों में काम कर सकते थे। १६०८ ई० में फैक्ट्री कमीशन की नियुक्ति हुई जिसकी सिफारिशों के अनुसार १६११ ई० के ऐक्ट में बच्चों के लिये ७ घंटे, स्त्रियों के लिये ११ घंटे और पुरुषों के लिये १२ घंटे की अवधि नियत की गई। बीच में आधे घंटे की छुट्टी का भी प्रबन्ध था। ८ साल से कम के बच्चे को कारखाने में काम करने की आज्ञा नहीं थी। १४ साल की आयु के पश्चात् वह बच्चा नहीं माना जाता था। १६२२ ई० के ऐक्ट के अनुसार बच्चों की आयु १२ और १६ कर दी गई। उनके काम करने की अवधि घटा कर ६ घंटे कर दी गई और बड़ों के लिये ११ घंटे, और छः घंटे काम करने के पश्चात् १ घंटे का अवकाश। सप्ताह में वेतन सहित एक छुट्टी और निर्धारित समय से अधिक काम करने पर विशेष वेतन—सप्ताह में ६० घंटे काम। १६२३—२६ ई० में संशोधन हुए जिनके अनुसार कारखानादारों को बाध्य किया गया कि यदि मज़दूरों को क्षति पहुँचे तो वे उसकी पूर्ति करें। १६३४ ई० के ऐक्ट के अनुसार उन पर यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि वे मज़दूरों के लिये ऐसी सुविधाएँ जुटाएँ कि कुशलता से काम कर सकें। १६३६ ई० में वेतन के विषय में कानून पास हुआ और काम की अवधि घटा कर १०

घंटे प्रतिदिन और ५० घंटे प्रति सप्ताह कर दी गई। कारखानों के निरीक्षण के लिये निरीक्षक नियुक्त किये गये।

मज़दूरों के संगठन का काम भी युद्ध के अन्तर्गत आरम्भ हुआ था। १९१९ ई० में 'मद्रास लेबर यूनियन' स्थापित हुई। १९२० में 'आल इण्डिया ट्रेड यूनियम कांग्रेस' की स्थापना हुई और १९२६ ई० में एक ऐक्ट पास हुआ जिस के अनुसार इन संस्थाओं को स्वीकृति दी गई। मज़दूरों को शान्तिपूर्वक हड़ताल करने का अधिकार भी दिया गया। १९२९ ई० में ट्रेड यूनियन काँग्रेस में फूट पड़ गई और इण्डियन ट्रेड यूनियन फेडरेशन की स्थापना हुई।

साम्यवाद की बाढ़

महायुद्ध के अन्तर्गत रूस में जो क्रान्ति आई थी उसने संसार में एक नयी विचारधारा का संचार किया जिसे साम्यवाद का नाम दिया जाता है। कार्ल मार्क्स ने इस वाद का प्रचार किया था। इस मत का आधार इस बात पर है कि भूमि पर या निधि पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं है। इस विचारधारा ने पूंजीवाद का विरोध किया। भारतवासियों को भी साम्यवाद ने बहुत प्रभावित किया। मज़दूर दल की १९२९ ई० की फूट में इस विचारधारा का हाथ था। नयी संस्था ने यह वाद अपनाया था।

शासन और भारतीय

१८१३ ई० के चार्टर ऐक्ट में एक यह शर्त थी कि भारतीयों को शासन में अधिकार दिया जाय। लार्ड कार्नवालिस की नीति इस के विपरीत रही थी। किन्तु कम्पनी यह अनुभव करती थी कि एक तो यूरोपीय अफ़सर मिलना कठिन है, दूसरे देशी अफ़सर कम वेतन पर मिल जाते हैं। तीसरे भारतीयों को पद प्रदान करने से देश के लोगों की सहानुभूति प्राप्त होने की संभावना थी। इस में भारतीयों का भी भला था। लार्ड बैंटिंक ने पहली बार यह प्रयत्न किया कि अधिक से अधिक भारतीयों को शासन कार्य

संभाला जाय। १८५३ ई० के चार्टर ऐक्ट के अनुसार इङ्गलैंड में एक परीक्षा होने लगी थी जिस में उत्तीर्ण होने वालों को भारत में उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। इस प्रतियोगिता में भारतीय भी भाग ले सकते थे। २१ वर्ष से अधिक की अवस्था का युवक इस परीक्षा में न बैठ सकता था।

विक्टोरिया के १८५८ ई० के घोषणा पत्र में भी इस बात पर जोर दिया गया था कि भारतीयों को सरकारी नौकरियों में समान अवसर दिया जाय। किन्तु अनुभव से मालूम हुआ था कि बहुत थोड़े भारतीय इंग्लैंड में होने वाली परीक्षा का लाभ उठा रहे थे और भारतीय अफ़सरों की संख्या बहुत ही कम थी। १८७० ई० में यह घोषित किया गया कि प्रतियोगिता के अतिरिक्त गवर्नर जनरल भी योग्यता के अनुसार अफ़सर भरती कर सकता है। १८७६ ई० में इस प्रकार भरती किये जाने वाले अफ़सरों की संख्या में और अफ़सरों की कुल संख्या में १६ प्रतिशत का अनुपात निर्धारित कर दिया गया। उसी साल सिविल सर्विस की विधिवत् स्थापना की गई।

लार्ड लिटन ने, जो इस समय वाइसराय था, एक विशेष प्रकार की सेवा का निर्माण किया, जो केवल भारतीयों के लिये थी और जिस के लिये भारत में ही परीक्षा होती थी। साथ ही इंग्लैंड में होने वाली परीक्षा के उम्मीदवारों के लिये आयु सीमा घटा कर १६ वर्ष कर दी गई। रिपन के प्रयास से यह सीमा पुनः बढ़ाकर २१ हुई। १८६१ ई० में लिटन द्वारा प्रवर्तित सेवा का उन्मूलन कर दिया गया किन्तु साथ ही प्रान्तीय सेवा और सबौर्डीनेट सेवा का सूत्रपात हुआ। १६२४ ई० में सिविल सर्विस की प्रतियोगिता भारत में भी होने लगी।

वाइसराय की कार्यपालिका में १६०६ ई० में पहला भारतीय लिया गया था। १६१६ ई० में संख्या बढ़ाकर तीन कर दी गई। १६०६ ई० में भारत सचिव की कौंसिल में भी एक भारतीय लिया गया जो

तत्पश्चात् भारतीय उपसचिव भी रहा। कार्यपालिका में भारतीयों की संख्या में दूसरे महायुद्ध के अन्तर्गत वृद्धि हुई।

स्थानीय स्वायत्त शासन

सर चार्ल्स मैटकाफ़ ने १८३० ई० में कहा था—"ग्राम समुदाय छोटे छोटे गणतन्त्रों के समान है जो लगभग सर्व-सम्पूर्ण है, और इन पर विदेशी सम्बन्धों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जहाँ शायद कुछ भी स्थायी नहीं ये चिरस्थायी प्रतीत होते हैं। इन ग्राम समुदायों का संयोग एक पृथक राज्य के समान है, जिस के कारण बहुत सीमा तक भारत के ये समुदाय प्रसन्नता का अनुभव तथा स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का उपभोग करते हैं।"

अंग्रेज़ों ने शासन और भूमि प्रबन्ध की जो प्रथायें स्थापित कीं उन से ग्राम-समुदाय जिन्हें हम पंचायतें कहते हैं लोप हो गये।

अंग्रेज़ों ने स्थानीय-स्वायत्त शासन का प्रथम प्रयोग १६८७ ई० में किया था। इस वर्ष मद्रास में नगर निगम स्थापित हुआ। उस के पश्चात् बम्बई और कलकत्ता में नगर निगम स्थापित हुये। अन्य नगरों में नगरपालिका स्थापित करने का प्रयास १८४२ ई० में किया गया, किन्तु यह प्रयास सफल नहीं रहा। १८७० ई० में लार्ड मेयो ने प्रयत्न किया कि बड़े बड़े नगरों में इस प्रकार की संस्थायें बनाई जाय किन्तु वास्तविक सफलता लार्ड रिपन को ही प्राप्त हुई।

उसने इन संस्थाओं को कर लगाने की आज्ञा दी, केन्द्रीय सरकार की सहायता का भी आयोजन किया। शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई का प्रबन्ध इनके सुपुर्द हुआ। इन संस्थाओं के सदस्य प्रायः निर्वाचित होते थे किन्तु इनकी अध्यक्षता जिले का कलक्टर करता था।

१६१८ ई० के ऐक्ट में इन संस्थाओं को अपना अध्यक्ष चुनने का अधिकार दिया गया। इन के प्रबन्ध और निर्वाचन शैली में भी कई सुधार हुये। इन्हें प्रान्त के निर्वाचित मन्त्री के अधीन कर दिया गया।

युद्ध के परिणाम स्वरूप राज्य के अन्य विभागों में भी सुधार हुए।

पुलिस और जेल

जिस समय कम्पनी ने बंगाल का शासन संभाला तो पुलिस का काम ज़मीदारों के सुपुर्द था। लार्ड कार्नवालिस तक यही प्रथा चलती रही। थानेदार को चोरी का माल बरामद करने पर कुछ कमीशन मिलता था और किसी गुंडे को पकड़वाने पर इनाम। लार्ड कार्नवालिस ने वेतन की प्रथा चलाई और प्रदेश को भिन्न भिन्न थानों में बाँट दिया। १८६१ ई० के पुलिस ऐक्ट के अनुसार पुलिस का विभाग स्थानीय सरकार के अधीन कर दिया गया और प्रत्येक प्रान्त में इन्स्पेक्टर जनरल आफ़ पुलिस की नियुक्ति हुई जिसके अधीन जेलखाने भी होते थे। पुलिस के अफ़सरों के शिक्षण का भी प्रबन्ध किया गया। जेलों में १८६४ ई० में सुधार हुआ जिसके अनुसार चार प्रकार के जेल खाने स्थापित हुये—एक सैन्ट्रल, दूसरे डिस्ट्रिक्ट, तीसरे सब्सीडियरी और चौथे रिफार्मेट्री। चौथी प्रकार की जेल अवयस्क कैदियों के लिये थी।

१६०२ ई० में पुलिस की जाँच के लिये एक कमीशन नियुक्त हुआ जिसकी सिफारिशों के अनुसार क्रिमिनल इन्वैस्टीगेशन विभाग तथा सैन्ट्रल इन्टैलीजेन्स ब्यूरो की स्थापना हुई। पुलिस के सिपाहियों तथा अफ़सरों का वेतन भी बढ़ाया गया। १६१६ ई० में एक और कमीशन नियुक्त हुआ जिस ने सुझाव दिया कि बच्चों पर अभियोग चलाने के लिये अलग न्यायालय हों और कैदियों को दस्तकारी सिखाई जाय। इस के अनुसार बोर्स्टल जेलों की स्थापना हुई। इस कमीशन का यह भी सुझाव था कि दीवानी और फौजदारी अपराधियों को अलग अलग रखा जाय। १६३१ ई० में दत्त, जेतन और उन के साथियों के बलिदान के कारण राजनीतिक कैदियों का अलग वर्ग बना दिया गया और ए०, बी० और सी० उनकी तीन श्रेणियाँ बना दी गईं।

सेना

यूरोप की अनिश्चित स्थिति ने सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में कम्पनी को सेना रखने पर विवश किया। बारूद का प्रयोग भी होने लगा। इसी से औरंगजेब को शंका हुई थी और वह कम्पनी से रुष्ट हो गया था। करनाटक की लड़ाइयों में अंग्रेज़ों ने अनुभव किया कि भारतीय सैनिक बहुत कुशल हैं और उन्होंने भारतीयां को अपनी सेना में भरती करना आरम्भ किया। १७९३ ई० के चार्टर ऐक्ट के अनुसार कम्पनी को बाध्य किया गया कि वह इंग्लैंड नरेश की सेना को भी भारत में स्थान दे और उसका वेतन भारतीय कोष से दिया जाय। डलहौज़ी ने गोरखा और पंजाब रैजीमेंट अलग बनाकर सेना में प्रान्तीयता का भाव उत्पन्न किया। १८६१ ई० में कम्पनी की सेना और रायल सेना को मिलाकर एक कर दिया गया। उसी वर्ष भारतीयों से तोपखाना छीन लिया गया। लार्ड कर्जन के काल में इस बात पर विवाद हुआ कि सेनापति के अतिरिक्त वाइसराय की कौंसिल में एक सदस्य हो जिसे सेना का मुख्य अधिकारी समझा जाय। यह सुझाव विवाद का विषय बन गया। किसी सीमा तक कर्जन की बात मान ली गई किन्तु यह प्रबन्ध दोषपूर्ण सिद्ध हुआ और प्रथम महायुद्ध में भारतीय सेना को इस से बहुत कष्ट उठाना पड़ा! १९१९ ई० में इस प्रबन्ध को तोड़ दिया गया। इस वर्ष सेना के चार खंड कर दिये गये जिन्हें चारों दिशाओं के नाम दिये गये। भारतीयों को भी किंग्ज़ कमीशन प्राप्त करने का अधिकार दिया गया। १९११ ई० की घोषणा के अनुसार उन्हें विक्टोरिया पदक प्राप्त करने का अधिकार मिला था। भारतीयों को जल-सेना सम्बन्धी शिक्षण देने के लिये १९३२ ई० में आई० एम० एस० डफ़रिन पर प्रबन्ध किया गया। १९२३ ई० में भारतीयों को सेना सम्बन्धी शिक्षण देने के लिये देहरादून के स्थान पर एक अकादमी स्थापित हुई। उसी साल सेना को भारतीय बनाने का निश्चय हुआ,

रायल एयरफोर्स की स्थापना हुई और रायल इंडियन मैरीन को १९३४ ई० में रायल इंडियन नेवी का नाम दिया गया।

पहली रेल गाड़ी १८५३ ई० में चलाई गई थी। १८७६ ई० तक लगभग सभी बड़े नगरों को रेल द्वारा मिला दिया गया था। उस समय तक दो प्रकार की रेलें होती थीं। एक पर सरकार का सीधा अधिकार होता था, एक पर अंग्रेजी कम्पनियों का अधिकार था।

बाहन

१९०५ ई० में रेलवे बोर्ड की स्थापना हुई जिसका प्रबन्ध प्रायः कम्पनियों के हाथ में था। १९२५ ई० में सरकार ने ईस्ट इण्डियन रेलवे, तथा ग्रेट इण्डियन पेननसुलर रेलवे पर, १९२९ ई० में बर्मा रेलवे पर और १९३० ई० में सदर्न पञ्जाब रेलवे पर पूर्ण अधिकार कर लिया।

सड़कें बनाने पर भी अंग्रेज़ी सरकार ने काफ़ी ध्यान दिया। १९३३ ई० में शिमला में पहली रेल रोड कान्फ्रेंस हुई।

जल मार्गों को समुन्नत करने का भी प्रयास हुआ।

१९०१ ई० में नहरों के विषय में परामर्श देने के लिये जो कमीशन नियुक्त हुआ उसका काम ऐसी नहरों के विषय में भी सुझाव देना था जो वाहन के लिये प्रयुक्त हो सकें। पूर्वी और पश्चिमी तट पर कई नहरें इस मतलब के लिये तैयार की गईं।

लार्ड कार्नवालिस द्वारा किया गया पक्का बन्दोबस्त दोषपूर्ण था जिसमें खेतों में काम करने वालों की दशा की ओर कोई ध्यान न दिया गया था। इस दोष को दूर करने के लिये १८८२ ई० में बंगाल टैनेंसी ऐक्ट पास हुआ। इस के अनुसार यह निर्धारित किया गया कि ज़मींदार भूमि जोतने वाले को भूमि से उसी सूरत में अलग कर सकता है जब वह लगान न दे। लगान की मात्रा विशेष परिस्थितियों में ही बढ़ाई जा सकती थी। लार्ड हेस्टिंग्ज़ के काल

भूमि-प्रबन्ध

(१८१३—२३ ई०) में मद्रास, तथा बम्बई में भूमि का प्रबन्ध महालवाड़ी तथा रय्यतवाड़ी पद्धति के अनुसार हुआ। महालवाड़ी पद्धति में लगान समस्त गाँव पर लगाया जाता था और भूमिदार सामूहिक रूप से लगान देते थे। रय्यतवाड़ी पद्धति में पृथक् पृथक् भूमिदार पर कर लगाया जाता था। गुजरात में एक नई पद्धति चलाई गई जो इन दोनों पद्धतियों का मिश्रण थी। इस के अनुसार लगान की मात्रा नियत कर लगान उगाहने का काम पटेल को सौंप दिया जाता था। तत्पश्चात् पञ्जाब में मद्रास और बम्बई के समान ही भूमि प्रबन्ध किया गया। १८६८ ई० में पञ्जाब और अवध टैनेंसी ऐक्ट पास हुये और भूमि पर उन लोगों का मौरूसी अधिकार स्वीकार कर लिया गया जो उस पर खेती करते थे। १८८५ ई० में बंगाल और १८८६ ई० में अवध टैनेंसी ऐक्टों द्वारा किसानों को अत्यधिक सुविधायें दी गईं। इसी प्रकार का एक कानून पञ्जाब के लिये १८८७ ई० में पास हुआ। १९०० ई० में पञ्जाब लैंड ऐलीनियेशन ऐक्ट पास हुआ और यह निर्धारित कर दिया गया—केवल उन्हीं वर्णों के लोग भूमि खरीद सकते हैं जिनका व्यवसाय खेती करना है। इस से पञ्जाब में दो वर्ग बन गये—ज़मीदार और गैर-ज़मींदार। १९३७ ई० के पश्चात् पञ्जाब में भूमि सुधार के कई नियम पास हुये। अन्य प्रान्तों में भी भूमि सुधार हुआ किन्तु मूल्यवान् कदम स्वतन्त्रता के पश्चात् 'ज़मीदारी उन्मूलन' द्वारा उठाया गया। उत्तर प्रदेश के ज़मीदारी उन्मूलन कानून को २४ जनवरी, १९५१ ई० को राष्ट्रपति ने स्वीकृति दी। पञ्जाब में कृषि-संरक्षण संशोधन अधिनियम १९५१ ई० में पास हुआ, पश्चिमी बंगाल में १९५५ ई० में स्थायी बन्दोबस्त को समाप्त किया गया। जनवरी १९५२ ई० में पेप्सू में पेप्सू कृषक (अस्थायी उपबन्ध) अधिनियम द्वारा कृषकों को बे-दखली से सुरक्षा प्राप्त हुई। १९५१ ई० में राजस्थान में और सौराष्ट्र में इसी प्रकार के कानून पास हुए, इत्यादि।

कृषि की उन्नति के लिये आगरा और पञ्जाब में उन्नीसवीं शताब्दी

के मध्य में नहरें खोदी जाने लगीं थीं। वास्तविक काम बीसवीं शताब्दी में हुआ। १९०१ ई० में नहरों के विषय में सुझाव देने के लिये एक कमीशन नियुक्त किया गया। १९३३ ई० में सतलुज वैली प्रोजैक्ट बन कर तैयार हुई, १९३२ ई० में सक्खर बैरेज, १९३४ ई० में निज़ाम सागर और कावेरी रिज़र्वायर और १९२६ ई० में लाइड डेम बम्बई बने। नहरों पर विशेष ध्यान स्वतन्त्रता के पश्चात ही दिया गया।

१८८० ई० में प्रान्तों में कृषि-विभाग स्थापित हुये थे किन्तु वे न होने के बराबर थे। १९०२ ई० में पूसा के स्थान पर कृषि सम्बन्धी अन्वेषण संस्था स्थापित हुई। १९०४ ई० में कोऑप्रेटिव सोसाइटी ऐक्ट बना। १९०५ ई० में आल इण्डिया बोर्ड आफ़ ऐग्रीकल्चर की स्थापना हुई और १९२९ ई० में इम्पीरियल कौंसिल आफ़ ऐग्रीकल्चरल रिसर्च की।

एक नया सामाजिक वर्ग

डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था—व्यवहार के इन निर्धारित सिद्धान्तों के स्थान पर हम ने सभ्यता के उस आदर्श को अपनाया जिसे अंग्रेज़ी का पद 'कल्चर' ज़ाहिर करता है······मैंने अंग्रेज़ों को अपने हृदय के सिंहासन पर स्थान दिया·····फिर पीड़ादायक निर्भ्रान्ति हुई······। रवीन्द्रनाथ का स्थान न केवल साहित्य के क्षेत्र में माननीय है बल्कि राष्ट्रीयता के विकास में भी उन्होंने मूल्यवान् काम किया है किन्तु जैसा उन के इन शब्दों से विदित होता है भारतीय समाज के एक वर्ग ने यहाँ की प्राचीन प्रथाओं का परित्याग कर नई शैली अपनाई जिस का आधार पश्चिमी सभ्यता पर था। इस वर्ग की अंग्रेज़ों पर श्रद्धा थी।

उन लोगों के अतिरिक्त जो सच्चे दिल से अंग्रेज़ों के भक्त थे अंग्रेज़ों ने चतुराई से ऐसे गणसमूह उत्पन्न किये थे जो हर समय उन का साथ देने को तैयार थे और जिन्होंने दासता के जुए को वरदान

रूप समझा था। इन में प्रमुख स्थान लिबरल पार्टी के उन सदस्यों का है जो अन्तिम समय तक अंग्रेज़ों का साथ देते रहे। ये लोग काँग्रेस के साथ हुआ करते थे किन्तु जब काँग्रेस ने १६२१ ई० में अंग्रेज़ों के विरोध का बीड़ा उठाया तो वे इस से पृथक हो गये। १६३० ई० में उन्होंने काँग्रेस के साथ मिलकर सरकार के सम्मुख कुछ शर्तें रखीं जिन के आधार पर सरकार को सहयोग दिया जा सकता था किन्तु इस दल के सदस्यों की अंग्रेज़ों पर इतनी श्रद्धा थी कि इन शर्तों के ठुकराये जाने पर भी उन्होंने सहयोग दिया। प्रथम महायुद्ध के पश्चात जो सुधार हुए थे उन के अनुसार इन लोगों ने शासन-कार्य में सरकार को पूरा-पूरा सहयोग दिया। सर तेज बहादुर सप्रू और श्रीनिवास शास्त्री इस दल के मुख्य नेता थे।

अंग्रेज़ों ने भारत में पाँव जमाते ही अनुभव किया था कि भारत पर सफलता से राज्य करने के लिये स्थानीय लोगों की सहायता की आवश्यकता है। १८५७ ई० की क्रान्ति के दिनों में यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया कि वे लोग जो कम्पनी के अधीन काम करते थे या और किसी प्रकार उस से लाभ उठाते थे अंग्रेज़ों का साथ देते थे। भारतीय राजन्यों ने भी प्रायः अंग्रेज़ों की सहायता की थी। १८५७ ई० के पश्चात् अंग्रेज़ों ने तालुकादारों और राजन्यों की संख्या में वृद्धि की और उन्हें अपने पंजे में रखने के अनेक उपाय निकाले। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न होने लगे हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट डालने का विधिवत् प्रयत्न किया गया। इस का विवरण आप पढ़ आए हैं।

भारत के रूढ़िवादी लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने का भी विदेशी शासकों ने पूरा-पूरा प्रयत्न किया। वे किसी भी सामाजिक सुधार के पक्ष में न थे।

लार्ड लिटन ने उपाधियों की प्रथा चलाई। यह भी अंग्रेज़ी राज्य को सुदृढ़ करने का एक उपाय था। रायबहादुर और खानबहादुर

आदि अंग्रेज़ों के सच्चे सेवक बन गये।

अंग्रेज़ी शिक्षा और पश्चिमी ढंग की जीवन शैली अपनाने वाले लोग भी एक सीमा तक अंग्रेज़ों के भक्त थे।

अंग्रेज़ी शासन का मुख्य आधार भय था।

बहुत से देश भक्त भी अंग्रेजी राज्य के प्रशंसक थे और समझते थे कि ब्रिटेन के आँचल से बँधे रहने में ही भारत का कल्याण है। इन लोगों को महायुद्ध के पश्चात अनुभूति हुई और उनमें से बहुत से निर्भ्रांत होकर ब्रिटिश सरकार के घोर शत्रु बन गए।

२० अगस्त १९१७ ई० को भारत सचिव ने घोषणा की कि

मौन्टेगू चैम्सफोर्ड रिफार्म्ज़

१. शासन प्रबन्ध में भारतीयों को अधिक भाग दिया जायगा।

२. धीरे-धीरे राजनीतिक अधिकार दिये जायंगे।

३. यह ब्रिटिश सरकार निर्धारित करेगी कि भारत को किस समय और कितने अधिकार दिये जायं।

भारत सचिव भारत आया और उस ने वाइसराय से इन सुधारों के विषय में बातचीत की।

भारत सचिव ने एक रिपोर्ट तैयार की जिसके अनुसार दिसम्बर १९१९ ई० में मौन्टेगू-चैम्सफोर्ड रिफार्म ऐक्ट पास हुआ। (मौंटेग उस समय भारत सचिव और चैम्सफोर्ड वाइसराय था) इस के अनुसार प्रान्तों में दोहरी सरकार अर्थात् डाएआर्की स्थापित की गई। साम्प्रदायिक निर्वाचन का नियम—जो १९०९ ई० के सुधार में स्वीकार किया गया था—ज्यों का त्यों रहा।

केन्द्र में कौंसिल आफ़ स्टेट और लैजिस्लेटिव असैम्बली स्थापित की गई। कौंसिल के ६१ सदस्य और असैम्बली के १५६ सदस्य थे। असैम्बली के १०६ सदस्य चुने जाते थे और शेष ४० सरकार द्वारा

नियुक्त किये जाते थे। इन में से २५ सरकारी अफ़सर होते थे। स्त्रियों को भी वोट का अधिकार दिया गया।

यह भी आयोजित किया गया कि १० वर्ष पश्चात् एक कमीशन इन सुधारों की जाँच-पड़ताल करेगी और उसकी रिपोर्ट के अनुसार नये सुधार किये जायंगे।

महायुद्ध के परिणाम-स्वरूप संसार में बहुत से परिवर्तन हुए। टर्की का साम्राज्य सुकड़ कर थोड़ा-सा रह गया। जर्मनी से उपनिवेश छीन लिये गए। यूरोप में कई नए राज्य स्थापित हुए। किन्तु सब से महत्वपूर्ण घटना थी लीग आफ़ नेशन्ज़ की स्थापना जो संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन के प्रयास का फल था। भारत को इस का एक सदस्य बनाया गया। यह संस्था उस उद्देश्य की प्राप्ति न कर सकी जिस के लिये इस की स्थापना हुई थी और आखिर इस का कोई महत्व न रहा। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् इसी उद्देश्य की पूर्ति के हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई।

लीग आफ़ नेशन्ज़
और भारत

महायुद्ध के दुष्परिणाम संसार के साथ-साथ भारत को भी भुगतने पड़े। कई प्रकार की व्याधियाँ फ़ैल गईं, निर्यात कम हो गई और उस के पश्चात् ऐसा मंदा हुआ कि साधारण जनता की दशा बहुत शोचनीय हो गई। विदेशी शासन होने के कारण इस आर्थिक संकट ने अभिशाप का रूप धारण कर लिया। ब्रिटेन की सरकार ने युद्ध का बहुत-सा खर्चा भारत पर डाल दिया और भारत इंग्लैंड का ऋणी हो गया।

आर्थिक संकट

भारत के सैनिकों ने मित्र राष्ट्रों की फ्राँस, अफ्रीका, गैली पोली फिलस्तीन, इराक आदि अनेक क्षेत्रों में बहुत सहायता की थी और

भारत में जागृति

यह स्पष्ट हो गया था कि वे यूरोपीय सैनिकों से कहीं अधिक कुशल लड़ाके हैं। इस आभास से उन में जागृति उत्पन्न होना स्वाभाविक था। जैसा ऊपर बताया गया है रूस की क्रान्ति और आयर्लैंड के "होम रूल" आन्दोलन ने भी भारतवासियों को प्रभावित किया था।

युद्ध के अन्तर्गत कतिपय देश भक्तों को यह विचार आया कि ब्रिटेन की विपद् का लाभ उठाया जाय और इस समय आन्दोलन किया जाय किन्तु उन की यह चेष्टा सफल नहीं हुई इस का कारण यह था कि अंग्रेजों ने भारतीयों के मन पर कई प्रकार से सिक्का जमा रखा था।

परिच्छेद ४१

स्वतंत्रता की ओर

भारत में निर्भ्रान्ति

भारत के बहुत से नेता समझते थे कि अंग्रेज़, यद्यपि मौन्ट गोमरी जैसे अफ़सरों के अनुसार उन्होंने भारत के लोगों को बिल्कुल नज़र-अन्दाज़ कर दिया था, भारत के हितैषी हैं किन्तु प्रथम महायुद्ध के पश्चात् वे निर्भ्रान्त हो गये और पं० मोतीलाल नेहरू जैसे अंग्रेज़-भक्त भी उनका विरोध करने लगे।

संसार की धाराएँ

इस निर्भ्रान्ति में उन धाराओं का भी हाथ था जो प्रथम युद्ध के पश्चात् संसार में प्रवाहित हुई थीं। कई देशों में नरेशों को पद छोड़ने पड़े और राज सत्ता लोगों के हाथ में आ गई। महायुद्ध ने संसार को ऐसा नस्तर लगाया था कि उसे जान के लाले पड़ गये। संसार में चारों ओर यह अभिलाषा दिखाई देती थी कि किसी प्रकार शान्ति स्थापित हो।

युद्ध के प्रभाव स्वरूप न केवल भिन्न भिन्न देशों का आर्थिक ढाँचा बिगड़ गया था बल्कि उनका नैतिक स्तर भी बहुत गिर गया था। लोगों के दिलों में यह चाह थी कि शीघ्र पुनर्निर्माण की क्रिया आरंभ हो।

सामाजिक पुनर्निर्माण में रूस ने संसारका पथ प्रदर्शन किया। अमेरिका और ब्रिटेन के घोर विरोध के विपरीत रूस ने आश्चर्यजनक उन्नति की जिसका वास्तविक स्वरूप दूसरे महायुद्ध में दृष्टिगोचर हुआ। रूस का प्रभाव सभी देशों पर पड़ा और किसी न किसी सीमा तक सभी राज्यों को साम्यवाद के नियम अपनाने पड़े।

टर्की पर यह प्रभाव विशेष रूप से पड़ा। प्रथम महायुद्ध ने टर्की के साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया था और तुर्क उस अपमान को सहन नहीं करना चाहते थे। उन्हों ने मित्र राष्ट्रों के साथ सन्धि न कर के रूस से सम्बन्ध जोड़ लिया और अंगोरा में एक नया राज्य स्थापित किया, जिसका आधार समाजवादी नियमों पर था। यूनानियों ने तुर्कों को समाप्त करने का प्रयास किया किन्तु उन्हें मुंह की खानी पड़ी और १६२२ ई० के पश्चात् उन्हें टर्की से बिल्कुल निकाल दिया गया।

टर्की ने सुल्तान को सिंहासन से उतार कर गणतन्त्र स्थापित किया। कमाल अतातुर्क जिसे कमाल पाशा भी कहते हैं आधुनिक टर्की का निर्माता था। उस ने जिस नीति का पालन किया उसकी कुशलता का प्रमाण दूसरे महायुद्ध में मिला। टर्की ने बड़ी चतुराई से निष्पक्ष रहकर अपने आप को इस युद्ध के अभिशाप से बचाया।

प्रथम महायुद्ध के फलस्वरूप मध्य एशियायी देशों में अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। ईरान, फिलिस्तीन और अरब विशेष रूप से उनकी शोषण की नीति के शिकार बने। इन देशों की स्थिति दूसरे महायुद्ध के पश्चात् सुधरी।

वारसाई की अपमानजनक सन्धि के कारण और उन यातनाओं के कारण जो हार का फल स्वरूप थीं जर्मनी में नाज़ी दल ने जन्म लिया, जिसका नेता हिटलर तानाशाही का पक्षपाती था। उसकी नीति से कुछ सालों में ही जर्मनी ने अपनी खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर ली और वह १६३६ ई० में संसार को चुनौती देने के योग्य हो गया।

इटली में एक नये वाद ने जन्म लिया जिसे "फ़ासिज़्म" कहते हैं। फ़ासिज़्म का प्रवर्तक मसोलिनी था जिसने रोम के प्राचीन शौर्य को जीवित करने की असफल चेष्टा की। उसने दूसरे महायुद्ध

में जर्मनी का साथ दिया और मात खाई । स्पेन ने भी "फ़ासिज्म" को अपनाया किन्तु यह देश दूसरे महायुद्ध में निष्पक्ष रहा।

अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस ने मिल कर यूरोप को कई छोटे छोटे राज्यों में बाँट दिया था जिन्हें सामूहिक रूप से "बाल्टिक स्टेट्स" कहते थे। इनका अस्तित्व निरन्तर अशान्ति का कारण बना रहा।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अमेरिका ने आश्चर्यजनक उन्नति की। दूसरे महायुद्ध में उसने सिद्ध कर दिया कि वह संसार की सर्वप्रथम शक्ति है।

चीन में १९११ ई० में क्रान्ति हुई थी। किन्तु चीन पूर्ण रूप से सशक्त न हो सका। १९१७ ई० में वह जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित हुआ किन्तु युद्ध के पश्चात् जापान और यूरोपीय शक्तियों ने उसे चैन नहीं लेने दिया। दूसरे महायुद्ध में उसने अंग्रेज़ों का साथ दिया। किन्तु वहाँ साम्यवादी इतना बल पकड़ गये थे कि युद्ध समाप्त होते ही वे चीन पर अध्यस्त हो गये और १९५० ई० में उन्हों ने चीन में लोकराज्य की स्थापना की।

जापान ने प्रथम महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों का साथ दिया था। युद्ध के पश्चात् उसने चीन पर आक्रमण कर दिया। जापान की शक्ति इतनी बढ़ गई कि जब दिसम्बर १९४१ ई० में वह युद्ध में सम्मिलित हुआ तो अमेरिका और ब्रिटेन की जलसेना जापान की जलसेना का मुकाबला न कर सकी। जापान ने चीन का बहुत-सा भाग जीत लिया और पूर्वी द्वीपसमूह को विजय करते हुए जापानी आसाम की सीमा तक आ पहुंचे। जापान की हार का कारण अणुबम्ब का आविष्कार था।

इस आविष्कार से विज्ञान अपनी चरम सीमा को पहुँच गया और उसे सृजन की वे शक्तियाँ प्राप्त हो गईं जो अभी तक केवल प्रकृति में निहित थीं।

इस आविष्कार के लिए भूमि १९०३ ई० में रेडियम के आविष्कार ने तैयार की थी, जिसका श्रेय मैडम क्यूरी और उसके पति को है।

विज्ञान के क्षेत्र में जैसा पहले कह आये हैं उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आश्चर्यजनक काम हुये। इन में महत्वपूर्ण थे फोनोग्राफ़ (१८७६ ई०), वायरलैस (१८९५ ई०), ऐक्स रे (१८९५ ई०), विमान (१९०३ ई०), वायुयान (१९०८ ई०) टैंक (१०१४ ई०)। प्रथम महायुद्ध के कारण बहुत से आविष्कार हुये। रडर और अणु शक्ति के आविष्कार दूसरे महायुद्ध की देन हैं।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् आधीन देशों में स्वतंत्रता संग्राम ने भीषण रूप धारण कर लिया। भारत के अतिरिक्त इंडोनेशिया, बर्मा, मलाया, हिन्द चीनी, मिश्र और अन्य बहुत से देशों में क्रांति की अग्नि दहक उठी। इस अग्नि के प्रज्वलित करने में भारत का विशेष हाथ है।

भारत में स्वतन्त्रता
की लहर

इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने दादा भाई नारोजी की अध्यक्षता में यह प्रस्ताव पास किया था कि भारत का ध्येय स्वराज्य है किन्तु स्वराज्य की व्याख्या लोकमान्य वालगङ्गाधर तिलक ने की। प्रथम महायुद्ध के अन्तर्गत उन्हों ने स्वराज्य (होम रूल) आन्दोलन चलाया। युद्ध के अन्तर्गत ही चम्पारन और अहमदाबाद में सत्याग्रह हुये, किन्तु इनका सरकार से सम्बन्ध न था। सरकार विरोधी सत्याग्रह खेड़ा में हुआ जिसकी सफलता ने सिद्ध कर दिया कि अहिंसा एक सशक्त हथियार है।

रौलट ऐक्ट—१९१९

नये सुधार सन्तोषजनक न थे। भारतीय जनता अंग्रेजों के विरोध पर डटी हुई थी। सरकार को षड़यन्त्र का भय था। इसलिये एक कानून पास किया गया जिसे रौलट ऐक्ट कहा जाता है। इसके अनुसार बोलने और लिखने पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। यदि सरकार चाहती तो किसी को भी अभियोग चलाये बिना जेल में डाल

सकती थी। मैजिस्ट्रेट अपराधी को अपनी रक्षा का अवसर दिये बिना दण्ड दे सकता था।

महात्मा गाँधी, जो अभी तक अंग्रेज़ों को अपना मित्र समझते थे, उनकी ईमानदारी में सन्देह करने लगे। उन्हों ने इस ऐक्ट का विरोध और अखिल भारतीय हड़ताल का प्रस्ताव कांग्रेस के सम्मुख रखा। यह हड़ताल बहुत सफल हुई। पंजाब में सरकार ने लोगों पर अत्याचार किये जिसके कारण वहाँ कई खूनी वारदातें हुईं। शासन-प्रबन्ध सेना के हाथ में दे दिया गया। सेना ने लोगों पर अत्याचार किये। जनरल डायर ने जलियां वाले बाग में निहत्थे लोगों पर गोली चलाई। उन्हें बिखर जाने के लिये कोई चेतावनी न दी गई थी। इस के पश्चात् अमृतसर के लोगों को रींग कर चलने की आज्ञा हुई। अन्य नगरों में भी कम अत्याचार नहीं हुए।

सत्याग्रह

इन अत्याचारों की छानबीन के लिए सरकार ने हंटर कमेटी नियुक्त की जिसने जनरल डायर को दोषी ठहराया किन्तु ब्रिटिश सरकार के व्यवहार से यह सिद्ध हो गया कि अपनी इच्छा से वह भारत को डामिनियन स्टेटस, जो उस समय भारतीय नेताओं का लक्ष्य था, देने को तैयार न होगी। इस प्रकार की शासन-व्यवस्था कैनेडा, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में स्थापित हो चुकी थी। इन देशों को पूर्ण राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। केवल सम्राट् का प्रतिनिधि वहाँ का गवर्नर जनरल होता था। इन देशों में अब भी ऐसी ही शासन-व्यवस्था है।

मौन्टेग्-चेम्सफोर्ड रिफार्म ऐक्ट के अधीन १९२० ई० में चुनाव हुए। कांग्रेस ने इनको अस्वीकार किया।

पहले महायुद्ध में टर्की ने जर्मनी का साथ दिया था। जर्मनी की हार हो जाने पर टर्की के खलीफ़ा के साथ अंग्रेज़ों ने सख्ती का व्यवहार किया जिस से भारत के मुसलमान अंग्रेज़ों से रुष्ट हो गये।

उन्हों ने आन्दोलन आरम्भ किया जिसे खलाफ़त की तहरीक कहते हैं।

अंग्रेज़ों से निराश होकर महात्मा गांधी ने १६२१ ई० में, जिस समय इंग्लैण्ड का युवराज भारत पधारा, सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। इसका प्रोग्राम था विदेशी वस्तुओं का, कौंसिलों और कचहरियों, तथा सरकारी स्कूलों, कालिजों और नौकरियों का बाईकाट।

इस आन्दोलन को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई किन्तु चौरी-चौरा में लोगों ने पुलिस की चौकी को आग लगा दी। महात्मा गांधी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया।

महात्मा गांधी के उच्च आचार और योग्यता को सभी स्वीकार करते थे, किन्तु आन्दोलन को स्थगित करने की नीति के साथ बहुत से कांग्रेस नेता सहमत न थे। उन्हों ने एक नई पार्टी बनाई जिसे स्वराज्यपार्टी कहते हैं। श्री जवाहरलाल के पिता पं० मोतीलाल नेहरू, पं० मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपत राय और सी० आर० दास इसके प्रमुख सदस्य थे। स्वराज्य पार्टी ने नये सुधारों को असन्तोषजनक समझते हुए भी एक मौका देने का निर्णय किया।

स्वराज्य दल

गुरुद्वारों का प्रबन्ध प्रायः महन्तों के अधीन होता था। इस प्रबन्ध के दोषपूर्ण होने के कारण कई दुर्घटनाएं हुईं और सिक्खों ने आन्दोलन किया, जो १६२१ ई० से १६२५ ई० तक चलता रहा। इसकी सफलता पर गुरुद्वारा ऐक्ट बना जिसके अनुसार गुरुद्वारों का प्रबन्ध सिक्खों की निर्वाचित समिति के सुपुर्द कर दिया गया जिसे गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी कहते हैं।

गुरुद्वारा आन्दोलन

१६२२ ई० में मालावार में मोपले मुसलमानों ने बग़ावत कर दी। सरकार ने उन पर बहुत अत्याचार किये। महात्मा गांधी की सहानु-

मोपला विद्रोह

भूति मोपलों के साथ थी इसलिए कुछ हिन्दू नेता महात्मा गांधी का विरोध करने लगे। उसी साल महात्मा गांधी को बंदी कर लिया गया और उन्हें छः साल का कारागार दिया गया किन्तु उन्हें दो साल पश्चात् मुक्त कर दिया गया। १६२१ ई० से १६२६ ई० तक जब भारत में अशान्ति फैली रही लार्ड रीडिंग वाइसराय रहा। उस के पश्चात् १६२६—३१ ई० तक लार्ड इर्विन भारत का वाइसराय नियुक्त हुआ। वह भारतीय देशभक्तों के साथ सहानुभूति रखता था।

साइमन कमीशन

१६१६ ई० के क़ानून में यह आश्वासन दिया गया था कि १० वर्ष पश्चात् एक कमीशन नियुक्त किया जाएगा जो यह निर्णय करेगा कि क्या भारत में नये वैधानिक सुधार किये जाने का समय आगया है, यदि आ गया है तो क्या सुधार किये जायें। इस कमीशन की नियुक्ति १६२७ ई० में हुई। इस में कोई भारतीय न था, इसलिए कांग्रेस ने इस का बाईकाट कर दिया। इस कमीशन को साइमन कमीशन कहते हैं।

साइमन कमीशन के भारत आने पर स्थान स्थान पर हड़तालें हुईं। सरकार का दमन-चक्र चला और प्रतिकार के रूप में पुनः हिंसक आन्दोलन चल पड़ा और अंग्रेज़ अफ़सरों के वध शुरू हो गये।

सरकार ने पब्लिक सेफ्टी और व्यापारिक झगड़े सम्बन्धी दो क़ानून पास किये। किन्तु लार्ड इर्विन ने अनुभव किया कि लोगों को उत्तरदायी शासन प्रदान किये बिना देश में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। वह लन्दन गया और वापिस लौट कर उसने घोषणा की कि भारत को डोमिनियन स्टेटस दिया जायेगा और साइमन कमीशन की रिपोर्ट के पश्चात् गोल मेज़ कांफ्रेंस होगी जिस में भारत के प्रतिनिधियों को निमन्त्रित किया जायगा और उनकी राय लेकर वैधानिक सुधार का क़ानून पास किया जायगा।

डोमिनियन स्टेटस ऐसा शब्द था जिसके कई अर्थ लिये जा सकते

पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव

थे। किन्तु यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश सरकार भारत को वह दर्जा देने को तैयार नहीं जो कैनेडा या आस्ट्रेलिया को प्राप्त था। कांग्रेस ने १९२९ ई० में श्री जवाहरलाल के प्रधानत्व में यह प्रस्ताव पास किया कि भारत का लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य है। उस अवसर पर उस रिपोर्ट को, जो पं० मोतीलाल ने भारत के भावि विधान के विषय में तैयार की थी, रद्द कर दिया गया। महात्मा गांधी से प्रार्थना की गई कि यदि सरकार भारत को स्वतन्त्रता देने को तैयार न हो तो इस के लिये आन्दोलन किया जाए।

सविनय अवज्ञा

महात्मा गान्धी ने अप्रैल १९३० ई० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया। नमक का क़ानून तोड़ने के लिए वे दंडी गए, जहाँ उन्हें बन्दी कर लिया गया। आन्दोलन समस्त देश में फैल गया। पुरुषों के अतिरिक्त इस में बहुतसी स्त्रियों ने भाग लिया और सरकार के लिए इसकी गति को रोकना असम्भव हो गया।

मई १९३० ई० में साईमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। कमीशन ने सिफ़ारिश की कि प्रान्तों में दोहरी सरकार के स्थान पर उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थापित की जाए। केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की सिफ़ारिश नहीं की गई।

गोल मेज़ कांफ्रेंस

इस रिपोर्ट के प्रकाशित होने से भारत की राजनैतिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। १९३०—३१ ई० में लंदन में पहली गोलमेज़ कांफ्रेंस हुई, जिस में कांग्रेस ने कोई भाग न लिया। लार्ड इर्विन ने महात्मा गांधी से बात चीत की जिस के फलस्वरूप गांधी इर्विन समझौता हो गया। नमक के कानून में कुछ तब्दीलियाँ कर दी गईं। सत्याग्रह आन्दोलन में जो लोग बन्दी बना लिए गए थे उन्हें मुक्त कर दिया गया और महात्मा गांधी दूसरी गोल मेज़ कांफ्रेंस में

कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। यह कांफ्रेंस १९३१ के अन्त में हुई, किन्तु इस में कोई भी निर्णय न हो पाया।

इस बीच में १९३१—३६ ई० तक लार्ड विलिङ्गडन को भारत का वाइसराय नियुक्त किया गया, जिस ने गांधी इर्विन समझौते की परवाह न करते हुए पुनः दमन-चक्र चलाया और कांग्रेस को ग़ैर कानूनी जमात घोषित किया।

दूसरी गोल मेज़ कांफ्रेंस के असफल होने का सब से बड़ा कारण यह था कि भारत के विभिन्न साम्प्रदायिक दल आपस में मिल कर कोई स्वीकृत निर्णय न कर सके थे। ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने इस विषय में निर्णय दिया जिसे कम्यूनल अवाड कहते हैं। इस में दलित जातियों को हिन्दुओं से पृथक् अधिकार दिए गए थे, जिस के विरुद्ध महात्मा गांधी ने भूख हड़ताल कर दी। पूना के स्थान पर हिन्दू महासभा जो हिन्दुओं की प्रतिनिधि कहलाती थी और दलित जाति के नेताओं में समझौता हो गया। ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने कौम्यूनल अवार्ड में पूना के समझौते के अनुसार परिवर्तन कर दिया। कांग्रेस ने फिर भी इस अवार्ड के विषय में अपना कोई मत प्रकट न किया।

१९३२ ई० के अंत में तीसरी गोल मेज कांफ्रेंस हुई जिस में कांग्रेस सम्मिलित न हुई। इस के समाप्त होंने पर ब्रिटिश सरकार ने व्हाइट पेपर तैयार किया जिस के आधार पर १९३५ ई० का इंडिया ऐक्ट पास हुआ।

१९३५ ई० के ऐक्ट के दो भाग थे—एक प्रांतीय और दूसरा केन्द्रीय। प्रान्तों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई थी और केन्द्र में दोहरी शासन-व्यवस्था की योजना थी जिसे संघ-शासन का नाम दिया गया था। इस ऐक्ट का केन्द्रीय भाग कार्यान्वित न हो पाया।

ब्रिटेन में भारत के प्रति दो प्रकार के विचार फैले हुये थे। एक

विचार यह था कि भारत स्वराज्य के योग्य है और उसे शीघ्र ही उत्तरदायी शासन-विधि प्रदान की जाय।

ब्रिटेन का रुख

दूसरे विचार के लोग यह समझते थे कि भारत ब्रिटेन की जागीर है जिसे उस ने बहुत कठिनाई से प्राप्त किया है। यह जागीर सुगमता से नहीं छोड़ी जा सकती—इस के पक्ष में उनके पास यह बहाना था कि भारत के विभिन्न साम्प्रदायिक दल आपस में मिल कर कोई निर्णय नहीं कर सकते। भारत की मूढ़ जनता प्रजातन्त्रीय शासन विधि का लाभ न उठा सकेगी और भारत में अराजकता फैल जायगी।

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

ब्रिटेन पर अन्तर्राष्ट्रीय धाराओं का प्रभाव पड़ रहा था। वह १७७६ ई० में अपनी ग़लत नीति के कारण अमेरिका के एक अत्यन्त उपजाऊ भाग से हाथ धो बैठा था। संयुक्त राज्य अमेरिका ने स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् प्रजातन्त्रीय शासन विधि अपनाई। यहाँ की सरकार ने यह सिद्ध कर दिया था कि वह किसी भी राष्ट्र को अपने अधीन नहीं रखना चाहती, जो देश भी उस के प्रभावाधीन आये उन में लोकतन्त्रीय शासन विधि स्थापित कर दी गई। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका की मान प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी।

यूरोप और एशिया में रूस ने एक नई शासन-विधि स्थापित की थी जिस का प्रभाव फैलता जा रहा था।

रूस और अमेरिका ने प्रथम महायुद्ध में अंग्रेज़ों का साथ दिया था।

उधर हिटलर के अधीन जर्मनी, मसोलिनी के अधीन इटली, जनरल फ्रैंको के अधीन स्पेन सैनिक शक्ति बढ़ा रहे थे। जापान पूर्व में दनदना रहा था।

भारत के उत्तरपश्चिम में अफ़गानिस्तान में महायुद्ध के पश्चात्

अफ़गानिस्तान में युद्ध

एक बहुत बड़ी क्रान्ति हुई। २० फरवरी १९१९ ई० को अमीर हबीबुल्लाह को कत्ल कर दिया गया। उस का पुत्र अमानुल्ला उस का उत्तराधिकारी बना। अमानुल्ला ने उसी साल अंग्रेज़ों पर चढ़ाई कर दी किन्तु उस की हार हुई और उसे अंग्रेज़ों के साथ सन्धि करनी पड़ी। अमानुल्ला को पश्चिमी विचारों ने बहुत प्रभावित किया था। उस ने अफ़गानिस्तान में पश्चिमी ढङ्ग के रहन-सहन का प्रचार किया। अफ़गानिस्तान के रूढ़िवादी लोग उस के विरुद्ध हो गये और उसे सिंहासन छोड़ना पड़ा। भारत सरकार ने अफ़गानिस्तान में स्थित सब अंग्रेज़ों को बाहर निकाल लिया। अफ़गानिस्तान में चिरकाल तक घरेलू युद्ध होते रहे जिन में अंग्रेज़ी सरकार ने कोई भाग नहीं लिया।

जिस समय काँग्रेस का १९३० ई० का सत्याग्रह जारी था उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर पठानों ने विद्रोह कर दिया जिसे दमन करने में अंग्रेज़ों को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। कबाईली लोगों ने पेशावर तक धावा बोला। उन की माँग यह थी कि महात्मा गांधी को मुक्त किया जाय और अध्यादेश वापिस लिये जायं।

इन परिस्थितियों में १९३५ ई० का इण्डिया ऐक्ट पास हुआ।

१९३५ का ऐक्ट

इस ऐक्ट के अनुसार सिंध को बम्बई से और उड़ीसा को बिहार से पृथक् कर दो नये प्रान्त बना दिये गये। बर्मा को अलग कर दिया गया। अब भारत में ११ गर्वनरों के प्रान्त थे—दिल्ली, अजमेर-मेवाड़, कुर्ग और ऐंडेमान चीफ़ कमिश्नर के प्रान्त और बिलोचिस्तान ब्रिटिश ऐजन्सी थी।

केन्द्र में संघ शासन का नियम लागू किया गया। शर्त यह थी कि यदि इतनी रियासतें जिनकी जनसंख्या रियासती-भारत की कुल जनसंख्या

से आधी हो संघ में सम्मिलित होना स्वीकार करेंगी तो संघ स्थापित हो सकेगा। केन्द्रीय धारा के दो सदनों में से एक में रियासतों के एक तिहाई और दूसरे में २५ प्रतिनिधि होंगे। राजाओं और नवाबों को प्रतिनिधि नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। इस का यह अभिप्राय था कि यदि शर्त के अनुसार रियासतें सम्मिलित न हों तो केन्द्रीय शासन में कोई परिवर्तन न किया जाय।

कानून बनाने के लिये समस्त विषयों की तीन सूचियाँ तैयार की गई। एक सूची वह थी जिस के विषयों पर केवल केन्द्रीय धारा सभा कानून बना सकती थी, दूसरी सूची के विषय पूर्ण रूप से प्रान्तों के अधीन थे और तीसरी सूची के विषयों पर केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारें दोनों कानून बना सकती थीं। इस कानून में वाइसराय की कार्यपालिका के दो भाग कर दिये गये थे। कुछ सदस्य धारा सभा को उत्तरदायी थे, कुछ गवर्नर जनरल को। गवर्नर जनरल को बहुत अधिकार दिये गये थे। अर्थ, रक्षा, प्रादेशिक महकमे उस के सुपुर्द थे। वह किसी समय भी धारा सभा को तोड़कर शासन शक्ति अपने हाथ में ले सकता था।

भारत सचिव की इण्डिया कौंसिल तोड़ दी गई थी और उस के स्थान पर एक अनुमति देने वाली समिति का निर्माण किया गया था।

केन्द्र में एक न्यायपालिका स्थापित की गयी जिसे फैड्रल कोर्ट कहते थे। इस के निर्णय की अपील ब्रिटेन की प्रीवी कौंसिल में हो सकती थी

प्रान्तों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई थी जिसे प्रोविन्शल औटोनोमी कहते थे। प्रान्त के गवर्नर को भी विशेष अधिकार दिये गये थे। स्थिति बिगड़ जाने पर वह प्रान्तीय धारासभा को तोड़ सकता था और शासन का काम अपने हाथ में ले सकता था।

इस ऐक्ट के अनुसार धारासभाओं के पास किये हुये विधेयक को कानून बनने के लिये वाइसराय, सैक्रेटरी आफ़ स्टेट फार इण्डिया

और ब्रिटेन के सम्राट् की स्वीकृति आवश्यक थी।

यह ऐक्ट बहुत दोषपूर्ण था। केन्द्रीय धारासभा के स्थापित होने की संभावना ही न थी, क्योंकि राजाओं या नवाबों को इस में सम्मिलित होने के लिये बाध्य न किया जा सकता था और उन के सम्मिलित हुये बिना संघ स्थापित न हो सकता था। काँग्रेस ने ऐक्ट के केन्द्रीय भाग को अस्वीकार कर दिया किन्तु इस के प्रान्तीय भाग को स्वीकार करने का इरादा ज़ाहिर किया।

१९३६ ई० में लार्ड लिंलिथगो वाइसराय नियुक्त हुआ, जो १९४३ ई० तक रहा और लार्ड ज़ैटलैंड भारतसचिव। इन दोनों को भारत का अनुभव था।

नये चुनाव और प्रान्तों में मन्त्रि-मंडल स्थापना

१९३७ ई० में ऐक्ट के अनुसार प्रान्तों में चुनाव हुये। काँग्रेस को भारी सफलता प्राप्त हुई और गवर्नरों के विश्वास दिलाने पर कि वे जहाँ तक हो सकेगा अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग न करेंगे काँग्रेस ने ८ प्रान्तों में मन्त्रिमंडल स्थापित किये। बंगाल में कृषक प्रजा पार्टी, पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी ने मन्त्रिमंडल बनाए। सिंध में स्थायी मन्त्रिमंडल न बन सका।

काँग्रेस सरकार ने शिक्षा को विशेष रूप से महत्त्व दिया। दूसरा परीक्षण मदिरा निषेध के क्षेत्र में किया गया।

दूसरा महायुद्ध (१९३९-१९४५ ई०)

केन्द्रीय शासन-व्यवस्था के विषय में काँग्रेस और ब्रिटिश सरकार में बातचीत हो रही थी कि १९३९ ई० में दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश सरकार ने घोषित किया कि भारत भी युद्ध में सम्मिलित है। काँग्रेस ने आपत्ति उठाई कि यह घोषणा भारत की अनुमति लिये बिना की गई है। भारत स्वतन्त्र होने पर ही युद्ध में सम्मिलित हो सकता है और अंग्रेजों की

सहायता कर सकता है। ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्रता देने को तैयार न थी इस लिये काँग्रेस मन्त्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिये। विचित्र परिस्थिति होने के कारण केवल उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त में काँग्रेस मन्त्रिमंडल ने त्यागपत्र नहीं दिया।

महायुद्ध आरम्भ होते ही फ्राँस जर्मनी के अधीन हो गया। इटली ने जर्मनी का साथ दिया जिस के कारण मध्यपूर्व की रक्षा का प्रश्न विषम बन गया। इसकी रक्षा के लिये भारतीय सेना भेजी गई जिस ने मार्के के काम किये। ईराक में उस ने विशेष रूप से वीरता और कौशल का प्रदर्शन किया।

१९४१ ई० के अंत में जापान युद्धक्षेत्र में कूद पड़ा। अंग्रेजों ने पूर्वी देशों को खाली कर दिया। भारतीय सेनाओं ने आसाम की पहाड़ियों में मोर्चे लगाये। १९४४ ई० में जापान ने आसाम पर आक्रमण कर दिया किन्तु भारतीय सेनाओं ने उन का मुँह तोड़ जवाब दिया। कोहिमा का मोर्चा दूसरे महायुद्ध की मार्मिक घटना थी जिस की विजय का श्रेय भारतीय सेना को है।

न केवल भारत सैनिकों ने अंग्रेज़ों की सहायता की बल्कि भारत से बहुत सी खाद्य सामग्री और युद्ध सामग्री भी अंग्रेज़ों को पहुँचाई गई। भारत ने ६० से लेकर ७५ प्रतिशत तक अंग्रेजों की माँग पूरी की। इस माँग को पूरा करने के लिये भारत में कई नये उद्योग स्थापित किये गये। कई उद्योगों का विस्तार हुआ। इस्पात, सीमेंट और बौक्साइट के उद्योग में भारत ने विशेष रूप से उन्नति की।

१९४० ई० तक दूसरा महायुद्ध भारत के लिये एक तमाशा था जिसके समाचार विनोद का विषय थे। १९४० ई० से १९४१ ई० तक यह महायुद्ध भारत की समृद्धि का कारण रहा। १९४१ ई० में जापान के युद्धक्षेत्र में उतरते ही कठिनाई अनुभव होने लगी। वाहन के साधनों पर इस का प्रभाव सब से पहले पड़ा। फिर खाद्य सामग्री

पर। १९४३ ई० का बंगाल का दुर्भिक्ष महायुद्ध का कुफल कहा जा सकता है।

बंगाल का दुर्भिक्ष

अक्तूबर १९४३ ई० में लार्ड वेवल वाइसराय नियुक्त हुआ। उस ने लोगों को दुर्भिक्ष से बचाने के लिये सेना नियुक्त की। खाद्य सामग्री का प्रवन्ध केन्द्रीय सरकार ने अपने ज़िम्मे लिया। इससे स्थिति कुछ संभल गई किन्तु खाद्य सामग्री की कमी और मंहगाई बढ़ती ही गई।

राजनीतिक सुधारों की योजना

लार्ड लिंलिथगो ने अनुभव किया था कि भारत में उत्तरदायी सरकार न होने से अंग्रेजों को पूर्ण सहायता प्राप्त न हो सकेगी। उस ने अक्तूबर में घोषणा की कि युद्ध समाप्त होते ही भारत को डोमिनियन स्टेटस दे दिया जायगा। उस ने भारत के राजनीतिक दलों को निमन्त्रण दिया कि वे युद्ध जीतने में ब्रिटिश सरकार को सहयोग दें और ऐडवाइज़री कौंसिल में सम्मिलित हों। काँग्रेस ने यह निमन्त्रण स्वीकार न किया।

फ्राँस की हार के पश्चात् भारत के राजनीतिक वातावरण में कुछ परिवर्तन दिखाई देने लगा। काँग्रेस ने घोषणा की कि वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अहिंसा नीति छोड़ने को तैयार है। अगस्त मास में ब्रिटिश सरकार ने इस के उत्तर के रूप में घोषणा की कि भारत के भावी संविधान को निर्धारित करने के लिये संविधान सभा बनाई जायगी जिस का निर्णय ब्रिटिश सरकार को स्वीकार होगा। काँग्रेस ने समझा कि यह ब्रिटिश सरकार की एक चाल है। उस ने इस प्रस्तावना को स्वीकार न किया।

१९४० ई० में महात्मा गाँधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया किन्तु इस से ब्रिटिश सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

वाइसराय ने इस बीच में अपनी कार्यपालिका का विस्तार किया। उस के १५ सदस्यों में से ११ भारतीय थे।

क्रिप्स प्रस्तावना

जापान और अमेरिका के युद्धक्षेत्र में आ जाने से १६४२ ई० में भारत की राजनीतिक समस्या का महत्व बढ़ गया। काँग्रेस के प्रमुख नेताओं को मुक्त कर दिया गया। ११ मार्च १६४२ ई० को ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स को जो ब्रिटेन की लोकसभा का नेता था, भारत भेजा। क्रिप्स ने भारत आकर घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार युद्ध के अन्त पर डोमिनियन स्टेटस देने को तैयार है। इस लक्ष्य की पूर्ति में केन्द्रीय शासन विधि में परिवर्तन करने की भी घोषणा की गई। महात्मा गाँधी को क्रिप्स की बात पर विश्वास न हुआ किन्तु काँग्रेस के अन्य नेता उस के साथ बातचीत करते रहे और एक समय ऐसा अनुभव होने लगा कि भारत में राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जायगी किन्तु जल्दी ही यह भ्रम दूर हो गया, क्योंकि ब्रिटिश सरकार रक्षा विभाग पर अपना अधिकार रखना चाहती थी और यह बात काँग्रेस को स्वीकार न थी।

क्रिप्स की प्रस्तावना में प्रान्तों को भारतीय संघ से पृथक होने का अधिकार दिया गया था और कहा गया था कि रियासतों के शासकों के लिये संघ में सम्मिलित होना अनिवार्य नहीं। काँग्रेस इसे भी स्वीकार न कर सकती थी।

जापानी भारत की ओर बढ़े आ रहे थे। महात्मा गाँधी ने कहा कि यदि अंग्रेज़ भारत छोड़ जायं तो जापानी भारत पर आक्रमण न करेंगे। महात्मा गाँधी ने अंग्रेज़ों से अपील की कि वे भारत छोड़ जायं।

८ अगस्त १६४२ ई० को बम्बई में काँग्रेस की कार्यकारिणी सभा की बैठक हुई जिस में यह प्रस्ताव पास हुआ कि यदि अंग्रेज़

अंग्रेज़ों-भारत-छोड़ो का प्रस्ताव और १९४२ ई० का आन्दोलन

भारत को नहीं छोड़ेंगे तो सत्याग्रह किया जायगा और प्रत्येक भारतीय अपने आप को स्वतन्त्र समझेगा। सरकार ने तुरन्त सब काँग्रेस नेताओं को बन्दी कर लिया। इस से देश भर में रोष की लहर दौड़ गई। सरकार का दमन चक्र चला और पुलिस और सेना ने जनता पर अत्याचार किये। बाह्य रूप से यह आन्दोलन दब गया किन्तु क्रान्ति की आग दहकती रही।

आज़ाद हिन्द फौज

विदेशों में स्थित भारतीय भी अपने देश को स्वतन्त्र देखना चाहते थे उन्होंने मिलकर आज़ाद हिन्द फौज की स्थापना की जिसका नेतृत्व श्री सुभाषचन्द्र बोस ने किया जो वेष बदल कर भारत से चले गये थे। आज़ाद हिन्द फौज ने आसाम पर आक्रमण किया और बहुत वीरता दिखाई। जर्मनी और जापान ने १९४५ ई० में हथियार डाल दिये जिस से इस फौज का पक्ष दुर्बल हो गया।

१९४२ ई० के आन्दोलन और आज़ाद हिन्द फौज के कारनामों ने यह सिद्ध कर दिया था कि अब अंग्रेज़ भारत में नहीं रह सकते। उधर युद्ध ने ब्रिटेन को बहुत दुर्बल बना दिया था। वहाँ नये चुनाव हुये और लेबर पार्टी को बहुमत प्राप्त हुआ। ब्रिटेन का नया प्रधान मन्त्री ऐटली भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करना चाहता था।

अन्तर्राष्ट्रीय दबाव और भारत की स्थिति ने अंग्रेज़ों को मजबूर किया कि क्रिप्स प्रस्तावना को कार्यान्वित किया जाय। लार्ड वेवल ने इस प्रस्तावना को दोहराया और विभिन्न राजनीतिक दलों से बातचीत आरम्भ की। अभी जापान के साथ युद्ध जारी था। हीरोशीमा और नागासाकी पर अणु बम्ब पड़ने से अगस्त में जापान ने हथियार डाल दिये। अब समय आ गया था कि ब्रिटिश सरकार

अपना वचन निभाये। वेवल ने प्रान्तों में नये चुनावों की घोषणा की। १६४५—४६ ई० में प्रान्तों में चुनाव हुये। काँग्रेस को पुनः सफलता प्राप्त हुई।

इस में अब किसी को सन्देह न था कि ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिये तैयार है।

केबिनिट मिशन

१६४६ ई० मार्च में ब्रिटेन से मंत्रि मंडल के तीन सदस्य भारत आये, उन्होंने नये सुझाव पेश किये। वे सुझाव ये थे—केन्द्र में संघ शासन हो। संघ के अधीन वाहन, रक्षा, और विदेश विभाग हों। रियासतों के साथ परामर्श किया जाय और उन्हें संघ में सम्मिलित होने पर रज़ामन्द किया जाय। प्रान्तों को अधिकार हो कि वे अलग-अलग संघ बना सकें। (इस प्रकार के तीन संघों की योजना थी) जब तक विधान सभा भारत का नया विधान तैयार करे भारत में राष्ट्रीय सरकार हो।

इन सुझावों को दो प्रमुख राजनीतिक दलों ने स्वीकार कर लिया। जब राष्ट्रीय सरकार बनाने का प्रश्न उठा तो मुस्लिम लीग जो अपने आपको मुसलमानों की प्रतिनिधि कहती थी और काँग्रेस में मतभेद उत्पन्न हो गया। वाइसराय ने श्री जवाहरलाल को मंत्रिमंडल बनाने का निमन्त्रण दिया जो उन्होंने स्वीकार कर लिया। इससे मुस्लिम लीग रुष्ट हो गई। बंगाल और पंजाब में साम्प्रदायिक झगड़े आरम्भ हो गये। बिहार और अन्य प्रान्तों में हिन्दू और मुसलमानों में तनाव बढ़ने लगा। आखिर मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि भी मन्त्रिमंडल में ले लिये गये।

आशा थी कि मुस्लिम लीग और काँग्रेस मिल कर शासन कार्य चला सकेंगी किन्तु साम्प्रदायिक झगड़े बंद न हुए। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि देश का बटवारा ज़रूरी है।

श्री जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस की ओर से, श्री मुहम्मद अली

जिन्नाह मुस्लिम लीग की ओर से और सरदार बलदेवसिंह सिक्खों की ओर से ब्रिटिश सरकार के निमन्त्रण पर लंदन गये। आपस में समझौते की चेष्टा की गई किन्तु इस का भी सन्तोषजनक फल न हुआ।

भारत का बटवारा

लार्ड माउंट बेटन को जो मार्च में वाइसराय बन कर आया यही सूझा कि भारत का बटवारा कर दिया जाय। ३ जून १९४७ ई० को उस ने यह निर्णय दिया कि १५ अगस्त से भारत स्वतन्त्र होगा और भारत और पाकिस्तान इस के दो भाग होंगे। पाकिस्तान में कौन-कौन सा भाग सम्मिलित होगा इस का निर्णय इस प्रकार किया गया :

सिंध, बंगाल और पंजाब में असेम्बली के मैम्बर यह निश्चय करेंगे कि आया वे बटवारा चाहते हैं या नहीं। उन का निर्णय पाकिस्तान के पक्ष में हुआ।

आसाम के सिलहट ज़िले में और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में जनमत द्वारा निश्चय किया जायगा कि ये भाग भारत के साथ रहना चाहते हैं या पाकिस्तान के साथ। इन्हों ने भी पाकिस्तान को चुना। रियासतों को स्वतन्त्रता थी। वे चाहें जिस राज्य में सम्मिलित हों। उन के लिये किसी राज्य में सम्मिलित होना अनिवार्य भी न था। वे चाहें तो स्वतन्त्र भी रह सकती थीं।

ब्रिटिश लोक सभा ने तुरन्त भारत स्वतन्त्रता का कानून पास किया और १४—१५ अगस्त की अर्धरात्रि को भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गया। लार्ड माउंट बेटन स्वतन्त्र भारत का पहला गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ और मुहम्मद अली जिन्नाह पाकिस्तान का। पाकिस्तान और भारत के बीच एक कमीशन ने जिस का प्रधान रैडक्लिफ़ था, सीमा निर्धारित कर दी। माऊँट बेटन के बाद श्री. राज गोपालाचार्य गवर्नर जनरल रहे।

परिच्छेद ४२

लोकपरक गणराज्य

स्वतन्त्रा का अवतरण

१४—१५ अगस्त की अर्धरात्रि को भारत में भावुकता का समुद्र उमड़ आया—उस स्वतन्त्रता का अवतरण हो रहा था जिस के लिये देश ने अनेक बलिदान दिये थे।

जैसे स्वतन्त्रता-उषा की किरणें उदित हुईं यह भावुकता पीड़ा में बदल गई। पंजाब और बंगाल में रक्त की नदियाँ वहने लगीं। साम्प्रदायिकता की प्रचंड ज्वाला दहक उठी थी। प्रसन्नता ने चिन्ता का रूप धारण कर लिया।

स्वतन्त्रता दायित्वों का एक भार अपने साथ लाई थी। स्वतन्त्र भारत के सम्मुख अनेक समस्यायें थीं जिन्हें तत्क्षण सुलझाना आवश्यक था। इन में से कुछ तत्कालीन परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई थीं और कुछ अप्रत्याशित रूप में उपस्थित हुई थीं। इन में आर्थिक समस्या सब से अधिक शोचनीय थी।

पाकिस्तान को भारत की कुल जनसंख्या का १८ प्रतिशत प्राप्त हुआ किन्तु सिंचित भूमि का ३१ प्रतिशत, गेहूँ उत्पादक भूमि का ३५ और चावल उत्पादक भूमि का ३२ प्रतिशत उस के हिस्से में आया। दीर्घ विदेशी शासन के कारण कृषि की दशा अति चिन्तनीय हो चुकी थी। निर्धनता के कारण जनता का स्वास्थ्य जर्जर अवस्था में था। द्वितीय विश्वयुद्ध ने इसे और भी अव्यवस्थित कर दिया था।

औद्योगिक क्षेत्र में कम बाधाएँ न थीं। पटसन और रुई उत्पादक भूमि अधिकांश पाकिस्तान में चली गई थी, उन के कारखाने भारत में रह गये थे।

प्रशासन और सेना विभाग को भी क्षति पहुँची। अंग्रेज़ अफ़सर अपने देश लौट रहे थे। मुसलमान अफ़सर पाकिस्तान चले गये थे। इन का और अन्य कठिनाइयों का भारत सरकार ने दृढ़ता से मुकाबला किया और बहुत सीमा तक सफलता प्राप्त की।

यह स्वतन्त्रता हम ने कैसे प्राप्त की इस का वृत्तान्त रोंगटे खड़े कर देता है।

स्वतन्त्रता संग्राम

अंग्रेज़ भारत के लिये अभिशाप रूप हैं इस का आभास पहले-पहल हैदर अली के पुत्र टीपू सुल्तान को हुआ। पिता पुत्र दोनों बहुत शूरवीर थे। शासन प्रबन्ध में भी उन्होंने बहुत कुशलता दिखाई किन्तु उन का महत्त्व अंग्रेज़ों के विरोध के कारण है। टीपू सुल्तान ने मराठों और अन्य लोगों से सहायता की याचना की परन्तु वह सहायता प्राप्त करने में सफल न हुआ। इसका कारण यह था कि वह अपने पिता की भाँति समझदार न था। उसके स्वभाव में तमक थी। वह १७९९ ई० के युद्ध में काम आया।

मैसूर से निपट कर अंग्रेज़ों की दृष्टि मराठों की ओर गई। उस समय मराठा साम्राज्य की बागडोर नाना फड़नवीस के हाथ में थी। राघोबा (रघुनाथ राव) ने मराठा सरदारों में फूट डालने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया किन्तु नाना ने उसकी एक न चलने दी। उसने अंग्रेज़ों को पराजय दी और उन्हें मराठों के साथ सन्धि करनी पड़ी। १८०० ई० में उसकी मृत्यु हो गई। मराठों में फूट पड़ गई और उन्होंने अंग्रेज़ों से मात खाई।

जैसे-जैसे अंग्रेज़ भारत पर छाये जा रहे थे, यहाँ के निवासी अनुभव करने लगे थे कि अंग्रेज़ों के अधीन रह कर न तो उनकी सम्पत्ति सुरक्षित है न उनका धर्म। अंग्रेज़ों से छुटकारा पाने की योजनाएँ बनने लगीं। १८५७ ई० में उचित अवसर देख कर स्वतन्त्रता का पहला युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्ध में बहुत से वीरों

और वीरांगणाओं ने हाथ दिखाये। झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई के विषय में विरोधियों की भी यह राय थी कि उस जैसी वीरता का उदाहरण मिलना कठिन है। जिधर उसकी तलवार चलती थी सफें के सफें साफ हो जाती थीं। रानी की आयु केवल बीस वर्ष के लगभग थी। १८५७ ई० के इतिहास में रानी लक्ष्मी बाई और तांतिया टोपे के नाम सूर्य और चन्द्र की भाँति चमकते हैं।

कहने को तो १८५६ ई० में भारत में पूर्णतया शान्ति स्थापित हो चुकी थी परन्तु क्रान्ति की आग दहक रही थी। नील जैसे कठोर अंग्रेज़ जनरलों के अत्याचार भुलाये जा सकते थे किन्तु दासता के कारण भारत की जो अवहेलना हो रही थी और जिस प्रकार यह धनी देश दिन प्रतिदिन दरिद्र हुआ जा रहा था उससे उदासीन होना संभव न था। क्रान्तिकारी दल लगातार संगठित होने की चेष्टा कर रहा था। बंगाल के बटवारे ने उसे संगठन का बहाना प्रदान किया। अंग्रेजों और अंग्रेज़ी अफ़सरों पर आघात होने लगे। श्री अरविन्द-घोष इस दल के मुख्य नेता थे। उन्होंने बंगाल में आग लगा दी। आन्दोलन मंद पड़ जाने पर उन्होंने तप का जीवन स्वीकार किया और वे पांडुचेरी जाकर रहने लगे। श्री अर्विन्द एक अति उच्च कोटि के दार्शनिक के रूप में प्रसिद्ध हुये।

बंगाल के बटवारे का कानून सरकार ने वापिस ले लिया किन्तु क्रान्तिकारियों का कार्य जारी रहा। प्रथम महायुद्ध के अन्तर्गत एक बहुत बड़ा षड़यन्त्र रचा गया। क्रान्तिकारियों के दल यूरोप और अमेरिका में भी काम कर रहे थे। मदनलाल धींगड़ा ने लंदन में सर वाईली का वध किया। श्री सावरकर भी उन दिनों इंग्लैंड में ही थे। फ्राँस, जर्मनी, अफ़गानिस्तान आदि देशों में भी देशभक्त युद्ध की तैयारियाँ कर रहे थे। कैनेडा में स्थित भारतीयों ने एक बहुत बड़ा जंगी जहाज़ तैयार किया जो भारत के तट तक आ पहुँचा परन्तु सरकार को समय से पूर्व इस षड़यन्त्र का बोध हो गया। बहुत से

देशभक्त बलिदान हुये। बहुत सों को कारागार हुआ। कुछ देश छोड़ कर बाहर चले गये। भारत में इस दल के नेता श्री रासबिहारी बोस थे जिन्होंने दूसरे महायुद्ध के अन्तर्गत आज़ाद हिन्द फौज भरती करने में सहायता दी।

१९२८ ई० में जब साइमन कमीशन के आगमन पर भारत में पुनः अत्याचार होने लगे तो क्रान्तिकारी आन्दोलन ने फिर ज़ोर पकड़ लिया। लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने के लिये पंजाब के जांबाज़ों ने पिस्तौल संभाले। बङ्गाल और अन्य प्रान्तों में भी प्रतिशोध की भावना जागृत हो उठी। सरदार भगतसिंह और उनके साथियों को जिन्होंने आन्दोलन किया था फाँसी पर लटका दिया गया किन्तु स्वतन्त्रता के प्रेम की अग्नि शान्त होने वाली न थी। दूसरे महायुद्ध के अन्तर्गत नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने दूर पूर्व में आजाद हिन्द फौज की स्थापना की।

श्री सुभाष चन्द्र बोस महात्मा गाँधी के अनुयायी थे और दो बार काँग्रेस के प्रधान चुने गये थे परन्तु उनका विश्वास था कि शस्त्रों के प्रयोग के बिना स्वतन्त्रता प्राप्त करना कठिन है। वे श्री० सी० आर० दास के शिष्य होने में गर्व अनुभव करते थे। उनका जीवन देश सेवा में व्यतीत हुआ था। उस समय जब दूसरा महायुद्ध हो रहा था और भारत सरकार बहुत चौकन्नी थी, वे चुपचाप जापान जा पहुँचे।

नेता जी की सेना ने बर्मा और आसाम में बड़ी वीरता से अंग्रेजी फौज का मुकाबला किया। १९४५ ई० में वायुयान दुर्घटना में नेताजी का देहान्त हो गया।

राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द ने भारतीयों को उनकी महानता का दर्शन कराया था और कहा था

सत्याग्रह

कि स्वतन्त्रता जीवन का आधार है। स्वतन्त्रता के बिना न तो भौतिक उन्नति हो सकती है और न ही आध्यात्मिक। भारतीय स्वभाव से

शान्तिप्रिय हैं। इस लिये बहुत से लोगों का यह सिद्धान्त था कि वे अंग्रेज़ों के मित्र बने रह कर भी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। काँग्रेस के प्रमुख नेता जिन में दादाभाई नौरोजी, सर सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, और गोपाल कृष्ण गोखले के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं चाहते थे कि भारत ब्रिटिश साम्राज्य में रहते हुये स्वराज्य प्राप्त करे। १८८५ से १९०७ ई० तक काँग्रेस की यही नीति रही परन्तु उस वर्ष दूसरे दल ने जिसके नेता लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और विपनचन्द्र पाल थे, ज़ोर पकड़ लिया। लाला लाजपत राय और बाल गंगाधर तिलक अपने विचारों के कारण बन्दी बना लिये गये और उन्हें कुछ साल मांडले जेल में रहना पड़ा। आखिर काँग्रेस ने उनकी नीति का समर्थन किया और वह पूर्ण रूप से सरकार-विरोधी संस्था बन गई। प्रथम महायुद्ध के अन्तर्गत बाल गङ्गाधर तिलक और श्रीमती ऐनीबेसैन्ट ने होम रूल अर्थात् स्वराज्य आन्दोलन चलाया। १९१९ ई० में बालगङ्गाधर तिलक और १९२९ ई० में लाला लाजपत राय का स्वर्गवास हुआ।

१९१४ ई० में महात्मा गाँधी दक्षिणी अफ्रीका से भारत लौटे। वहाँ भारतीय अपमानजनक जीवन व्यतीत कर रहे थे। महात्मा-गाँधी ने दक्षिणी अफ्रीका की सरकार की नीति के विरुद्ध आन्दोलन किया जिस में वे बहुत सफल रहे।

महात्मा गाँधी भी गोपाल कृष्ण गोखले की भाँति अंग्रेज़ों के भक्त थे। उन्होंने होम रूल आन्दोलन का विरोध किया था परन्तु प्रथम महायुद्ध समाप्त होने पर जब सरकार ने अत्याचार करने आरम्भ किये और रौलट ऐक्ट पास किया तो महात्मा गाँधी निर्भ्रान्त हो गये। उन्होंने १९२१ ई० में असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। इस का कार्यक्रम यह था—अदालतों का, सरकारी नौकरियों और स्कूलों का, विधान सभाओं और विलायती कपड़े का बाईकाट किया जाय। यह आन्दोलन बहुत वेग से चल रहा था कि चौरा-

चौरी के स्थान पर लोगों ने पुलिस के थाने को आग लगा दी। महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। काँग्रेस के बहुत से नेता जिन में पं० मदनमोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं महात्मा-गाँधी की नीति से विमुख हो गये और उन्होंने सरकार को सहयोग देना आरम्भ किया। उन्होंने स्वराज्य पार्टी नाम का एक नया दल बनाया। परन्तु १६२८ ई० में पुनः उन्हें महात्मा गाँधी का नेतृत्व स्वीकार करना पड़ा।

महात्मा गाँधी ने देश के सम्मुख रचनात्मक कार्यक्रम रखा था जिसकी मुख्य धारायें ये थीं—१. शिक्षा का प्रचार, २. घरेलू उद्योग, विशेष रूप से कपड़े का उद्योग, ३. नारी उत्थान, ४ अछूत उद्धार, ५ मदिरा-निषेध। महात्मा गाँधी का विश्वास था कि इस पर अमल करने से भारतीयों के मन में आत्म-गौरव के भाव उत्पन्न होंगे और उनका भय दूर हो जायगा।

महात्मा गाँधी सत्य और अहिंसा का प्रचार करते थे। उनका मन्तव्य यह था कि सत्य और अहिंसा ही समाज के वास्तविक आधार हैं। इस विषय में उनकी गणना महात्मा बुद्ध और ईसा-मसीह के साथ होती है। यह एक बहुत ऊँचा आदर्श है जिसे अपनाना सुगम नहीं। महात्मा गाँधी के स्वप्नों का समाज तभी बन सकता है जब संसार के सभी देश अहिंसा और सत्य के नियम को अपनायें। अणु-शक्ति के आविष्कार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि संसार अहिंसा की नीति न अपनायगा तो मानव-समाज नष्ट हो जायगा।

समाज के पुनर्निर्माण के लिये भारत को पश्चिम से बहुत प्रेरणा मिली परन्तु मौलिक रूप से पाश्चात्त्य विद्वानों के विचार भारत के लिये नये न थे।

महात्मा गाँधी ने देश का जीवन बदल दिया था। उनकी वाणी में जादू था। वे जो कहते थे उसे पहले करके दिखाते थे। वे भारतीय जनता की आवश्यकताओं को खूब समझते थे। उनके अनुयायियों में देश के बड़े-बड़े नेता सम्मिलित थे। भारत कोकिला सरोजनी नायडू, सरदार वल्लभभाई पटेल, डा० राजेन्द्रप्रसाद और श्री जवाहरलाल नेहरू उनके अनन्य भक्त थे। मौलाना मुहम्मद अली, डा० अनसारी, खान अब्दुल गफ्फार खाँ, तय्यब जी उनको अपना नेता मानते थे। जिस समय काँग्रेस ने श्री जवाहर लाल की अध्यक्षता में पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव स्वीकार किया, देश के नेतृत्व का भार पुनः महात्मा गाँधी के कन्धों पर आ पड़ा। उन्होंने १९३० ई० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया। नमक का कानून तोड़ने के लिये वे स्वयं डंडी गये। अपने देशवासियों को भी उन्होंने नमक का कानून तोड़ने का आदेश दिया। यह आन्दोलन आशा से बढ़कर सफल हुआ। इसके फलस्वरूप १९३५ ई० के ऐक्ट में प्रान्तों में स्वायत्त शासन का आयोजन किया गया।

भारत अभी स्वतन्त्रता से बहुत दूर था। दूसरे महायुद्ध ने भारत स्वतन्त्रता की समस्या को विषम बना दिया। काँग्रेस अंग्रेज़ों को सहयोग देना चाहती थी किन्तु इस शर्त पर कि भारत को स्वतन्त्रता प्रदान की जाय। अंग्रेज़ी सरकार इस के लिये तैयार न हुई। निराश होकर काँग्रेस ने ८ अगस्त १९४२ ई० को "अंग्रेज़ो, भारत छोड़ो" का प्रस्ताव स्वीकार किया। सरकार ने प्रमुख नेताओं को नज़रबन्द कर दिया। इस से देश भर में रोष की अग्नि भड़क उठी। स्वतन्त्रता का यह अन्तिम आन्दोलन दमन कर दिया गया परन्तु भारत में अंग्रेज़ी सरकार की साख को बहुत धक्का लगा और अंग्रेज़ों को भारत छोड़ कर जाना पड़ा।

काँग्रेस ने स्वतन्त्र भारत का शासन संभाला। ३ जून १९४७ ई०

शरणार्थियों की समस्या

की घोषणा में काँग्रेस, मुस्लिम लीग और सिक्खों ने देश के बटवारे का नियम स्वीकार किया। आशा थी कि पाकिस्तान बनते ही साम्प्रदायिक झगड़े बन्द हो जायेंगे परन्तु यह आग और भी भड़क उठी।

मुस्लिम लीग की यह माँग थी कि पाकिस्तान से हिन्दू निकल कर भारत में आ जायं और भारत के मुसलमान पाकिस्तान चले जायं। काँग्रेस ने यह बात स्वीकार नहीं की। पञ्जाब और बङ्गाल की मार काट और लूट-मार ने काँग्रेस को विवश किया कि वह पजाब में आबादी की अदला-बदली का नियम स्वीकार करे।

पश्चिमी पञ्जाब से हिन्दुओं को निकाल कर लाना और मुसलमानों को पूर्वी पञ्जाब से पाकिस्तान भेजना यह दोनों काम भारत सरकार के ज़िम्मे थे। यह बहुत भारी काम था। फिर उन लोगों को जो पाकिस्तान से आते थे बसाना भी ज़रूरी था। यह एक ऐसी समस्या थी जिस के सम्मुख व्यवस्थित राज्य भी डगमगा जाते, भारत सरकार का तो नया जन्म हुआ था। साम्प्रदायिक दंगे भी जारी थे।

काश्मीर की समस्या

साम्प्रदायिक समस्या अभी हल न हुई थी कि पाकिस्तान ने एक और बखेड़ा डाल दिया। ब्रिटिश सरकार ने राजन्यों को यह अधिकार दिया था कि वे अपनी इच्छा अनुसार भारत अथवा पाकिस्तान में सम्मिलित हो सकते हैं। वे चाहें तो स्वतन्त्र भी रह सकते हैं। जब तक वे कोई निर्णय न करें वर्तमान स्थिति जारी रहेगी। काश्मीर अभी कोई निर्णय न कर पाया था। रेल, तार, डाक और व्यापार के रूप से उसका सम्बन्ध पाकिस्तान से था किन्तु पाकिस्तान ने काश्मीर के मार्ग में कठिनाइयाँ उत्पन्न करनी आरम्भ कर दीं। अभिप्राय यह था कि विवश होकर काश्मीर पाकिस्तान में शामिल होना स्वीकार कर ले। पाकिस्तान ने इस पर भी बस न की। अक्तू-

बर १९४७ ई० में कबाइली लोगों को काश्मीर पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी। काश्मीर इस के लिये तैयार न था। लूट मार मचाते, अग्नि वर्षा करते कबाइली श्रीनगर के द्वार तक आ पहुँचे। काश्मीर के वीरों ने उनका डट कर मुकाबला किया। परन्तु उन्हें भय था कि चिरकाल तक वे कबाइली लुटेरों का मुकाबला न कर सकेंगे। २० अक्तूबर को काश्मीर ने भारत के साथ मिलने का निर्णय किया। भारत सरकार ने काश्मीर सरकार की प्रस्तावना इस शर्त पर स्वीकार की कि अवसर आने पर काश्मीर में गणमत होगा और उसका निर्णय ही अन्तिम समझा जायगा। भारत सरकार काश्मीर पर इस लिए हक नहीं जमायगी कि संकटकाल में उसने काश्मीर की सहायता की थी।

काश्मीर की सहायता करना सुगम न था। सर्दी आरम्भ हो रही थी। भूमि के मार्ग से सेना भेजी जाती तो उसके पहुँचते पहुँचते काश्मीर पर लुटेरे छा जाते। क्षण भर का विलम्ब भी घातक सिद्ध हो सकता था। रातों-रात हवाई सेना का एक दस्ता उड़ कर श्रीनगर पहुँचा। करनल राय इसके अध्यक्ष थे।

लुटेरों का प्रवाह रोक दिया गया, यद्यपि इस दस्ते का एक भी जवान जीवित न रहा। करनल राय ने भी वीर गति प्राप्त की। उसके पश्चात् हवाई सेना धड़ाधड़ काश्मीर पहुँचने लगी। युद्ध १९४८ ई० तक जारी रहा परन्तु १९४७ के अन्त में ही शत्रु के भाले की अणि मोड़ दी गई थी।

भारत को अपनी सैनिक शक्ति पर भरोसा था। नैतिक रूप से भी उसका पक्ष मज़बूत था परन्तु भारत सरकार चाहती थी कि रक्तपात जितनी जल्दी बंद हो उतना अच्छा है। उसने काश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ के रक्षा परिषद के सम्मुख रखा। पाकिस्तान ने युक्ति दी कि उसका काश्मीर के युद्ध में कोई हाथ नहीं।

जिस समय संयुक्तराष्ट्र संघ का शिष्ट मण्डल काश्मीर पहुँचा तो यह स्पष्ट हो गया कि पाकिस्तान सरकार खुल्लम खुल्ला कबाइलियों की सहायता कर रही है बल्कि स्वयं काश्मीर का युद्ध लड़ रही है। फिर भी पाकिस्तान ने अपने आप को निर्दोष ठहराया। संयुक्त राष्ट्रसंघ की चेष्टा थी कि भारत और पाकिस्तान में समझौता हो जाय। विराम सन्धि के कई प्रयत्न हुये किन्तु कोई भी सफल न हो पाया। आखिर भारत सरकार ने जिस समय भारतीय सेना वेग से आगे बढ़ रही थी, युद्ध बंद करने का प्रस्ताव स्वीकार किया। पाकिस्तान ने आश्वासन दिलाया कि काश्मीर से समस्त पाकिस्तानी सेना निकाल ली जायगी। भारत सरकार यह घोषणा पहले ही कर चुकी थी कि काश्मीर की जनता अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करेगी।

विराम सन्धि होते ही पाकिस्तान सरकार ने काश्मीर से पाकिस्तानी सेना निकालने से इनकार कर दिया। काश्मीर के जिस भाग पर काश्मीरी सरकार का अधिकार है उस में शासनकार्य व्यवस्थित रूप से चल रहा है। वहाँ की संविधान सभा ने निर्णय किया है कि काश्मीर भारत का अङ्ग है। पाकिस्तान की करतूतों से परिस्थिति बदल गई है और भारत सरकार अब काश्मीर में गणमत की आवश्यकता महसूस नहीं करती।

महात्मा जी की हत्या

महात्मा गाँधी पक्के हिन्दू होने में गर्व करते थे। परन्तु उनकी दृष्टि में सब मत बराबर थे। १९२२—२४ ई० में जब भारत में साम्प्रदायिक दंगे आरम्भ हुये तो उन्होंने २१ दिन का उपवास किया कि किसी प्रकार हिन्दू मुसलमानों में मैत्री स्थापित हो जाय। १९४६ ई० में जिस समय पुनः दंगे होने लगे तो उन्होंने अपनी समस्त शक्ति शान्ति स्थापित करने में लगा दी। वे नोआखली गये। उनकी उपस्थिति का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। जहाँ भी वे जाते, शान्ति स्थापित हो जाती।

सितम्बर १९४७ ई० में दिल्ली में फसाद आरम्भ हो गया। महात्मा गाँधी दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में फसाद बन्द हो गये परन्तु पाकि-

स्तान ने काश्मीर पर चढ़ाई कर वातावरण में पुनः तनाव उत्पन्न कर दिया। एक मद में भारत सरकार से पाकिस्तान को ५६ करोड़ रुपया वाजिब था। पाकिस्तान अपनी करतूत से यह धन प्राप्त करने का अधिकार खो बैठा था परन्तु महात्मा गाँधी ने आग्रह किया कि यह धन पाकिस्तान को दे दिया जाय।

पश्चिमी पञ्जाब और पूर्वी बंगाल से हिन्दू लोग धड़ाधड़ आ रहे थे। भारत के हिन्दुओं की माँग थी कि भारत में रहने वाले मुसलमान पाकिस्तान चले जायं। महात्मा गाँधी का आदेश था कि पाकिस्तान के लोग कुछ भी करें, भारत निवासियो को शान्त रहना चाहिये। कई लोगों को महात्मा गाँधी की यह नीति पसन्द न थी। देश में उनका विरोध हो रहा था। परन्तु महात्मा गाँधी अपने विचार बदलने को तैयार न थे। उनका विश्वास था कि यदि भारत-निवासी प्रेम भावनाओं का प्रदर्शन करेंगे तो पाकिस्तान में रहने वाले मुसलमानों का मन भी पलट जायगा।

३० जनवरी, १९४८ की शाम को जिस समय वे प्रार्थना के लिये आ रहे थे नाथूराम गोडसे ने उन पर गोली चला दी। महात्मा गाँधी भूमि पर गिर पड़े और फिर न उठे। महात्मा गाँधी की हत्या से समस्त देश शोक में डूब गया। संसार भर को उनकी मृत्यु का खेद हुआ। उन्हें संसार का सब से महान् व्यक्तित स्वीकार किया गया था। उनका प्रेम और सत्य का सन्देश सारी दुनियाँ के लिये था।

अगले दिन राजघाट के स्थान पर उनका अन्तिम संस्कार हुआ। यहाँ अब उनकी समाधि है।

महात्मा गाँधी की हत्या के लिये जनता साम्प्रदायिकता पर आरोप लगाती थी। भारतीय सरकार ने इसे नष्ट करने का निश्चय किया। जिन संस्थाओं पर साम्प्रदायिक होने का सन्देह था उन्हें ग़ैर कानूनी ठहराया गया और उनके नेताओं को बन्दी बना लिया गया। सरकार की इस नीति से शीघ्र ही देश भर में शान्ति स्थापित हो गई। उसके

पश्चात् भारत में साम्प्रदायिक झगड़े नहीं हुये ।

सरदार पटेल का देहांत

सरदार पटेल भारत के गृहमन्त्री थे । ब्राडकास्टिंग और इनफारमेशन का विभाग भी उनके आधीन था । उन्होंने ही रियासतों को संगठित किया था । काम की अधिकता के कारण उन का स्वास्थ्य बिगड़ गया और १५ दिसम्बर १६५० ई० को उन का देहान्त हो गया । उन का जन्म गुजरात में १८७५ ई० में हुआ था और १६२८ ई० के बार्दोली आन्दोलन में उन्होंने बहुत ख्याति पाई थी ।

संविधान सभा

काँग्रेस की यह माँग थी कि भारत का संविधान निर्धारित करने के लिये संविधान सभा का निर्वाचन हो । जो संविधान यह सभा तैयार करे वही भारत पर लागू किया जाय । ब्रिटिश सरकार ने यह माँग स्वीकार की और जुलाई १६४६ ई० में संविधान सभा के लिये निर्वाचन हुये । उस समय यह तय पाया था कि भारतीय प्रान्तों को तीन श्रेणियों में बाँटा जाय और प्रत्येक भाग की संविधान सभा अलग-अलग निर्णय दे । फिर सब सदस्य मिलकर समस्त भारत के लिये संविधान तैयार करें । केन्द्रीय सभा के सभापति डा० राजेन्द्र प्रसाद चुने गये । वे बिहार के रहने वाले हैं । उनका जन्म १८८४ ई० में हुआ था । पढ़ाई में बहुत योग्य थे । उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त कर पटना में वकालत आरम्भ की । उनका राजनैतिक जीवन चम्पारन के सत्याग्रह से आरम्भ हुआ जो अंग्रेज़ भूमिदारों के विरुद्ध किया गया था । यह सत्याग्रह सफल हुआ । १६२१ ई० के आन्दोलन में उन्होंने वकालत छोड़ दी । वे कई बार जेल गए । अकाल, भूकम्प और बाढ़ से पीड़ित लोगों की उन्होंने बहुत सहायता की । तभी से उनको देशरत्न कहने लगे । वे काँग्रेस के प्रधान भी रहे । संविधान सभा के सभापति निर्वाचित होने से पूर्व वे केन्द्रीय सरकार में खाद्य

विभाग के मन्त्री थे। सभापति बनने के पश्चात् उन्होंने यह पद त्याग दिया। जिस समय भारत का संविधान लागू हुआ वे भारत के प्रथम राष्ट्रपति चुने गये।

संविधान बनाने में डा० राजेन्द्रप्रसाद, श्री आयंगर और श्री अम्बेदकर का बहुत हाथ था। १९४७ ई० के स्वतन्त्रता कानून के अनुसार प्रान्तों को श्रेणियों में बाँटने के सुझाव का परित्याग कर दिया गया था इस लिये समस्त भारत के लिये एक ही संविधान तैयार किया गया। केवल काश्मीर को यह अधिकार दिया गया कि वहाँ की संविधान सभा काश्मीर के लिये अलग संविधान तैयार कर सकती है।

९ सितम्बर १९४६ ई० से लेकर २६ नवम्बर १९४९ ई० तक यह संविधान तैयार होता रहा। इसे २६ जनवरी १९५० को लागू किया गया। २६ जनवरी भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में बहुत महत्त्व रखता है। १९३० से यह दिवस समारोह से मनाया जा रहा है।

शान्ति और रक्षा

यों तो अगस्त १९४६ ई० से ही, जब मुस्लिम लीग ने सीधी कार्यवाही करने की घोषणा की थी, देश की शान्ति भंग हो गई थी किन्तु ३० जनवरी, १९४८ ई० को जब महात्मा गाँधी ने प्राण विसर्जन किये शान्ति की समस्या ने विषम रूप धारण कर लिया।

इस के साथ साम्यवादी दल ने भी उपद्रव खड़े किये। कलकत्ता और बम्बई जैसे कई बड़े नगरों में हिंसात्मक प्रदर्शन हुये। तेलंगाना में विशेष रूप से स्थिति चिन्ताजनक थी।

उधर सरकार की शासन सेवाओं में भारी कमी उत्पन्न हो गई थी। सेना भी यथेष्ट रूप से संगठित न थी। परन्तु सरकार इस स्थिति के प्रति पूर्णतः सजग थी। सरदार वल्लभभाई पटेल ने अक्तूबर, १९४६ ई० में ही अखिल भारतीय शासन सेवा और पुलिस सेवा की स्थापना की थी। सचिवालय सेवाओं का भी पुनर्गठन किया था।

सेना के संगठन का काम बड़े वेग से किया गया। सेना ने न केवल भारत में शान्ति स्थापित करने में सहायता दी बल्कि १५ लाख मुसलमानों को पाकिस्तान पहुँचाने और उतने ही हिन्दुओं को भारत लाने का काम भी किया। सेना ने खाने पीने की सामग्री की रक्षा की, संचार साधनों को सुरक्षित रखा, आसाम की बाढ़ के दिनों में सेना ने बहुत से लोगों की जान बचाई।

भारतीय सेना की अग्निपरीक्षा अक्तूबर १९४७ ई० में आरम्भ हुई। १५ महीने तक काश्मीर में युद्ध होता रहा। भारत की सेना का कार्य विश्व के सैनिक इतिहास में अद्वितीय सिद्ध हुआ।

१ जनवरी १९४९ ई० को काश्मीर में विराम संधि हो गई। उस समय तक भारत में भी पूर्णतः शान्ति स्थापित हो चुकी थी।

देसी रियासतों के अस्तित्व के लिये अंग्रेज़ ज़िम्मेदार थे। उन्हीं के साथ इनका खातमा हो गया। लार्ड डलहौज़ी की नीति थी कि इन रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर भारत को वास्तविक रूप में एक इकाई बनाया जाय। बहुतसी रियासतों में कुशासन था।

देसी रियासतें

जागीरदारी प्रथा थी और जनता के हित का विचार किसी को न था। इनके शासक भोग-विलास में फँसे जा रहे थे। बिना इन्हें समाप्त किए भारत की आर्थिक और सामाजिक उन्नति संभव न थी परन्तु डलहौज़ी के मन में भारत की उन्नति का विचार न था इसी लिए १८५७ ई० की क्रान्ति हुई और ब्रिटिश सरकार को अपनी नीति बदलनी पड़ी। १८५७ ई० के पश्चात् न केवल पुरानी रियासतों को स्थायी रूप दे दिया गया बल्कि कई नई रियासतों की स्थापना हुई। पहले कुछ सीमा तक भारतीय शासक स्वतन्त्र थे अब वे पूर्णतः इंग्लैंड नरेश के अधीन हो गये। लार्ड लिटन ने इस तथ्य को प्रकट रूप देने के लिए १८७६ ई० में महारानी विक्टोरिया को सम्राज्ञी घोषित किया। केन्द्रीय सरकार ने रियासतों से सम्बन्ध रखने वाला

एक विशेष विभाग खोला जिसे पोलीटिकल डिपाटमेंट कहते थे। इस विभाग के कर्मचारियों का काम देसी शासकों पर आंख रखना था। वे किसी भी शासक की शक्ति को बढ़ने न देते थे। इस विभाग के अधीन देसी शासक मानों कैदी थे। बड़ौदा के शासक मलहार राव हुल्कर का मामला इस का प्रमाण है। गायकवाड़ को पदहीन किया गया और उसे बन्दी बना लिया गया। १६१६ ई० में चैम्बर आफ़ प्रिंसेज की स्थापना हुई। इसके १२० सदस्य थे किन्तु उन में से केवल १२ ऐसे थे जो १२७ रियासतों के प्रतिनिधि थे। ३२७ रियासतों को कोई प्रतिनिधित्व न दिया गया था। इस की बैठक में वाइसराय सभापति होता था, जिसकी अनुपस्थिति में चेम्बर का निर्वाचित चान्सलर यह पद ग्रहण करता था। इस संस्था का काम परामर्श देना था। किसी समय भी इस संस्था के प्रगतिशील होने की सम्भावना न थी।

१६२७ ई० में बटलर महोदय की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया गया जिसने यह सलाह दी कि रियासतों को भारत की आगामी सरकार के अधीन न किया जाय। उनका सम्बन्ध सीधा इंग्लैंड के नरेश के साथ रहे। १६३५ ई० के ऐक्ट में रियासतों को संघ में सम्लिलित करने का प्रस्ताव था परन्तु शर्तें ऐसी थीं कि इस संघ के स्थापित होने की सम्भावना ही न थी।

१६४७ ई० में भारत स्वतन्त्र हुआ तो इस प्रश्न ने नया ही रूप धारण कर लिया।

उस समय भारत में ५५० रियासतें थीं जहाँ निरंकुश शासन था। वहाँ आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक विकास एकलयता से न हो पाया था। इन में से बहुत सी रियासतें ऐसी थीं जिन्हें अंग्रेज़ी सरकार ने अपनी सत्ता की आधार शिला बनाने के लिये निर्मित किया था। १६४७ ई० के भारत स्वतन्त्रता ऐक्ट ने रियासतों के प्रति प्रभु-सत्ता समाप्त कर दी थी और रियासती शासकों को अधिकार

दिया था कि वे चाहें तो स्वतन्त्र रह सकते हैं और चाहें तो भारत और पाकिस्तान दोनों में से किसी एक राज्य से सम्बद्ध हो सकते हैं। सम्भव था कि इस स्थिति का लाभ उठाकर प्रतिक्रियावादी भारत में अराजकता उत्पन्न करें और साम्प्रदायिक दलों का पक्ष मज़बूत हो जाय।

५ जुलाई १९४७ ई० को रियासती मन्त्रालय के अध्यक्ष श्री वल्लभभाई पटेल ने एक महत्त्वपूर्ण घोषणा की जो देशभक्ति के भावों से संचरित थी। इस घोषणा का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। जनवरी १९४८ ई० में सरदार पटेल यह घोषणा करने के योग्य हो सके कि हैदराबाद और जूनागढ़ को छोड़ कर शेष सब रियासतें जिन की सीमा भारत से मिलती थी या जो भारत की सीमा में थीं भारत से सम्बद्ध हो गई हैं। जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान में सम्मिलित होने की घोषणा की परन्तु उसे भाग कर पाकिस्तान सरकार की शरण लेनी पड़ी। हैदराबाद में रज़ाकार नाम की संस्था ने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था और निज़ाम उसके इशारों पर नाचता था। भय था कि कहीं हैदराबाद पाकिस्तान से सम्बन्ध स्थापित न कर बैठे। रज़ाकारों की करतूतें भी निन्दनीय थीं इस लिये भारत सरकार ने १३ सितम्बर १९४८ ई० को हैदराबाद में सेना भेजी। पाँच दिन के भीतर ही रज़ाकारों ने हथियार डाल दिये। इस प्रकार हैदराबाद भी भारत का अङ्ग बन गया।

संगठन की क्रिया इस प्रकार हुई।

१. कुछ रियासतों को उन प्रान्तों में सम्मिलित कर दिया गया जो उन से मिलते थे।

२. कुछ रियासतों को मिलाकर उनके समूह बना दिये गये।

३. कतिपय रियासतों को केन्द्रीय सरकार ने शासनार्थ ग्रहण किया।

४. हैदराबाद, जम्मू और काश्मीर तथा मैसूर को अलग अलग इकाइयाँ बना दिया गया। काश्मीर की जनता को अपना विधान बनाने का स्वयं अधिकार दिया गया।

१ जनवरी, १९४८ ई० को यह प्रक्रिया आरम्भ हुई। उस दिन छत्तीसगढ़ रियासतों को उड़ीसा प्रान्त में मिला दिया गया था। अन्तिम विलय १ जनवरी, १९५० को हुआ जब कूचबिहार की रियासत पश्चिमी बङ्गाल में मिला दी गई। २१६ रियासतें इस प्रकार प्रान्तों में मिला दी गईं।

रियासतों का पहला समूह सौराष्ट्र के रूप में स्थापित हुआ। इस में २२२ रियासतें और जागीरें शामिल हुईं। कुल पाँच समूह इस प्रकार बनाये गये जिन में २७५ रियासतें शामिल हुईं।

६१ रियासतें केन्द्र ने ग्रहण कीं।

पहली नवम्बर १९५६ ई० को राज्यों का पुनः संगठन हुआ और चौदह राज्यों की स्थापना हुई जिन में केरल नया राज्य था। पैप्सू, ट्रावनकोर कोचीन, सौराष्ट्र, विंध्य प्रदेश, हैदराबाद और मध्यभारत के राज्य भारत के नए राजनीतिक मानचित्र से लोप हो गए। छः क्षेत्र ऐसे रह गए जिन पर केन्द्र का सीधा अधिकार है।

स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही भारत ने यह सिद्ध कर दिया कि एक अति महत्त्वपूर्ण राष्ट्र विश्वगगन में उदित हुआ है। सभी महान देशों को भारत के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रलोभन हुआ। १९५२ ई० में २० देशों में भारत के राजदूतावास थे, १६ में दूतावास, ५ में आयुक्तों के कार्यालय, और ७ में उच्चायुक्तों के। १४ वाणिज्य दूतावास और १० मिशन तथा एजंसियाँ थीं। कहीं कहीं एक राजदूत दो या दो से अधिक देशों से सम्बद्ध था। इसके पश्चात् इन सम्बन्धों का विस्तार हुआ है।

विदेशी सम्बन्ध

भारत की भौगोलिक स्थिति, उसके प्राकृतिक साधन और उनसे

भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण उसकी संस्कृति और परम्परा यह उद्घोषित कर रहे थे कि भारत विश्व शान्ति को बनाए रखने का प्रयत्न करेगा। भारत सरकार ने तुरन्त यह स्पष्ट कर दिया कि वह तटस्थ निरपेक्ष वैदेशिक नीति का पालन करेगी परन्तु जहाँ विश्वशांति संशय में होगी भारत पूर्णबल से उसकी रक्षा करेगा।

भारत की इस नीति को कई बार कसौटी पर कसे जाने का अवसर मिला है। भारत सरकार का पहला कदम था अंग्रेजों के प्रति विरोधी भावनाओं का अन्त करना। ब्रिटिश सरकार ने उत्कट इच्छा प्रगट की कि वह भारत को राष्ट्र-परिवार का सदस्य बनाये रखना चाहती है। इस अभिप्राय से एक संसदीय कानून पास किया गया जो इंग्लैंड में एक असाधारण घटना थी। भारत सरकार के इस कदम ने देश का नाम चमका दिया।

भारत की वैदेशिक नीति की महानता का दूसरा उदाहरण पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों में मिलता है। पाकिस्तान ने काश्मीर पर आक्रमण कर, यद्यपि भारतीय जनता को उत्तेजित करने का प्रयत्न किया था, तथापि भारत सरकार ने पाकिस्तान सरकार की ओर सदैव मित्रता का हाथ बढ़ाया। पश्चिमी पञ्जाब और सिन्ध से सभी हिन्दू निकाल दिये गये। पूर्वी बङ्गाल में भी हिन्दुओं पर लगातार अत्याचार होते रहे जिनके कारण वे पश्चिमी बङ्गाल आते रहे परन्तु भारत सरकार ने इस देश में स्थित मुसलमानों के साथ अपने व्यवहार में तनिक भी अन्तर नहीं आने दिया।

भारत सरकार ने जातीय भेदभाव की निन्दा की और यह प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख रखा। दक्षिणी अफ्रीका की सरकार, जो इस प्रकार के भेदभाव को उचित समझती थी, टाल मटोल करती रही और चेष्टा करती रही और संयुक्त राष्ट्र संघ इस विषय में कोई निर्णय न दे सका। भारत सरकार ने दक्षिणी अफ्रीका की सरकार से सम्बन्ध तोड़ दिये।

भारत सरकार उन लोगों का भी हित चाहती है जो यहाँ से जाकर अन्य देशों में आबाद हो गये हैं। विभिन्न देशों में आप्रवास नियम, श्रम कानून राजनैतिक अधिकार, राष्ट्रीयकरण, रंग-भेद आदि नियम बाध्य हैं इस लिए भारत सरकार चिरकाल तक इन लोगों के विषय में सन्तोषजनक निर्णय नहीं कर पाई।

संयुक्त राष्ट्र संघ में, जिस की स्थापना द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् हुई, भारत सरकार की अगाध श्रद्धा है। चीन को मान्यता देने के प्रश्न पर जब रूस की सरकार ने इसका बहिष्कार किया तो श्री जवाहरलाल नेहरू ने व्यक्तिगत रूप से अपील की कि संघ का अस्तित्व कायम रखा जाय। इसका बहुत अच्छा परिणाम हुआ। १९५० ई० से १९५२ ई० तक भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा समिति का सदस्य रहा। १९५४ ई० में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित संयुक्त राष्ट्र संघ की अध्यक्ष रहीं। संघ की कई अन्य समितियों में भारत ने भाग लिया।

शान्ति-संस्थापक के रूप में भारत सरकार ने पहले-पहल इन्डोनेशिया (हिन्द एशिया) के मामले को सुलझाने का प्रयत्न किया, जो सफल रहा। कोरिया के युद्ध को बन्द कराने में भी भारत का बहुत हाथ है। हिन्दचीनी में शान्ति स्थापित करने का श्रेय तो स्पष्ट रूप से भारत को ही है। फारमोसा और स्वेज़ के मामले में भी भारत ने संसार की अमूल्य सेवा की है।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् साम्यवादी देशों और पूँजीवादी देशों के अलग अलग दल बन गये जिस से विश्व-शान्ति-भंग होने का पूरा पूरा भय था। भारत सरकार ने इस आपसी तनाव को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। भारत सरकार की युक्ति थी कि चीन की साम्यवादी सरकार को मान्यता दी जाय और उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा-परिषद में स्थान प्रदान किया जाय। भारत सरकार यह भी समझती थी कि फारमोसा पर चीन की साम्यवादी सरकार का अधि-

कार हो। भारत ने चीन का पक्ष लेकर विश्वशान्ति को भंग होने से बचाया।

भारत सरकार चाहती है कि संसार के सभी देशों को और विशेषत: एशिया और अफ्रीका के देशों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो। श्री जवाहरलाल नेहरू ने विश्व शान्ति की रक्षा के हेतु पाँच नियम संसार के सम्मुख रखे हैं जिन्हें पंचशील कहा जाता है।

श्री जवाहर लाल की अमेरिका, रूस आदि की यात्रा और विभिन्न देशों के मुख्य अधिकारियों की भारत यात्रा ने विश्व शान्ति के लक्ष्य को निकट कर दिया है।

फ्राँसीसी सरकार ने जून १९५२ ई० में चन्द्र नगर भारत सरकार के हवाले कर दिया। शेष फ्राँसीसी उपनिवेशों पर १९५३ ई० में भारत सरकार का अधिकार हो गया। गोआ, डामन, ड्यू आदि इलाकों के लिए जो पुर्तगाल के अधिकार में है आन्दोलन जारी है।

योजनाएँ

भारत की आर्थिक स्थिति का आधार कृषि पर है। कृषि प्राय: वर्षा पर निर्भर रही है। भारत की नदियाँ कभी कभी बाढ़ के समय खेती के लिए अभिशाप बन जाती हैं इस लिए नई सरकार के लिए यह ज़रूरी था कि वह नदियों पर बांध लगाकर बाढ़ को रोकने का और नदियों से नहरें निकाल कर सिंचाई का प्रबंध करे।

भारत की नदियाँ शक्ति का भी स्रोत हैं। भारत में कोयला बहुत अधिक नहीं होता। नदियों के प्रपात द्वारा विद्युत् बनाई जा सकती है, जो कोयले का स्थान ले सकती है। इसी अभिप्राय से सरकार ने ऐसी योजनाएँ बनाई जिन से सिंचाई का प्रबंध हो सके, बाढ़ रोकी जा सके, वाहन का काम लिया जा सके और विद्युत् उत्पन्न की जा सके।

१३५ से अधिक इस प्रकार की योजनाएँ कार्य रूप में परिणत की जा रही हैं। इन में से पञ्जाब की भाखड़ा-नांगल योजना विशेष महत्व रखती है। सतलुज नदी पर जो बन्द बाँधा जा रहा है वह ६८० फुट ऊँचा होगा। नांगल के स्थान पर ९० फुट ऊँचा बन्द

तैयार हो चुका है। नांगल के स्थान से भी नहरें निकाली गई हैं। पहली नहर १९५४ ई० में खोली गई थी। वहाँ विद्युत भी उत्पन्न की जाती है। पञ्जाब, राजस्थान, दिल्ली और उत्तरप्रदेश को इस योजना से बहुत लाभ पहुँचेगा।

उड़ीसा में हीराकुंड की योजना भी बहुत महत्व रखती है। यहाँ का बाँध भी १९५४ ई० में तैयार हुआ। इस योजना से महानदी की नाव्यता में भी बहुत उन्नति हुई है।

दामोदर घाटी की योजना से बिहार और पश्चिमी बङ्गाल को लाभ पहुँचेगा। कुल ८ जलसंग्रह बाँधों की व्यवस्था है। कई बाँध तैयार हो चुके हैं। इस योजना से यातायात में भी सुगमता प्राप्त होगी।

मद्रास और हैदराबाद को लाभ पहुँचाने के लिये तुंगभद्रा योजना १९५३ ई० में समाप्त हुई। बम्बई, राजस्थान और अन्य राज्यों में भी कई योजनाएँ इस प्रकार बनाई गई हैं। इन सब में महानतम कोसी की योजना होगी जिस पर अभी काम आरम्भ हुआ ही है। सरकार १२२ अन्य योजनाओं को हाथ में लेना चाहती है।

इन योजनाओं को सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में सम्मिलित किया है। पहली योजना अप्रैल १९५१ से लागू हुई थी। इसके अनुसार कौम्यूनिटी प्रोजैक्ट्स का निर्माण हुआ जिनमें से पहली नीलोखेड़ी से आरम्भ हुई।

पाँच सालों में देश के उत्थान के हेतु २०६९ करोड़ रुपया व्यय किये जाने की व्यवस्था थी।

१९५३ ई० तक चितरञ्जन का रेल के इञ्जन बनाने का कारखाना और सिन्द्री का खाद बनाने का कारखाना इसी योजना के अनुसार पूर्ण हुये। टैलीफोन और कलें बनाने के कारखाने भी पूरे हो चुके है, और काम कर रहे हैं। इनके कारण और अन्य साधनों के परिणामस्वरूप कपड़ा, सीमेंट, लोहा और इस्पात, कपड़ा सीने की मशीनें और काग़ज़ के उद्योगों की बहुत उन्नति हुई है। विज्ञान की उन्नति के

लिये भी प्रयास हो रहा है। भारत में अणु शक्ति तैयार करने का प्रबन्ध हो चुका है जिसे भारत सरकार मानव के सुख के लिये प्रयुक्त करेगी।

परन्तु कृषि में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। अनाज का उत्पादन ही १० लाख टन प्रतिवर्ष से अधिक बढ़ गया है। रुई, पटसन, तेल के बीज आदि अन्य उपज में भी वृद्धि हुई है। गाँवों में घरेलू उद्योग स्थापित किए गये हैं जिनसे किसानों की आय बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है।

इस योजना का अभिप्राय यह रहा है कि भारत का सामाजिक नैतिक और आर्थिक रूप से जीर्णोद्धार हो।

सरकार के काम को सफल बनाने के लिए सर्वोदय योजना भी कार्यान्वित की जा रही है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि भूमि रहित कृषकों को भूमि प्रदान की जाय। भू-दान-यज्ञ इस योजना की आधार-शिला है। आचार्य विनोवा भावे जो १९३९ ई० में व्यक्तिगत सत्याग्रह करने वाले पहले व्यक्ति थे इस योजना का संचालन कर रहे हैं।

भारत की नई सरकार ने निम्नलिखित वाणिज्य नीति अपनाई है।

व्यापार

१. वैदेशिक व्यापार की उन्नति।
२. व्यापार पर नियन्त्रण।
३. देश का आर्थिक विकास।
४. जल यातायात का विकास।
५. विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध कायम रखना।

इस नीति के कारण भारत का आन्तरिक और वैदेशिक व्यापार दोनों बहुत उन्नत हुये हैं।

सरकार चाहती है कि पूँजीदारों और मज़दूरों में मिलवर्तन हो। मज़दूर अपने आपको साझीदार समझें—यह स्थिति उत्पन्न करने के लिए सरकार ने १९४८ ई० में मज़दूरी कानून, उसी वर्ष कर्मचारी राज्य बीमा कानून, कारखाना कानून और कोयला खान प्राविडेंट बोनस योजना कानून पास किये।

श्रम और पूँजी समस्या

सरकार ने यह भी निर्धारित किया है कि पूँजीदार मज़दूरों की समितियों को, जिन्हें ट्रेड यूनियम कहते हैं, मान्यता दें और मज़दूर और पूँजीदार मिलकर अपने झगड़ों का फैसला करें।

श्रमिकों को काम दिलाने के लिए सरकार ने काम दिलाऊ कार्यालयों की स्थापना की है। मज़दूरों को काम सिखाने का भी प्रबन्ध किया है। प्रशिक्षण केन्द्रों में १० हज़ार से अधिक व्यक्तियों को एक साथ प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

सरकार की औद्योगिक नीति

सरकार ने निश्चय किया है कि निजी उद्योगों को कार्य संचालन की छूट दी जाय। सरकार उन उद्योगों के विकास का उत्तरदायित्व अपने आप ले, जिनको निजी हाथों में छोड़ने से राष्ट्र को विपत्ति में पड़ने का भय है। इनमें से भी कुछ उद्योगों को निजी संचालन के लिए छोड़ दिया गया है। कुछ के संचालनार्थ सरकार आर्थिक सहायता देती है। सरकार विशेष रूप से इस्पात, कपास, सूती वस्त्र, सीमेंट, सुपर फॉसफेट, काग़ज़, दवाइयाँ, मशीन, औज़ार, मोटर कार, बिजली की मोटर आदि के उत्पादन को बहुत महत्व देती है। इसीके परिणामस्वरूप भारत में इनका उत्पादन काफ़ी बढ़ा है।

परिवहन और संचार

द्वितीय विश्व महायुद्ध में भारत की रेलों पर जो भार पड़ा था वह १९४७ ई० में और भी अधिक हो गया। सरकार को कुछ लाइनें दोहरी बनानी पड़ीं और कुछ नई लाइनें बिछानी पड़ीं। १९४९ ई० में दिल्ली-मथुरा लाइन दोहरी बनकर तैयार हुई। आसाम को जाने वाली १४२ मील लम्बी रेल बनाई गई जिसका निर्माण एक आश्चर्यजनक काम था। २६ जनवरी, १९५० ई० को यह लाइन यातायात के लिये खोल दी गई। चितरंजन के स्थान पर रेल के इञ्जन बनाने का

कारखाना खोला गया जो काम कर रहा है। १९५६ ई० तक इसमें और भी वृद्धि हुई।

रेल के डिब्बों को तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिये अधिक आराम देह बनाया गया है।

रेल के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि की गई और उनके लिए सुविधायें जुटाई गईं।

जल द्वारा परिवहन की भी व्यवस्था की गई है। बहुमुखी योजनाओं में इस बात का भी विचार रखा गया है कि नहरें यातायात के लिए उपयोगी हों।

सड़कों की ओर भी सरकार का पूरा पूरा ध्यान रहा है। बन्निहाल की सुरंग एक मार्के का काम है। इससे काश्मीर का मार्ग सारा सारा खुला रहेगा।

इसके साथ साथ पर्यटकों को सुविधायें देने के लिए भी सरकार की ओर से बहुत प्रयत्न किया गया है।

डाक घरों, तारघरों और टैलीफोनों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सरकार का यह लक्ष्य है कि प्रत्येक गाँव में जिसकी जन संख्या २,००० या उससे अधिक हो एक डाकघर खोला जाय।

१९४९ ई० में सरकार ने घोषणा की कि सभी पत्र, पोस्टकार्ड, मनीआर्डर बिना अतिरिक्त शुल्क के हवाई जहाज़ द्वारा ले जाये जायें। रात्रि-वायु-सेवा वर्षा ऋतु में भी संचालित रहती है।

सरकार ने हवाई परिवहन का राष्ट्रीयकरण कर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

रेडियो विभाग ने भी पर्याप्त उन्नति की है। ऑल इण्डिया रेडियो २३ भाषाओं में ६९ समाचार-विज्ञप्तियों का प्रसारण करता है। मनोविनोद का प्रोग्राम भी काफी विस्तृत है।

सरकार द्वारा फिल्में भी बनाई गई हैं जो मुख्य घटनाओं को दर्शाती हैं।

शिक्षा और स्वास्थ्य

काँग्रेस सरकार ने १९३७ ई० में ही अपनी शिक्षा नीति निर्धारित कर दी थी। इस नीति का समाधान ब्रिटिश सरकार ने भी किया था। परन्तु काँग्रेस सरकारों के पद त्याग देने के कारण १९३९ ई० में शिक्षा का काम पीछे पड़ गया। १९४७ ई० में पुनर्वास की समस्या के कारण केन्द्रीय सरकार शिक्षा की मद में अधिक व्यय न कर सकी परन्तु राजकीय सरकारों ने बुनियादी शिक्षा का प्रयोग पुनः आरम्भ किया। बहुत सी पाठशालाएँ और प्रशिक्षण केन्द्र खोले जा चुके हैं।

वयस्कों की शिक्षा का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। इसे सामाजिक शिक्षा का नाम दिया जाता है। शिक्षा के लिए आधुनिक साधनों का भी प्रयोग किया जाता है।

महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की शिक्षा के सुधार की योजनाएँ बनाई जा रही है परन्तु कोई मार्के का काम इस ओर नहीं हो पाया।

शिक्षा और स्वास्थ्य की समस्या का आधार आर्थिक समस्या है। जब तक भारत की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं हो जाती इन क्षेत्रों में सन्तोषजनक काम होने की सम्भावना नहीं। फिर भी सरकार की ओर से काफ़ी प्रयत्न हो रहा है।

कला और साहित्य, वैज्ञानिक गवेषणा आदि का भी सरकार प्रबन्ध कर रही है। इस विषय में संयुक्त राष्ट्र संघ की शाखा "यूनेस्को" ने भारत की बहुत सहायता की है। भारत और अन्य देशों में सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने का भी प्रयत्न हो रहा है। भारत से विद्यार्थी विदेशों में भेजे जाते हैं जिन्हें भारत सरकार या अन्य संस्थाएँ वज़ीफे देती हैं। भारत में भी बाहर से इसी प्रकार विद्यार्थी आते हैं।

१८५८ ई० में भारत का शासन प्रबन्ध ब्रिटेन की लोकसभा के

अधीन हो गया था किन्तु सरकार की अभी भी यह नीति थी कि विधान बनाने में भारत के लोगों का कोई हाथ न हो। १८६१ ई० के कानून के अनुसार एक कौंसिल स्थापित की गई। इसके बारह सदस्य थे जिनमें से आधे सदस्यों का ग़ैर सरकारी होना अनिवार्य था। यह नई कौंसिल कानून बना सकती थी किन्तु बजट सम्बन्धी किसी विषय में परामर्श न दे सकती थी। गवर्नर जनरल की अनुमति के बिना सेना, लगान, सरकारी आय अथवा धर्म सम्बन्धी किसी समस्या को कौंसिल में प्रस्तुत न किया जा सकता था। गवर्नर जनरल को अधिकार था कि वह कौंसिल के किसी भी निर्णय को रद्द कर दे।

वैधानिक प्रगति
१८६१ ई० से
१९५० ई० तक

मद्रास और बम्बई में भी कौंसिलें स्थापित हुईं। गवर्नर जनरल को यह भी अधिकार दिया गया कि वह जिस प्रान्त में चाहे इस प्रकार की कौंसिल या धारा सभा स्थापित कर सकता है। इसी के अनुसार बंगाल में १८६२ ई० में, उत्तर प्रदेश में १८८६ ई० में और पञ्जाब में १८९८ ई० में विधान सभा स्थापित हुई।

१८९२ ई० में दूसरा इण्डिया कौंसिल ऐक्ट पास हुआ। इसके अनुसार कलकत्ता के व्यापार मंडल और स्थानीय संस्थाओं के ग़ैर सरकारी मैम्बरों को वोट देने का अधिकार मिल गया। उनके वोट से गवर्नर जनरल अपनी धारा सभा में ५ सदस्य नियुक्त कर सकता था। इस विधान सभा को बजट पर बहस करने और प्रश्न पूछने का अधिकार भी प्राप्त हो गया।

१८९२ का कानून

१९०९ ई० में मिण्टो मौर्ले रिफार्म नाम का कानून भारत की वैधानिक प्रगति की पहली सीढ़ी कहा जाता है। इसके अनुसार

मिन्टोमौर्ले रिफार्म १९०९ ई०

केन्द्रीय कौंसिल के मैम्बरों की संख्या १६ से बढ़ा कर ६० कर दी गई। गवर्नर जनरल की कार्यपालिका के सदस्य इन से पृथक होते थे। प्रान्तीय सभाओं के मैम्बरों की संख्या भी बढ़ा दी गई। उनमें ग़ैर-सरकारी मैम्बरों की संख्या सरकारी मैम्बरों की संख्या से अधिक हो गई। केन्द्रीय सभा में आने वाले नए मैम्बरों की संख्या भी कम से कम आधे ग़ैर सरकारी मैम्बरों की होने लगी। इन्हें निर्वाचन करने का अधिकार प्रान्तीय सभाओं के सदस्यों, ज़मीदारों और व्यापार मंडल के यूरोपीय मैम्बरों को दिया गया।

इस कानून के अनुसार साम्प्रदायिक निर्वाचन विधि लागू हुई। ग़ैर मुसलमान मैम्बरों को ग़ैर-मुसलमान और मुसलमानों को मुसलमान ही चुन सकते थे। मुसलमान और गैर-मुसलमान मैम्बरों का अनुपात भी निर्धारित कर दिया गया।

इन धारासभाओं को विशाल अधिकार प्रदान किए गए किन्तु अब भी गवर्नर जनरल को हक था कि वह इनके पास किये हुए प्रस्ताव को रद्द कर सकता था।

मौंटेगू-चैम्सफोर्ड रिफार्म—१९१९ ई०

१९१९ ई० में नया सुधार कानून पास हुआ। इसने प्रान्तीय सरकार के दो भाग कर दिये। कुछ विभाग ऐसे थे जो गवर्नर या लैफ्टिनैण्ट गवर्नर के अधीन और कुछ गैर सरकारी सदस्यों के अधिकार में थे। इस प्रथा को डाआर्की कहते हैं।

केन्द्र में सभा के दो सदन बना दिए गए—एक कौंसिल आफ़ स्टेट और दूसरी लैजिस्लेटिव असैम्बली। असैम्बली के १४५ सदस्यों में से १०५ निर्वाचित होते थे। नियुक्त किए गए सदस्यों में से २६ से अधिक सरकारी मैम्बर न हो सकते थे। असैम्बली के सदस्यों को अधिकार

था कि वे अपने सदन के प्रधान को निर्वाचित करें । इसके पहले प्रधान श्री विट्ठल भाई पटेल थे ।

कौंसिल आफ़ स्टेट की अवधि पाँच साल और लैजिस्लेटिव की तीन साल थी । दोनों सदनों को बराबर के अधिकार थे । अन्तर इतना था कि बजट केवल असैम्बली में ही पेश हो सकता था ।

इन सभाओं के अधिकार पहली सभाओं से बहुत विशाल थे ।

१९३५ ई० का ऐक्ट

१९१९ ई० से कौंसिल ऐक्ट का स्थान १९३५ ई० के इंडिया ऐक्ट ने लिया । १९३५ ई० के ऐक्ट के दो भाग थे । एक प्रान्तीय सरकारों पर लागू होता था दूसरा केन्द्रीय सरकार पर । इस ऐक्ट का केन्द्रीय भाग लागू न हो सका ।

इस ऐक्ट के अनुसार प्रान्तों को स्वायत्त-शासन का अधिकार प्राप्त हुआ । गवर्नर को विशेष अधिकार दिये गए थे किन्तु मन्त्रिमंडल को आश्वासन दिलाया गया कि उसकी ओर से उन के काम में हस्तक्षेप न होगा ।

केन्द्र

केन्द्रीय शासन की रूपरेखा फैड्रल अर्थात् संघीय थी। केन्द्रीय धारा सभा में ११ प्रान्तों के उन देसी रियासतों के प्रतिनिधि लिये जाने का आयोजन था जो संघ शासन में सम्मिलित होना चाहें।

संघ-शासन उस समय स्थापित हो जब इतनी रियासतें इसमें सम्मिलित होने की हामी भरें जितनी की जन-संख्या सब रियासतों की जन-संख्या का दूसरा भाग हो। इन रियासतों के नरेशों को अधिकार हो कि वे कौंसिल आफ़ स्टेट अर्थात् राज्य सभा में अपने सदस्य भेज सकें।

संघ की सरकार के तीन विभाग हों। एक एग्ज़ैक्टिव, दूसरे धारा सभा और तीसरे न्यायपालिका। एक्ज़ैक्टिव का सर्वेसर्वा गवर्नर

जनरल हो। उस के अधीन रक्षा-विभाग, धर्म-विभाग और कबाइली लोगों से सम्बन्ध रखने वाला विभाग हो। शेष सब विभाग मन्त्रि-मंडल के अधीन हों जिनकी नियुक्ति गवर्नर जनरल संघ की धारा-सभा के सदस्यों में से करे। गवर्नर जनरल को बहुत से अधिकार दिये गए थे। मंत्रिमंडल किसी प्रकार आज़ाद न था।

कौंसिल आफ़ स्टेट और फैड्रल असैम्बली—विधान-सभा के दो सदन हों, उच्च सदन के १६० और निम्न सदन के ३७५ सदस्य धारासभा के अधिकार बहुत सीमित थे। गवर्नर जनरल उसके किसी भी निर्णय को रद्द कर सकता था। वह धारासभा की अनुमति लिये बिना भी कानून बना सकता था।

न्यायपालिका के निर्णय की अपील प्रीवी कौंसिल में हो सकती थी।

१९३५ ई० के ऐक्ट के अनुसार जो संघ शासन भारत को दिया जा रहा था वास्तव में वह संघशासन न था। पहली बात तो यह थी कि शासन-सत्ता एक व्यक्ति में केन्द्रित थी। दूसरे संघ की सब इकाइयों के अधिकार और उनकी शासन-विधि के एक समान होने का आयोजन न था। तीसरे केन्द्रीय सरकार इन इकाइयों में से कुछ के शासन अधिकार आवश्यकता पड़ जाने पर अपने हाथ में ले सकती थी।

इस ऐक्ट के अनुसार सैक्रेटरी आफ़ स्टेट्स फार इंडिया के स्तर में भी अन्तर आ गया। यह उपाधि १८५८ ई० में बनाई गई थी। इस से पूर्व बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल और उस का प्रधान होता था जिसका काम लगभग वैसा ही था जैसे सैक्रेटरी आफ़ स्टेट फार इंडिया का। १९३५ ई० के ऐक्ट में उसकी शक्ति बहुत बढ़ा दी गई। वास्तव में भारत का शासक वही था।

उस की एक कौंसिल थी जो उसे परामर्श देती थी। किन्तु उस की अनुमति को स्वीकार करना उस के लिये जरूरी न था। कुछ

मामलों में कौंसिल का वहुमत उसे स्वीकार भी करना पड़ता था। नए ऐक्ट के अनुसार इस कौंसिल का नाम वदल कर बौडी आफ़ ऐडवाइज़र्स कर दिया गया। इस के सदस्यों की संख्या ८ से १२ तक हो सकती थी। कम से कम आधे सदस्यों के लिये आवश्यक था कि वे दस साल तक भारत में किसी सरकारी पद पर नियुक्त रहे हों और उन्हें भारत छोड़े दो साल से अधिक न हुए हों और इनकी नियुक्ति सैक्रेटरी आफ़ स्टेट द्वारा हो।

इस ऐक्ट के अनुसार ब्रिटेन की लोकसभा को भारत के प्रति बहुत अधिकार प्राप्त हुए।

१९४७ ई० का कानून

१९४७ ई० में इंडियन इंडिपैंडैंस ऐक्ट पास हुआ। इस के अनुसार भारत के दो भाग कर दिये गए। उत्तरपश्चिमी सीमाप्रान्त, पश्चिमी पञ्जाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान, पूर्वी बङ्गाल और आसाम का कुछ भाग मिला कर पाकिस्तान बना दिया गया। शेष भाग भारत कहलाया। ब्रिटेन के सम्राट को दोनों देशों के गवर्नर जनरल नियुक्त करने का अधिकार था किन्तु उस की नियुक्ति प्रत्येक देश की धारा सभा की अनुमति से की जाती थी। गवर्नर जनरल अब केवल वैधानिक सर्वोपरि था। वास्तविक दायित्व मंत्रिमंडल का था। इस में यह भी आयोजित था कि प्रत्येक देश की संविधान सभा एक विधान तैयार करे। १५ अगस्त १९४७ ई० के पश्चात् ब्रिटेन की लोक सभा को इन देशों के विषय में कानून बनाने का कोई अधिकार न रहा। स्वतन्त्र भारत का पहला गर्वनर-जनरल लार्ड माउंट बेटन नियुक्त हुआ और उसके पश्चात जून १९४८ ई० में श्री राजगोपालाचार्य।

कॉंग्रेस की यह माँग थी कि भारत में निर्वाचित विधान परिषद

स्थापित की जाय जिस का निर्णय ब्रिटिश सरकार को स्वीकार हो।

स्वतन्त्र भारत का संविधान

ब्रिटिश सरकार ने यह शर्त स्वीकार की थी और १९४६ ई० में विधान परिषद् की स्थापना हो चुकी थी। १५ अगस्त, १९४७ ई० को इसे प्रभुत्व प्राप्त हुआ। इस ने एक सर्वसम्मत संविधान का निर्माण किया जो २६ जनवरी १९५० ई०से लागू हुआ। इस में ३९५ धाराएँ और ८ अनुसूचियाँ हैं। इसे बनाने में लगभग तीन वर्ष व्यतीत हुये।

इसके अनुसार भारत में लोकपरक गणराज्य की स्थापना हुई जिस में लिंग, धर्म, जाति, वर्ण तथा साम्प्रदायिक भेद का विचार छोड़ कर सब के लिये समान अधिकारों की परिकल्पना है। सब को भाषण, अभिव्यक्ति, निःशस्त्र सम्मेलन, भारत में कहीं भी विचरण करने, कोई भी व्यवसाय ग्रहण करने और सम्पत्ति बनाने की स्वतन्त्रता दी गई है। सार्वजनिक शान्ति, शीलता, नैतिकता तथा राज्य की सुरक्षा के लिये ही इन पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है।

अस्पृश्यता का इसमें उन्मूलन है।

सब को वैधानिक उपचार का अधिकार दिया गया है। प्रत्येक नागरिक को उन्नति का अवसर प्राप्त है।

राज्य नीति के निर्देशात्मक सिद्धान्त भी दिये गये हैं। धारासभाओं और कार्यपालिकाओं को आदेश दिया गया है कि वे नागरिकों के लिये आजीविका के साधन जुटाने, समान श्रम के लिए समान उजरत, निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा, और राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक उपायों की व्यवस्था करें। ऐसी स्थिति उत्पन्न की जाय कि भारत में समाजवाद के ढंग की परिस्थिति स्थापित हो।

भारतीय संविधान में कई अन्य देशों के संविधानों के गुण ग्रहण किये गये हैं। उन की त्रुटियों से बचने का भी प्रयत्न किया गया है।

केन्द्रीय सरकार संघ के साँचे की है जिस में उस समय २७ राज्य थे। तत्पश्चात् मद्रास को तोड़ कर एक नये राज्य की स्थापना की गई जिसे आन्ध्र कहते हैं। इन में से १० भाग "क" के राज्य थे, ८ भाग "ख" के और १० भाग "ग" के। "क" और "ख" राज्यों में उत्तरदायी शासन-विधि की व्यवस्था थी। "ग" राज्यों में से ६ में संसदीय अधिनियम द्वारा इसी प्रकार की सरकार कायम कर दी गई थी।

पहली नवम्बर १९५६ ई० से भारत को १४ राज्यों में बाँट दिया गया है। छः इलाके केन्द्र के अधीन हैं।

केन्द्र और राज्यों के बीच विषय बाँट दिये गये हैं। अवशिष्ट विषयों पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार है। केन्द्रीय सरकार और राज्यीय सरकारों के आपसी झगड़े निपटाने के लिए सर्वोच्च न्यायपालिका की स्थापना की गई है।

संविधान में वयस्क मताधिकार की परिकल्पना है। राष्ट्रभाषा हिन्दी को, जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है, स्वीकार किया गया है। सरकारी काम के लिए १५ वर्ष तक अंग्रेज़ी का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु धीरे धीरे अंग्रेज़ी का स्थान हिन्दी को दिया जाने का आदेश है।

"जन गण मन" और "बन्दे मातरम्" नाम के गीत राष्ट्रीय गान स्वीकार किए गये हैं। तिरंगा झण्डा, जिस के नीचे भारत ने स्वतन्त्रता संग्राम किया, राष्ट्रीय ध्वजा है। ध्वजा में चर्खे का स्थान अशोक-चक्र को प्रदान हुआ है। राज्य-चिह्न सम्राट् अशोक का वह चिन्ह है जो सारनाथ के स्तूप पर बना हुआ है।

राजकीय कार्य तीन भागों में बटा है। एक वैधानिक; दूसरा शासकीय, और तीसरा न्याय सम्बन्धी। राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचन गण द्वारा होता है जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय संसद के दोनों सदनों और राज्यीय विधान-सभाओं के सदस्य होते हैं। मताधिकार

इस प्रकार निर्धारित किया गया है कि राज्यीय और केन्द्रीय मत संख्या में बराबर का अनुपात रहे।

केन्द्रीय संसद के सदस्यों और राज्यीय विधानसभाओं के सदस्यों का निर्वाचन वयसक मताधिकार द्वारा होता है।

राष्ट्रपति को गणराज्य में शीर्षस्थान दिया गया है। प्रधान मन्त्री, जो लोकसभा में बहुसंख्यक दल का नेता होता है, मन्त्रिमंडल की नियुक्ति करता है। मन्त्रिमंडल राष्ट्रपति को उसके कार्य के सम्पादन में सहायता और परामर्श देता है।

भारत का प्रत्येक नागरिक, जिस की आयु २१ वर्ष या उस से अधिक है वोट दे सकता है। लोकसभा के सदस्य की आयु कम से कम २५ वर्ष और राज्यसभा के सदस्य की ३० वर्ष होनी चाहिये।

संविधान के कार्यान्वित होने के दस वर्ष पश्चात् तक सूचित और जन जातियों के लिए धारासभाओं में स्थान नियत किये गए हैं।

संसद

राज्य-परिषद में राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं जिनकी अधिकतम सदस्य संख्या २५० है। उपराष्ट्रपति पदेन राज्यपरिषद का सभापति है। १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्दिष्ट होते हैं। इस के एक तिहाई सदस्यों को प्रति दो वर्ष पश्चात पद छोड़ना पड़ता है।

लोक सभा में ५०० सदस्य होते हैं जो प्रति पाँच वर्ष पश्चात् वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। प्रत्येक सदस्य ५ लाख से साढ़े सात लाख लोगों तक का प्रतिनिधि होता है। लोक सभा सब अनुदान स्वीकृत करती है और उसे ही वित्तीय मामलों में सर्वोच्च प्राधिकार प्राप्त है।

संसद के दोनों सदनों का अधिवेशन वर्ष में कम से कम दो बार अवश्य होना चाहिए।

संसद संघ सूची और समवर्ती सूची में उल्लिखित किसी विषय पर कानून बना सकती है।

यदि राज्यों की विधान सभाएं दो तिहाई के बहुमत से उसे राष्ट्रीय हित के लिए आवश्यक घोषित कर देती हैं तो केन्द्रीय संसद राज्य की सूची के भी किसी विषय पर कानून बना सकती है।

यदि राष्ट्रपति आपद अवस्था की घोषणा कर दे तो केन्द्रीय संसद राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बना सकती है।

राष्ट्रपति

राष्ट्रपति अपने पद पर पाँच वर्ष तक रहता है और पुनर्निर्वाचित हो सकता है। संघ की समस्त कार्यपालिका शक्ति उस में निहित है। वह प्रतिरक्षक बलों का सर्वोच्च समादेष्टा है।

कुछ अवस्थाओं में दंड को क्षमा अथवा दंडादेश को लघु कर सकता है।

राज्यपालों, राजदूतों, उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों और लोकसेवा आयोगों के सभापति तथा सदस्यों आदि की नियुक्ति करता है। संसद जब न बैठ रही हो, तब अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है और युद्ध, आन्तरिक उपद्रव और आर्थिक अस्थिरता के कारण आपद अवस्था की घोषणा करता है।

केन्द्रीय संसद का कोई भी सदन २/३ के बहुमत से राष्ट्रपति पर अभियोग चलाने का प्रस्ताव पास कर सकता है। अभियोग को सुनने का अधिकार अन्य सदन को है जो यदि २/३ के बहुमत से राष्ट्रपति के विरुद्ध निर्णय दे तो राष्ट्रपति को अपने पद से हटाया जा सकता है।

संविधान में संशोधन किये जाने की परिकल्पना है। संशोधन के लिये प्रत्येक सदन का २/३ बहुमत प्राप्त होना आवश्यक है।

मुद्रा

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मीरकासिम (१७५६ ई०) से सिक्के घड़ने का अधिकार प्राप्त किया था। ये घटिया दर्जे के थे और इन्हें चालू करने के लिये नवाब को न्याय विरोधी आदेश निकालना पड़ा। उस समय ६६४ विभिन्न सिक्के चलते थे जिनका मूल्य प्राचीन प्रथा के अनुसार उनके तोल के अनुसार होता था। कम्पनी के अपने सिक्के भी मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में भिन्न-भिन्न थे।

१८३५ ई० के ऐक्ट के अनुसार पहली बार चान्दी को मान-दण्ड मान कर समस्त भारत के लिये एक सिक्का चलाया गया जिसमें ११/१२ चान्दी होती थी और जिसका भार १८० ग्रेन ट्राय होता था। १६४२ ई० तक इसी प्रकार का सिक्का चलता रहा। इसे रुपया कहते थे। स्वर्ण के सिक्के का जिसे मोहर कहते थे चान्दी के सिक्कों में १५ रुपये मूल्य निर्धारित किया गया। १८४८-५१ ई० में कैलीफोर्निया और आस्ट्रेलिया में सोने की खानें निकल आने से सोने का मूल्य घट गया और १८५३ ई० में सरकार ने सोने के सिक्के स्वीकार करना बन्द कर दिया।

१८७४ ई० में सोने का भाव चढ़ने लगा और चान्दी का भाव गिरने लगा। विदेशी मंडियों में रुपये का मूल्य घट गया और भारत के व्यापार को हानि पहुँचने लगी। १८६२ ई० में हर्शेल कमेटी ने सुझाव दिया कि रुपये का मूल्य १ शि० ४ पैंस निर्धारित किया जाय और सरकार चान्दी और सोने के सिक्के घड़ना बन्द कर दे। १८६३ ई० में सरकार ने इन सुझावों को स्वीकार किया और चान्दी की मान-दंड्यता समाप्त हो गई।

१८६८ ई० तक स्थिति सम्भल गई और फाउलर कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार सोने को मान-दंड स्वीकार किया गया। १६०७ ई० के दुर्भिक्ष के कारण भारत की निर्यात कम हो गई, विदेशी मंडियों में रुपये का मूल्य घटने लगा। इसका उपाय निकालने के लिये चेम्बरलेन

कमेटी की नियुक्ति की गई किन्तु १९१४ ई० में जब इस कमेटी की रिपोर्ट छपी महायुद्ध छिड़ गया और सरकार को नई कठिनाइयों ने आ घेरा। सरकार इन समस्याओं को सुलझा ही रही थी कि १९१६ ई० में भारत के माल की निर्यात बढ़ गई और देश में चान्दी के रुपयों का अकाल पड़ गया। माल था किन्तु लोगों के पास उसे खरीदने के लिये रुपया न था। सरकार ने अधूरे उपाय किये किन्तु स्थिति बिगड़ती ही गई और १९१९ ई० में सरकार को सोने की मान दंड्यता समाप्त करनी पड़ी। उस साल एक कमेटी नियुक्त की गई जिसके सुझाव के अनुसार रुपये की कीमत २ शि० निर्धारित कर दी गई। किन्तु निर्यात की कमी और सोने का भाव गिर जाने से सरकार इस भाव को स्थाई न रख सकी। रुपये का मूल्य गिरता गया।

१९२५ ई० में हिल्टन यंग कमीशन के सुझाव के अनुसार रुपये का मूल्य १ शि० ६ पैंस रखा गया और सोने का मान-दंड रखते हुये भी सोने के सिक्के न चलाये गये। यह भारत के अहित की बात थी और इसके विरुद्ध भारतीयों ने खूब वावेला मचाया।

१९३१ ई० में इंग्लैंड ने सोने की मान दंड्यता समाप्त कर दी। 'स्टर्लिंग' को मान-दंड स्वीकार किया गया और उसी के साथ रुपये का सम्बन्ध जोड़ दिया गया। इससे ब्रिटेन को बहुत लाभ हुआ। अन्य देशों में भारत के रुपये की साख कम हो गई, भारत का सोना धड़ा-धड़ बाहर जाने लगा। १९३१ ई० से पूर्व बाहर से सोना भारत आया करता था किन्तु अगले नौ सालों में ३५० करोड़ से भी अधिक रुपये का सोना देश से निकल गया। लोगों के वावेले की सरकार ने जरा भी परवाह न की। यदि दूसरा महायुद्ध आरम्भ न होता तो भारत का व्यापार नष्ट हो गया होता। महायुद्ध ने नई समस्यायें उत्पन्न कर दीं। १९४२-४३ में सरकार ने रुपये और अठन्नी के सिक्के में चान्दी की मात्रा बहुत घटा दी। पुराने सिक्के वापिस ले लिये

गये। इससे पूर्व देश में सिक्कों का अकाल पड़ गया था, अब इतने सिक्के हो गये कि हर चीज़ का भाव चढ़ गया। लोगों के पास रुपया था किन्तु माल कहीं दिखाई न देता था। इस स्थिति को मुद्रा-स्फीति अर्थात् इन्फ्लेशन का नाम दिया जाता है। यह एक बहुत बड़ा अभिशाप था जिसे दूर करने के लिये राष्ट्रीय सरकार को घोर प्रयत्न करना पड़ा।

नई सरकार के सामने १९४९ ई० में एक नई कठिनाई उत्पन्न हो गई। ब्रिटेन ने अमरीकी सिक्के डालर के अनुपात में अपने सिक्के का दाम ३०·५% घटा दिया। भारत का रुपया इंग्लैंड के सिक्के से सम्बन्धित था। भारत सरकार ने यही समझा कि रुपये का मूल्य घटाने में ही कुशल है। इससे पूर्व भारत का रुपया ३२ सैंट को बिकता था, अब इसका मूल्य २१ सैंट रह गया। 'स्टर्लिंग' में रुपये का मूल्य पहले जितना ही रहा। इससे रुपये की साख को बट्टा ज़रूर लगा पर भारत की आर्थिक स्थिति को सम्भाले रखने के लिये यही समझदारी थी।

रुपये के आकार और मूल्य में विशेष परिवर्तन १ अप्रैल, १९५७ से आया है। भारत सरकार ने दशमलव विधि अपनाई है। यह हिसाब किताब को आसान करने के लिये किया गया है नया रुपया निकल का बना है और इसका मूल्य १०० नये पैसे है।

यह परिवर्तन लाने के लिये १९५५ में ऐक्ट पास हुआ था।

भारत में पहली जनगणना लार्ड मेयो के काल में हुई थी। उसके पश्चात् रिपन के काल में जनगणना हुई जिस के पश्चात् प्रत्येक दस वर्ष बाद जनगणना होने लगी। स्वतन्त्र भारत में पहली जनगणना १९५१ ई० में हुई। यह भारत की पहली सन्तोषजनक जनगणना थी जिससे विश्वसनीय तथ्य प्राप्त हुये। काश्मीर में जनगणना न हो सकी।

जनगणना

भारत के संविधान में प्रत्येक नागरिक को वोट का अधिकार दिया गया है। भारतीयों की निरक्षरता को देखते हुए यह शंका प्रकट की जाती थी कि प्रथम निर्वाचन में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। परन्तु १९५२ ई० का निर्वाचन बहुत शान्तिपूर्वक हुआ। जनता ने सिद्ध कर दिया कि निरक्षर होते हुये भी वह राजनीति को खूब समझती है और अपने हितकारियों को पहचानती है। लगभग सभी राज्यों में और केन्द्र में काँग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ।

स्वतन्त्र भारत के पहले निर्वाचन

२९ मई, १९५२ ई० को सालों के प्रयास के पश्चात् मानव ने पहली बार एवरेस्ट पर पदार्पण किया। यह गर्व की बात है कि उन दो व्यक्तियों में जिन्हें यह श्रेय प्राप्त हुआ एक भारतीय था। शर्पा तेनसिंह कई मुहिमों में सम्मिलित हुआ था। उसका साथी ऐडमेंड हिलेरी न्यूज़ीलैंड का प्रसिद्ध पर्वतारोही था। संसार की यह सबसे ऊँची चोटी समुद्रतल से २९००२ फीट ऊपर तक सिर उठाये खड़ी है।

एवरेस्ट बिजय

परिशिष्ट

प्रमुख तिथियाँ

ई० पूर्व	
४००० से ३०००	हड़प्पा सभ्यता का यौवन काल
३००० से १८००	मिस्र के पिरेमिडों का निर्माण
३००० से २०००	वैदिक काल
२००० से १०००	महाकाव्य काल
८२६	ट्राए नगर की स्थापना
७५३	रोम नगर की स्थापना
५८६	बेबीलन में उच्चलित उद्यानों का निर्माण
५६३	महात्मा बुद्ध का जन्म (निर्वाण ४८३ ई० पू०)
५४३	बिम्बसार का सिंहासन आरोहण
५४०	महावीर स्वामी का जन्म (अन्त ४६८ ई० पू०) ।
५१६	ईरान के सम्राट दारा की भारत विजय
४८०	पाटलीपुत्र की स्थापना (लगभग)
४३८	हैरोडोट्स द्वारा संसार के प्रथम इतिहास का निर्माण
३४५	नंद वंश की स्थापना
३२६	सिकन्दर महान भारत में (मृत्यु ३२३ ई० पूर्व)
३०३	चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा सैल्यूकस की पराजय
२७४	अशोक का सिंहासन आरोहण (मृत्यु २३२ ई० पू०)
२६२	कलिंग विजय
२३०	सातवाहन साम्राज्य की स्थापना (लगभग)
२१४	चीन-सम्राट् शी ह्वांग टी द्वारा महान् दीवार का निर्माण
१८४	शुंग वंश की स्थापना

१६५	खरवेला की दक्षिण विजय (लगभग)
११०	मिलिंद का आक्रमण
१००	कादिदास की तिथि (लगभग)
७२	काण्व वंश की स्थापना
५७	विक्रमी संवत् का आरम्भ
४	ईसा मसीह का जन्म (सूली ३० ई०)

ईस्वी

१२८	कनिष्क का सिंहासन आरोहण
१५०	सुदर्शन झील की मरम्मत
२२०	चीन में हैन वंश का अन्त
३१९	गुप्त वंश की स्थापना
३२३	कौन्स्टैंटीनोपल की स्थापना
४०५	फाह्यान भारत में (४११ ई० तक)
४४८	हूणों का आगमन
४५३	अटिला की मृत्यु
४८४	तोरमाण की विजय
५२८	मिहिरकुल की पराजय
५७०	हज़रत मुहम्मद का जन्म (वफ़ात ६३२ ई०)
६०६	हर्षवर्धन का सिंहासन आरोहण (मृत्यु ६४७ ई०)·
६१८	चीन में टैंग वंश की स्थापना
६२२	हिजरी संवत् का आरम्भ
६२९	युआन च्याँग भारत में (६४५ ई० तक)
७११	मुसलमानों का स्पेन पर आक्रमण
७१२	मुहम्मद बिन क़ासिम का सिन्ध पर आक्रमण
७८६	बगदाद में खलीफा हांरूरशीद का सिंहासन आरोहण
८४६	चोलवंश की स्थापना

परिशिष्ट

प्रमुख तिथियाँ

ई० पूर्व

४००० से ३०००	हड़प्पा सभ्यता का यौवन काल
३००० से १८००	मिस्र के पिरेमिडों का निर्माण
३००० से २०००	वैदिक काल
२००० से १०००	महाकाव्य काल
८२६	ट्राए नगर की स्थापना
७५३	रोम नगर की स्थापना
५८६	बेबीलन में उच्चलित उद्यानों का निर्माण
५६३	महात्मा बुद्ध का जन्म (निर्वाण ४८३ ई० पू०)
५४३	बिम्बसार का सिंहासन आरोहण
५४०	महावीर स्वामी का जन्म (अन्त ४६८ ई० पू०)।
५१६	ईरान के सम्राट दारा की भारत विजय
४८०	पाटलीपुत्र की स्थापना (लगभग)
४३८	हैरोडोट्स द्वारा संसार के प्रथम इतिहास का निर्माण
३४५	नंद वंश की स्थापना
३२६	सिकन्दर महान भारत में (मृत्यु ३२३ ई० पूर्व)
३०३	चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा सैल्यूकस की पराजय
२७४	अशोक का सिंहासन आरोहण (मृत्यु २३२ ई० पू०)
२६२	कलिंग विजय
२३०	सातवाहन साम्राज्य की स्थापना (लगभग)
२१४	चीन-सम्राट् शी ह्वांग टी द्वारा महान् दीवार का निर्माण
१८४	शुंग वंश की स्थापना

१६५	खरवेला की दक्षिण विजय (लगभग)
११०	मिलिंद का आक्रमण
१००	कादिदास की तिथि (लगभग)
७२	काण्व वंश की स्थापना
५७	विक्रमी संवत् का आरम्भ
४	ईसा मसीह का जन्म (सूली ३० ई०)

ईस्वी

१२८	कनिष्क का सिंहासन आरोहण
१५०	सुदर्शन झील की मरम्मत
२२०	चीन में हैन वंश का अन्त
३१६	गुप्त वंश की स्थापना
३२३	कौन्स्टैंटीनोपल की स्थापना
४०५	फाह्यान भारत में (४११ ई० तक)
४४८	हूणों का आगमन
४५३	अटिला की मृत्यु
४८४	तोरमाण की विजय
५०८	मिहिरकुल की पराजय
५७०	हज़रत मुहम्मद का जन्म (वफ़ात ६३२ ई०)
६०६	हर्षवर्धन का सिंहासन आरोहण (मृत्यु ६४७ ई०)
६१८	चीन में टैंग वंश की स्थापना
६२२	हिजरी संवत् का आरम्भ
६२६	युआन च्याँग भारत में (६४५ ई० तक)
७११	मुसलमानों का स्पेन पर आक्रमण
७१२	मुहम्मद बिन क़ासिम का सिन्ध पर आक्रमण
७८६	बगदाद में खलीफा हांरूरशीद का सिंहासन आरोहण
८४६	चोलवंश की स्थापना

८५०	रूस में रूरिक द्वारा राज्य स्थापना
९६०	चीन में सूंग वंश की स्थापना
९६३	कल्याणी के चालुक्य वंश की स्थापना
१००८	महमूद की आनन्दपाल पर चढ़ाई
१०२४	सोमनाथ पर आक्रमण
१०६६	विलियम द्वारा इंग्लैंड की विजय
११९२	तराई की लड़ाई में पृथ्वीराज की हार
१२०२	चौथा क्रूसेड (धर्म युद्ध)
१२०६	कुतुबुद्दीन द्वारा गुलाम वंश की स्थापना
१२१५	मैगना कार्टा पर जौन द्वारा हस्ताक्षर
१२२१	चंगेजखाँ भारत की सीमा पर
१२२९	अल्तमिश का खलीफा को सर्वोपरि स्वीकार करना
१२६६	बलबन का सिंहासन आरोहण
१२८०	कुबलेखाँ द्वारा चीन में युवान वंश की स्थापना
१२९०	खिलजी वंश की स्थापना
१२९२	मुग़लों का पहला आक्रमण
१२९३	विज्ञानाचार्य रोजर बेकन की मृत्यु
१२९५	मारको पोलो की चीन-यात्रा के पश्चात् वैनिस को वापसी
१३१०	होयसल और पाण्ड्य राज्यों की मलिक काफूर द्वारा पराजय
१३२०	तुगलक वंश की स्थापना
१३३०	पहली बार ताम्बे के सिक्के
१३३३	इब्न बतूता भारत में
१३३६	विजय नगर राज्य की स्थापना
१३४७	बहमनी राज्य की स्थापना
१३९८	तैमूर का आक्रमण
१४६९	गुरु नानक का जन्म (देहान्त १५३८)

१४९२	कोलम्बस द्वारा अमरीका की खोज
१४९८	वास्को डा गामा का भारत में आगमन
१५१०	गोआ पर पुर्तगालियों का अधिकार
१५२६	पानीपत के स्थान पर बाबर की विजय और मुगल राज्य की स्थापना
१५२७	खानुवा के स्थान पर राणा साँगा की बाबर से हार
१५३०	विजयनगर नरेश कृष्णदेवराय की मृत्यु
१५३२	तुलसीदास का जन्म (मृत्यु १६२३ ई०)
१५३९	शेरशाह का सिंहासन प्राप्त करना
१५४२	अकबर का जन्म (मृत्यु १६०५)
१५५६	पानीपत के स्थान पर अकबर की जीत
१५६५	तालीकोट की लड़ाई
१५९७	महाराणा प्रताप की मृत्यु
१६००	ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना
१६१५	सर टामस रो भारत में
१६३१	ताजमहल का निर्माण
१६७५	शिवाजी का राज्याभिषेक (मृत्यु १६८० ई०).
	गुरु तेगबहादुर का बलिदान
१६९०	कलकत्ता की स्थापना (जाब चारनाक)
१७०८	गुरु गोबिन्दसिंह का परलोकवास
१७१४	बाला जी विश्वनाथ पहला पेशवा
१७३९	नादरशाह का आक्रमण, मराठों का सालसेट और बेसीन पर अधिकार
१७५६	अंग्रेज़ों का स्वर्ण दुर्ग पर अधिकार
१७५७	प्लासी की लड़ाई
१७६१	पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों की हार
१७६३	अंग्रेज़ों द्वारा फ्रांसीसियों की पराजय

१७६४	बक्सर की लड़ाई तथा इलाहाबाद की संधि
१७६९	नैपोलियन का जन्म, हैदरअली का मद्रास पर आक्रमण
१७७०	बंगाल का पहला भीषण अकाल
१७७२	पेशवा माधवराव की मृत्यु
१७७३	रैगूलेटिंग ऐक्ट
१७७६	अमरीका की स्वतन्त्रता की घोषणा
१७८१	कलकत्ता मदरसा की स्थापना
१७८१	बनारस संस्कृत कालिज की स्थापना
१७८४	पिट का इण्डिया ऐक्ट
१७८९	फ्राँस की क्रान्ति, संयुक्त राज्य अमरीका की स्थापना
१७९३	बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त
१७९४	महादाजी सिंधिया की मृत्यु
१७९८	सबसी डियरी अलाऐंस
१७९९	टीपू सुल्तान की हार और मृत्यु
१८००	नाना फड़नवीस की मृत्यु
१८१८	दिल्ली और आगरे पर अंग्रेज़ों का अधिकार
१८२४-२६	बर्मा की पहली लड़ाई
१८२९	सती प्रथा का उन्मूलन
१८३५	शिक्षा नीति का निर्माण, समाचारपत्रों को स्वतन्त्रता
१८३९	अंग्रेज़ों का गज़नी और कन्धार पर अधिकार, राजा रणजीतसिंह की मृत्यु
१८४९	पंजाब पर अंग्रेज़ों का अधिकार
१८५२	लोअर बर्मा पर अंग्रज़ों का अधिकार
१८५३	भारत में पहली रेल तथा तार का निर्माण
१८५७	भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम, विश्वविद्यालयों की स्थापना
१८६१	प्रथम भारत सरकार ऐक्ट

१८६९	महात्मा गाँधी का जन्म, नहर स्वेज़ का उद्घाटन
१८८५	इण्डियन नैशनल काँग्रेस की स्थापना
१८८६	समस्त बर्मा पर अंग्रेज़ों का अधिकार
१८९२	इण्डिया कौंसिल ऐक्ट
१९०४	कोऑप्रेटिव ऐक्ट
१९०५	बंगभंग, जापान द्वारा रूस की पराजय
१९०६	मुस्लिम लीग की स्थापना
१९०७	काँग्रेस के दो दल
१९०९	मिण्टो मौर्ले रिफार्म
१९११	बंगाल का पुन: संयोजन, राजधानी दिल्ली, चीन में क्रान्ति
१९१४-१८	प्रथम महायुद्ध
१९१७	भारतीयों को किंग्ज़ कमीशन पाने का अधिकार, रूस की क्रान्ति
१९१९	मौन्टेगू चेम्सफ़ोर्ड रिफ़ार्म
१९२१	असहयोग आन्दोलन
१९२७	इंडियन नेवी ऐक्ट
१९२९	काँग्रेस द्वारा स्वतन्त्रता की घोषण
१९३०	सविनय अवज्ञा आन्दोलन
१९३१	गाँधी इर्विन समझौता
१९३५	भारत सरकार ऐक्ट
१९३७	प्रान्तीय स्वायत्त शासन की स्थापना
१९३९-४५	दूसरा महायुद्ध
१९४१	जापान का युद्ध में प्रवेश
१९४२	'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो' आन्दोलन
१९४६	आन्तरिम सरकार की स्थापना
१९४७	भारत स्वतंत्रता ऐक्ट

SPS
954 K 52 H
24190

१९४८	महात्मा गाँधी की हत्या (३० जनवरी)
१९४९	काश्मीर में युद्धबंदी (१ जनवरी)
१९५०	लोकपरक गणराज्य की स्थापना (२६ जनवरी)
१९५२	ऐवरेस्ट विजय (२९ मई)

NGH

१६४८	महात्मा गाँधी की हत्या (३० जनवरी)
१६४६	काश्मीर में युद्धबंदी (१ जनवरी)
१६५०	लोकपरक गणराज्य की स्थापना (२६ जनवरी)
१६५२	ऐवरेस्ट विजय (२६ मई)

NGH

R24130

H